

वीर श्रेष्ठ शिवाजी ।

विध्वंस किया दुष्टों का, सब शान मिटादी ।
इस वीर ने हिन्दुत्व की, फिर धाक जमादी ।।

(अख्तर)

ॐ

वीर-सन्देश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग १ { आगरा—कार्तिक शुक्ला २ सं० १९८३—वीर सं० २४५३ } अङ्क १

प्रभात

अहा ! लालिमा ललित छा रही नभ मण्डल में,
उषा मांगती विदा नवा सिर चरण कमल में।
चिहुँके चारु विहंग थये शशि अस्ताचल में,
मलिन नखतगण हुये देख रवि धरती तल में।
लख सर में पंकज खिले, अलि गण मड़राने लगे।
मानो गुण दिन देव के, गुन गुन कर गाने लगे॥

प्राची कर शृंगार बाल रवि गोद खिलाती,
पवन प्रेम में पगी पहुनई कर इठलाती।
भव्य भाव मन भरे लता लहलही दिखाती,
मुदित हुये तरु सुमन मगन है पाती पाती।
प्रेमीजन स्वागत करें, निकला उधर दिनेश है।
साहित्यिक नभ में इधर उदित वीर-सन्देश है॥

—स्वामी नारायणानन्द।

साहित्य का महत्व

[लेखक—श्रीयुत देवीप्रसाद सक्सेना]

वर्तमान समय में साहित्य शब्द दो भावों में प्रचलित है। एक बहुत सङ्कुचित अर्थ में और दूसरा विस्तृत-व्यापक और प्रभावशाली रूप में। पहले विचार वाले लोगों की दृष्टि प्रायः साहित्य-सागर की ऊपर की तह पर तैरा करती है। बाल सूर्य की मनोरम सुनहरी किरणों से क्रीड़ा करती हुई, शीतल समीर की थपकियों से उमगी हुई, प्रेमोन्मत्त ऊर्मियों के अञ्चल में उलझी हुई उनकी दृष्टि वहां से आगे नहीं बढ़ सकती। परन्तु दूसरी श्रेणी के लोग यद्यपि सौन्दर्य के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं करते परन्तु उसी में लिप्त हो वे अपने ध्येय को भी नहीं भूल बैठते। वे साहित्य-सागर के गम्भीर तल में पड़े हुए ऐसे अमूल्य रत्नों को डुबकियां लगा कर ऊपर लाते हैं, जिनकी प्रभा से संसार मुग्ध हो जाता है। प्रथम पक्ष वालों की दृष्टि में शब्दार्थ–गुण–रस–अलङ्कर–रीति विशिष्ट विषय ही साहित्य है। और दूसरे विचार वाले व्यक्ति कहेंगे कि, जो हित के साथ वर्तमान हो वह सहित और सहित का भाव अर्थात् होना—साहित्य है। अर्थात् जो समाज–जाति–देश अथवा विश्व मात्र के हितकारी भावों से युक्त होवे वही साहित्य है।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति विशेष के हृद्गत भावों के जानने को हमें

"आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्र वक्त्र विकारैश्च ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनः॥"

आदि पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। उसी तरह किसी समाज विशेष की अवस्था से परिचित होने के लिए उसके साहित्य का जानना आवश्यक है। प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान् बेकन का कहना है कि, "किसी देश या समाज की सभ्यता उसके साहित्य में झलकती है।" किसी समाज के साहित्य को देखकर ही उसके मानसिक और नैतिक विकास

का पता लगता है। सुप्रसिद्ध अमरीकन आध्यात्मिक लेखक श्री एमर्सन कहते हैं कि, देश की, समाज की और जाति की वास्तविक महत्ता उसके साहित्य से ही ज्ञात होती है। भारतवर्ष, पराधीन और पादाक्रान्त होते हुए भी, यदि आज सभ्य संसार में गर्व से अपना मस्तक ऊंचा उठा सकता है तो केवल अपने प्राचीन अवशिष्ट साहित्य के आधार पर ही। उसका पुरातन साहित्य ही संसार की सभ्य और समुन्नत जातियों को यह कहने को विवश कर देता है कि:—"Soil of ancient India, cradle of humanity, hail! hail! venerable efficient nurse! whom centuries of brutal invasions have not yet buried under the dust of oblivion. Hail! father-land of faith, of love, of poetry and of science! May we hail a revival of thy past in our western future."

अर्थात्—"हे प्राचीन भारत भूमि! हे मानव जाति की आद्य जननि! तेरा जय जय कार हो! पूज्य एवं समर्थ धात्री! क्रूर परचक्रों की शताब्दियां भी तुझे आज तक विस्मृति की धूल में न दबा सकीं। मां तेरी जय हो! धर्म की, प्रेम की और काव्य तथा विज्ञान की पितृ भूमि! हम तुझे प्रणाम करते हैं, चाहते हैं कि तेरे भूतकाल का पुनरावर्तन, हमारे पश्चिम के भविष्य काल में हो।"

सभ्य जातियां अपने सर्वस्व की बलि देकर भी अपनी इस अमूल्य निधि—साहित्य की रक्षा करती हैं। एक बार एक अंगरेज़ बालक से पूछा गया था कि तुम अखिल विश्व का साम्राज्य चाहते हो अथवा इंगलैण्ड का साहित्य? उसने उत्तर दिया था कि "केवल इंगलैण्ड का साहित्य।" साहित्य की महत्ता अंगरेज़ों के हृदय में पूर्ण विकसित हो रही है। एक समय था जब भारतीय भी अपना सर्वस्व खोकर-राज्य-धर्म-धान्य, पुत्र कलत्र आदि सभी की भेंट देकर भी इस अमूल्य निधि की रक्षा में तत्पर थे।

इस्लाम की रक्त रञ्जित तलवार उनका सब कुछ अपहृत कर चुकी थी, किन्तु अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी साहित्य की रक्षा में वे तत्पर रहे। वे उस पवित्र पुरातन भण्डार से हमारे पूर्वजों के अलौकिक कार्यों और गौरव-गाथाओं को सुना-सुनाकर हमारे हिन्दुत्व के अभिमान को जागृत करते थे। यही कारण है कि उस समय हमारे हृदयों में हिन्दुत्व की ज्योति जगमगा रही थी, और हम उस आशा पूर्ण भविष्य के मंगल मय प्रभात की उषा-रश्मियों को देखने का सुखद स्वप्न देख रहे थे, जिस में हमारे पूर्वजों की गरिमा, हमारा गत गौरव और हमारा अतीत सार्व भौमत्व अठखेलियां करता हुआ दिखायी पड़ता था। हम अपना देश-कोष खोकर भी उस समय रङ्क नहीं हुए थे। भावी उन्नति का आशातन्तु हमें अपने अतीत वैभव के पुनः प्राप्त होने का सन्देश दे रहा था। किन्तु आज हम अपना सब कुछ खो बैठे हैं। पहले से अधिक सुखी होते हुए भी अधिक दुखी हैं। क्योंकि हम उन भावों को विस्मृत कर चुके हैं, जो हमें अभी तक जीवित रखे थे। हम अपने साहित्य के महत्व को और उसकी अलौकिक सत्ता को भुलाते जा रहे हैं। शेक्सपियर और मिल्टन में मस्त होकर, प्राचीन भारतीय दर्शनकारों और उपनिषद् वेत्ताओं को तिरस्कृत कर रहे हैं। कालिदास, भवभूति और सूर और तुलसी को हेय और नगण्य समझते हैं। स्वराज्य प्राप्ति की भावनाओं का यद्यपि हम में उत्कर्ष हो रहा है किन्तु स्व-साहित्य की रक्षा और संस्मृति के भावों का अपकर्ष होता जाता है। अस्तु। आवश्यकता है कि नवयुवकों के हृदय में ऐसे भाव और भावनाएं उद्भूत होने का प्रयत्न हो कि वे अपने साहित्य के अनुशीलन, उसके रक्षण और सम्वर्द्धन के लिए लज्जित न हों वरन आगे बढ़ें। हमें सर्वदा यह स्मरण रखना चाहिए कि स्व-साहित्य को खोकर हम स्व-राज्य की प्राप्ति पहले तो कर ही नहीं सकते और यदि कर भी लें तो उसे स्थिर नहीं रख सकते।

——::❀::——

कवि-कीर्तन

कविवर-वृन्दावन

[लेखक—'कवीन्द्र' सम्पादक श्री स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती]

स्वनाम धन्य कविवर वृन्दावन 'वृन्द-कवि' का जन्म शाहाबाद जिले के 'वारा' नामक नगर में विक्रमीय संवत् १८४८ में हुआ था। आप गोयल गोत्रीय अग्रवाल वंश में उत्पन्न हुये थे। आपके वंशधर प्रतिष्ठित, गण्य-मान्य धनाढ्य थे। आपके पिता का नाम 'धर्मचन्द्र' और माता का नाम 'शितावो' था। बाबू धर्मचन्द्र जी विद्वान्, धर्मात्मा, सदाचारी थे, एवं माता 'शितावो' विदुषी और धार्मिका थी। पति पत्नी का दाम्पत्य प्रेम प्रसिद्ध था। धन की कमी न थी, सर्व प्रकार सुखी सद् गृहस्थ कहे जाते थे तथा जैन धर्म पर दृढ़ विश्वास रखते थे। कविवर की प्रारम्भिक शिक्षा धार्मिक भावों से पूर्ण थी। अतएव आपकी अभिरुचि स्वाभाविक धर्म परायण होती गई। बाबू धर्मचन्द्र जी संवत् १८६० में वारा का निवास छोड़ कर काशी चले आये और वावर शहीद की गली में रहने लगे। उस समय काशी में जैन धर्म के ज्ञाताओं की अच्छी मण्डली थी, जिसमें प्रायः धर्म चर्चा होती रहती थी। कविवर की उम्र उस समय १२ साल की थी, परन्तु बुद्धि प्रखर थी। उस मण्डली से कविवर को अत्यन्त लाभ पहुँचा और अभिरुचि धर्म की ओर अग्रसर हुई। कविवर में कवित्व शक्ति तो स्वाभाविक थी ही, सत्संग और ग्रन्थावलोकन से प्रतिभा और भी जगमगा उठी। जैन धर्म में विश्वासी होने के कारण सब से प्रथम आपने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग जैन तीर्थंकरों की प्रार्थना में रच कर किया। जब आप जिन मन्दिरों में दर्शन करने जाया करते थे, तो नित्य नवीन स्तोत्र पाठ किया करते थे। कविवर का स्वभाव शान्त

और सरल था, हृदय शुद्ध और सत्य ग्राही था। आप भारतीय वेष भूषा के पक्षपाती थे, पोशाक-धोती, मिरजई, पगड़ी आदि पहनते थे। घर के धनाढ्य थे ही, केवल विद्याभ्यास तथा धर्म चर्चा ही में समय बिताते थे। किसी अन्य घरेलू चिन्ता से उनका कुछ सरोकार न था। उस समय का जैन समाज आपके प्रति प्रेम रखता था और आपकी रचनायें सुनने को लालायित रहता था। आपकी कविता स्वाभाविक, सरल, सरस एवं हृदय ग्राही होती थी। अस्वाभाविक और बनावटी कविता आप करते ही न थे। शृंगार रस की कविता करने को आपकी लेखनी कभी नहीं उठी। किन्तु, जिस रस के पान करने से जरा मरण रूप दुःख अधिक नहीं सताते तथा जिससे परम पद प्राप्त होता है, उस अध्यात्म तथा भक्ति रस के मंथन करने में ही आपकी लेखनी मस्त रही। कविवर मंत्र शक्ति में अधिक विश्वास रखते थे, अतएव जपादि में अधिक समय विताते थे, आपको दैवदत्त प्रतिभा प्राप्त थी। जपादि से कल्पना शक्ति भी विलक्षण होती गई। धीरे २ आप उच्च कोटि की कविता करने लगे। कविवर के लिखित ग्रन्थ (१) प्रवचन सार, (२) तीस चौबीसी पाठ, (३) चौबीसी पूजा (४) छन्द शतक, (५) अर्हत्पासा केवली (६) वृन्दावन विलास (जिसमें फुटकर कवितायें हैं) अब तक प्राप्त हुये हैं, इनके अतिरिक्त उनके अन्य ग्रन्थ मिलने की भी आशा है। क्योंकि समवसरण पूजा लिखने की उनकी इच्छा थी, इस सम्बन्ध में उन्होंने ललित कीर्ति भट्टारक जी से बहुत सी बातें पत्रों द्वारा पूछी हैं। आपने किसी समय कुछ जैन रामायण भी रची थी परन्तु उसे पूर्ण न कर सके।

(१) प्रवचन सार—कविवर का सर्वोत्तम ग्रन्थ है जो उनकी कीर्ति को चिरकाल तक रखने वाला और भाषा काव्य का शृंगार स्वरूप है। इस ग्रन्थ का अनुवाद आपने पद्यों में किया है। इसके पढ़ने से कविवर की कवित्व शक्ति एवं प्रतिभा का पता चल जाता है कि आप कितने ओजस्वी और उग्र कवि थे। मूल ग्रन्थ के सम्बन्ध में कुछ न लिख कर हम केवल 'कविवर' के पद्यानुवाद से दो एक छन्द यहां उद्धृत करते हैं।

तत्वन में रुचि परतीति जो न आई तौ धौं,
कहा सिद्ध होत कीन्हे आगम पठा पठी ।
तथा परतीत प्रीत तत्व हू में आई पै न,
त्यागे राग द्वेष तौ तो होत है गठा गठी ॥
तवै मोक्ष सुख 'वृन्द' पाइ है कदापि नाहिं,
ताते तीनों शुद्ध गहु छांड़ि कै हठा हठी ।
जो तू इन तीन बिन मोक्ष सुख चाहै तौ तो,
सूत न कपास करै कोरीसों लठा लठी ॥

❀ ❀ ❀

जाके शुद्ध सहजस्वरूप को न ज्ञान भयो,
और वह आगम को अक्षर रटतु है ।
ता के अनुसार सो पदारथ को जानै सर,
धानै औ ममत्व लिये क्रिया कों अटतु है ॥
तहां प्रश्न खिरै नित नूतन करम बंध,
गोरख को धन्धा नट बाजी सी नटतु है ।
आगे को बटत जात पाछे वाछरू चवात,
जैसे दृग हीन नर जेवरी बटतु है ॥

लेख बढ़ जाने के भय से हमने केवल दो ही पद्य उद्धृत किये हैं। यह रचनायें लोकोक्तियों पर की गई हैं, परन्तु इनसे कविवर के हार्दिक भावों का दिग्दर्शन भली भांति होता है तथा भाषा की प्रौढ़ता भी विदित हो जाती है। इतने ही से काव्य मर्मज्ञ कविवर के सम्बन्ध में अपनी सम्मति स्थिर कर सकते हैं, अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

(२) श्री चतुर्विंशति जिन पूजा—यह ग्रन्थ जैन समाज में बड़ी आदर की दृष्टि से देखा जाता है और इसने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। भजनानन्दी और प्रेमी लोगों का तो गले का हार ही बन गया है। जैनी लोग प्रायः पूजा अर्चा इसीके द्वारा करते कराते हैं। जन साधारण के परिचय के लिये हम यहां उक्त ग्रन्थ से दो एक पद उद्धृत करते हैं।

(वीररस—रूपकालंकार)

तप तुरंग असवार धार, तारन विवेक कर;
ध्यान शुकल असि धार, शुद्ध सुविचार सुवक्तर।
भावन सेना धरम, दशों सेनापति थापे;
रतन तीन धरि सकति, मन्त्र अनभौ निरमापे।
सत्ताल सोऽहं सुभट धुनि, त्याग केतु शत अग्र धरि।
इहि विधि समाज सज राज को, अर जिन जीते कर्म अरि॥

❀ ❀ ❀

(अनौष्टप—यमकालंकार—शान्तरस)

चारु चरन आचरन, चरन चित हरन चिहन चर;
चन्द चन्द तन चरित, चन्द थल चहत चतुर नर।
चतुक चन्ड चक चूरि, चारि चिद चक्र गुनाकर;
चंचल चलित सुरेश, चूलनुत चक्र धनुर हर।
चर अचर हितू तारन तरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि।
जिन चंद चरन चरच्यो चहत, चित चकोर नचि रच्चि रुचि॥

इस ग्रन्थ में आपने बहुधा अलंकारिक वर्णन किया है और संस्कृत छन्द वसन्त तिलका, स्रग्धरा, उपेन्द्रवज्रा आदि को खूब निबाहा है। स्थाली पुलाक न्याय से पाठक ग्रन्थ की उच्चता स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

(३) तीस चौबीसी पाठ—यह ग्रन्थ कविता के भावों से पूर्ण अनेक छन्दों में लिखा गया है। इसमें चित्र काव्य आदि की भी अच्छी छटा है। इसके भी दो एक छन्द पढ़िये और काव्य रसामृत पान कीजिये।

आनन्द कन्द जिनन्द चन्द, अमन्द बन्दन कीजिये;
बसु दरब छन्द सुछन्द है, निरफन्द थानक लीजिये।

❀ ❀ ❀

माधवी–सिंहावलोकन (मुक्त पद गुप्त)

मन्दर मेरु विराजत है नित, पुष्कर दीप विषै अति सुन्दर;
सुन्दर दक्षिण भर्त बसै नित, तीस जिनेश्वर धर्म धुरंधर।

धर्म धुरंधर सेवत हैं गुन, "बृन्द" सुध्यावत जाहि पुरन्दर ।
जाहि पुरन्दर ध्यावत ताहि, सुथापहु पूजन को निज मन्दर ।।

(४) छन्द शतक—इसमें १०० प्रकार के छन्द बनाने की बिधि है। विशेषता यह है कि लक्षण और उदाहरण एक ही छन्द में वर्णित हैं। सुना जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना कविवर ने अपने प्रिय ज्येष्ठ पुत्र अजितदास को पढ़ाने के लिये की थी। दिग्दर्शनार्थ दो छन्द उद्धृत हैं।

(मोतीदाम—चार जगन)

जिनेसुर को मुद मंगल धाम, जहां चहुं देव जजंति ललाम ।
प्रलंवित द्वारिन में अभिराम, अमोल मणी युत मोतिय दाम।।

(पद्धडी-१६ मात्रा)

जिन बाल छवी शचि लखी आय, मन अड़ी खड़ी टकटकी लाय।
उमग्यो उमंग मनमें न माय, तब गह पह "पद्धरी" गाय ।।

(५) वृन्दावन विलास—इसमें विशेष रूप से स्तुतियां संग्रह की गई हैं जो कि समय २ पर रची गई प्रतीत होती हैं, क्योंकि इसकी भाषा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। बहुत से पदों से तो ज्ञात होता है कि यह कविवर का प्रथम प्रयास ही है। लीजिये इसकी भी बानगी देखिये।

हे दीनबन्धु श्रीपति करुणा निधानजी, यह मेरी विथा क्यों न हरो बार क्या लगी,
मालिक हो दो जहान के जिनराज आपही, ऐबो हुनर हमारा तुमसे छिपा नहीं।
बेजान में गुनाह मुझसे बन गया सही, कंकरी के चोर को कटार मारिये नहीं।।

(६) अर्हत्पासा केवली—इसमें पासा डाल कर शुभाशुभ जानने की रीति है जो पंडित विनोदीलाल कृत संस्कृत ग्रन्थ के आधार पर है।

कविवर पद्य के अतिरिक्त गद्य के भी अच्छे लेखक थे, इसका पता आपके पत्र व्यवहार से लगता है। आपने अपनी आयु का अधिकांश भाग हिंदी तथा जैन धर्म की सेवा में ही व्यतीत किया। कुछ दिन आप सरकारी खजांची थे। पश्चात् किसी बड़े सौदागर के गोदाम में मैनेजर

रहे। आपको कारावास दण्ड भी भुगतना पड़ा था जिसका कारण आपकी दृढ़ता और स्वतन्त्र विचार थे, इस घटना के पोषक "वृन्दावन विलास" में अनेक पद्य पाये जाते हैं। आपने संस्कृत में भी परिश्रम किया था, यह अनेक रचनाओं और पत्रों से विदित है। आपके वंशज अबभी आरा में विद्यमान हैं, यह आनन्द की बात है। यद्यपि कविवर का भौतिक शरीर आज संसार में नहीं है, उसका अग्नि संस्कार हुये न्यूनाधिक ५० वर्ष बीत गये परन्तु उनका यशः शरीर ज्यों का त्यों किम्बहुना उससे भी अधिक प्रभावशाली स्वरूप में विद्यमान है और जब तक हिन्दी भाषा और उसके जानने वाले संसार में हैं, तब तक अजर, अमर रहेगा। कहा भी है—

ते धन्यास्ते महात्मनस्तेषां लोकेस्थितं यशः।
यैर्निवद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः॥

लेख विस्तार भय से कविवर के सम्बन्ध में इतना ही लिखना इस समय हम पर्याप्त समझते हैं।

अब हम हिन्दी सेवियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे हिन्दी प्रेमी जैन कवियों के ग्रन्थों का मन्थन कर काव्य रूप रत्न प्राप्त करें और प्रिय पारखियों के समक्ष रख दें। विचार दृष्टि से देखा जाय तो जैन सम्प्रदाय का हिन्दी साहित्य अमूल्य रत्न ही है परन्तु साम्प्रदायक दल दल में पड़े होने के कारण कांति हीन, निस्तेजसा हो रहा है। यदि इस पंकज से निकल कर आलो-चना प्रत्यालोचना रूपी खराद पर चढ़ गया तो अवश्य ही जगमगा उठेगा। आशा है कि हिन्दी के महारथी इधर ध्यान देंगे। सम्भवतः किसी अगले अङ्क में इस विषय पर हम पूर्ण रूप से विचार करेंगे। ❀

——::❀::——

❀ 'वीर सन्देश' के प्रत्येक अंक में हम हिन्दी कवियों के विषय में लेख देना चाहते हैं, जो सज्जन ऐसे लेख भेजेंगे उनके हम विशेष कृतज्ञ रहेंगे। —सम्पादक।

वीर-विलास ।

वीरवर श्रीपाल

[लेखक—श्रीयुत 'प्रताप']

—:※:—

महाराजा अरिदमन नामक एक बड़े प्रतापी राजा हो गए हैं। उनकी राजनीति, प्रजापालन और वीरता की धाक चारों ओर जमी हुई थी। वीरवर श्रीपाल का जन्म इन्हीं की गुणवती रानी कुंदप्रभा की कोख से हुआ था। बचपन में ही लोग उनकी असाधारण क्रीड़ाओं को देख कर दंग रह जाते थे। छोटी अवस्था में ही वे तर्क, न्याय, व्याकरण और गणित के पंडित तथा धनुर्विद्या के आचार्य हो गए।

राजा अरिदमन ने श्रीपाल में राज्यभार सम्हालने की पूर्ण योग्यता देख कर, शुभ मुहूर्त में राज्य उन्हें सौंप दिया और वे स्वयं एकान्त वास कर धर्मध्यान में कालक्षेप करने लगे। श्रीपाल भी न्याय तथा नीति के साथ प्रजा का पालन करने लगे। वे कुछ ही दिन राज्य वैभव का भोग कर पाये थे कि उन्हें कुष्ट रोग हो गया। रोग ग्रसित श्रीपाल अपने चचा वीरदमन को राज्य दे जंगल में चले गये। वहां उज्जैन के प्रतापी तथा शूरवीर राजा पाहुपाल ने अपनी परम गुणवनी पुत्री मैनासुन्दरी का विवाह उस से कुपित हो कर श्रीपाल के साथ कर दिया। उस धीर वीर गुणवती बालिका ने बड़ी श्रद्धा से उनको ग्रहण किया और दिन रात सेवा-सुश्रुषा तथा सिद्धचक्र विधान कर उन्हें स्वस्थ कर लिया और संसार को पतिभक्ति और पतिव्रत धर्म का अनुपम प्रभाव बता दिया।

रोग से मुक्त हो कर श्रीपाल अपने राज्य में लौट जा सकते थे और राज्य का उपभोग कर सकते थे, पर उन्हें अपनी भुजाओं के बल की परीक्षा करना अभीष्ट था। अतएव वे घर न लौट कर अकेले पर्यटन को

चल दिए और कौशांबी नगरी के धनिक व्यापारी धवल सेठ के जहाजों पर जा पहुँचे। वहां श्रीपाल ने सेठ के जहाजों को जो अचानक रुक गये थे चलाया। और सेठ के अनुनय विनय करने पर उसके साथ चलना स्वीकार कर लिया।

कुछ दिनों बाद जब सब जहाज चले जा रहे थे और लोग आनन्द में मग्न थे, एकाएक मरजिया (जहाज के सिरे पर बैठ कर दूरतक देखने वाला) चिल्ला उठा, "सावधान" हो जाओ, सामने से एक डाकुओं का दल आ रहा है। देखते २ डाकुओं ने जहाज पर अक्रमण कर दिया और माल से भरे हुए जहाजों को लूटना प्रारम्भ कर दिया।

जहाज में कितने ही अस्त्र शस्त्र सज्जित सिपाही थे, पर योग्य परिचालक न होने से वे उस समय कुछ न कर सके। निदान डाकुओं ने जहाज लूटने के अतिरिक्त धवल सेठ को भी गिरफ्तार कर लिया। यह सब कांड देख कर वीरवर श्रीपाल से चुप न रहा गया। उन्होंने उत्तेजित हो कर अपने सिपाहियों को ललकारा और डाकुओं से जा भिड़े। सिपाही तो नायक की बाट जोह ही रहे थे, एक साथ शत्रु पर टूट पड़े। श्रीपाल की अनुपम वीरता ने उस समय जो जौहर दिखाया वह कभी भूला नहीं जा सकता। जो डाकू विजय के हर्ष से गर्वोन्मत्त हो रहे थे, श्रीपाल के सामने न ठहर सके। थोड़ी देर ही में इस लड़ाई का अन्त हो गया। श्रीपाल ने लूटा हुआ सब माल वापिस ले लिया, धवल सेठ को छुड़ा लिया और साथ ही सब डाकुओं को गिरफ्तार कर लिया। कुछ शिक्षा देने के पश्चात श्रीपाल ने इन डाकुओं को मुक्त कर दिया, श्रीपाल के इस आचरण से वे ऐसे प्रभावान्वित हुए कि उन्होंने लूट मार का काम छोड़ दिया, श्रीपाल से क्षमा मांगी और उसे बहुत सा धन भेट में दिया।

इसी प्रकार अपनी भुजाओं का बल दिखाते हुए और अपनी योग्यता से अपार ऐश्वर्य अर्जन करते हुए श्रीपाल बहुत दिन धवल सेठ के साथ रहे। उनके गुणों पर मुग्ध होकर भिन्न २ स्थानों के दो नरेशों ने

श्रीपाल के साथ अपनी २ पुत्रियों का विवाह भी कर दिया। अन्त में बहुत घूमने फिरने और अपार धन, यश और वैभव उपार्जन करने के पश्चात् श्रीपाल ने अपने घर लौटने की ठानी। वे यथा समय बड़े साज सामान के साथ अपने नगर में पहुंचे और नगर से बाहर एक रम्य उद्यान में ठहर कर दूत द्वारा अपने चचा वीरदमन के पास सन्देशा भिजवाया। श्रीपाल को यह आशा न थी कि उसके चचा अमानत में मिले हुए राज्य का वर्षों उपभोग करने पर भी मांगने पर उसे देना स्वीकार न करेंगे और अपने प्यारे भतीजे से ही युद्ध ठान लेंगे। चचा का उत्तर सुन कर श्रीपाल को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे नहीं चाहते थे कि इस प्रकार अपने ही चचा से युद्ध करें। पर कायरता पूर्वक अपने अधिकार को छोड़ देना उन्होंने क्षात्र धर्म के विरुद्ध समझ कर वीरदमन को युद्ध की घोषणा देदी। वीरदमन समझते थे कि वह श्रीपाल को बड़ी जल्दी परास्त कर देंगे पर जब दोनों ओर के योद्धा इकट्ठे हुए और संग्राम छिड़ा तो वीरदमन ने देख लिया कि विजय पाना उतना सरल नहीं है जितना वे समझते थे। जब उन्होंने देखा कि इस प्रकार संभवतः उनकी पराजय हो जावेगी, उन्होंने श्रीपाल से अकेले लड़ने की इच्छा प्रकट की। श्रीपाल कब हटने वाले थे। दोनों में बड़ी देर तक अस्त्र शस्त्रों से लड़ाई हुई। इसमें भी कुछ फल न होने पर दोनों वीरों ने मल्ल युद्ध करना चाहा। मल्ल युद्ध में थोड़ी ही देर में श्रीपाल ने वीरदमन को हरा दिया और विजय श्री को गले लगाया। श्रीपाल के अद्भुत बल और पराक्रम को देख कर लोग दंग रह गए और ऐसे बलशाली राजा को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। ❀

——::❀::——

❀ 'कवि-कीर्तन' की भांति 'वीर-विलास' भी हमारा स्थायी शीर्षक है। इस शीर्षक में प्राचीन और अर्वाचीन वीरों के चरित प्रकाशित होंगे। प्रेमी लेखकों से प्रार्थना है कि वे कृपा कर ऐसे लेख भेज कर हमें आभारी बनावें।

—सम्पादक।

पद्य-प्रमोद

समस्या—बन में

[नागरी प्रचारिणी सभा—आगरा की कृपा से प्राप्त]

(कविता-कामिनि-कान्त, कवि शिरोमणि श्री पं० नाथूराम जी 'शंकर' शर्मा)

धन्य नागरी प्रचार प्यारा उमगा शंकर के मन में।
लेख्य कठिनाई भरता था कविता के कोमल तन में॥
सोया स्वप्न कल्प तरु फूला सफल हुआ सौ हायन में।
राजा लक्ष्मणसिंह विहारे मोद मढ़े नन्दन बन में॥

❀ ❀ ❀

(कविरत्न पं० हरिशंकर जी शर्मा, सम्पादक—आर्यमित्र)

भारत की नैया के खिवैया, वाणी-वाण छोड़,
द्रोह की दुनाली दाग जूझ रहे रन में।
भोली जनता के भद्र भाव सुनता है कौन ?
फूट के फुहारे चले एकता-सदन में॥
भारत-प्रवासी अँगरेज हाय ! हँस रहे,
अट्टहास करते हैं लोग लन्दन में।
वोट के भिखारी लीडरों को समझावे कौन ?
ध्यान धन में है, और आन अनबन में॥

❀ ❀ ❀

लोक-परलोक के सुधारने की कामना से, कीजे सब काम, रत रहिये न धन में।
वैर के बढ़ाने वाले लेख लिख लिख कर, बोइये न विष बीज बाचकों के मन में॥
सम्पादक लोगो दूसरों को दोष देना पीछे, अपना स्वरूप तो निहारो दर्पन में।
भारत भलाई की सुभद्र भावना को भूल, भरिये न भद्दे भाव भारती-भवन में॥

(पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी)

पूजि के पाखंड सब प्रतिभा पजारि डारी,
कविता लगाई पेट चिन्ता के करन में।
अरस अगंध निरे टेसू तो चढ़ाये शीश,
कोविद कमल कुम्हिलाये क्रूर पन में॥
तन मन अरपन कियौ जो तिहारे हेत,
आई है न लाज तिन्हें भूलि गए छन में।
देखि हिन्दी वारिन की ऐसी अकृतज्ञता कों,
आवत ये मन में कि भागि चलें बन में॥

❀ ❀ ❀

(पं० अमृतलाल चतुर्वेदी, चेयरमैन—फ़ीरोज़ाबाद म्यूनिस्पेलिटी)

घोर दुख होत दशा देख देश नेतन की,
ईंटन दवायें कांख राम नाम मन में।
आपु र ढापुली पै आपनौ अलापै राग,
एक अनमिल एक मस्त हैं मिलना में॥
प्रति सहयोगी औ स्वतंत्र है उदार कोई,
एक खरियान दूजे दौरत सदन में।
बिना धनी धोरी आज सबै तीन तेरै भये,
एक जात सन में तौ एक जात बन में॥

❀ ❀ ❀

(साहित्योपाध्याय पं० गणेशीलाल जी सारस्वत)

नर जीवन चञ्चल है जग में, चपलावलि ज्यों चमकै घन में।
परमेश्वर भक्ति बिसारि अरे, अवलोकत का धन में जन में॥
कहु को अपने, सपने सम हैं, श्रुति सार विचार करौ मन में।
अब आइ हराबहि हाय जरा, बसि हौ कब देव नदी बन में॥

❀ ❀ ❀

(पं० रामप्रसाद जी सारस्वत बी० ए०, एल० टी०)

जहं शीतल मन्द सुगन्ध समीर बहै नित पादप पुंजन में।
झरना झरें झील झिलारे जहां झनकोर विहंग उमंगन में॥
चलि रे बटु पुस्तक ले निशि वासर सार नहीं सिर मारन में।
वह तत्व मिलै तुहि ता बन में जु मिल्यौ न अनेक किताबन में॥

❀ ❀ ❀

(श्री हरस्वरूप जी चतुर्वेदी, 'हरेश')

अंक में मयंक के कलंक है कि अंक माहिं,
लसत कलंक के मयंक उडुगन में।
कैधों श्याम चूनरी सितार दार धारि मिली,
कामिनी कन्हैया सो ललित उपबन में॥
दौरि मिले दोऊ गहि पोंछत पिताम्बर लै,
उमड़े अंसुवान श्याम मोहिनी दृगन में।
मानों अरविन्द ते झरत मकरन्द वुन्द,
पीवत मलिन्द तिन्है दौरि कुंज बन में॥

❀ ❀ ❀

(मुं० दरबारीलाल जी वर्मा 'लाल')

पावस की त्रास गई फूले कांस आस पास,
अमल अकास साजि इन्दु उडुगन में।
पंक रेणु हीन भूमि शोभित अनंद भरी,
पाथ पंथ शोषि शेष सर सरितन में॥
गुञ्जत मधुप दल कँवल प्रसूनन पै,
मदन उमङ्ग बढ़ि लागी तन मन में।
आयौ राज शरद विराज्यौ लाल बाग़न में,
कानन में कुञ्जन कछारन में बन में॥

❀ ❀ ❀

(श्री कुंवर लोकपालसिंह जी)

अपने कर में निज स्वत्व रहे ।
किहि को हम पै न प्रभुत्व रहे ॥
परतंत्र विचार न हों मन में ।
निर्भीक फिरें घर में बन में ॥

❀ ❀ ❀

तन पै कछु वस्त्र रहे न रहे ।
उर में पर प्रेम प्रवाह बहे ॥
विचरें हरि ज्यों नित कानन में ।
निर्भीक फिरें घर में बन में ॥

❀ ❀ ❀

[श्रीयुत हृषीकेश जी चतुर्वेदी]

चरावै जो धेनू मनहरन वृन्दा विपिन में,
बजावै वन्शी कों मधुर धुनि सों शांत मन ह्वै ।
लिये ठाड़ो सोहै सँग सुघर गोपी गनन कों,
सोई माधौ मोकों लगत अति प्यारौ सबन में ॥

❀ ❀ ❀

कवि महोदयों से निवेदन ।

'पद्य प्रमोद' शीर्षक में प्रति मास एक समस्या की पूर्ति रहा करेगी। सभी कवि महोदयों से प्रार्थना है कि वे कृपा कर अपनी २ पूर्तियां सम्पादक के पास भेजने का कष्ट उठाया करें । हम चाहते हैं कि अधिकतर पूर्तियां वीर रस पूर्ण हों । यदि इस पर कविगण ध्यान रक्खेंगे तो विशेष कृपा होगी ।

आगामी अंक के लिए

समस्या—भारत निवासी हैं ।

इसकी पूर्तियां हमें कार्तिकी पूर्णिमा से पूर्व मिल जानी चाहिए ।

——::❀::——

आदर्श युद्ध वीरता

[लेखक—श्रीयुत पं० ब्रजमोहन जी तिवारी एम० ए०]

करतूत हो जिस मर्द की हर व्यक्ति को भाती।
सुनते ही उमंग उठती हो उत्साह से छाती॥
भुजदंडों को फड़काती हो ओठों को कंपाती।
वीरत्व की लाली से हो नेत्रों को रंगाती॥
निज देश में हर व्यक्ति से शाबाश कहा दे।
है कौन कृतघ्नी जो भला उसको भुला दे॥
—वीर पञ्चरत्न।

औस्टर्लिट्ज़ (Austerlitz) के युद्ध के कुछ दिन पहिले की बात है। नैपोलियन बोनापार्ट का एक जनरल उससे मिलने गया। बातों ही बातों में जनरल ने नैपोलियन से प्रश्न किया, "क्या मैं जान सकता हूं कि आप का आदर्श क्या है ?"

नैपोलियन—"जरूर ! मेरा आदर्श—मेरी हार्दिक अभिलाषा—संसार में उच्चतम पद को प्राप्त करना है। वह है संसार का सम्राट बनना। मैं कदापि इस बात को सहन नहीं कर सकता कि परमात्मा के रचे हुए इस अलौकिक लोक में एक से अधिक व्यक्ति राज्य करे। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकतीं। एक जंगल में दो शेर राज्य नहीं कर सकते। फ्रांस की जाति संसार की जातियों की शिरोमणि होकर रहेगी और उनका राजा संसार की जातियों का राजा होगा।"

वीर रस का प्रधान भाव उत्साह है। उस उत्साह का मूल है स्वातन्त्र्य। प्रत्येक प्राणी की और जाति की हार्दिक अभिलाषा होती है स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन यापन करना। यदि उसकी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की अड़चन या बाधा पड़ती है तो उसका प्रति फल होता है एक का दूसरे के साथ संग्राम। यह प्राकृतिक नियम है। इस प्राकृतिक नियम के अनुसार ही वीर रस की सृष्टि हुई है।

वीर रस में आधार सत्य रहता है। वीर के मुख पर प्रसन्नता झलकती रहती है। और प्रसन्नता के साथ रहती है उसकी सगी बहिन धीरता। धीरता के साथ में जो प्रसन्नता रहती है उसके अर्थ की विशेषता पर पाठकों को ध्यान देना परमावश्यक है। वीर पुरुष चाहे जैसी परिस्थिति में क्यों न हो, इस प्रसन्नता—आत्मिक अर्थात् मानसिक परितुष्टि—से वञ्चित नहीं रह सकता। अथवा यों कहिये कि यह प्रसन्नता उसका अभिन्न अङ्ग बन जाती है और हज़ार प्रयत्न करने पर भी 'वीरत्व स्वत्व' का परित्याग नहीं कर सकती।

नैपोलियन में वीरत्व था। नैपोलियन और जनरल के संभाषण से पाठकों को नैपोलियन की हार्दिक अभिलाषा तो मालूम हो गई, परन्तु इस हार्दिक अभिलाषा की पूर्ति के लिये किन २ कठिनाइयों का सामना उसे करना पड़ा, यह इतिहासज्ञ ही जानते हैं। यहां पर इतना कह देना पर्य्याप्त होगा कि इस वीर लड़ाके ने कभी हिम्मत नहीं हारी। परम भयानक परिस्थितियों में होने पर भी इसने धीरता को न छोड़ा। गोलियां और गोले इसके पास से होकर निकल जाते थे और यह रणभूमि में प्रसन्नता के साथ विचरण किया करता था। Carlyle ने अपने Hero and Hero-worship नाम के ग्रन्थ में ऐसे वीरत्व को ईश्वरीय अङ्ग माना है।

संसार में जितने भी महान वीर हो गये हैं उन में यह प्रसन्नता—मानसिक परितुष्टि—किस सीमा तक पहुंच गई थी, यह जान कर आश्चर्य से दांतों में अंगुली दबानी पड़ती है। जब प्रतापसिंह कहते हैं—

'देह में जब तक है रक्त राम की नसका।
दम रहते तो हूंगा न मुसल्मान के बसका॥'

हम उनकी भीष्म प्रतिज्ञा को वीरत्व के उच्चतम शिखर पर परमोज्ज्वल कान्ति से दमकता हुआ पाते हैं। उनके उत्साह की किरणें संसार में व्याप्त देखते हैं। तथ्यमय निर्भीकता के हर्षोत्फुल्ल प्रकाश से हृदय

कली को विकसित पाते हैं। यह शक्ति है आत्मिक बल में—अपने बल पर निर्भर रहने में—जिसका ओर है न छोर और जिसका आश्रय स्थान है भगवान ! राना प्रताप को—

'था राम का और अपने भुजाबल का भरोसा।
भाई का न बन्धू का तथा दल का भरोसा ॥'

वह सोचते थे—

'क्या डर है अगर फौज नहीं, धन भी नहीं है।
भैयों से भली भांति से कुछ बन भी नहीं है ॥
गल्ला व रसद नाम से इक कन भी नहीं है।
सेवा के लिये पास में इक जन भी नहीं है ॥
जिस राम ने पानी पै उतरवाये थे पाथर।
विश्वास है, इमदाद करेंगे वही आकर ॥'

यह वीरत्व है हिमालय के समान अचल, दिनेश के समान उज्वल, गंगाजल के समान निर्मल और प्रेम के समान अविकल।

जब अभिमन्यु अपनी ओर के वीरों को चक्रव्यूह को देख, घबराया जान, कहता है—

'मैं व्यूह को हूं भेदता, पीछे मेरे आओ।
जय बोलते उत्साह से वीरत्व दिखाओ ॥'

हम यह अच्छी तरह से हृदयों में जान जाते हैं कि ऐसे वाक्य अर्जुन के पुत्र को ही शोभा दे सकते हैं। जिस परिस्थिति में अभिमन्यु था और जिस परिस्थिति में उसने अपनी ओर के वीरों को देखा उसका मानसिक चित्र खींच कर उपरोक्त वाक्यों से तुलना कीजिये तो प्रगट हो जायगा कि वीर रस की पूर्ति के लिये जिन भावों की आवश्यकता होती है वे सब किस खूबी के साथ अभिमन्यु में पाये जाते हैं। हृदय उमंगाधिक्य से फूला नहीं समाता, चाहता है कि विद्युत वेग से चल कर चक्रव्यूह को तहस नहस कर डाले और अपनी ओर के तथा शत्रु की ओर

के लोगों की वाहवाही लूटे। यही अमर आकांक्षा है। यही जीवन का उद्देश्य है।

वीरत्व भी एक प्रकार का छूत रोग है। एक वीर की वीरता सहस्रों में वीरत्व भर देती है। निरुत्साही में उत्साह का सञ्चार होने लगता है। निःसाहसी उमंग से परिपूर्ण हो जाते हैं। मूंछ रहित भी मूछों के स्थान पर हाथ डाल मूंछें मरोड़ने में रति करते हैं।

'छूटत कमान और गोली तीर बानन के,
होत कठिनाई मुरचान हू की ओट में।
ताही समय सिवराज हांक मारि हल्ला कियो,
दावा बांधि परा हल्ला बीर वर जोट में॥
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहां लौ कहौं,
किम्मति यहां लगि है जाकी भट झोट में।
ताव दै दै मूंछन कंगूरन पै पांव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट में॥'

वीर में वीरत्व होता है। वह अपने से अधिक बली पर ही शूरता दिखाता है। वीर के वीरत्व में उदारता का पूर्ण सामञ्जस्य रहता है। उसके हृदय में भावी यश की उत्कट अभिलाषा होती है। अतः वह क्रोध नहीं करता क्योंकि क्रोध अपने से कम बल वाले पर ही किया जाता है। और कम बल वाले पर क्रोध करने मे वीर को यश लाभ नहीं होता, उल्टा कलंक लगता है।

लव-कुश ने महा बली राम से युद्ध ठाना और इसी लिये उन्होंने अपने वीरत्व की विमल पताका को वसुन्धरा पर उड़ा कर अमर यश पाया। जिस समय लव, कुश को श्रीराम ने युद्धस्थल में देखा, आश्चर्य्यान्वित हुए और कहा—

'क्या जानते हो मैंने किया है जो विकट काम ?
रावण से विकट वीर को पठवा दिया यम धाम॥

मुनि बाल हो तुम जाओ करो वेद रटाई ।
रणभूमि में मिलती नहीं मुनियों को बड़ाई ॥'

यह सुन कर बालकों ने भी क्या ही बात की लाग लगाई, वह भी सुनिये—

'मुनि बाल समझ धोखा न खा जाना भला राम ।
हम जानते हैं तुमने जो लंका में किया काम ॥
इक विप्र विचारे को बधा पाया बड़ा नाम !
बस इतने पै बन बैठे हो वीरत्व के निज धाम ?
क्षत्राणी कुमारों के जरा सामने आओ ।
तज धर्म, दया, युद्ध में क्षत्रित्व दिखाओ ॥
अब तक तो चराये हैं सदा रीछ व बानर ।
मारे हैं समर-भूमि में पापीश निशाचर ॥
क्षत्री के विकट बाहु नहीं देखे भयंकर ।
मुनियों की खुशामद से बने फिरते हो नरवर ॥
लड़ना हो तो लड़ जाओ नहीं घर को सिधारो ।
डरवाने के हित मुफ़ न यों शेखी बघारो ॥'

क्या ही वीरत्व पूर्ण उत्तर है ! राम के वीरत्व पर कितना फीका रंग चढ़ा दिखाया है ! पाठक, मानसिक-वीरत्वानुभव से ही आनन्द उठाइये, वीरत्व के शिखर पर आरूढ़ हो कर भारत के क्षत्रियों को ललकार कर वीर-वाक्य सुना दीजिये ।

'उठो ! कर में लेकर शमशीर ।
रण प्राङ्गण में कूद पड़ो तुम ।
निर्भय होकर अटल अड़ो तुम ॥
यम समान हो खूब लड़ो तुम ।
हार न मानो वीर ॥१॥
जग में जीवन ज्योति जगा दो ।
मनुष्यत्व की भेरि गुंजा दो ॥
भीरु हृदय वीरत्व बुला दो ।
कर जय शब्द गंभीर ॥२॥

मार काट से छूटैं कुकर्मी ।
चैन न लैने पाँय अधर्मी ॥
मिट जावै दुष्टों प्रति नर्मी ।
सीधी हो तक़दीर ॥३॥'

वीर—आगमन

घटा घिर कर आई घन घोर, चपल चपला चमकी कर शोर।
प्रलय सी पवन चली झकझोर, निराशा छाई चारों ओर ॥
गरज कर गिरवर पर घन गिरे, मचा सब जग में हा हा कार।
दानवों के दल आगे बढ़े, भय त्रसित बना सकल संसार॥
कहां थे धर्म कर्म व्रत नेम ? जान के लाले थे पड़ रहे ।
कहां थी गति मति मंगल क्षेम ? हृदय में भाले थे गढ़ रहे ॥
स्वार्थ का छाया था साम्राज्य, न्याय प्रेमी थे सभी अधीर।
निठुर जग की दुरदशा निहार, हुए अवतीर्ण महामति वीर॥
सभी के हैं समान अधिकार, आत्म निधि चीन्हि सभी जग पड़े।
आत्म की सिंह गर्जना सुनी, मोह स्यारादि स्वतः भग पड़े॥
जगा निज पौरुष का अभिमान, हुआ सब को निज बल का ज्ञान।
अहिंसा कवच पहन कर बढ़े, झूमते शिवपथ पर मतिवान॥
जगी मंदिर में जगमग ज्योति, हुआ जाग्रत जग में जयघोष।
लुभाने देवों का मन लगा, भव्य भारत विभूति वर कोष॥
पतित-पावन का मिला प्रकाश, मूक पशुओं ने पाया त्राण।
यज्ञ-हिंसा का भ्रम हट गया, अहिंसा बनी देश का प्राण॥
प्रेम की पावन सरिता बही, जगत के ताप सभी मिट गये।
शान्ति-सागर में उठी हिलोर, हुए मंगल दिन २ नित नये॥
पधारो वीर ! हरो जगपीर, करो मम मन-मंदिर में बास।
चमकता रहे 'वीर-सन्देश' जगत में फैले पुण्य-प्रकाश॥

—जातीय-पथिक।

अन्तिम सन्देश ।

[लेखक—श्रीयुत प्रतापचन्द्र जी जैन]

पूर्ण चन्द्रमा की शीतल चांदनी छिटक रही थी। तप्त पथरीले मकानों में से निकल निकल कर लोग विक्टोरिया पार्क में वायु सेवन कर रहे थे। एकाएक धड़धड़ाती हुई एक घोड़ा गाड़ी आकर पार्क में रुक गई। उसमें से दो युवक निकल कर एक बेंच पर बैठ गये। कुछ देर चुपचाप बैठे रहने के बाद एक युवक ने लम्बी सांस भर कर कहा "महेन्द्र क्या मुझे प्रभा के मिलने की सब आशायें छोड़ देनी पड़ेंगी। तुम्हें वे दिन याद हैं जब हम साथ २ पढ़ते खेलते थे और हमारा समय मनो-विनोद में आनन्द से व्यतीत होता था।"

महेन्द्र—वीर, क्यों इतने अधीर होते हो, आशा कदापि न छोड़नी चाहिये। इस सुधार के जमाने में भी, मैं नहीं समझता प्रभा के पिता पर क्यों अज्ञान का परदा पड़ा हुआ है कि तुम जैसे रूपवान, गुणवान और विद्या सम्पन्न युवक को छोड़ कर वह प्रभा का विवाह अशिक्षित और वृद्ध रमाकान्त के साथ करने पर उतारू हैं।

वीर—महेन्द्र, वे लोग उसे रामाकान्त के हाथों में सोंप कर उसका जीवन कष्ट में डाल देना चाहते हैं। वे लोग उनमें से हैं जो आज कल के शिक्षितों का सच्चा रूप न देख उन्हें धर्मच्युत और अनाचारी समझते हैं।

महेन्द्र—प्रिय मित्र, यही कारण है कि आज तुझे प्रभा नहीं मिलती। लोग उच्च वंश, शिक्षा और योग्यता को नहीं देखते। वे लोभ और अज्ञान वश अनमेल विवाह कर अपने पुत्र पुत्रियों के सुख और आनन्द पूर्वक जीवन पर कलह और दुःख का पहाड़ ढा देते हैं।

वीर—तभी तो हिन्दू गृहस्थियां आनन्ददायिनी नहीं होतीं, प्रत्युत कलह-कारिणी होती हैं। उस अनमेल विवाह का यहां तक भयंकर परिणाम होता है, कि युवक युवतियों को प्राण तक दे देने पड़ते हैं।

कुछ देर इसी प्रकार बातचीत करने के पश्चात् वीर ने कहा—"महेन्द्र मेरा जी घबराता है अब चलना चाहिये। दोनों उठे और गाड़ी में बैठ गये। गाड़ी धड़ २ शब्द करती हुई चल पड़ी और थोड़ी ही देर में पार्क से निकल शहर की सड़कों पर घूमती हुई एक मकान के सामने जाकर ठहर गई। दोनों मित्र उतर पड़े। वीर महेन्द्र से इस सम्बन्ध में विचार करने के लिये कह कर आगे बढ़ गया और महेन्द्र उस मकान में चला गया।

❀ २ ❀

वीर और महेन्द्र एक ही मोहल्ले में रहते थे और बचपन से ही साथ साथ खेलने, कूदने और पढ़ने के कारण इन में गाढ़ी मित्रता हो गई थी। वीर के पिता एक मामूली दुकानदार थे। उन्हें शिक्षा से ज्यादा प्रेम नहीं था। वे चाहते थे कि वीर थोड़ासा लिखना पढ़ना सीख कर दलाली करने लग जाय और कमाने लगे। ऐसा वे तब चाहते थे जब वीर केवल ८ वर्ष का था। उसी अवस्था में उसका विवाह कर वे उसके जीवन को भार रूप बना देना चाहते थे। वे इसी को आदर्श समझते थे। परन्तु महेन्द्र के पिता ने, जो कि बहुत ही प्रभावशाली और विद्वान् आदमी थे, ऐसा न होने दिया। उस उदार व्यक्ति ने वीर की शिक्षा का भार अपने ऊपर लिया और उन्हीं की कृपा तथा अपने परिश्रम से वीर ग्रेजुएट हो गया। इस शिक्षा से वीर की बुद्धि के कपाट ऐसे खुले कि कालेज भर में उसके समान योग्य, उद्यमी और उच्च विचार वाला दूसरा लड़का न था। वह कालेज के प्रत्येक कार्य्य में भाग लेता था। महेन्द्र के पिता वीर को महेन्द्र से ~~भी अधिक~~ प्यार कर उसे अपना दूसरा पुत्र समझने लगे।

महेन्द्र के एक छोटी बहिन भी थी, उसका नाम था सरला। सरला बहुत ही सुशीला लड़की थी। वह अपनी एक पड़ौसिन लड़की को छोड़ और किसी के साथ नहीं खेलती थी, इसी का नाम प्रभा था। प्रभा एक अत्यन्त ही सुन्दरी, मृदुभाषिणी और गुणवती कन्या थी। सरला से उसकी मित्रता बहुत ही छुटपन से थी। जहां भी जातीं दोनों साथ जातीं, जो कुछ भी करतीं दोनों साथ करतीं। जब सरला की अवस्था सात वर्ष की हुई उसके पिता ने उसे विद्याध्यन के लिये एक पाठशाला में भरती करा दिया। यहां प्रभा सरला का साथ न दे सकी क्यों कि प्रभा के पिता स्त्री शिक्षा के घोर विरोधी थे। वे समझते थे कि पढ़ाने से लड़कियां स्वच्छन्द हो जाती हैं। एक दिन दोनों बालिकाओं क पिता मिले, बातही बात में प्रभा की शिक्षा का प्रश्न छिड़ गया, बहुत कुछ समझाने पर प्रभा के पिता ने यह उत्तर दिया "जैसा आप उचित समझें करें।" अतएव प्रभा की शिक्षा का भार भी सरला के पिता ने ले लिया और प्रभा पढ़ने लगी।

सरला के पिता वीर और प्रभा को महेन्द्र और सरला के समान ही अपनी सन्तान समझते थे। इन चारों को साथ २ देख बड़े प्रसन्न होते। सरला, प्रभा, वीर और महेन्द्र सब एक ही साथ खेलते, कूदते और पढ़ते थे। वायु सेवन के लिये भी साथ ही जाते। इसी प्रकार आनंद पूर्वक इनके दिन बीतने लगे।

❀ ३ ❀

हमारे चारों पात्र अब बालक नहीं रहे। उन्होंने युवावस्था में पदार्पण कर दिया है। महेन्द्र और वीर का तो घनिष्ट संबंध था ही, वीर और प्रभा में भी घनिष्टता हो गई थी। किन्तु न मालूम क्यों अब प्रभा वीर से कुछ शर्माने लगी थी। यह शर्म यहां तक बढ़ गई कि प्रभा वीर को देख कर भाग जाती और उसके सम्मुख आने में लजाती।

सरला के पिता के हृदय में वीर और प्रभा के व्यवहार और उनकी योग्यता को देखकर यह इच्छा हुई कि इन दोनों का विवाह हो

जाय। उन्होंने यह प्रस्ताव वीर और प्रभा के पिता के सम्मुख रक्खा परन्तु उत्तर पाकर उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। उन लोगों ने इस प्रस्ताव को किसी प्रकार स्वीकार न किया। इसका कारण था—एक ओर वीर के पिता पढ़ी हुई बहू के विरोधी थे। वे समझते थे कि वह चूल्हा चक्की से हाथ न लगाएगी। उसे तो पहनने ओढ़ने, लिखने पढ़ने और सभा समाजों से ही फुरसत न मिलेगी। दूसरी ओर प्रभा के पिता, रमाकान्त नामक एक वृद्ध जमींदार से किसी कारण दबे हुए थे, तथा उन्हें वहां से विशेष धन मिलने की भी आशा थी। इस प्रकार दोनों ओर से यह संबंध करना अभीष्ट नहीं था।

आखिर प्रभा का विवाह रमाकान्त के साथ हो गया। वृद्ध तथा अयोग्य रमाकान्त को पा कर प्रभा का जीवन बहुत ही दुःखमय हो गया। अशिक्षितों की संगति पा कर वह एकदम घबरा उठी। बुड्ढे रमा को हुक्के के सिवाय किसी से प्रेम नहीं था। घर ऐसा बना हुआ था कि धूप और हवा का आगमन भी न हो सके। प्रभा को घर से बाहर जाने की आज्ञा न थी। ऐसी परस्थितियों में रह कर, शुद्ध जल वायु के अभाव से प्रभा को रोगराज यक्ष्मा ने आ घेरा और लाख चेष्टा करने पर भी न मिटा। थोड़े ही दिनों में वह खिला हुआ फूल मुरझा कर धूल में मिल गया।

❀ ४ ❀

वीर का विवाह एक दश वर्षीया, अयोग्य और अशिक्षित बालिका शान्ता के साथ हुआ। इस विवाह से वीर का जीवन भी संकट में डाल दिया गया। वह जब कभी घर जाता तो शान्ता बड़बड़ाती हुई आती और कहती—"मेरे लिए बेंदिया ले आये। सुनार के पास गये कि नहीं, आरसी का क्या हुआ। मेरे पास यह नहीं है। मेरे पास वह नहीं है। क्या ये दुःख देने के लिये ही मेरा हाथ पकड़ लाये थे।" यह कह कर वह रुष्ट हो जाती, न खुद खाती न वीर को खाने देती। कभी वीर उससे पढ़ने के लिये कहता तो मुंह बिगाड़ के उत्तर देती, "क्या पढ़ा के मुझसे नौकरी

कराओगे। किसी दफ़्तर में भेजोगे। शरम नहीं आती।" ऐसी ऐसी बातों से वीर बड़ा दुखी रहने लगा।

बात यहीं तक न रही। सास बहू में भी सिर फुटौअल होने लगी। अब तक तो शान्ता ही से वीर को भुगतना पड़ता था परन्तु अब तो घर में घुसते ही वह देखता कि मा अलग रुष्ट बैठी हैं और देवी जी अलग मुंह फुलाये हैं। यह देख कर बेचारे के देवता कूच कर जाते। माता रोकर कहती, "क्यों रे, तू इसे क्यों नहीं समझाता। यह हमसे लड़ने ही के लिये आई है क्या? यह हमारी खरीदी हुई छोकरी हमें ही गालियां दे और मारने को आवे। तूने ही यह सिर पर चढ़ाई है। ऐसा ही है तो अलग होजा। इस बुढ़ापे में हमारी मट्टी तो खराब न करवा।" जब बेचारा अपने कमरे में जाता तो देवी जी हिचकियां ले ले, सास को कोसती हुई अलग सुर में अलापती।

ये झगड़े यहां तक बढ़ गये कि वीर को रात दिन चैन न मिलने लगा और सूखते २ उसका शरीर पिंजर हो गया। वह यहां तक तंग आगया कि एक दिन अकस्मात घर से गायब हो गया। जाने से पूर्व वह निम्नांकित अंतिम संदेश अपने परम मित्र महेन्द्र को लिख कर भेजता गया।

प्रिय मित्र महेन्द्र!

तुमसे अलग हुए तो मुझे अनुमान एक वर्ष हो गया परन्तु आज मैं सब से अलग होता हूँ। न मालूम किधर जाऊं! मित्र, मेरे लिये एक भी अश्रु न बहाना। व्याकुल न होना। मेरी मृत्यु से अवश्य समाज के ठेकेदार पाठ लेंगे और योग्य वर कन्याओं का सम्बन्ध कर अपनी होनहार भावी सन्तान की छोटी अवस्था में ही गृहस्थ कलह के कारण असामयिक मृत्यु से रक्षा करेंगे।

महेन्द्र, तुम सच्चे मित्र हो। ऐसी संसार में कौनसी वस्तु है जिस से मैं तुम्हारी तुलना करूं। अच्छा होता यदि मरने से पूर्व मैं तुम्हारे दर्शन कर लेता। परन्तु खैर, जैसी हरि इच्छा।

एक बात याद रखना और यथा शक्ति उसे पूर्ण करने का प्रयत्न करना। मेरी इच्छा है कि इस देश से अनमेल विवाह का प्रचार बन्द हो और सत्साहित्य जगमगा उठे। भारतीय आदर्श और सभ्यता का प्रचार कर लोगों के कानों में वह मंत्र फूंका जावे कि वे सोते से उठ बैठें और संकीर्णता को त्याग कर बाहर मैदान में निकल आवें। तथा सब मिलकर वह कार्य करें जिससे देश का उद्धार हो।

भवदीय—

गृहस्थ पीड़ित-वीर।

—::※::—

वीर सन्देश पढ़िये

[लेखक—श्रीयुत पं० श्री गोविन्द जी पाठक 'छात्र']

"वी"र बने, तज फूट, कलह का बीज न बोवे।
"र"खे जाति-अभिमान, मलिनता मनकी खोवे॥
"सं"शय कर सब दूर, सदा विचरे हो निर्भय।
"दे" वह सुन्दर ज्ञान, देश हो जिस से तन्मय॥
"श"क्तिवान बन चले, मार्ग निष्कण्टक होवे।
"प"ढ़ कर जन समुदाय, मुदित मन अपने होवे॥
"ढ़ि"ग लावे स्वाधीनता, भेद-भाव सब दूर हो।
"ये" दिन रहें न, देश सब, धन-जन से भरपूर हो॥

—::※::—

विविध-विषय ।

१ आत्म निवेदन—

दो वर्ष पूर्व मैं एक सामाजिक पत्र (जैसवाल जैन) का सम्पादन करता था । उस समय मेरे अनेक स्नेही मुझे सम्मति देते थे कि मैं उसे एक साहित्यिक पत्र बना दूं और उसका कार्यक्षेत्र भी बदल दूं । मैं भी इस संकुचित क्षेत्र में काम करने से संतुष्ट न था । निरन्तर ६ वर्ष तक उसकी सेवा करने के पश्चात् मैंने उससे अवकाश लिया, जिन सज्जनों ने उसे संभालना चाहा वे उसमें विफल रहे और पत्र बन्द हो गया । इधर जब से मेरे परम मित्र श्री० कपूरचन्द जी ने महावीर प्रेस स्थापित किया था तभी से वे यह चाहते थे कि अपने प्रेस से एक सर्वोपयोगी पत्र प्रकाशित करें । स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा के कार्य करने से मुझे भी इसकी कुछ आवश्यकता प्रतीत हुई और अन्ततः मुझे अपने मित्र महोदय के अनुरोध का पालन करना पड़ा । यह इसी का फल है कि आज वीर-सन्देश इस रूप में प्रकाशित हो रहा है ।

मैं जानता हूँ कि इस पत्र का सम्पादन भार अपने ऊपर लेकर मैं बड़ा भारी उत्तरदायित्व ग्रहण कर रहा हूँ । पर मुझे अपने प्रेमी मित्रों पर पूर्ण विश्वास है, मैं जानता हूँ कि वे मुझे अवश्य सहायता देंगे । उन्हीं के भरोसे पर यह आयोजन किया गया है । इस दुस्साह के लिए मैं हिन्दी संसार से क्षमा प्रार्थी हूँ ।

'वीर-सन्देश' साहित्यिक पत्र होगा और यथा संभव साहित्य के सभी अङ्गों पर इसमें प्रकाश डाला जावेगा । पत्र साम्प्रदायिक न होगा पर जो अमूल्य रत्न सम्प्रदाय विशेष के परदे के अन्दर रहने से अप्रकट हैं,

उनकी चर्चा इसमें अवश्य की जावेगी। मेरा विचार है कि देश के उत्थान के लिए साहित्य क्षेत्र में प्राचीन वीरों और उच्च कवियों का वृतान्त विशेष रूप से होना चाहिये। अतएव 'वीर-सन्देश' में ऐसे वीरों की चर्चा करने का प्रयत्न सर्व प्रथम होगा।

जिस पुनीत उद्देश्य को सामने रख कर 'वीर-सन्देश' प्रकाशित हो रहा है, उसकी प्राप्ति प्रेमी पाठकों, सहृदय सज्जनों और सभी सहयोगियों की सन्तत कृपा पर निर्भर है। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि हमें उसकी प्राप्ति हो और हम में बल हो कि अपने कर्त्तव्य का पालन हम निर्भयता पूर्वक कर सकें।

❀ ❀ ❀

२ कवियों की कीर्ति रक्षा—

सृष्टि में यदि किसी का काम सब से अधिक अभिनन्दनीय, स्थायी और महत्वपूर्ण होता है तो वह कवि का है। कवि ही अपनी कृति से मनुष्य में उत्साह भर कर अनेक बड़े २ काम कराता है और कवि के सद्प्रयत्न से ही वीरों और महान पुरुषों की कीर्ति कौमुदी सदा चमका करती है। ऐसे राष्ट्र सेवक और युग परिवतक महात्माओं का जितना आदर किया जाय, थोड़ा है। भारत का इतिहास बताता है कि महाराजा भोज के समान कुछ राजा महाराजाओं ने कवियों का कितना अधिक सम्मान किया था। आज भी यूरोपादि देशों में कवियों को जो स्थान प्राप्त है, वह दूसरों को नहीं। वहां के विद्वान शेक्सपीयर के ग्रन्थों के मूल्य में राज्य तक देने को तैयार हैं। कवियों का वहां आज भी बड़ा आदर है। पर पराधीन देश भारत में यह बात नहीं। जिन महात्माओं ने अपनी सारी आयु साहित्य की सेवा में बिता दी उन्हें मरते समय तक पेट की चिन्ता में जलना पड़ा। जिन कवियों ने अच्छी से अच्छी कविता रचकर साहित्य को गौरवान्वित किया, उनका आज कोई नाम लेने वाला भी नहीं है। यह कृघ्नता देश को रसा-

तल पहुंचा देगी। जब तक हम अपने सत्कवियों का आदर करना न सीखेंगे तब तक न तो हमारे यहां ऊंचे साहित्य का निर्माण ही हो सकता है और न देश का उत्थान। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने जो काम कविरत्न पं० सत्यनारायण के लिये किया है, वह सभी कवियों के लिए होना चाहिए। जिस समय कविगण इस प्रकार अपना सम्मान होता देखेंगे, वे उससे उत्साहित होकर ऐसा साहित्य पैदा करेंगे जो देश के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा ने एक वार कहा था "यदि मुझे यह पता हो कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मुझे पं० बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे मित्र मिल जावेंगे तो मैं बड़े हर्ष से अभी मरने को तैयार हो जाऊं।" इन शब्दों में कितनी मार्मिकता है, इसे पाठक विचार करें।

प्रत्येक हिन्दी हितैषी का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह सत्कवियों की कीर्ति रक्षा के लिए जितना कुछ कर सकता हो उतना करे और अवश्य करे। जिस समय हम अपने इस कर्त्तव्य का पालन कर लेंगे, हमारे हृदय में हर्ष की एक विचित्र रेखा प्रकट होगी और हम देश को बहुत ऊंचा उठा देंगे।

❀ ❀ ❀

३ राजा लक्ष्मणसिंह-शताब्दी—

राजा लक्ष्मणसिंह हिन्दी के एक सर्वमान्य कवि हुए हैं। उनकी कविता में जैसी मधुरता है, जितनी सरलता है और जैसी सरसता है, वैसी अन्यत्र कम मिलती है। आदि में हिन्दी गद्य को परिष्कृत रूप में लिखने वाले आप ही समझे जाते हैं। आपका जन्म आश्विन शु० ९ सं० १८८३ को हुआ था। गत १५ अक्टूबर को आपको पैदा हुए पूरे सौ वर्ष हो गए। श्री० पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी की प्रेरणा तथा स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा के उद्योग से आपकी कीर्ति रक्षा के लिए भिन्न २ हिन्दी हितैषिणी संस्थाओं ने आपकी जन्म शताब्दी उत्सव मनाया। आगरे में भी यह उत्सव हुआ और बड़ी सफलता के साथ हुआ। सभापति का

आसन श्रीमान् सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार ने ग्रहण किया था। आपकी विद्वत्ता के विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। 'अलङ्कार प्रकाश' और 'हिन्दी मेघदूत विमर्ष' लिख कर आप अपना नाम अमर कर चुके हैं। 'काव्य कल्पद्रुम' नामक एक ग्रन्थ आपने और लिखा है, जो हाल ही में आगरा नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है। आपका व्याख्यान बड़ा विद्वत्तापूर्ण था। उत्सव में अध्यापक रामरत्न, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० मौलिचन्द्र शर्म्मा, प्रिंसिपेल गिडवानी, स्वामी नारायणानन्द और पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा के व्याख्यान भी ऐसे थे जिनकी प्रशंसा शतशः नहीं सहस्रशः मुखों से हुई थी। राजा साहब के विषय में जो सदेश हिन्दी के धुरन्धर विद्वानों ने भेजे थे वे भी बड़े महत्व-पूर्ण थे। महाराज भरतपुर के सन्देश को तो उनके चार परम प्रतिष्ठित अधिकारी ही लाए थे। इसी उत्सव के साथ सभा ने अपना वार्षिक अधिवेशन भी किया था जिसमें विद्यार्थियों का एक वादविवाद और कवि सम्मेलन हुआ था। कवि सम्मेलन में कैसी रचनाएँ पढ़ी गयी थी इसका प्रमाण अन्यत्र प्रकाशित कुछ समस्या पूर्तियों से मिलेगा। उत्सव में ख्यालों का गान भी हुआ था जिसका महत्ता को उपस्थित जनता ही समझ सकी थी। श्री गंगाप्रसादजी के गायन तथा बेला और जलतरङ्ग वाद्य ने और भी मनोरंजन किया। उत्सव पहिले दिन संध्या समय केवल ४ घन्टे हुआ था, पर दूसरे दिन १२ घन्टे हुआ और हजारों की उपस्थिति रही। ऐसे सफल उत्सव बहुत कम हुआ करते हैं। सभा ने राजा साहब की कीर्तिरक्षा के लिए जो प्रयत्न किया वह सराहनीय है। राजा साहब का चित्रोद्घाटन कराके और उनके सर्वोत्तम ग्रन्थ मेघदूत का एक सुन्दर संस्करण प्रकाशित करके सभा ने और भी पुण्य का कार्य किया। सभा-स्थल पर एक भवन बनाने के लिए इस अवसर पर बारह हज़ार रुपए की अपील की गई थी, जिसमें प्रायः दो हजार के वचन उसी समय मिल गए।

❀ ❀ ❀

४ लेखकों के प्रति—

अपने प्रेमी लेखकों के प्रति दो शब्द कह देना हम आवश्यक समझते हैं। सम्पादकों और लेखकों का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता, कोई भी सम्पादक बिना लेखकों की सहायता के एक दिन भी काम नहीं कर सकता। अस्तु हम इस निवेदन द्वारा हिन्दी लेखकों को आमंत्रित करते हैं और आशा करते हैं कि वे हम पर विशेष कृपा करके समय २ पर अपनी दिव्य लेखनी द्वारा हमें साहाय्य प्रदान करते रहेंगे। हम चाहते हैं कि वीर सन्देश में उच्च कोटि के साहित्यिक लेख निकलें और इसके प्रत्येक अङ्क में कवि कीर्तन, वीर विलास, और पद्य प्रमोद नामक स्थायी शीर्षक रहें, जिनमें उत्तम कवियों और उनकी कविताओं की चर्चा रहे, वीरों का वर्णन हो, और उत्तम उत्तम कविताएं प्रकाशित हों। पद्य प्रमोद शीर्षक में प्रति मास एक समस्या की पूर्तियां प्रकाशित हुआ करेंगी। इनके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक सामाजिक और धार्मिक लेख भी प्रकट हो सकेंगे। उच्च विचारों की गल्पें भी हम प्रकाशित करना चाहते हैं। आशा है कि प्रेमी पाठक अपने ललित लेख और कलित कविताएं भेज कर वीर-सन्देश को सम्मानित करेंगे।

❀ ❀ ❀

५ सम्पादक सम्मेलन—

वृन्दावन सम्मेलन में हिन्दी सम्पादकों के एक सम्मेलन की स्थापना हुई थी। 'आज' सम्पादक पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर उसके सभापति थे। सम्पादकों के संगठन के लिए पांच सज्जनों की एक उपसमिति बनाई गई थी जिसके संयोजक पं० नरदेव जी शास्त्री थे। संयोजक महाशय ने समय २ पर जो विज्ञप्तियां प्रकाशित की हैं उनसे विदित होता है कि अभी तक हिन्दी के अधिकांश सम्पादकों ने इस सम्मेलन से अपना संबंध नहीं जोड़ा है। यह बात उनके लिए शोभास्पद नहीं। जो महानुभाव दूसरों को संगठित करने और दूसरों को उन्नत करने के लिए जी तोड़ परिश्रम

करते हों वे अपना संगठन न करें और अपनी उन्नति की बात न सोचें यह बात बड़ी लज्जा की है। असंगठित होने ही के कारण आज हम देखते हैं कि कुछ पत्रों में अपने सहयोगियों के लिए ऐसे शब्द प्रयोग किए जाते हैं जो साधारण शिष्टाचार के भी विरुद्ध हैं। एक पत्र ने अभी देश के एक मान्य नेता का ऐसा कार्टून प्रकाशित किया था जो बहुत ही घृणित था। असंगठित होने के ही कारण आज कोई आन्दोलन ऐसा नहीं किया जा सकता जिसका समर्थन सभी पत्र एक स्वर से करें। यह बातें हैं जिन पर हमारे सहयोगी संपादकों को अवश्य ध्यान देना चाहिए। उन के संगठन से केवल उनका ही भला नहीं, समग्र देश का भला है। अतएव हम यह प्रार्थना करते हैं कि वे संपादक सम्मेलन में भाग लें और भरतपुर सम्मेलन में बड़ी संख्या में उपस्थित होकर अपना उपयुक्त कार्यक्रम निर्धारित कर लें। आशा है कि हमारी यह पंक्तियां छोटे मुंह बड़ी बात न समझी जाकर जिस उद्देश्य से लिखी गई हैं उन्हें पूरा करेंगी।

❀ ❀ ❀

६ दलबन्दी का दूषित परिणाम—

देश के दुर्भाग्य से पिछले २–३ वर्ष में देश में जैसी दलबन्दियां हुई हैं और उस से देश को जो क्षति हुई है, उसे देख कर बड़ा दुःख होता है। इस बार चुनाव के समय जो दशा देश की हो रही है उसे देख कर तो आंसू आते हैं। बड़े बड़े माननीय नेता इस समय ऐसे कार्य कर रहे हैं कि उनकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। चुनाव के झमेले में पड़ कर उनकी बुरी दशा है। कुछ समाचार-पत्रों में जैसी गंदी बातें और अपशब्द प्रकाशित हो रहे हैं, वे सम्पादनकला को दूषित करने वाले हैं। जिन पत्रों की प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी, चुनाव संग्राम में पड़ने के कारण उनकी प्रतिष्ठा भी कम हो गई है। केवल चुनाव के लिए निकलने वाले कुछ पत्र तो साहित्य-क्षेत्र में विष उगल कर उसे बहुत ही गंदा कर रहे हैं। चुनाव का रोग कैसा बुरा है और भेदनीति निपुण सरकार ने उसका

कितना अच्छा प्रयोग किया है, यह बात इस समय सहज ही मालूम पड़ सकती है। जिन नेताओं को बात करने की भी छुट्टी न थी, वे आज अपनी विजय के लिए रात दिन भ्रमण कर रहे हैं। दलबन्दी में पड़ कर एक दूसरे को कोसना और बुरा भला कहना बुरी बात है। हम जानते हैं कि चुनाव संग्राम में व्यस्त लोग इसे अनुभव न करते होंगे, न इस समय ऐसी बात सुनना ही उन्हें इष्ट होगा, पर चुनाव के बाद वे देखेंगे कि उनकी बातों, उनकी लेखनी और उनकी कार्य प्रणाली ने उन्हें कितना पीछे पटक दिया है। देश के आशास्थल महात्मा गांधी ने इस झगड़े में भाग न ले कर बड़ा अच्छा काम किया है।

❀ ❀ ❀

७ वीर-सन्देश का प्रथमाङ्क—

लगभग एक महीना हुआ वीर सन्देश पाक्षिक रूप से निकालने का निश्चय हमने किया था। तदनुसार पत्रों में विज्ञप्ति भी प्रकाशित करादी गई थी किन्तु उसके पश्चात् कितने ही मित्रों के आग्रह से हमें यह निश्चय करना पड़ा है कि वीर सन्देश को पाक्षिक न निकाल कर मासिक निकालें।

प्रस्तुत अंक के तैयार करने में हमें केवल ४–५ दिन का ही अवकाश मिला है। विज्ञप्ति प्रकाशित कराने के पश्चात हमें राजा लक्ष्मणसिंह जी की शताब्दी महोत्सव में इस प्रकार जुट जाना पड़ा कि हम वीर सन्देश को भूल ही गए। २५ अक्टूबर को उससे छुट्टी पाकर एक बार यह विचार हुआ कि अब सन्देश इतनी शीघ्रता में न निकल सकेगा। पर इससे हमें पाठकों के रुष्ट होने का भय था। अन्त में जैसा भी हो सका, इस थोड़े से समय में ही तैयारी कर के वीर सन्देश प्रकाशित किया जा रहा है। इस अंक को जितना सुन्दर हम बनाना चाहते थे, उतना सुन्दर न बना सके इसका खेद है।

——::❀::——

जिज्ञासा और समाधान

इस शीर्षक में प्रति मास साहित्यिक प्रश्न और उनके उत्तर प्रकाशित होंगे। प्रश्न करने और उत्तर देने वाले दोनों सज्जनों के शुभ नाम भी प्रकाशित किये जायँगे। जो महानुभाव जिस प्रश्न का उत्तर दे सकें, निस्संकोच भाव से लिख कर सम्पादक के पास भेजने का कष्ट उठावें।

प्रथम जिज्ञासा

राजा लक्ष्मणसिंहजी ने मेघदूत का दूसरा संस्करण सन् १८८४ में प्रकाशित किया था। क्या इस संस्करण की एक प्रति कहीं मिल सकेगी? राजा साहब की हिन्दी हस्तलिपि के नमूने की भी आवश्यकता है।

द्वितीय जिज्ञासा

आगरे के सुप्रसिद्ध लेखक हिन्दी गद्य के जन्मदाता पं० लल्लूजी लाल का चित्र किसी सज्जन ने देखा है? कहां से किस प्रकार मिल सकेगा? —मदनगोपाल पोद्दार

तृतीय जिज्ञासा

क्या किसी प्राचीन जैन लेखक ने हिन्दी गद्य में भी कुछ लिखा है? लिखा है तो कब और क्या? —अख्तर

चतुर्थ जिज्ञासा

मुझे कविवर बनारसीदास जी के 'अर्द्ध कथानक' नामक ग्रन्थ की जरूरत है। यदि यह ग्रन्थ कहीं हो तो कृपा कर सूचित किया जाय।

—जुगलकिशोर मुख्तार

पंचम जिज्ञासा

आचार्य अमितगति सूरि कृत 'पंचसंग्रह' नामक संस्कृत ग्रन्थ माणिकचन्द जैन ग्रन्थमाला में छप रहा है। उसके संशोधन के लिए दूसरी शुद्ध प्रति की आवश्यकता है। कहीं मिल सके तो सूचित किया जाय। —नाथूराम प्रेमी

सामयिक समाचार।

—भारतीय राष्ट्रीय महासभा का ४१ वां अधिवेशन गोहाटी में होगा।

—सुना है कि मिश्र देश के मुसलमानों में पर्दा का रिवाज नहीं रहा।

—संसार के सब से बड़े शहर लन्दन की आबादी ५० लाख के लगभग है।

—जर्मनी के कैसर के बड़े लड़के की बीबी को तलाक दे दी गयी है। अब वह दूसरी शादी करेगा।

—ला० लाजपतराय ने घोषणा की है कि आगामी पंजाब प्रान्तिक दंगल के अवसर पर वे १०,०००) रु० देंगे।

—तुर्किस्तान की प्रजातंत्र सरकारने आज्ञा निकाली है कि तुर्की टोपी के स्थान पर हैट का उपयोग किया जाय।

—कवीन्द्र रवीन्द्र ठाकुर को रूस के बोल्शेविक युनिवर्सिटी ने अपने यहां व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया है।

—बम्बई की कुछ कपड़े की मिलों में पहिले ही से हड़ताल थी, अब कुछ और मजदूर भी काम छोड़ कर बैठ गए हैं।

—इंग्लैण्ड का स्वतन्त्र-मजदूर-दल चाहता है कि बृटिश पार्लियामेण्ट के आगामी निर्वाचन में कुछ भारतीय भी खड़े किये जावें।

—इस वर्ष भरतपुर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन नवम्बर में होने वाला था वह अब फरवरी में होगा।

—जर्मनी के ग्लेरिस स्थान में एक छोटा सा पर्वत है। वैज्ञानिक यंत्रों से मालूम हुआ है कि वह प्रति दिन एक इञ्च से विशिष्ट अंश तक सरकता है।

—श्री जीवदया प्रचारिणी सभा आगरा से विज्ञापन ट्रेक्ट, पोस्टर और सचित्र वार्षिक रिपोर्ट ‒)॥ के टिकट पोस्टेज को भेजने से मुफ्त मिलते हैं।

—कुमारी गोदावरी बाई केलकर पूना ने 'साहित्य में नाट्यशास्त्र का स्थान' विषय पर संस्कृत निबन्ध लिखा है। आपको इसके कारण पी० ए० की डिग्री मिली है।

—किटनगंज (ढाका) में कुछ कान्स्टेबिल एक बम को थानेदार के सामने खोल रहे थे। उसके एकाएक फट जाने से थानेदार तथा कई सिपाही भीषण रूप से घायल हो गए।

—लन्दन के सालिबरी कैथड्रल नामक गिर्जे के दानपात्र में १००० पौंड का नोट पाया गया। दानी का पता नहीं चला, लेकिन अन्दाज़ किया जाता है कि वह कोई स्थानीय सज्जन है।

—रूस के एक कमिश्नर ने कहा कि इङ्गलैन्ड की कंजर्वेटिव सरकार अपनी समस्त शक्तियों को हमारे विरुद्ध संघटित कर रही है और वह दिन दूर नहीं कि जब इङ्गलैण्ड भी हमारी सरहद पर हमला करेगा।

—भारत सरकार निजाम के राज्य में एक एक करके सब अंगरेजी अफ़सर भर रही है अभी हाल में पुलिस विभाग के एक अफ़सर अंग्रेज नियुक्त हुए हैं। कहा जाता है कि निजाम, सरकार के ऐसे व्यवहार से तंग हो कर तख्त छोड़ने की बात सोच रहे हैं।

—हाल ही में ईरान के बादशाह अपने राज्य में दौरे पर गये थे। कहा जाता है कि साथ की एक मोटर में गोला बारूद और बम भरे हुए थे। दैमबन्द के समीप एक भयङ्कर धड़ाका हुआ। कई अफ़सरों की जानें गईं। उनकी लाशें तेहरान पहुंचा दी गईं। बादशाह बाल बाल बच गये!

—प्रयाग के सेशन जज ने मुहम्मद हुसैन नामक व्यक्ति को एक मुक़दमे में जाली रसीद की नक़ल को सही बताकर पेश करने के कारण दो वर्ष की सख्त क़ैद और तीन हज़ार रुपये जुर्माने का दण्ड दिया है। जस्टिस इक़बाल ने इस मामले में सरकार की ओर से गवाही दी। सर्व साधारण को ऐसे कामों से बचते रहना चाहिए।

—स्पेन में ४० भिन्न २ उद्योग-धन्धों में यह अनुभव किया गया है कि अन्धे आदमियों से भी खासा अच्छा काम लिया जा सकता है। रेडियो, टेलीफ़ोन, काग़ज़ बनाने, साबुन बनाने, सुगन्ध और तम्बाकू तैयार करने में अन्धे लोग खूब काम करते हैं। स्पेन में दस हज़ार से भी ज्यादा

आदमी इन कामों में लगे हुए हैं। इनके खान-पान तथा वस्त्रादि में जितना रुपया खर्च होता है उससे दूना रुपया ये लोग कमा लेते हैं। भाग्य पर भरोसा करने वाले भारत वासियों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

—पिन्डी महिमां में डा० ज्ञानचन्द और उनकी स्त्री ने सरेआम बहुत से आदमियों को पिस्तौल का निशाना बनाया। कहते हैं कि उनके पिता का अपमान कृपाराम ने किया था उसका बदला लेने को ता० २४ अक्टूबर को डा० ज्ञानचन्द ने सपत्नीक कृपाराम की दुकान पर पहुंच कर पिस्तौल से गोली दागना शुरू किया। ४-५ आदमियों का खून हुआ। फिर दोनों उस ब्राह्मण के घर पहुंच जहां उनके पिता का अपमान हुआ था। वहां भी दो तीन खून किए। अपनी स्त्री को भी गोली मार खुद पुलिस के हवाले होगया।

—लाहौर में विजया दशमी के दिन जब रावण जलाया जा रहा था और हजारों आदमियों की भीड़ जमा थी तब किसी ने भीड़ पर एक बम फेंक दिया जिससे ७ आदमी मरे और लगभग ६१ के घायल हुए। दो आदमी अस्पताल में जाकर मर गये। इन घायलों में ४ सिक्ख, ११ मुसलमान और ४४ हिन्दू हैं। बम की बनावट युद्ध में काम आने वाले बमों जैसी थी। पुलिस बड़ जोर शोर से अपराधी का पता लगा रही है परन्तु अभी तक सफलता नहीं मिली। पता लगाने वाले को उसने पांच हजार रुपया इनाम देने का निश्चय किया है।

—जम्बू में आज कल तरह तरह की अफवायें उड़ रही हैं। कहा जाता है कि श्री सच्चिदानन्द सिनहा जो बिहार कौंसिल के सदस्य और हिन्दुस्तान रिव्यू के सम्पादक रह चुके हैं, काश्मीर रियासत के चीफ मिनिस्टर बनाये जायँगे। यह भी मशहूर है कि सूबा जम्बू और काश्मीर के अलावा एक सरहद सूबा बनाया जाने वाला है। वहां के सर्वोच्च पदाधिकारी का नाम भी गवर्नर रक्खा जायगा और इस पद पर वैदेशिक सचिव खान बहादुर शेख अब्दुलक़यूम की नियुक्ति की जायगी। और उनकी जगह जम्बू के सिटी जज ठा० करतारसिंह वैदेशिक सचिव बनाये जायँगे।



झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

हैरान रहे शत्रु उड़ी चेहरों की लाली।
इस अबला ने जब म्यान से तलवार निकाली॥

(अख़्तर)

महावीर प्रेस आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश ।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश" ॥

भाग १ } आगरा—मार्गशीर्ष शुक्ला २ सं० १९८३-वीर सं० २४५३ { अङ्क २

आशीर्वाद

[लेखक—श्रीयुत कविवर अख्तर]

कमल खिलें मधुकर मंडरायें, लख प्राची में उदित दिनेश ।
गूंज उठे साहित्य गगन में, विभुवर ! अमर वीर-सन्देश ॥
साका बढ़ै पताका फहरै, और उदित हो शौर्य दिनेश ।
वीरो बढ़ो स्वत्व संगर में, पाकर अमर वीर-सन्देश ॥
चहक उठें चित चकोर से लख साहित्यिक नभ में राकेश ।
फैलाये यश मयी चन्द्रिका, घर घर विमल वीर-सन्देश ॥
नव युवकों को नव जीवन दे, भव्य भावुकों को आदेश ।
विभुवर गूंजे अखिल विश्व में धर्म धुरीण वीर-सन्देश ॥
सत साहित्य सुमन सौरभ से सतत सौरभित सुन्दर वेश ।
सहृदय सेवित सरस सर्वदा सुख मय सरल वीर-सन्देश ॥

जाति का जीवन क्या है ? साहित्य !

[लेखक—श्रीयुत देवीप्रसादजी सक्सेना]

साहित्य को साधारणतया दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम भूत कालीन और दूसरा वर्तमान कालीन साहित्य। दोनों ही एक गुप्त रहस्य के उद्घाटक हैं और दोनों ही से एक विशेष स्थिति का परिचय मिलता है। भूतकाल का साहित्य समाज के अतीत उत्कर्ष अथवा अपकर्ष का प्रमाण पत्र है। वह समाज की भूतकालीन अवस्था का माप यन्त्र होता है। इस पराधीनावस्था में भी हमारे हृदयों को शक्ति और साहस प्रदान करने वाला, हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने वाला और यह बतलाने वाला कि हम सदा से दूसरों के गुलाम नहीं रहे, हमारा भी कभी जमाना था, हमारा भी संसार में सार्वभौमत्व था—कौन है ? केवल हमारा भूतकालीन साहित्य। और वर्तमान साहित्य, संगठित होने वाले समाज और भावी सन्तति के लिए लिखा जाने वाला प्रमाण पत्र है।

साहित्य का समाज के साथ कितना गहरा सम्बन्ध है और वह समाज की मनोवृत्ति का कितना सच्चा दर्पण होता है यह बात वियोगान्त नाटक प्रिय यूरोपियन लोगों के इतिहास से भली प्रकार विदित हो जाती है। असभ्यता के युग में यूरोप में वैण्डल और गाथ जाति के लोगों की जैसी क्रूर और निर्दय प्रवृत्ति थी, उसका बहुत कुछ आभास इस समय भी यूरोप की वर्तमान कालीन जातियों की सामरिक मनोवृत्ति में मिलता है। स्पार्टनो के बच्चों को पहाड़ पर से लुढ़का कर उनकी भावी सैनिक योग्यता की परीक्षा करने का स्मरण भी भारत के जल-वायु में पले हुए मनुष्यों के लिए कितना अरुचिकर और कष्टदायक होगा, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। जिनकी मनोवृत्ति निष्ठुरता और पाशविकता की विभीषिकाओं से ही घिरी हो, जो लोग सुकरात जैसे ऋषि को भी हलाहल

पिलाने में न हिचकिचाये, यदि उनके यहां वियोगान्त नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? ग्रीक नाटकों में जिस पाशविकता, हत्या और निर्दयता के दृश्य देखने को मिलते हैं, उनका भारतीय नाटकों में कहीं पता भी नहीं है। हमारे साहित्य में भी वियोगान्त नाटक हैं किन्तु उनमें करुण रस का उद्रेक है, क्रूरता और निर्दयता का ताण्डव नर्तन नहीं। भारतीय नाटकों में Tragedy का सर्वथा अभाव है। यूरोपीय जातियों का मध्य कालीन इतिहास तो भयंकर रक्तपात का एक सजीव वीभत्स चित्र है। क्रूसेड का रक्तपात, इन्क्विजिशन का हत्याकाण्ड, यहूदी जाति का उत्पीड़न, विचक्रैप्ट के दण्ड, साम्प्रदायिक मारकाट, स्पेन के अत्याचार और पोर्टगीजों तथा अंग्रेजों के भारत में क्रूर अभिनय किसी भी मनुष्य की आत्मा को कँपा देने के लिये काफी हैं। शेक्सपियर जैसे जगत प्रसिद्ध कवि की प्रतिभा भी इसी में डूब गई और उसने भी वियोगान्त नाटकों की ही सृष्टि की। इस समय भी यूरोपियनों में इन्हीं विचारों की प्रधानता है। यही कारण है कि संसार में अशान्ति का नृत्य हो रहा है, एक के बाद दूसरे युद्ध का आरम्भ होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकला कि समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जिस समय समाज की जैसी स्थिति होती है, उसमें जिन भावों की प्रधानता रहती है, तदनुकूल ही साहित्य की सृष्टि होती है। किन्तु इसका अपवाद भी है। कभी कभी साहित्य के अनुकूल ही समाज को बर्तना पड़ता है। ऐसी अवस्था प्रायः उस समय देखी जाती है जब समाज के हृदय को गहरी ठेस लगती है। अत्याचार और निरङ्कुशता की चक्की में उसे पिसना पड़ता है। यवन राजत्व में जब हिन्दू जाति क्रूरता का शिकार बन रही थी महा कवि भूषण के ठेस पहुँचे हुए हृदय की वीणा से वह भैरवनाद का स्वर सुनाई पड़ा जिसने वीरवर शिवाजी को भारत के प्रसुप्त हिन्दुत्व के अभिमान को जाग्रत करने को विवश कर दिया। दादाजी कोंडदेव ने महाराज शिवाजी

को भारत के अतीत गौरव का स्फूर्तिदायक दृश्य दिखाया, भूतकालीन साहित्य का प्रमाण पत्र पेश किया और भूषण ने समाज में क्रान्ति उत्पन्न करने वाली अवलियों की सृष्टि की। आज फिर उसी बात की आवश्यकता है।

आज फिर अतीत के धुन्धले प्रकाश में भारत की प्रसुप्त वीरता को विस्मृति के गर्त में पड़े हुए चित्रपट को देखने और अनुभव करने की आवश्यकता आ पड़ी है। यदि हम अपने भूले हुए स्वरूप को पुनः पहचान लें तो कौन है वह शक्ति जो हमारी अबाध गति में बाधक बन सके। हमारे कूटनीति निपुण शासक इस बात को अच्छी तरह जानते थे, इस लिए उन्होंने हमारे अतीत कालीन साहित्य का बहुत ही विकृत और टेढ़ा मेढ़ा स्वरूप हमारे सामने रखा है। उन्होंने उस मार्ग को ही बन्द कर दिया है, जहां से स्वच्छ प्राण-प्रद वायु के झोके आकर हमारी बेहोशी को दूर कर सकते थे और हमारी चेतना को जाग्रत कर सकते थे। उन्होंने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है, जिससे हमें अपने पूर्वजों और साहित्य से घृणा हो गई है। शिक्षा जो हमारे विवेक और आत्म-गौरव को जाग्रत कर सकती थी, हमारे शासकों के हाथ में है और उसका उनके हाथ में होना ही हमारी अधोगति का कारण है। हमें वह साहित्य पढ़ाया जाता है जिसके निर्माता हम और हमारे पूर्वज नहीं, अपितु विदेशी ही हैं जिन्हें हमारे आदर्शों पर, हमारी सभ्यता पर विश्वास नहीं।

आयरिश विद्वान् और राजनीतिज्ञ मि० बेव ने एक बार भारत की अवनति के कारणों की आलोचना करते हुए कहा था कि:—It is my growing conviction that disastrous consequences must sooner or later result from persistent vilification of Indian character......... I know how such vilification has worked in us, at times turning our better natures into gall, and being responsible for many a hideous passage in our history.........subject people are abnormally sensitive to the feeling towards them

of their rulers — अर्थात् "मेरी यह धारणा दिनों दिन दृढ़ होती जा रही है कि भारतीयों की हमेशा की निन्दा का फल शीघ्र या देर में बड़ा भयानक होगा। इस प्रकार की कुत्सा से हम आयरिशों का जो भारी अनिष्ट हुआ है, वह मैं जानता हूँ। हमारे अच्छे गुण नष्ट हो गए। यही हमारे इतिहास की अनेक वीभत्स घटनाओं का कारण है। शासकों की निन्दा-स्तुति से शासितों के चरित्र का गहरा परिवर्तन होता है।"

अब इस सम्बन्ध में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं रही। समाज जिस समय क्षीण हो जाता है, वह अपकर्ष के मार्ग पर पहुँच जाता है तब उसे सहारा देकर पुनः उत्कर्ष के मार्ग पर लाने वाला और उसका पुनरुत्थान कर्ता साहित्य ही है। इस समय भारतीय नवयुवकों में जिनके हाथ में भावी भारत का भाग्य-निर्माण का कार्य है, जो भारतीयता के भावी वारिस हैं इन्हीं भावों को उत्पन्न करने की आवश्यकता है कि वे अपने साहित्य के अनुशीलन और विश्लेषण में अपनी शक्तियों का उपयोग करें।

इस समय सारे संसार में अन्धकार है। सब अंधेरे में टटोल रहे हैं। यूरोप सर्वनाश के मार्ग का अतिक्रमण कर रहा है। विनाशक शक्तियों, साम्राज्य लिप्सा और श्रमवाद तथा पूंजी-वाद के भयानक संघर्ष से यूरोप की आत्मा कांप उठी है। वह भारत की ओर ताक रही है। अमरीका भी साम्राज्यवाद के चंगुल में फँस कर हमारी ओर निहार रहा है। जापान, चीन, अफ़गानिस्तान, ईरान और टर्की, मिश्र तथा रूस में नव युग कालीन प्रभात का प्रादुर्भाव हो गया है। किन्तु उनकी आंखें भी भारत की ओर लग रही हैं। संसार अशान्ति के विकराल जबड़ों से त्राण पाने को भारत की सहायता पाने को उत्सुक है। इस प्रकार अखिल विश्व भारत से आश्रय चाहता है। भारत के नवयुवको उठो! आगे बढ़ो। अपने पूर्वजों की सञ्चित अमृत-सुधा का पान करो और तुम्हारे अनन्त साहित्य-सागर में जो रत्न छिपे पड़े हैं, उन्हें सागर-मन्थन करके संसार के सामने लाओ। संसार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

कवि-कीर्तन

कविवर भूधरदास।

[लेखक—श्री स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती]

कविवर भूधरदास जी अठारहवीं शताब्दी में एक अच्छे कवि हो गए हैं। आपके जन्म का समय तो यथार्थ रूप से ज्ञात नहीं होता, परन्तु आपके रचित ग्रन्थों से यह विदित होता है कि आप खण्डेलवाल जैन कुल में उत्पन्न हुए थे और आपका निवास स्थान आगरा था। इसके प्रमाण में हम आपका एक छन्द जैन शतक से उद्धृत करते हैं।

आगरे में बाल बुद्धि भूधर खण्डेलवाल,
बालक के ख्याल सों कवित्त कर जानै है।
ऐसे ही करत भयो जैसिंह सवाई सूवा,
हाकिम गुलाबसिंह आयो तिहि थानै है॥
हरीसिंह शाह के सुवंश धर्म रागी नर,
तिनके कहे ते जोरि कीन्ही यह ठानै है।
फिरि फिरि प्रेरे मेरे आलस को अंत भयो,
उनकी सहाय यह मेरे मन मानै है॥

इस छन्द से प्रगट होता है कि "सवाई जैसिंह" के सूबा हाकिम गुलाबचन्द आगरे में आ गये, जो जैन मतानुयायी थे और धर्म से उनको विशेष अनुराग था। उनसे कवि जी को बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला। जैन शतक ग्रन्थ उन्हीं की प्रेरणा से रचा गया, या स्फुट कविताओं का संग्रह किया गया। जैन शतक का समाप्ति काल कवि ने ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है।

सतरह सै इक्यासिया, पोह पाख तम लीन।
तेरस तिथि रविवार को, ग्रन्थ समापत कीन॥

इसी प्रकार "पार्श्व पुराण" के अन्त में एक दोहा कवि ने लिखा है।

संवत सतरह सै समय, और नवासी लीय।
सुदि अषाढ़ तिथि अष्टमी, ग्रन्थ समापत कीय॥

उपरोक्त दोहों से प्रतीत होता है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक कवि जी विद्यमान थे। यदि इस समय के आधार पर आपके जन्म काल का अनुमान किया जाय तो लगभग १७२५ तक ठहरता है। क्योंकि जैन शतक की रचनायें हमें इस परिणाम पर पहुँचाती हैं कि ग्रन्थकर्त्ता की आयु ५५ वर्ष से कम नहीं थी। इसी तरह जिस छन्द में कवि ने अपना परिचय दिया है, उन शब्दों से भी झलकता है कि कवि की आयु उस समय ५० से अधिक अवश्य थी। क्योंकि आपने अपने सम्बन्ध में "बाल बुद्धि" और "बालक के ख्याल सों कवित्त कर जाने हैं" आदि लिखा है। ऐसे शब्दों का प्रयोग कोई अल्प वयस्क पुरुष कदापि नहीं कर सकता। फिर हाकिम गुलाबचन्द जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति जिसको बारम्बार प्रेरणा करें उसकी अवस्था ५० वर्ष से क्या कम हो सकती है। "आलस को अंत भयो" आदि शब्दों से भी स्पष्ट है कि उस समय आपकी आयु ५० से ५५ तक अवश्य थी। आपके रचित चार ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हुये हैं। (१) जैन शतक (२) पार्श्व पुराण (३) पद संग्रह (४) भूधर विलास। ये जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय हीरबाग़ बम्बई से मिलते हैं। कविवर वृन्दावन जी रचित ग्रन्थ भी यहीं से प्रकाशित हुए हैं।

(१) जैन शतक—इसमें १०७ छन्द हैं और सभी उपयोगी तथा उपदेश प्रद हैं। इन छन्दों की रचना कवि ने श्रीभर्तृहरि शतक पढ़ कर की है ऐसा मालूम होता है। क्योंकि बहुत से छन्द तो संस्कृत छन्दों का रूपान्तर ही हैं और बहुत से उनके आधार पर हैं। फिर विषय क्रम और

नाम भी ज्यों का त्यों पाया जाता है। अस्तु हम आपको "जैन शतक" के कुछ पद्यों का रसास्वादन कराते हैं।

जौलौं तेरी देह काहू रोग से न घेरी जौलौं,
जरा नाहिं नेरी जासौं पराधीन परि है।
जौलौं जम नामा वैरी देय ना दमामा जौलौं,
मानै कान रामा बुद्धि जाइ न बिगरि है॥
तौलौं मित्र मेरे निज कारज संवार ले रे,
पौरुष थकेंगे फेर पीछे कहा करि है।
अहो आग आयैं जब झोंपरी जरन लागी,
कुआ के खुदायैं तब कौन काज सरि है॥

❀ ❀ ❀

मोह से महान ऊंचे पर्वत सौं ढर आई,
तिहूँ जग भूतल में याहि बिसतरी है।
विविधि मनोरथमै भूरि जल भरी बहै,
तिसना तरंगनि सौं आकुलता धरी है॥
परे भ्रम भौंर जहां राग सौ मगर तहां,
चिंता तट तुंग धर्म-वृच्छ ढाय ढरी है।
ऐसी यह आशा नाम नदी है अगाध ताकौं,
धन्य साधु धीरज जहाज चढ़ि तरी है॥

❀ ❀ ❀

दृष्टि घटी पलटी तनकी छबि, बंक भई गति लंक नई है।
रूस रही परनी घरनी अति, रंक भयो परियंक लई है॥
काँपत नार बहै मुख लार, महा मति संगति छाँरि गई है।
अंग उपंग पुराने परे, तिशना उर और नवीन भई है॥

❀ ❀ ❀

अहो इन आपने अभाग उदै नाहिं जानी,
वीतराग-बानी सार दयारस-भीनी है।

जोवन के जोर थिर जंगम अनेक जीव,
जानि जे सताये कछु करुना न कीनी है ॥
तेई अब जीव रास आये परलोक पास,
लेंगे बैर देंगे दुख भई ना नवीनी है।
उनहीं के भय को भरोसो जान काँपत है,
याही डर "डोकरा ने लाठी हाथ लीनी है"॥

इतने ही से पाठक जान लेंगे कि कवि को अनुवाद करने में कहाँ तक सफलता मिली है और शब्द योजना कैसी है। कवि ने बुढ़ापे का वर्णन जैसे उत्तम ढंग से किया है उससे ज्ञात होता है कि कवि ने मानो इस अवस्था के दुखों का स्वयं अनुभव किया हो।

(२) पार्श्व पुराण—एक अच्छा काव्य ग्रन्थ कहा जा सकता है और इसकी वर्णन शैली बहुत ही अच्छी है। कवि की बुद्धि प्रखरता और प्रतिभा का पता इस ग्रंथ के पढ़ने से अच्छी तरह लगता है। यों तो मूल कथानक प्राचीन ग्रंथों से ही लिया है, किन्तु पद्य रचना कवि की स्वतंत्र है। प्रसंग वश जिस विषय का वर्णन कवि ने किया है बड़ी उत्तमता से किया है। लीजिये इसके भी दो चार छन्द पढ़िये और काव्य-रसामृत पान कीजिये।

किलकिलंत बेताल, काल कज्जल छवि सज्जहिं।
भौं कराल विकराल, भाल मदगज जिमि गज्जहिं॥
मुंडमाल गलधरहिं, लाल लोयननि डरहिं जन।
मुख फुलिंग फुंकरहिं, करहिं निर्दय धुनि हन हन॥
इहि विध अनेक दुर्भेष धरि, कमठजीव उपसर्ग किय।
तिहुँलोक-बन्द जिन चन्द प्रति, धूल डाल निज शीश लिय॥

❀ ❀ ❀

तपे तवा पर आय, स्वाँति जल बूँद बिनट्ठी।
कमल पत्र परसंग, वही मोती सम दिट्ठी॥

सागर सीप समीप, भयो मुक्ता फल सोई।
संगत को परभाव, प्रगट देखो सब कोई॥
यों नीच संग ते नीच फल, मध्यम तैं मध्यम सही।
उत्तम संयोग तैं जीव कौं, उत्तम फल प्रापति कही॥

❀ ❀ ❀

दुर्जन और सलेखमा, ये समान जग माहिं।
ज्यौं ज्यौं मधुरो दीजिये, त्यौं त्यौं कोप कराहिं॥
आयु हीन नर को जथा, औषधि लगै न लेश।
त्यौंहीं रागी पुरुष को, वृथा धर्म उपदेश॥

लेख विस्तार भय से इतने ही छन्द लिखना हम पर्याप्त समझते हैं। सुबोध पाठक यदि अधिक आनन्द लेना चाहें तो इस ग्रन्थ को पढ़ने का कष्ट उठावें।

(३) पद संग्रह—इसमें कुल ८० पद हैं। कुछ पद तो वैराग्य और आत्म निरूपण के हैं, शेष तीर्थङ्करों की विनय के हैं। यहाँ हम उक्त ग्रन्थ से दो पद उद्धृत करते हैं जो दिग्दर्शन के लिये पर्याप्त होंगे।

पुलकन्त नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इन्दीवरो।
दुर्बुद्धि चकवी विलख बिछुरी, निबिड़ मिथ्यातम हरो॥
आनन्द अम्बुज उमग उछर्यो, अखिल आतम निरदले।
जिन बदन पूरनचन्द्र निरखत, सकल मनवांछित फले॥

यह तो रहा विनती का पद, अब आत्म ज्ञान की बानगी देखिये

तुम सुनियों साधो! मनुवा मेरा ज्ञानी।
सतगुरु भैंटा संसा मैटा, यह नीकै करि जानी॥
चेतनरूप अनूप हमारा, और उपाधि विरानी॥ तुम० ॥१॥
पुद्गल भाँडा आतम खाँडा, यह हिरदै ठहरानी।
छीजौ भीजौ कृत्रिम काया, मैं निरभय निरवानी॥ तुम० ॥२॥
मैं हीं देखौं मैं ही जानौं, मेरी होय निशानी।
शबद फरस रस रंग न धारौं, ये बातैं विज्ञानी॥ तुम० ॥३॥

जो हम चीन्हां सो थिर कीन्हां, हुए सुदृढ़ सरधानी।
भूधर अब कैसें उतरैगा, खड्ग चढ़ा जो पानी ॥ तुम० ॥४॥

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त हमने आप के "भूधर विलास" ग्रन्थ की हस्त लिखित प्रति देखी है जिसमें अनेक स्तोत्र आदि लिखे हैं। यदि इस ग्रन्थ को आपकी समस्त फुटकर रचनाओं का संग्रह कहा जाय तो अनुचित न होगा क्योंकि "जैन शतक" और "पद संग्रह" भी इसके अन्तरगत ही हैं। यदि हम कविवर की रचनाओं की तुलनात्मक समालोचना करें तो कविवर वृन्दावन की भाषा से आपकी भाषा और वर्णन शैली कम प्रौढ़ नहीं कही जा सकती। हो सका तो "वीर-सन्देश" के किसी आगामी अङ्क में हम आपकी तलनात्मक समालोचना करने का प्रयत्न करेंगे।

—::※::—

मरणशील मानव

What is man ? A foolish baby;
Vanily strives, and fights, and frets;
Demanding all, deserving nothing;
One small grave, is what he gets.
——T. Carlyle.

भावानुवाद

[लेखक—श्री पं० हरिशङ्कर जी शर्मा, कविरत्न]

बनकर बालक सा मूर्ख, अरे! क्यों तू यह द्वन्द्व मचाता है।
करता प्रयत्न उद्योग बड़े, पर, नेक नहीं फल पाता है॥
अधिकारी नहीं बना फिर भी, सब कुछ लेने की ठानी है।
छोटी सी चिता मिलेगी बस, जिसमें यह देह जलानी है॥

—::※::—

अजवेस कवि

[लेखक—श्री पं० भागीरथ प्रसाद जी दीक्षित विशारद]

अजवेस कवि नरहरि महापात्र के बंशज थे इन्होंने कई राज्यों में रह कर अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। ये महाशय रीवाँ नरेश महाराजा अवधूतसिंह के आश्रित थे। एक समय जब रीवाँ नरेश उदयपुर में ब्याहने गये थे तब वहां के राज कवि परसाद ने दरबार के अवसर पर निम्न लिखित कवित्त पढ़ा था जिससे राणा उदयपुर की प्रशंसा और अन्य राजाओं का अपमान प्रकट होता था। वह छंद यह है—

बाढ़ी पातसाही प्रलय काल के सजल ज्योंहीं,
डूबे राव राजा पै न कीन्हों तेज खर को।
देन लागे नवल दुलहिया नव रोजन की,
पीछे आनि देखें नीठि नीठि मुख घर को॥
बांधि तरवार पात साहन सों कीन्हीं रारि,
भनत प्रसाद अवतार सांचों हर को।
दोऊ दीन जाना बात अकह कहाना,
सदा ऊँचौ रहौ राना जैसे पाना अखैवर को॥

उस समय उदयपुर नरेश महाराणा स्वरूपसिंह थे। रीवां नरेश ने अपना अपमान समझ कर अपने राज कवि अजवेस महापात्र की ओर देखा तब अजवेस ने उसी समय कवित्त रच कर निम्नलिखित छंद उसी दरबार में सुनाया:—

दिल्ली के जितेक सरदार मनसवदार,
राजा राव उमराव सब को निपात भो।
वेगम विचारी वही कितहू न थाह पाई,
बाँधौ गढ़ गाढ़ौ गूढ़ता को पक्षपात भो॥
शेर शाह सलिल प्रलै को बढ़ो अजवेस,
बूढ़त हुमाऊँ के महा ही उतपात भो।
बल हीन बालक अकब्बर बचाइवे कों,
वीर भान भूपति अखैवर को पात भो॥

रीवाँ राज्य में यह किम्बदन्ती प्रबलता से प्रसिद्ध है कि नरहरि महापात्र ने हुमायूं की बेगम हमीदा को अमर कंटक (रींवा राज्य) के किले में लेजाकर रक्खा था और वहीं अकबर का जन्म हुआ था। वहां के क़िले में वह स्थान भी बतलाया जाता है जहां अकबर उत्पन्न हुआ था। परन्तु इतिहास इसके विपरीत वर्णन करता है कि अकबर सिंध प्रान्तर्गत अमरकोट के किले में पैदा हुआ था। इतिहासज्ञों को इस बात का अन्वेषण करना चाहिये कि उक्त किम्बदन्ती तथा कवि के कथन में कहां तक तथ्य है ! आशा है विद्वान् इतिहास प्रेमी इस पर प्रकाश डालने का कष्ट उठावेंगे।

अजवेस कवि की उक्त कविता को सुनकर सबने भूरि भूरि प्रशंसा की और रीवाँ नरेश ने ५०००) रु० महापात्र अजवेस को पुरस्कार दिया। राणा उदयपुर ने भी परसाद कवि का वैसा ही सम्मान किया। इस प्रकार प्राचीन राजाओं का आश्रय पा कर कवि समाज बहुत उन्नत दशा में था तथा तत्कालीन काव्य में भी एक अनोखी प्रतिभा प्रदर्शित होती है। वर्तमान काल में काव्य की जो दुर्दशा हो रही है वह भी किसी से अप्रकट नहीं है। यद्यपि विचारों में कुछ उत्कर्षता पायी जाती है, परन्तु भाव गाम्भीर्य और प्रतिभा का अभाव ही प्रतीत होता है।

हिन्दू जाति ने यद्यपि कुछ करवट बदलने का प्रयत्न किया है परन्तु जागृति के चिन्ह बहुत कम दृष्टि गोचर हो रहे हैं। भाषा व भाव का विकाश अवश्य दृष्टि गोचर होता है परन्तु कवित्व का अभाव सा ही है। अजवेश कवि के वंशज आज कल असनी जिला फ़तहपुर में निवास करते हैं। श्रीयुत पं० श्रीलाल जी महापात्र बड़े सुयोग्य और प्रतिभावान कवि तथा विद्वान् हैं। रीवाँ राज्य की ओर से जागीर पा रहे हैं। ये महानुभाव सामयिक गति से अलग बिछुड़ते हुए से रहते हैं। सम्मेलन को चाहिए कि उनका समुचित आदर कर सम्मेलन की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करे। इससे उनका और जाति दोनों का हित होगा।

——::❀::——

वीर-विलास ।

वीर-बालक ।

[लेखक—श्री स्वामी नारायणनन्दजी]

हे मा ! क्या मैं मुझे शपथ चरणों की खाऊँ;
कर अरि-दल विध्वंस वंश की कीर्ति बढ़ाऊँ ।
दे मुझको करवाल हाथ चौरंग दिखाऊँ;
वीरोचित कर कार्य लाश "काका" की लाऊँ ॥
यह दिखला दूंगा शाह को कैसा अजय अकूत हूँ ।
" मैं " धीर वीर गम्भीर भट अमरसिंह का पूत हूं ॥

यों कह छूये चरण म्यान से खड्ग निकाली;
लगा पीसने दाँत दृगों में छाई लाली ।
फड़क उठे भुज दण्ड बदन पर दढ़ी बहाली;
ले थोड़े से ज्वान युद्ध की सुरत सँभाली ॥
पहुँच तुरन्त रण क्षेत्र में मार मार करने लगा ।
मद सुभट, शूर, सामन्त का इक इक कर हरने लगा ॥

समराङ्गन के बीच तेग अपनी चमका दी;
क्षण भर में सब सैन्य मर्द कर गर्द मिला दी ।
रजपूती की आन शूर की शान दिखा दी;
धर घोड़े पर लाश विजय की नाद बजा दी ॥
तब दाँतों में उंगली दिये, बोला शाह "कमाल है !
शाबाश रामसिंह ! क्यों न हो, अमरसिंह का लाल है ॥"

नोट:—रण विजयी अमरसिंह के धोके से कत्ल हो जाने पर उसकी रानी ने सती होना चाहा । लाश मांगने पर शाहजहां ने व्यंग कसा कि उसका पुत्र लाश ले जाये । तब रामसिंह १५ साल का था परन्तु तेजस्वी ने शाहजहां को बतला दिया कि मैं वीर अमरसिंह का वीर पुत्र रामसिंह हूं ।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

[लेखक—श्रीयुत परमहंस]

भारत की वीर रानियों में अग्रगण्य महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता और युद्ध कौशल लोक प्रसिद्ध है। उनका असीम उत्साह, अलौकिक साहस, अतुल पराक्रम, अटल आत्म विश्वास, अनुपम विचार शक्ति, अद्भुत रण चातुर्य, अद्वितीय कार्यक्षमता, अचल दृढ़ता तथा अखण्ड स्वात्माभिमान देख कर बड़े २ अंग्रेज सेना-नायक नत मस्तक हो गये।

विपक्षियों के प्रबल सेनाधिपति सर ह्यूरोज महारानी के सम्बन्ध में कहते हैं:—"महारानी की अति उच्च कुलीनता, आश्रित और सैनिक जनों के साथ उनकी अपार उदारता तथा विकट प्रसंग उपस्थित होने पर भी तनिक न डिगने वाली अद्वितीय धीरता के कारण उनका विशेष गौरव हुआ और उनके पक्ष को भयंकर स्वरूप प्राप्त हुआ"। इसी प्रकार अनेक सेनाध्यक्षों (जो उस युद्ध में सम्मिलित थे) तथा अनेक अंग्रेज इतिहास-कारों ने महारानी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

यह कहना अत्युक्ति न होगा कि महारानी रूपलावण्य, सौम्यता, उदारता आदि गुणों में लक्ष्मी का स्वरूप ही थीं। उच्च विचार और वाक् पटुता आदि उनमें सरस्वती के समान थे। प्रचण्ड तेजस्विता, युद्ध कला, शौर्य उग्रता आदि में साक्षात् दुर्गा देवी का अवतार थीं।

इस छोटे से निबन्ध में हम उन मुख्य २ घटनाओं का उल्लेख करेंगे जो महारानी के वीरत्व से सम्बन्ध रखती हैं। फिर भी जन्म, वंश परिचय आदि पर संक्षेप से प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है।

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म कार्तिक बदी १४ सं० १८९१ (ता० १६ नवम्बर सन् १८३५ ई०) को मोरोपन्त तांबे की धर्मपत्नी भागीरथी बाई के गर्भ से काशीनगर में हुआ था। माता पिता द्वारा कन्या का नाम मन्नू बाई रक्खा गया।

मन्नू बाई की अवस्था लगभग चार साल की थी तभी माता भागीरथी का परलोक वास हो गया अतः इनका पालन पोषण पिता द्वारा ही हुआ। पेशवा साहब के दत्तक पुत्र नानाराव तथा रावसाहब भी उस समय बालक थे। मन्नू बाई भी इन्हीं के साथ खेलकूद में प्रवृत्त रहतीं और शिक्षा प्राप्त किया करती थीं। मन्नू बाई का स्वभाव चपल और निर्भीक था। इसी समय इन्होंने घोड़े पर चढ़ना, शस्त्र चलाना आदि सीखा।

जब मन्नूबाई ने बाल्यावस्था समाप्त की और युवावस्था में पदार्पण किया तो मोरोपन्त जी को उनके विवाह की चिन्ता हुई। पेशवा साहब की कृपा तथा ईश्वर की इच्छा से झांसी के महाराज श्रीमान् गंगाधर राव के साथ सन् १८४२ में बड़ी धूम-धाम से मन्नूबाई का विवाह हो गया। पति-गृह में पहुँचने पर मन्नूबाई ने लक्ष्मीबाई नाम धारिणी महारानी पद को अलंकृत किया।

विवाह से थोड़े ही दिन पश्चात् महाराजा गंगाधर राव को बृटिश सरकार द्वारा झांसी का पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हो गया। महाराजा साहब बड़े कार्यदक्ष और उद्यमी थे, शीघ्र ही उत्तम व्यवस्था स्थापित करने और राज्य को उन्नत बनाने में सफल हुए।

सन् १८५० में महाराज के काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थों की यात्रा से लौटने पर परमात्मा के अनुग्रह से सन् १८५[illegible] में महारानी लक्ष्मीबाई के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु दुर्दैव वशात् वह पुत्र तीसरे ही महीने काल-कलेवर बन गया, जिसका उन्हें अपार दुःख हुआ।

पुत्र-शोक से महाराजा साहब का हृदय इतना दग्ध हुआ कि वे अस्वस्थ हो गये और रोग दम ब दम बढ़ने लगा। अनेक औषधोपचार तथा शान्ति पाठ आदि उपायों के करने पर भी जब दशा निराशा जनक होने लगी, तब महाराजा साहब ने अपने कुल के आनन्द राव नामक पाँच वर्ष के बालक को शास्त्रोक्त विधि से अपना दत्तक पुत्र बनाया।

महाराजा दूरदर्शी थे। बृटिश सरकार के पास उन्होंने इस आशय का एक खलीता भेजा कि मेरा शरीर न रहने के पश्चात् सम्पूर्ण राज्याधिकार मेरे इस दत्तक पुत्र को प्राप्त हों और महाराना लक्ष्मीबाई को राज्य प्रबन्ध सौंपा जाय।

यह भी लिख देना आवश्यक है कि इन दिनों महाराजा साहब के पास बृटिश अफ़सरों का आवा-जाई बराबर लगी रहती थी और पोलिटिकल एजेन्ट ने बड़े २ डाक्टरों को भी बुलाया था परन्तु महाराजा ने औषधि खाने से इन्कार कर दिया। ता० २१ नवम्बर सन् १८५२ ईस्वी को महाराजा साहब इस असार संसार से मुंह मोड़ परलोक पथ-गामी हुए।

महारानी का हृदय इधर तो पति वियोग के कारण विदीर्ण हो ही चुका था, उधर बृटिश कर्मचारियों के निर्दयता पूर्ण व्यवहार से उनका चित्त और भी व्याकुल हा उठा। महाराजा साहब के भस्मान्त क्रिया के पश्चात् ही पोलिटिकल एजेन्ट ने राज्य कोष अपने आधीन कर लिया और किले पर अपने फ़ौजी सिपाही नियत कर दिये। प्राचीन सिपाहियों को वेतन देकर विदा कर दिया। राज्य का सारा प्रबन्ध बृटिश के हाथ में हो गया। महारानी साहिबा को किला खाली करने और राज्य महल में रहने का हुक्म दिया गया। यहीं तक नहीं पूर्व संचित हीरा जवाहरात के आभूषण तथा नक़द रुपया किसी पर भी महारानी साहिबा का अधिकार न रह गया। केवल ५०००) रु० मासिक वेतन स्वरूप देना निश्चित हुआ जिसको महारानी ने स्वीकार नहीं किया।

यद्यपि महारानी पर बज्राघात हो चुका था और उनकी सारी मनोकामनाओं पर तुषार पड़ चुका था तो भी महारानी ने अपनी स्वाभाविक तेजस्विता और धैर्य के कारण बड़ी बुद्धिमत्ता से अपने प्रत्येक कार्य पर विचार आरम्भ किया और अपनी स्वतंत्रता के लिये तीव्र गति से उद्योग करने लगीं। उन्होंने अपने दुःखमय जीवन को भी एक कर्म-वीर कुलांगना की भांति विताना निश्चय किया। वे नित्य प्रति प्रातः चार बजे

स्नान कर आठ बजे तक पूजापाठ करतीं, फिर अपने महल के आंगन में घोड़े पर सवार होकर कुछ व्यायाम करतीं, ग्यारह बजे फिर स्नान करतीं और दान-धर्म करके भोजन करती थीं। इसके बाद तीन बजे तक ११०० राम नाम लिख कर आटे की गोलियां बनातीं और मछलियों को खिलाती थीं। संध्या को ८ बजे रात तक वे कथा पुराणादि सुनती थीं, तथा वही समय मंत्रिमण्डल तथा अन्य जन साधारण से बात चीत करने को निश्चित कर रक्खा था। जब वे लोग भेट करके चले जाते तब महारानी तीसरी बार स्नान करतीं और अपने इष्टदेव की पूजा अर्चा के बाद प्रसाद ग्रहण करती थीं, फिर शयन करती थीं।

यद्यपि महारानी ने पूर्व कथनानुसार तपस्वी जीवन बिताना ही निश्चित किया था परन्तु अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये वह प्रबल उद्योग करती रहती थीं। वृटिश की न्यायप्रियता पर उन्हें पूर्ण बिश्वास था। उन्हें आशा थी वृटिश सरकार हमारे अधिकारों का अपहरण कभी न करेगी। हमारे पूर्वजों ने जो सहायता सरकार की की है उनका ध्यान अवश्य रहेगा और पूर्व संधि पत्र के अनुसार तथा महाराजा साहब के खलीते के मुताबिक ही सरकार हम पर कृपा करेगी। परन्तु वृटिश सरकार की स्वार्थमयी नीति के कारण महारानी की आशाओं पर पानी फिर गया। महारानी के कई साल बराबर प्रयत्न करने पर भी कुछ फल न हुआ। तो भी उन्हें प्रजा-हितचिन्तन के अतिरिक्त अन्य चिन्ता न थी, वे सदैव प्रजा के कष्ट निवारण करने के लिये बेचैन रहने लगीं।

कई साल से झांसी का राज्य-शासन वृटिश शासकों के हाथ में था; जिनकी निरंकुशता से प्रजा जर्जरीभूत हो रही थी। प्रजा के करुणा-क्रन्दन से प्राचीन अधिकारियों के हृदय सन्तप्त हो उठे थे। महारानी की शान्ति प्रियता के कारण प्रकट रूप से तो किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता था, किन्तु भीतर ही भीतर वृटिश् सत्ता के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न होना आरम्भ हो गये थे।

सन् १८५७ में जब देशव्यापी गदर हुआ तो झांसी में भी सनसनी के चिह्न दिखाई देने लगे जिस से महारानी के हृदय को अत्यन्त क्लेश हुआ। यद्यपि उन्होंने शान्ति बनाये रखने के लिये भरसक उद्योग किया। परन्तु भवितव्य बलवान है उसके आगे किसी की कुछ नहीं चलती। ता० ५ जून १८५७ को झांसी में भी बलवा प्रारम्भ हो गया और अंग्रेज अफ़सरों की जानों पर आ बनी तथा वे बड़ी निर्दयता के साथ कत्ल किये जाने लगे। फ़ौजी सिपाहियों ने किले पर हमला किया जहां अंग्रेज लोग छिपे थे। कुछ देर तो अंग्रेज़ों ने अपने अपने शस्त्रों से काम लिया किन्तु अन्त में वे परास्त हो गये और किले पर बलवाइयों का कब्ज़ा हो गया। किन्हीं इतिहासकारों का मत है कि इस बलवे के कारण झांसी में १६ अंग्रेज़ मारे गये।

जब उपरोक्त घटना से झाँसी में कुछ समय के लिए बृटिश राज्य रवि अस्त हुआ और कोई झांसी राज्य का प्रबन्धक न रहा तथा चारों तरफ से झांसी पर आक्रमण होना प्रारम्भ हो गया तो महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने प्राचीन मंत्रि मण्डल की अनुमति से बृटिश प्रतिनिधि स्वरूप शासन की बाग डोर अपने हाथ में लेना निश्चित किया। महारानी ने अपनी बुद्धिमता से शीघ्र ही शान्ति स्थापित की और राज्य का उत्तम प्रबन्ध करने लगी।

इन्ही दिनों में सदाशिवनारायण नाम का एक व्यक्ति जो अपने को महाराजा गंगाधर राव के वंश का बतलाता था तथा राज्याधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न बहुत दिनों से कर रहा था, उसने मौके पर कुछ फौज साथ ले ता० १३ जून को करेरा किले पर धावा बोल दिया, जो कि झांसी से ३० मील दूर है, और वहां के बृटिश थानेदार तथा तहसीलदार को मार भगाया। किला अपने अधिकार में कर लिया। वहां बैठ कर उसने आस पास के ठाकुर लोगों को धमका कर कुछ कर भी वसूल किया तथा अपने राज्याभिषेक का उत्सव मना कर महाराज सदा-

शिवनारायण राव पदवी धारी राजा बन बैठा और घोषणा करदी कि झांसी प्रान्त का सच्चा राज्याधिकारी मैं हूँ।

जब महारानी लक्ष्मीबाई को यह वृत्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने इधर उधर से कुछ फौज इकट्ठी की और बड़ी वीरता के साथ करेरा किले पर चढ़ाई कर दी और बात की बात में उसे मार भगाया। सदाशिव नारायण राव वहां से भाग कर सेंधिया राज्यान्तरगत नरवर में रहने लगा और झांसी का राज्य प्राप्त करने का प्रबल उद्योग करने लगा। महारानी भी उसके प्रत्येक कार्य पर दृष्टिपात करती रहीं, अन्त में उसको पकड़ कर झांसी के किले में कैद कर दिया। इन सब बातों की सूचना पोलिटिकल एजेन्ट को यद्यपि महारानी बराबर पहुंचाने का प्रबन्ध करती रहीं परन्तु बुद्धिमान् पुरुषों के अभाव के कारण अथवा विरोधी दल के उत्साह के कारण महारानी का कोई भी कार्य सम्पन्न न हो सक्ता था।

महारानी सदाशिवराव के युद्ध से निश्चिन्त नहीं होने पाई थीं कि ओरछा राज्य के दीवान नत्थे खां ने २० हजार सिपाहियों को साथ लेकर झांसी पर चढ़ाई कर दी। उस समय महारानी के पास फौज बहुत थोड़ी थी। अतएव उन्होंने पोलिटिकल एजेन्ट को सब हाल लिखा और सहायता मांगी। परन्तु पत्र ले जाने वाले दूत को नत्थे खां के सिपाहियों ने रास्ते ही में मार डाला। जब महारानी को कहीं से भी सहायता प्राप्त न हुई तो मन में कुछ घबराहट सी होने लगी, परन्तु उन्होंने ऐसे कुसमय में साहस का परित्याग नहीं किया किन्तु बड़ी तत्परता के साथ युद्ध का प्रबन्ध करने लगीं। उधर नत्थे खां ने महारानी के पास पत्र भेजा कि यदि आप झांसी का किला और शहर हमारे सुपुर्द करदें तो हम आप का बृटिश वत् आदर सम्मान करने को तैयार हैं। यह संदेशा सुनते ही महारानी को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और नेत्र रक्त वर्ण हो गये मुख पर कान्ति की लालिमा छागई। वे थोड़ी देर तक प्रज्वलित क्रोधाग्नि से अपने मन को जलाती रहीं पश्चात् शान्त होकर बड़े गम्भीर

स्वर से इस सम्बन्ध की बात-चीत अपने कर्मचारियों से करने लगी। कर्मचारियों ने नत्थे खां की सेना से भयभीत होकर युद्ध से मुख मोड़ने की बात कहना चाही थी कि महारानी का हृदय संतप्त हो उठा और उनको तिरस्कृत करते हुये कहा कि धिक्कार है ऐसे पुरुष जीवन को ! क्या सदा जीना है ? मैं युद्ध से कभी मुख न मोड़ूंगी। महारानी के इन वाक्यों से सभी सेना में एक स्फूर्ति उत्पन्न हो गई और नवीन जीवन की ज्योति जगमगाने लगी। उधर महारानी ने नत्थे खां के पास कहला भेजा कि प्रबल अंग्रेज सरकार की आज्ञा से मैं इस राज्य का प्रबन्ध कर रही हूं। आप जैसे शूर वीर पुरुषों को स्त्रियों के साथ छेड़ छाड़ करना उचित नहीं है। यदि आप अपना हठ न छोड़ेंगे तो मैं परम-पराक्रमी शिवराम भाऊ की बहू हूँ। नत्थे खां अपनी आशा से उन्मत्त था। महारानी का संदेशा सुन कर क्रोध के आवेग में आ अपनी सेना को क़िले पर धावा करने की आज्ञा दे दी। इधर महारानी ने भी झांसी प्रान्त के बड़े बड़े ठाकुर और बुन्देले जागीरदारों को निमंत्रित करके राजमहल में एक दरबार किया और अपनी सहायता करने को बाधित किया। उन लोगों ने विनय पूर्वक सब प्रकार सेवा करना स्वीकार किया और महारानी से युद्ध सामग्री एकत्रित करने की प्रार्थना की। महारानी लक्ष्मीबाई ने जमीन में गढ़ी अपनी पुरानी तोपों को दुरुस्त कराया और उनको किले के बुर्जों पर रखवा दिया। झांसी की प्रसिद्ध तोप कड़क बिजली के बुर्ज पर चढ़वा कर दगवा दिया। जिससे नत्थेखां के बहुत सिपाही तो खेत रहे, शेष अपनी तोप आदि सामग्री छोड़ भाग निकले, जिनको दीवान रामसिंह ने अपनी बुद्धिमत्ता से तहस नहस कर डाला। अपनी फौज की यह दशा देख नत्थेखां भाग गया और महारानी ने बिजय का डङ्का बजबा दिया पश्चात् महारानी ने अपने शूर सैनिकों को पुरस्कृत कर उनका उत्साह बढ़ाया और इस युद्ध का समाचार पोलिटिकल एजेन्ट के पास भेज दिया।

(शेष फिर)

——:※:——

हल्दीघाटी युद्ध ।

[लेखक—श्रीयुत ब्र० भद्रजित जी 'भद्र']

❀ १ ❀

कैसी हल्दी घाट में मची है मार काट-काट,
काट छितराए यवनों के रुण्ड मुण्ड हैं।
तोप, तीर, बरछी की मार को सहार मार,
मार कर बार मारे शत्रु झुण्ड झुण्ड हैं॥
फिरते चिंघाड़ते हैं सेना बीच चारों ओर,
कोट राजपूतों से वहां वितण्ड तण्ड हैं।
हाथ पैर मुण्ड रणभूमि में पड़े हैं, धड़
झमते, भरे अनेक उष्ण रक्त कुण्ड हैं॥

❀ २ ❀

चेतक सवार काटि डारे तलवार नैन,
कोप से अपार रतनारे, ये प्रताप है।
हाथ में है भाला, घोड़ा शत्रु बीच डाला,
बहा रक्त का पनाला, आऐ वीर ना-कुदाप है॥
देख के सलीम गज-गण्ड पै कुदाये वीर,
चेतक ने ज़ोर से गड़ाए निज टाप हैं।
मारा तान भाले को सलीम के प्रताप ने जो,
रुक गया बीच ही में हौदा गया कांप है॥

——::❀::——

सूचना ।

हमारे एक मित्र महोदय २५) उस कविता पर पुरस्कार स्वरूप देना चाहते हैं जो वीर-सन्देश के प्रथम वर्ष में प्रकाशित वीर-रस की कविताओं में सर्वोत्तम होगी। आशा है कि कविगण उत्तम २ कविताऐं भेजने की कृपा करेंगे। —सम्पादक।

कुत्सित किन्नरी

(आलोचना)

[लेखक—श्रीयुत समालोचनानन्द जी]

आश्विन मास की माधुरी में श्री जयशङ्कर प्रसाद लिखित "हिमालय का पथिक" शीर्षक एक गल्प प्रकाशित हुई है। इस गल्प का कथानक इस प्रकार है कि पहाड़ी प्रदेश में घूमता-फिरता एक नवयुवक किसी ऐसे स्थान पर जा निकला जहाँ एक वृद्ध अपनी युवती कन्या के साथ निवास करता था। वृद्ध ने नवागन्तुक नवयुवक को आश्रय दिया और भयङ्कर शीत से उसकी रक्षा की, रातको तपाया और उसे खाना भी खिलाया। नवयुवती किन्नरी ने नवयुवक पथिक से, उसके इस प्रकार विचरने का कारण पूछा तो, उत्तर अनिश्चित सा मिला। बातों ही बातों में किन्नरी को यह भी ज्ञात हो गया कि नवयुवक के माँ-बाप मर चुके हैं और इसीलिये वह इस प्रकार बेरोक-टोक घूमता फिरता है। नवयुवती किन्नरी भी इसी प्रकार निःशङ्क होकर सैर-सपाटा करना चाहती थी, परन्तु इस इच्छा-पूर्ति में उसने अपने पिता को बाधक बताया। किन्नरी कहने लगी—पथिक जी! मुझे तो यहाँ शिखर-श्रेणी पर ही पशु-पक्षियों और चूहे-चुहियों को "स्वजन" समझना पड़ता है। किन्नरी के साथी बूढ़े बाबा चौंक पड़े! भला वे अपनी मौजूदगी में ऐसी अपमान-जनक बात कैसे सुन सकते थे!! गरज कर बोले—"क्योंरी किन्नरी! मैं कौन हूं?" किन्नरी (माधुरी में भूल से पथिक छपा है) ने उत्तर दिया—"तुम आगन्तुक तो नहीं हो बाबा। तुम्हारा कोई नया परिचय तो नहीं है, वही मेरे पुराने बाबा बने हो!" वृद्ध बसिष्ठ भिन्ना गये, बोले—"फिर क्या बनूँ?" किन्नरी ने कहा—"कुछ दूसरे बनो"

यह सुन "पथिक हँसने लगा, किन्नरी अप्रतिभ हो गई, वृद्ध गम्भीर होकर कंबल ओढ़ने लगा।"

❀　❀　❀

श्री जयशङ्कर प्रसाद ने इस निरर्थक कहानी की कल्पना से न जाने क्या लाभ सोचा है ? इसके पढ़ लेने पर न तो कुछ मनो-विनोद होता है और न कोई शिक्षा ही मिलती है। हाँ, इतना अवश्य अनुभव होने लगता है कि जिस पहाड़ी प्रदेश को लोग निर्दोष समझते हैं वह भी सदोषता से मुक्त नहीं है, पहाड़ की सीधी-साधी नौ-जवान लड़कियाँ भी आगन्तुक नवयुवकों के साथ हँसी-दिल्लगी करना तथा क़हक़हा लगाना जानती हैं। "वही पुराने बाबा बने हुए हो," "कुछ दूसरे बनो" इन वाक्यों का क्या अर्थ हुआ ? क्या श्री जयशङ्करप्रसाद जी की अलौकिक लेखनी ऐसे असम्बद्ध, अशिष्ट और अश्लील उद्गार निकाल कर सभ्य-समाज को सदाचार-सुधा के बदले कदाचार का कड़वा चिरायता पिलाना चाहती है ? क्या बाप-बेटी का ऐसा असद् संवाद होते हुए कभी किसी ने सुना है ? क्या इस घोर कलिकाल में भी कोई कुलटा अपने वृद्ध या युवा पिता से ऐसा बेहूदा मजाक कर सकती है ? हम नहीं जानते जयशङ्करप्रसाद जी ने किस लहर में आकर यह पंक्तियाँ लिख डालीं ! कौनसी मनोवृत्ति ने उन्हें ऐसा 'चरित्र-चित्रण' करने को मजबूर किया ? "वही पुराने बूढ़े बाबा बने हो" "कुछ दूसरे बनो ?" क्या बनें ? किन्नरी ! तुम्हीं बताओ !!! बूढ़े बाबा को क्या तुम "जवान बाबुल" बनाना चाहती हो, या कुत्ते-बिल्ली की योनि में उन्हें धकेलने का विचार है। पटक दो बुड्ढे को गिरि-शिखिर से, और घोट दो उसका गला फिर तुम भी 'नवयुवक पथिक' की तरह खूब खाक छानती फिरना ! न 'बाप' रहेगा और न तुम्हें चूहे-चुहियों को 'स्वजन' समझना पड़ेगा। फिर जिसे चाहो उसे 'अपना आदमी' बना लेना ! चिन्ता किस बात की है, सोच-विचार क्या है ? बुड्ढे की जिन्दगी का तागा टूटा और तुम्हें स्वराज्य मिला ! इस बुढ़ापे में ग़रीब बाप को "कुछ दूसरे बनो" कहकर क्यों पाप-पंक में घसीटती हो ! ऐसी बातें बककर किसलिये कुफ्र कमाती हो ! क्या बेटी की प्रसन्नता के लिये उसकी प्रार्थना पर बूढ़ा बाप "कुछ दूसरा" भी बन जाया करता है !!

और का और भी हो जाता है !!! राक्षसी ! निकल जा इस कुटीर से, रहने लग चाहे जहाँ, पर "पुराने बाबा" को नयी कुत्सा का केन्द्र न बना ! उसके सफ़ेद बालों पर अपने काले यौवन की बिजली न गिरा !! हिन्दू आदर्श का कुछ तो ख़याल कर, आर्य सभ्यता की तनिक तो आज्ञा मान !!! तुझे हो क्या गया ? तू उस बूढ़े बाप से बकने क्या लगी ? होश संभाल, अक्ल ठीक करके बातें कर। चूहे-चुहियों और पशु-पक्षियों के साथ रह कर क्या तेरी मनुष्यता सर्वथा नष्ट हो गयी, तू बिल्कुल हैवान बन गयी !! प्रसाद जी, क्षमा कीजिए ! बाज आये आपकी ऐसी क़िस्से बाज़ी से ! हम ऐसी बेढंगी और बुरी बातों से अपनी बुद्धि नहीं बिगाड़ना चाहते और न मनुष्यता के सर्वोच्च सोपान से पतित होने की इच्छा है। हम ऐसी गल्प को अल्प समय के लिये भी नहीं पढ़ना चाहते। इस प्रकार की गन्दी गाथाओं से हिन्दी भाषा भण्डार भरने की अपेक्षा उसका रिक्त रहना ही अच्छा है। हमें, हमारे देश और हमारे साहित्य को ऐसी कुत्सित कहानियों की क़तई जरूरत नहीं है।

वीर-सन्देश

[लेखक—श्रीयुत पं० गणेशीलाल जी सारस्वत साहित्योपाध्याय]

समराङ्गण में कभी पैर मत पीछे धरना।
दान मान से याचकगण परिपूरित करना॥
सब जीवों में दया भाव को सन्तत भरना।
शास्त्र विहित निज धर्म मार्ग से कभी न टरना॥
यह तन मन धन से सर्वदा, आचरितव्य अशेष है।
वर वीर बनाता मनुज को, यही वीर-सन्देश है॥

वीरत्व की चोटी पर

[लेखक—श्रीयुत पं० ब्रजमोहन जी तिवारी एम. ए.]

जब हृदय में आशा होती है, उत्साह और निर्भयता उसके दो क़दम आगे चलते हैं। नैपोलियन ने जितने युद्ध किये सब आशान्वित हो कर किये और विजय श्री ने उसका पल्ला पकड़ा उत्साह और निर्भयता की बदौलत। भारतवासियों को जो हम हीन-वीर्य और हतोत्साह-संयुक्त देखते हैं, उसका कारण ही यह है कि नैराश्य से उनके दिल बैठे हुए हैं। काम करने में तबियत ही नहीं लगती। हर एक की सूरत पर 'भिक्षां देहि' 'भिक्षां देहि' लिखा हुआ है। कोई ही विरला हृदय होगा जो आगे बढ़ कर संसार के समक्ष यह कहने का साहस करे "मैं पुरुष हूं, मुझ में पुरुषत्व है।"

\+ + +

जो बड़े आदमी कहलाते हैं वह ज़र, ज़न, और ज़मीन के गाहक हैं। चाहते हैं कि हम मौज करें और बाकी दुनिया भाड़ में जाय। जो बड़ा आदमी कहलाता है वह अच्छी प्रकार जानता है कि मैं महल में रहता हूँ, अच्छे से अच्छा भोजन खाता हूँ और बिगाड़ता हूँ, बढ़िया से बढ़िया पोशाक पहनता हूँ। और मेरे महल के क़रीब ही एक मनुष्य कह-लाने वाला पशु सड़क के किनारे पत्थरों पर पड़ा सोया करता है, बासी कूसी, रूखे-सूखे रोटियों के टुकड़े खाता है या नहीं भी खाता है। और चिथड़े पहिनता है या नहीं भी पहिनता है—यह जानते हुए भी वह बड़ा आदमी इस बात पर गर्व करता है कि मैं मनुष्य हूँ।

\+ + +

कालेजों के प्रिंसिपल और प्रौफ़ेसर सदैव इस बात का प्रयत्न किया करते हैं कि बड़े २ सजे सजाये बङ्गलों में निवास करें, सवारी के लिये मोटरें हों, पहिनने के लिये अप-टू-डेट और लेटैस्ट डिज़ाइन के सूट हों और खाने के लिये पशुओं का प्रत्येक अङ्ग तथा पीने के लिये बेशक़ीमती शराबें हों।

जिस भारतवर्ष में प्रत्येक विद्यार्थी की हार्दिक अभिलाषा ऋषि, मुनि, त्यागी और सन्यासी की उपाधि से विभूषित होने की होती थी, उसी भारतवर्ष के अर्वाचीन विद्यार्थी की उच्चतम लालसा बीसवीं सदी के ठाठ बाटों से परिप्लावित होने की होती है।

\+ + +

जिस भारतवर्ष में मुन्सिफ़ लोग दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया करते थे, उसी भारतवर्ष में रिशवत का बाज़ार इस क़दर गरम रहता है कि चाहे कोई किसी को क़त्ल भी कर डाले पर धन बल से उस का बाल भी बाँका नहीं हो सकता। वकीलों का पेशा बड़ा शरीफ पेशा गिना जाता है पर वकील झूँठ को झूँठ जानते हुए और सच को सच जानते हुए, झूँठ को सच और सच को झूँठ साबित करने की कोशिश में तत्पर रहते हैं!

\+ + +

चिकित्सक समुदाय में इतनी अधिक मूर्खता की मात्रा घुसी हुई है कि जिसका कोई हद्दो-हिसाब ही नहीं। दुनियां भर के रोगों का, बिना उस के मूल कारण समझे हुये, इलाज करते हैं। और बड़े २ ऐलौपैथिक डाक्टर लोग आई. एम. एस. आदि की उपाधियों से विभूषित पशुओं की हत्या कर उनके मृत शरीर की बोटी बोटी काट कर खाना और खिलाना सभ्यता का चिह्न समझे हुये हैं।

\+ + +

यह हालत है हमारे विद्वत्समाज की! जो सब से पहिले चट्टो जुबान के गुलाम हैं और तत्पश्चात् प्रत्येक ज्ञात अवगुण के। सादा चाल से चलने और उच्च विचारों में निमग्न रहने की जो आदर्श प्रणाली थी, उसे मिटा कर उसके स्थान पर निःसार ठाठ-बाट से अप-टू-डेट रहने की और उस पर बड़े भले आदमी कहलाने की ही चाल चल पड़ी है।

\+ + +

मनुष्य की मानसिक अवस्था सदैव एकसी नहीं रहती। उस में थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ ही करता है। और चाहिये भी ऐसा ही,

क्योंकि यह प्रकृति नियमानुकूल है। जो मनुष्य आज भूख से पीड़ित है, तो उसकी प्रार्थना होती है कि यदि रूखी-सूखी रोटी मिल जाये, मेरी भूख दूर हो जाये, तो बड़े आनन्द की बात हो। परन्तु जब रोटियां मिल कर भूख दूर हुई तो उसको बड़ी ही जल्दी रोट लग जाते हैं। वह इतराने लग जाता है, ज़ायकेदार पदार्थों की आवश्यकता सिर उठाती है। यहीं से बस अवनति का आरम्भ है।

+ + +

संसार में सब चिन्ता-ग्रस्त देखे जाते हैं। जो भूखे हैं, नङ्गे हैं, गृह विहीन हैं, उनकी चिन्ता तो यथार्थ है, समझ में भी आ सकती है। परन्तु जो धन-धान्य से पूरित हैं, महलों में निवास करते हैं, उनको चिन्ता किस बात की—यही विचारणीय विषय है। प्रत्येक पुरुष यह भली भांति जानता है कि जीवन यात्रा के लिये बहुत थोड़ी मात्रा की आवश्यकता है। पूर्ण आरोग्य जीवन बनाये रखने के लिये बहुत थोड़ा सादा भोजन खाने की जरूरत है, बहुत थोड़ा वस्त्र पहिनने की ज़रूरत है, और एक फूंस का छप्पर रक्षा के लिये पर्य्याप्त है। परन्तु उस पर भी सदैव हाय हाय का कौर मुख में रखे रहता है। अजीर्ण रोग से ग्रसित रहता है।

+ + +

बहुत से प्राणियों के सिर पर देश सेवा का भूत सवार रहता है। परन्तु मूर्खता के पुतले देश सेवा के अर्थ से भी अनभिज्ञ हैं—यह किञ्चित भी नहीं विचारते। एम. एल. ए. बनने की धुन में हजारों रुपये बिगाड़ देंगे पर अपने भूखे पड़ौसी के मुख में चारदाने गेहूं के डालने में मन्तक़ का आश्रय टटोलेंगे। वास्तव में ऐसे देश-भक्त, मेम्बर ल्यूनेटिक ऐसाइलम बनाये जाने के योग्य हैं।

+ + +

देश भर में क्या संसार भर में ही पागलखाने पागलों से भरे पड़े हैं, कैदखाने कैदियों से भरे पड़े हैं। पर दुनिया भर के पुस्तकालयों में देख डालिये, संसार भर की गपशप का इत्र निकाल सूंघिये। आपको कोई भी

चिह्न इस बात का द्योतक नहीं मिलेगा कि 'इतने क़ैदखाने और पागल खाने बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी ?' यदि आप ऐसा प्रश्न करें तो उत्तर मिलेगा "यह व्यक्ति समाज के लिये हानिकारक सिद्ध हुये थे, इस कारण इनकी यह गति की गई। सरकार कोई मूर्ख थोड़े ही है जो इतना रुपया व्यय करती है।" इस पर आप पुनः प्रश्न कीजिये "यह व्यक्ति समाज के लिये हानिकारक किस कारण से सिद्ध किये गये ? मूल कारण ढूंढ़ कर बताइये।" इसके उत्तर देने के लिये सेलैक्ट कमैटियां बिठलाई जायंगी और फिर भी संतोषजनक उत्तर मिलने की सम्भावना नहीं हो सकती। बात यह है कि सत्य के ऊपर पर्दा डाल दिया जाता है और डालने का भरसक प्रयत्न किया जाता है। जो असल बात है वह यह है कि धनी लोग रोटी के मोहताजों से अत्याधिक काम कराते हैं, इन विचारों का मस्तिष्क कमज़ोर पड़ जाता है और पागल बनाकर पागलखाने भेज दिये जाते हैं। जिन मनुष्यों को सूखी रोटी खाने को नहीं मिलती, चिथड़े तक पहनने को नहीं मिलते, वह अपनी परमावश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम' के अनुसार चोरी भी करेंगे, डकैती भी करेंगे, कत्ल भी करेंगे। बस ऐसे ही लोग क़ैदखानों को अपना श्वसुर मन्दिर बनाते हैं। कारण अनेक हैं पर मूल कारण यही है।

+ + +

हृदयों में सहृदयता का अभाव ही दुःखों का मूल कारण है। एक हलुआ पूरी खाता है, और एक रोटियों का मोहताज है। हलुआ पूरी खाने वाले से यह नहीं बनता कि आप भी रोटी खाये और दूसरे के भी मुँह में अन्न डाले। एक बेशकीमती रजाइयों और कम्बलों द्वारा ठंढ से अपनी रक्षा करता है और एक रातभर ठंढ से सिकुड़ा करता है। मनुष्यता यह चाहती है कि अपनी भी रक्षा की जाय और दूसरे की भी। संसार में कितने ऐसे वीर होंगे जो अपने पेट में अन्न डालने से पहिले यह पूछते हों "क्या मेरे पड़ोसी ने रोटी खाली ?" जो अपने तन पर कपड़ा डालने से पहले यह पूछते हों "क्या मेरे पड़ोसी के पास वस्त्र हैं?"

जब संसार में ऐसे प्रश्नकर्ता हो जायंगे जो अपने पड़ोसियों को सुखी देखकर सुखानुभव करें, पृथ्वी माता का मुख उज्वल हो जायगा, सुख और शान्ति का साम्राज्य हो जायगा, आशा का बदन संतोष विधायक होगा और जीव मात्र वीरत्व की चोटी पर आरूढ़ हो प्रेम का सौम्य-गीतवाद्य सुन अपने जीवन को धन्य समझेंगे।

प्रेम सत्य है, अमित नित्य है,
जीवन है, नूतन स्फूर्ति है।
रम्य प्रकृति का अथक नृत्य है,
सुन्दरता की सौम्य मूर्ति है॥
आत्मा की यह अमिट भूख है,
मानव जीवन का सु-धर्म है।
स्वयं बीज है, स्वयं रूख है,
विश्व प्रगति का सतत कर्म है॥

——::❀::——

वीर गर्जन

[लेखक—श्रीयुत कु० लोकपाल सिंह जी]

परताप के परताप को निज मन में सुमिर लो।
फिर हाथ में निर्भीक हो तलवार-औ-तवर लो॥
गा कर शिवा की कीर्ति औ उत्साह में भर कर।
फिर आगे बढ़ो शीष को निज हाथ पै धर कर॥

❀ २ ❀

अपने अमूल्य स्वत्व पर प्राणों को गमा दो।
मरते हुए भी शत्रु पर निज धाक जमा दो॥
होगी नहीं अलभ्य फिर देवी स्वतंत्रते।
भारत स्वदेश में फिरो निर्भीक विचरते॥

——::❀::——

शायरी का शरबत

हाली की तबियत बहाली

[लेखक—श्रीयुत कवितानन्द जी]

हमारे पाठक हिन्दी कवियों की सूक्ति-सुधा का तो आस्वादन करते ही रहते हैं। आज उन्हें उर्दू शायरी का शरबत भी पिलाया जाता है। हिन्दी की तरह उर्दू में भी बड़े बड़े शायर हो गुजरे हैं–ऐसे कि जिन की याद में आज भी दुनिया रोती है और हमेशा सिर पटकती रहेगी। महाकवि हाली उर्दू के मशहूर शायर हुए हैं। वे निराशा और नाउम्मेदी के जरर-रसाँ जर्रों से हरवक्त अलहदा रहते थे। उनके बेदार दिमाग़ में हमेशा उम्मेद का आफ़ताब अपनी ईन्तहा शान-ओ-शौकत के साथ रोशन रहता था। उन्होंने क़ौमी गिरावट की चलती-फिरती तथा बोलती-चालती तसवीर खींच कर नौजवानों को उठाने और उभाड़ने की पूरी कोशिश की थी। बुराई में भलाई और तनज्जुल में तरक्क़ी के कीटाणु कुरेदने का फ़न हाली साहब से खूब आता था। वे विनाश को उत्पत्ति और पतन को उत्थान समझते थे। आप एक जगह बड़ी ही आशा-वादिता के साथ फ़रमाते हैं–असफलता के भयंकर समुद्र की छाती को चीर कर सफलता सुन्दरी का मुंह चूमने के लिये हाली साहब की ललित लेखनी या करामाती कलम क्या कहती है:—

"पिघलते हैं, सांचे में ढलने की ख़ातिर।
लगाते हैं गोता उछलने की ख़ातिर॥
ठहरते हैं दम लेके चलने की ख़ातिर।
वह खाते हैं, ठोकर सम्हलने की ख़ातिर॥
बस ऐ! ना उमेदी न यूं दिल बुझा तू।
झलक ऐ उमेद अपनी आख़िर दिखा तू॥
खुदा नाउमेदों को ढाढस बँधा तू।
फिसुर्दा दिलों के दिल आख़िर बढ़ा तू॥

तेरे दम से मुर्दों में जानें पड़ी हैं।
जली खेतियां तूने सरसब्ज की हैं ॥"

आगे चल कर महाकवि हाली कर्मवीरता, निष्काम भाव और स्वावलम्बन का वर्णन कैसी खूबसूरती के साथ करते हैं। पढ़ते पढ़ते और सुनते सुनते पस्तहिम्मतों का मुर्दा दिल भी एक दफ़ा ख़म ठोक कर कबड्डी खेलने को मैदान में जा डटता है—मनहूस तबियतें भी अपनी आहोज़ारी को फ़रामोश कर तरक्की का तराना या स्वदेशभक्ति का राग अलापने को मजबूर होती हैं। ज़रा नीचे लिखी पंक्तियों को पढ़िये और बूढ़े हाली को तबियत बहाली के लिए दाद दीजिए—कर्मवीर कैसे होते हैं? उनका फ़र्ज क्या है और उसकी अदायगी की शरायत किस तरह अंजाम पा सकेंगी।

"न राहत तलब हैं न मोहलत तलब वह।
लगे रहते हैं काम में रोज़ो शब वह॥
नहीं लेते दम एकदम बेसबब वह।
बहुत जाग लेते हैं, सोते हैं तब वह॥
वह थकते हैं और चैन पाती है दुनिया।
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया॥
खपाते हैं कोशिश में ताबो तवां को।
घुलाते हैं महनत में जिस्मे रवां को॥
समझते नहीं इसमें जो अपनी जां को।
वह मर मर के रखते हैं ज़िन्दा जहाँ को॥
बस इस तरह जीना इबादत है उनकी।
और इस धुन में मरना शहादत है उनकी।
बशर को है लाज़िम कि हिम्मत न हारे।
जहाँ तक हो काम आप अपने सँवारे॥
खुदा के सिवा छोड़ दे सब सहारे।
कि हैं आरज़ी ज़ोर कमज़ोर सारे॥

कठिन कर्त्तव्यपरायणता, अटल ईश्वरभक्ति, और सुदृढ़ स्वावलम्बन की हाली साहब ने हद कर दी ! क्या ऊपर की शायरी का एक एक लफ़्ज लोगों को उत्साहित करने के लिये पर्याप्त नहीं है, क्या उससे क़ौम की हौसलाअफ़जाई नहीं हो सकती ? 'वह मर मर के रखते हैं 'जिन्दा जहां को' कैसी अच्छी बात है, आत्मत्याग और निःस्वार्थता का कितना सुन्दर प्रोत्साहन है। जरा हाली साहब की उपर्युक्त उत्साह वर्धक और जीवन-संचारिणी पंक्तियों को पढ़िये और आज कल के "लीडरम्मन्यों" का मुलाहिज़ा फ़रमाइये जिनका कार्य-क्षेत्र मोटर का मार्ग समाप्त होते ही समाप्त हो जाता है, जिन्हें गुदगुदे गद्दे और पुलपुले तकियों के बिना चलना मुहाल है, जो क़ीमती फलों की टाकरी पहले साथ रख कर तब आगे क़दम बढ़ाते हैं, जिनकी कर्मण्यता लेक्चर झाड़ने और पार्टी-बन्दी में दहाड़ने तक ही महदूद है। भला इन अगुआ वीरों को बूढ़े कवि हाली की पंक्तियां कैसे अच्छी लग सकती हैं। "कमाते हैं वे और खाती है दुनिया" "घुलाते हैं महनत में जिस्मे रवां को" ये दोनों वाक्य आज कल के कुछ लीडर नाम धारियों को उसी प्रकार विचित्र और बेढंगे मालूम पड़ेंगे जिस प्रकार ख़ास अरबस्थान के निवासी को वेदमन्त्र या घोर मांसाहारी को फलाहार का उपदेश।

एक स्थान पर जनाब हाली साहब ने उपदेशकों की अधोगति पर आंसू बहाये हैं। वे उनकी मानसिक, वाचनिक और कार्मिक विभिन्नता देख कर दंग हो गए हैं और उनके मुंह से बेसाख़्ता निकल पड़ा है कि:—

"कम से कम वाज़ में इतना तो असर हो वाइज़ !
बोल क़व्वाल के जो दिल पै असर करते हैं।
ऐब यह है कि करो ऐब, हुनर दिखलाओ—
वर्ना यों ऐब तो सब फ़र्दे बशर करते हैं।।"

हज़रत वाइज़ ! (उपदेशकजी) तुम लेक्चर की लकुटी लेकर लोगों को क्यों लताड़ रहे हो ? अरे भाई, तुम बार बार उछलते, कूदते और

घूमते, झूमते हो पर श्रोताओं पर इतना भी असर नहीं डाल सकते जितना तल्लीन हो कर क़व्वाली गाने वाला अपने सुनने वालों को प्रभावित कर देता है। ऐसा भी क्या व्याख्यान, इतनी भी क्या नीरसता!! ठीक! ठीक!! अब हम समझ गये! तुम अपने ऐबों के जख्म पर हुनर का फाया—नहीं नहीं—पोलिसी की पुल्टिस बांध रहे हो। श्रोताओं की आंखों में धूर्त्तता की धूल झोंक कर अपनी तुच्छता और सदोषता को अहमियत के सांचे में ढालना चाहते हो। जभी लोग तुम्हारी नहीं सुनते और तुमसे नफ़रत करते हैं। हाली साहब! आपने तो सचमुच आज कल के निष्ठाहीन उपदेशकाभासों का चित्र खींच दिया, उनकी धूर्ततापूर्ण धांधलबाजी की मींग निकाल कर लोगों के आगे रखदी। धन्य है आपको और आपकी अद्भुत प्रतिभा शक्ति को।

"तोबा हज़रत की युंही इक दूध का सा है उबाल।
हम दिखादेंगे जरा दम भर तवक्कुफ़ कीजिये॥"

हाली साहब फ़रमाते हैं कि अजी हज़रत! इस तरह प्रतिज्ञा करने वाले बहुत देख लिये। आप जो बराबर आवेश के उबाल में आकर परहेज़गारी का फ़हसन दिखा रहे हैं यह भी देखा जायगा। कितना ही विश्वास दिलाइये, कैसी ही क़सम खाइये, मगर हम तो असलियत जानते हैं कि जनाब में किस क़दर जुरअत, हिम्मत, जोश और ताक़त है। जिस वक्त जोश-ख़रोश ख़त्म हुआ उसी वक्त आपकी यह सब खूँख़ारी और वचनबद्धता परकटे गिद्ध की तरह एक ओर पड़ी पड़ी तड़पती रहेगी।। अच्छी बात है, जरा ठहरिये हम दिखादेंगे कि आप में कितनी परहेज़गारी है—तोबा करने की कैसी हिम्मत है? हां, आप तो परोपकारिता के पुतले भी बनते हैं—मगर मुश्फ़क़! आजकल का परोपकार क्या है अच्छा खासा सौदा समझना चाहिए। यह हाथ उदारता का ढोंग रचने के लिये आगे बढ़ता है तो वह बाज़ू प्रतिफल पाने की ललित लालसा से लड़खड़ाइयां लेनी शुरू कर देता है। हम जो कुछ करते हैं "कृष्णार्पण-

मस्तु" कह कर नहीं करते बल्कि इसलिए करते हैं कि उसका बदला मिले, किसी को घूंट भर पानी पिला कर उससे चार बाल्टी खिंचवाई जायँ। परमात्मा की प्रार्थना अपना धर्म समझ कर नहीं की जाती किन्तु लाभ उठाने और स्वार्थ साधने के तुच्छ विचार से हमारा यह कार्य सम्पन्न होता है। संसार की ऐसी दुर्दशा देख कर हाली साहब ने क्या ही अच्छा फ़रमाया है—

"है नफ़्स में इन्सा के जिबिल्ली यह मर्ज़।
हर सई पै होता है तलबगार एवज़॥
जो ख़ास ख़ुदा के नाम से थे काम किये।
देखा तो निहां उनमें भी थी कोई ग़रज़॥"

यही नहीं, हाली साहब पक्के एकतावादी थे। वे मुल्क के उठाने और क़ौमी तरक्क़ी के लिये हिन्दू-मुसलमानों के बीच विरोध की बारूद बखेर कर लड़ना—लड़ाना पसन्द न करते थे। वे मुल्क-ओ-मिल्लत की ख़ैर के लिये, आपस की तू तू मैं मैं का तम्बूरा तोड़ कर विश्वबन्धुत्व की मधुर मुरली पर प्रेम-प्रीति की रागनी अलापते थे। कान खोल कर सुनिये, दिल साफ़ करके ग़ौर फ़रमाइये—

"तुम अगर चाहते हो मुल्क की ख़ैर।
किसी हमवतन को न समझो ग़ैर॥
हो मुसलमान, इसमें या हिन्दू।
बौद्ध मज़हब हो या कि ब्रह्मू॥
सब को मीठी निगाह से देखो।
समझो आखों की पुतलियां सबको॥"

जो लोग मज़हब के नाम से 'चोटी-दाढ़ी' संग्राम में संलग्न रह कर समाज की शान्ति को भंग करने पर उतारू रहते हैं उन्हें उपर्युक्त पंक्तियां ध्यानपूर्वक पढ़नी चाहिएं। क्या मज़हब किसी को लड़ना-भिड़ना सिखाता है? क्या उसके द्वारा किसी के उचित अधिकार छीने जा सकते

हैं। भाई! कैसी लड़ाई भिड़ाई और कहां का जंगो-जदल हाली साहब तो फरमाते हैं कि देश और जाति के नाम पर आपस के भेद-भाव भूल जाओ, "सबको आखों की पुतलियां समझो" और आपस में "मीठी बोली बोलो।" कितना अच्छा उपदेश है, कैसी सुन्दर शिक्षा है। अगर मतान्ध लड़ाकू लोग महाकवि की बातें मान कर तदनुसार अनुष्ठान करें तो देशोत्थान में कोई सन्देह नहीं रह सकता। कहां तक लिखें, ऐसा कौनसा विषय है जिसकी हाली साहब ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि द्वारा मार्मिक आलोचना नहीं की। कवि वास्तव में क्रान्तिदर्शी होते हैं, वे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालों की बातें अपनी स्वभावसिद्ध प्रतिभा देवी की कृपा से अनायास ही कह डालते हैं। महाकवि हाली ऐसे ही कवियों में से थे। खेद है कि स्थानाभाव से इस अंक में और अधिक नहीं लिख सकते, यही दो-तीन बातें सुनाकर विश्राम लेते हैं।

———::❀::———

प्रोत्साहन

[लेखक—श्रीयुत पाठक श्रीगोविन्द जी "छात्र"]

वीर गण उठो! समय आगया, दिखादो बढ़ कर अपना जोश!
कहो कब तक यों लम्बी तान, रहोगे सोते ही बेहोश ॥१॥
बढ़ो फिर बलि बेदी की ओर, नहीं है अब विलम्ब का काम!
विपुल साहस को भर निज हृदय, कमालो अक्षय-कीर्ति ललाम ॥२॥
चढ़ादो अपना जीवन पुष्प, बहादो फिर स्व-रक्त की धार!
दिखा दो प्राणों से प्रिय हमें, सर्वथा है अपना अधिकार ॥३॥
प्रचण्डी रण चण्डी हो तृप्त, करें, अन्यायी हा-हा कार!
वीरता फिर भारत की देख उठे, विस्मित हो सब संसार ॥४॥

———:❀:———

विविध-विषय

१—सम्पादकों को चेतावनी—

१७ नवम्बर को 'प्रताप' पर मानहानि वाले मुक़दमे का फ़ैसला सुना दिया गया। शिवदयालसिंह दारागा की शिकायतें छापने के उपलक्ष में न्यायाधीश ने प्रताप सम्पादक श्री गणेश शंकरजी विद्यार्थी और मुद्रक श्री सुरेन्द्र जी शर्मा को दोषी ठहरा दिया और उन्हें ६–६ मास की सजा या चार चार सौ रुपया जुर्माने का दंड दिया गया। वीरवर विद्यार्थी जी तथा श्री सुरेन्द्र जी ने इसे अत्याचार बताते हुए जुर्माना न देकर जेल जाना स्वीकार किया। किन्तु उनके आगरा निवासी मित्रों ने बिना उनकी आज्ञा और इच्छा के जुर्माने के रुपए जमा करा दिए और वे ज़बर्दस्ती जेल से बाहर निकाल दिए गए।

यह घटना देखने में बहुत छोटी है, पर है बड़ी महत्वपूर्ण। यही कारण है कि हिन्दी सम्पादकगण इस फैसले पर बड़े ध्यान से दृष्टि लगाए हुए थे। श्रद्धेय विद्यार्थी जी ने प्रताप में दारोगा के अत्याचारों की जो शिकायत छापी थी, उसको सत्य प्रमाणित करने के लिए उन्होंने अनेक गवाह पेश किए जिनके इज़हारों से रिशवतख़ोरी और अत्याचारों की पुष्टि होती है। फिर भी न्यायाधीश ने सम्पादक की सदभिलाषा पर विश्वास न किया और उनको अपराधी बता कर दंड दिया। प्रताप के इस मुक़दमे ने यह बात स्पष्ट प्रकट कर दी है कि सरकार अपने लाड़ले कर्मचारियों की सच्ची शिक़ायतें सुनने को भी तैयार नहीं है और उसने अप्रत्यक्ष रूप से यह घोषणा भी कर दी है कि सम्पादक लोग ऐसे समाचार सोच समझ कर छापें। या तो वे श्रद्धेय गणेश जी जैसी सिंह वृत्ति और

वीरभाव धारण कर ऐसी पोल खोलते समय सज़ा से न डरें अन्यथा इस काली कोठरी में हाथ ही न डालें। विद्यार्थी जी ऐसी ही वीरता दिखला कर तीन बार पहले जेल भुगत चुके हैं, यह आपकी चौथी यात्रा थी। हम समझते हैं भारतीय सम्पादकों में ऐसे विरले ही होंगे जो इस विषय में विद्यार्थी जी के समकक्ष हों और जिन्होंने विद्यार्थी जी की ऐसी अवस्था में इस प्रकार अन्याय और अत्याचार का मुक़ाबिला किया हो। निस्संदेह विद्यार्थी जी की यह कर्त्तव्य-परायणता सभी सम्पादकों को अनुकरणीय और सभ्य समाज द्वारा अभिवंदनीय है। हम इसके लिए विद्यार्थी जी को सादर बधाई देते हैं।

२—१९२५ का नोबल पुरस्कार—

विलायत में प्रति वर्ष लगभग एक लाख बीस हज़ार का वृहत् पारितोषिक साहित्य विज्ञानादि विषयों के विशेषज्ञों को दिया जाता है। १०-१२ वर्ष पहले यही पुरस्कार विश्व के सम्मान्य कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर को दिया गया था। उससे यह प्रकट हुआ था कि इस पारितोषिक देने में जाति, देश या धर्म का विचार नहीं किया जाता, वरन् योग्यता का ही आदर किया जाता है। इस वर्ष यह पुरस्कार प्रसिद्ध आयरिश विद्वान् सर जार्ज बर्नर्ड शा को दिया गया है। आप प्रसिद्ध नाट्यकार हैं। आपकी निस्पृहता इतनी बढ़ी हुई है कि पुरस्कार का सम्मान और उपाधि स्वीकार करते हुए भी आपने एक लाख बीस हज़ार रुपए की अच्छी खासी सम्पति स्वयं न लेकर साहित्य और कला के प्रचार में व्यय करने की सम्मत्ति दी थी। पाठक आश्चर्य करेंगे कि इनकी आयु ७० वर्ष की है और आज तक न तो आपने सिगरेट पी और न शराब। यहां तक कि आप मांस का भी सेवन नहीं करते। चाय तथा काफी भी आपने छोड़ रक्खी है। इस वृद्धावस्था में भी आप खूब ही हट्टे कट्टे, सुन्दर और फुर्तीले बने हुए हैं। आप जैसे सदाचारी, निस्पृह और संसार-प्रसिद्ध साहित्य सेवी भारत में भी अधिकाधिक पैदा हों, यही हमारी भावना है।

३—अधिकारों की हत्या—

समाचार-पत्रों से विदित हुआ है कि बंगाल सरकार एक कानून बनाना चाहती है जिसके कारण बंगाल में कहीं भी किसी समय भी मस्जिद के सामने बाजा न बज सकेगा। यदि यह बात ठीक है तो हम कहेंगे कि बंगाल सरकार नागरिकों के सामान्य अधिकारों को भी छीनना चाहती है। उसका यह कृत्य कहां तक उचित है यह इसी से विदित हो जावेगा कि कितने ही उच्च और प्रतिष्ठित मुसल्मानों ने स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया है कि मस्जिदों के सामने बाजा बजाने की मुमानियत न तो कुरान-शरीफ में ही कहीं है और न कोई और ही ऐसा कानून है। अब तक कहीं ऐसा हुआ भी नहीं। आज भी मुसल्मानी राज्य टर्की, अरब, फारस और अफगानिस्तान में मस्जिद के आगे बाजे नहीं बन्द किए जाते। फिर बंगाल सरकार का ऐसा अन्यायमूलक कानून बनाना देश के लिए बहुत ही घातक होगा—यह निश्चित है। हम जानते हैं कि बंगाली ऐसे कायर नहीं हुए हैं कि वे ऐसे अपमान-जनक, अन्यायपूर्ण और अनावश्यक कानून को चुपचाप मान लें।

४—साहित्याकाश का एक नक्षत्र टूटा—

हिन्दी प्रेमी पाठक पं० नन्दकुमार देव शर्मा के नाम से भलीभांति परिचित होंगे। आप एक लब्ध प्रतिष्ठ लेखक और अनुभवी सम्पादक थे। आपकी लिखी हुई पुस्तकें ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत मूल्यवान हैं। शिवाजी की जीवनी पर जितनी बड़ी पुस्तक आपने लिखी है, उतनी बड़ी पुस्तक किसी भी भारतीय भाषा में दूसरी नहीं है। आप कई पत्रों के संपादक रह चुके थे। 'आर्यमित्र' का सम्पादन करते समय कुछ दिन आप आगरे में भी रहे थे। स्थानीय नागरी-प्रचारिणी सभा के स्थापन समय अन्य सज्जनों के साथ आपने भी बहुत काम किया था। आपके निधन समाचार से हमें बड़ा दुःख हुआ। हम शर्मा जी की आत्मा के लिए शांति लाभ की प्रार्थना करते हुए आपके कुटुम्बियों से समवेदना प्रकट करते हैं।

VEER SANDESH Regd. No. A 1630

मोती पिल्स

मोती पिल्स



मोती पिल्स

इन गोलियों के सेवन से बीसों प्रकार के प्रमेह, स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन, धातुक्षीणता, शरीर की कमजोरी, पेशाब में जलन, पेशाब में वीर्य का पतन होना, आलस्य, सिर में हर समय दर्द का रहना, आंखों के नीचे अन्धेरा सा छाना, नसों की कमजोरी, बचपन में किए हुए कुकर्मों से उत्पन्न हुई नपुंसकता, भूख का न लगना, खाना हजम न होना, दस्त साफ न होना आदि रोग दूर होते हैं। तबियत मस्त होती है और वीर्य सम्बन्धी सर्व प्रकार के रोगों को दूर कर शरीर की फुर्ती को बढ़ाती है, वीर्य को पुष्ट करती है, नए रक्त का प्रचार करती है, ताक़त को बढ़ाती है। इसमें किसी तरह की हानिकारक वस्तु का मेल नहीं है। सिर्फ काष्ठ औषधियों से तैय्यार की गई है। जो लोग बीसों तरह की दवाई खाकर निराश हो गए हों, उनको एक बार इसे लेकर परीक्षा कर लेनी चाहिए। मूल्य २० दिन की खुराक ४० गोलियों का १॥) पोस्टेज अलग।

हर एक दवा बेचने वालों के यहां मिलती है।

पता—मोती फार्मेसी, चौक—आगरा

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग १ | पौष शु० २ सं० १९८३ ता० ५ जनवरी १९२७ | अङ्क ३

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   एक अङ्क का ।)

विषय सूची।

आवश्यक निवेदन

१

वीर-सन्देश का तीसरा अङ्क भी समय पर निकल रहा है। इस अङ्क में इच्छा रहते हुए भी स्थानाभाव से हम 'जिज्ञासा और समाधान' शीर्षक न दे सके—इसका हमें खेद है। अगले अङ्क में हम कई नवीन जिज्ञासाएं और पिछले प्रश्नों का उत्तर देंगे।

२

वीर-सन्देश के विषय में लोग क्या कहते हैं—यह हम आगामी अङ्क से प्रकट करेंगे। अनेक माननीय सज्जनों ने अपनी शुभ सम्मतियां भेज दी हैं। आशा है कि अन्य महानुभाव भी शीघ्र ही भेजने की कृपा करेंगे।

—मैनेजर

वीर-सन्देश



धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द

अपनी कुर्बानी की दुश्मन का किया सर नीचा।
क़ौम का ध्यान गोया सत्य की जानिब खींचा॥
मरहवा! शुद्धि का पौदा जो लगाया तूने।
मरते दम तक भी उसे ख़ूने जिगर से सींचा॥

(अख़्तर)

महावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(वीर रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश" ॥

भाग १ { आगरा—पौष शुक्ला २ सं० १९८३—वीर सं० २४५३ } अङ्क ३

लाज हिन्दुआने की।

[लेखक—श्री० अमृतलाल जी चतुर्वेदी]

जान कुरबान गुरु गोविन्द ईमान धारी,
ज्ञात है हक़ीक़त हक़ीक़त घराने की।
अमृत चौहान ने सुजीत जुद्ध सत्रै बेर,
गरद उड़ाई गोरी मरद जनाने की ॥
कब्बर लिटाई काट कटक अकब्बर की,
कीरत अमर है प्रताप मरदाने की।
जंग के औरंग संग भंग सब रंग किये,
शेर शिवराज रखी लाज हिन्दुआने की ॥

बलिदान की वेदी पर।

[लेखक—श्रीयुत देवीप्रसाद जी सक्सेना, साहित्यालङ्कार]

गुलामी के कीटाणुओं ने जिनके मस्तिष्क को विकृत और विवेक शक्ति को अत्यन्त क्षीण कर दिया है, वे बेचारे क्या जाने कि गुलामी और आजादी में क्या फ़र्क़ है ? एक गुलाम और एक आज़ाद मनुष्य में, उनके रहन सहन और विचार-व्यवहार में कैसा और कितना अन्तर होता है, इसे वे जान ही नहीं सकते। जिन्होंने कभी युद्ध भूमि के दर्शन नहीं किए, युद्ध का भैरव नाद नहीं सुना, बन्दूक की आवाज़ सुनकर जो कानों में उंगली दे लेते हैं, उन्हें युद्ध के कारनामों से सरोकार ही क्या ? तलवारों की झनझनाहट, तोपों की गड़गड़ाहट और रणचण्डी का अट्टहास तो उनके लिए दिलचस्पी की चीजें हैं, मरण शय्या पर भी कड़खे की ध्वनि को सुनकर जिनकी अशक्त भुजाएं फड़कने लगती हैं, मुर्दा शरीर में ख़ून जोश मारने लगता है और जो मरणोन्मुख होते हुए भी दो-दो हाथ दिखाने को व्याकुल हो उठते हैं। किन्तु जिन्होंने एक बार भी गुलामी के असली स्वरूप को देख लिया है और तज्जनित अनेक आपत्तियों, कष्टों और दारुण दुखों का अनुभव कर चुके हैं, वे तो एक क्षण के लिए भी उसके जीवन की अवधि बढ़ने देने को सहमत नहीं होते।

❀ ❀ ❀

स्वाधीनता एक ऐसा स्वर्गीय पदार्थ है, जिसकी समता किसी से नहीं की जा सकती। जो इसके शैदा हैं उन्हें फिर किसी दूसरी चीज़ की दरकार नहीं रहती ! इसके चाहने वाले, इस पर मर मिटने वाले हर समय में और हर देश में रहे हैं। इसका नशा मनुष्य को ऐसा मस्त बना देता है कि उसे दीन-दुनिया की कुछ ख़बर ही नहीं रहती। यह एक दैवी विभूति, स्वर्गीय स्फूर्ति और ईश्वरीय ज्योति है। जो मनुष्य इसकी आराधना करता है, देवताओं से भी अधिक उसकी पूजा होती है, जो

देश इसके स्वागत को अपना आञ्चल फैलाता है, वह गुलामी के राज-रोग से तुरन्त ही मुक्त हो जाता है। जो इसके महत्व को नहीं जानता और इसके स्वागत को आगे नहीं बढ़ता, उसका अन्त में नाम निशान तक संसार से मिट जाता है। वीरवर वाशिङ्गटन के सेनापतित्व में अमेरिका के अनेक सपूतों ने इसी की प्राप्ति के लिए बलिदान की वेदी पर अपने जीवन की भेंट चढ़ाई थी। मैजिनी और गेरीबाल्डी भी इसी अनुष्ठान में आहुती देने को [illegible] थे। आजादी ही का नशा था जिसमें मस्त होकर देवी जोन-आफ़ यार्क ने आग की भीषण लपटों को हंसते हंसते गले लगा लिया था। अपने प्यारे देश आयरलैण्ड को स्वाधीन बनाने के लिए ही महात्मा टैरेन्स मैकस्विनी ने ७४ दिन तक निराहार रहते हुए जेल की भयानक यातनाओं को सहकर अन्त में अपने जीवन की बलि देदी। रूस के अनेक स्त्री पुरुष और बच्चों ने इसी अलभ्य रत्न के लिए साइबेरिया की भयानक सर्दी में अपने शरीर को गला कर बलिदान की वेदी पर चढ़ा दिया था। महाराणा प्रताप किस लिए राज्य के सुखों को छोड़ कर आजीवन जंगलों २ भटकते हुए अनेक कष्ट भोगते रहे—अपने देश की स्वाधीनता के लिए ही ! महाराणा शिवाजी किस लिये मुग़लों की दुर्दमनीय शक्ति से लोहा लेने को प्रवृत्त हुए थे—भारत की गुलामी के बन्धन काटने के लिए ही।

आप भी यदि स्वाधीनता चाहते हैं, तो, इसी पथ के पथिक बनिए और आपत्तियों का आलिङ्गन करते हुए बलिदान की वेदी की ओर बढ़िए ! स्वातन्त्र्य प्रेम की मदिरा पीकर इतने मस्त बन जाइए कि संसार आपके रौद्र रूप को देखकर कांप उठे और कविवर 'भद्र' जी के शब्दों में:—

"प्यासी असी न रहे रिपु-रक्त सों, केहरि से रण में हम टूटें,
मत्त बनें हम फेर प्रभो ! निज देश-सनेह की पीकर घूंटें।"

हम अनाचार और अत्याचार, अन्याय और अधर्म पर एक दम आक्रमण करके उनके अस्तित्व का भी नाश करदें। सब से पहले अपनी मानसिक दासता पर प्रहार कीजिए। आपके मस्तिष्क के स्वाधीन

होते ही आपमें अपने देश को स्वाधीन बनाने की इच्छा का उदय होगा और बलिदान के भावों की वृद्धि होगी। अपने मस्तिष्क को वीरोचित विचारों से सम्पन्न कीजिए।

ऐसा होते ही आपके हृदय में एक नवस्फूर्ति का अनुभव होगा, नवीन साहस और नव शक्ति की उत्पत्ति होगी तथा जननी जन्म भूमि के लिए मर मिटने को आप उन्मत्त हो उठेंगे। स्वाधीनता का मार्ग अत्यन्त कष्टों और बलिदान का मार्ग है। जो जितना बलिदान चढ़ाता है उसे उतने शीघ्र ही उसकी प्राप्ति होती है। देश के नवयुवको! उठो और आगे बढ़ो। तुम्हें अपने अतीत पर अभिमान है, तुम अपने पूर्वजों की गरिमा का बखान बड़ेही गर्व से करते हो, तुम अपनी सभ्यता और संस्कृति को संसार की सर्व श्रेष्ठ और प्राचीनतम सभ्यता समझते हो, किन्तु तुम्हारी इन बातों को सुनता कौन है? कौन है जो गुलामों की बातों की क़द्र करे? गुलामों की सभ्यता और संस्कृति ही क्या? टूटी हुई वीणा के तारों की ध्वनि मनोहर होने की अपेक्षा कर्कश ही अधिक होती है। उसे लोग फेंक देते हैं। सुनाने से पहले वीणा के तारों को ठीक करलो फिर उसके स्वर पर आलाप करो और देखो विश्व विमोहित होता है या नहीं। जो वीणा की निन्दा करते हैं, वही उसकी प्रशंसा के पुल बांध देंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी सभ्यता और संस्कृति से ही विश्व का मंगल होगा, संसार यदि शान्ति व कल्याण चाहता है, सभ्यता, स्वाधीनता और विश्व बन्धुत्व की स्कीम की सफलता चाहता है तो उसे तुम्हारे ही रास्ते पर आना पड़ेगा किन्तु तुम भी तो पहले सन्देश देने के योग्य हो जाओ, ठीक रास्ता तो वही बतायगा जो उस पर चला हो या जिसे उसका हाल मालूम हो। जो स्वयं दूसरों के इशारों पर चल रहे हैं, वे बेचारे दूसरों को क्या रास्ता बतलायेंगे? इसलिए उठो और कर्म क्षेत्र में कूद पड़ो। देखो! विश्व तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। मंगल मयी ऊषा पूर्व दिशा में क्षितिज पर तुम्हें आशीर्वाद देने को खड़ी है। तुम्हें भय किसका है संसार की प्राचीनतम, सभ्यता के तुम वारिस

हो, मंगलमय भगवान के तुम अमृत पुत्र हो, उन आर्यों के तुम वीर वंशज हो जिनके पराक्रम से मेदिनी कम्पित हो उठती थी. संसार में जिनका सार्व भौमत्व था और आकाश तथा समुद्र के वक्ष स्थल पर जिनकी अबाध गति थी। फिर तुम खामोश क्यों बैठे हो ? उठो और आगे बढ़ो। जो आज सभ्य होने की डींगें मारते हैं, जो तुम्हें सभ्यता सिखाने का ढोंग रच रहे हैं, उन्हें ही तुमने किसी समय पशुओं से मनुष्य बनाया था। क्या आपको मालूम नहीं है कि जो लोग आज संसार को सभ्यता का पाठ पढ़ाने का दावा कर रहे हैं, उन्हें कपड़े पहनने की भी तमीज नहीं थी।

फिर यह झिझक और सोच विचार क्यों ? वह देखिए आधुनिक संसार के सर्व श्रेष्ठ महा पुरुष का वरद हस्त तुम्हारे सिर पर है, उसका आशीर्वाद तुम्हारे मार्ग को मंगलमय बना रहा है। एक बार फिर अपने उसी रौद्र रूप को संसार के सामने प्रकट करो, जिसे देख कर अलक्षेन्द्र को भगवती भागीरथी के इस पार आने की हिम्मत नहीं हुई थी, सिल्यूकस को अपना राज दण्ड चन्द्रगुप्त के चरणों में डाल देना पड़ा था। और अभी अभी १९२०-२१ में जिसके हाथों विश्व विजयी ब्रिटिशसिंह भी आत्म समर्पण करने को तय्यार हो गया था।

बलिदान करो।

[लेखक—श्रीयुत हरस्वरूप जी चतुर्वेदी 'हरेश']

उठो प्रिय भारत के रणवीर, बहुत सो चुके संभल जाओ।
करो फिर ऐसा कोई काम, कि जिससे मर कर जी जाओ॥
प्रलय सागर का भीषण वेग, उमड़ता आता भारत पर।
मिटा जाता है गौरव आज, बचा लो तन मन धन देकर॥
याद रख कर अपना कर्तव्य, ईश का मन में ध्यान धरो।
देश की वेदी पर अपना, हर्ष से तुम बलिदान करो॥

कर्मवीरता ।

[लेखक—श्रीयुत पं० ब्रजमोहन जी तिवारी एम. ए.]

भारत वासियों को शान्ति प्रिय है परन्तु उनकी शान्तिप्रियता श्मशान भूमि स्थित शान्ति के तुल्य है। वे उत्साह हीनता ही को शान्ति मान बैठे हैं। अकर्म्मण्यता ही को उत्साह की पराकाष्ठा समझ बैठे हैं। और इसका परिणाम यह हुआ है कि अत्यधिक शिथिलता उनमें घर कर चुकी है। अवगुणों के वे धाम बन गये हैं। नैराश्य से उन्होंने नाता जोड़ लिया है और इसका जो विनाश शील प्रभाव हो रहा है उससे अनभिज्ञता प्रगट करना आंखें होते हुये अन्धा बनना है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी शान्ति का मुंह कालाकर दिया जाय, इसका अस्तित्व मिटा दिया जाय और जिन्दा दिली को—जीवन शक्ति को—गौरवान्वित किया जाय। क्योंकि—

"जिन्दगी जिन्दा दिली का नाम है।
मुर्दा दिल खाक जिया करते हैं॥"

संसार के महान पुरुष सदैव आदर्श पद पर पहुंचने के निमित्त अपनी जीवन-शक्ति को काम में लाये। उन्होंने सत्य का अवलम्बन लिया और निर्भयता पूर्वक कठिनाइयों और रुकावटों को तुच्छ समझा। अर्वाचीन काल में कठिनाई इस बात की है कि पद पद पर बाह्य वेष भूषान्वित आदर्श—निःसार अप-टू-डेटिज्म से साक्षात करना पड़ता है, भेड़ों के झुन्ड में अनिच्छा होते हुए भी शरीक होना पड़ता है। समय ठहरा खाने, पीने और मौज करने का (Eat drink and be merry), शिक्षा ठहरी स्वार्थ वादिता की (The meaning of Education being the survival of the fittest i. e. Cannibalism,) धन प्राप्ति ठहरा जीवन का लक्ष्य, आये दिन की हाय हाय किल्ल किल्ल ठहरी खाये हुये भोजन को पचाने की स्पैसिफिक (Specific)—Indiges-

tion, dyspepsia, Anaemia, Tuberinlosis, Cholera, Plague, Influenza आदि रोगों को नष्ट करने के लिये अमृतधारा। और "दुनियां ठगिये मक्कर से रोटी खइये शक्कर से" जीविका उपार्जन का एक ही जरिया। भला ऐसे जालों से सत्यादर्श रूपी मत्स्य कहां बचती है ? इस का भी Cod Liver Oil नर्वस-डैबिलिटी का स्पैसिफ़िक बना लिया जाता है।

आजकल भारत वर्ष की ही नहीं समस्त संसार की दशा शोचनीय है। सुख तृष्णा की तृप्ति के लिये प्राणी अपनी सारी शक्तियों को जो उसका मस्तिष्क निर्माण कर सकता है, काम में ला रहा है और फिर भी मृग मरीचिका सदृश वह सुख प्राणी को दुखके रेगिस्तान में ले जा कर, दौड़ धूप कराकर, भूखा प्यासा रखकर, जीवन के झंझटों से हाथ धुला देता है। यह भी क्या ही पागल पन है ! ईश्वर प्रदत्त शक्तियों का कितना दुस्साहस पूर्ण दुरुपयोग है !

संसार का समस्त धनिक समुदाय इस बात को अच्छी प्रकार जानता है कि जहां एक धनिक होता है, तो सैकड़ों धनहीन अर्थात्, रोटी, कपड़े और गृह के मोहताज हो जाते हैं। फिर भला संसार में द्वेष, ईर्षा, क्रोध, लोभ, पागल खाने, क़ैदख़ाने, अस्पताल क्यों अपना अस्तित्व दृढ़ न करेंगे ? उनकी जड़ में दीमक क्यों लगने लगी ? संसार में सच्चा सुख सूर्य्य कैसे प्रकाशमान हो सकेगा ?

संसार में शान्ति—जिन्दा दिली, स्थापन करने के लिये सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी के सुख का ध्यान रक्खे। कभी इस बात का अवसर न दिया जाय कि ईर्षा, द्वेष की चिनगारी भी दृष्टि गोचर होवे। इसके लिये आत्म त्याग चाहिये। जो सुख तुम अपने लिये अनिवार्य्य समझते हो वह अपने पड़ोसी को भी दो।

आत्म त्याग सीखने के लिए प्रथम यह बात समझने की बड़ी आवश्यकता है कि मनुष्य का जीवन अनिश्चयात्मक है। उसको अपनी

मृत्यु की घड़ी नहीं मालूम । आये दिन हम यह देखते हैं कि बच्चा, लड़का, नौ जवान, अधेड़, वृद्ध, सब ही मृत्यु के एक सिरे से शिकार बने हुए हैं, चाहे जब मृत्यु जीवन लीला की इति कर सकती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि जीवन का प्रत्येक क्षण आनन्द पूर्वक बीते—परहित में बीते।

द्वितीय बात जो मनुष्य को मनुष्यता पद पर पहुँचाने वाली है और सुखी और निरोग जीवन के लिये अनिवार्य्य है, यह समझने की है कि स्वादेन्द्रिय के ऊपर हमारा पूर्ण रूपेण अधिकार हो। समस्त संसार में एक लक्ष में एक ही ऐसा प्राणी होगा जो जायके का गुलाम न हो, अन्यथा सब ही चटोरे हैं, और शारीरिक और मानसिक रोगों के बन्दी हैं। यह बात हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि "खाना हमारे लिए है न कि हम खाने के लिए"। कोई चीज़ हमको केवल इसीलिये खानी या पीनी न चाहिये कि वह फैशन में दाखिल है या हमारी रिवाज या रस्म हमें ऐसी आज्ञा देती है। सिगरेट, चाय, क़हवा, शराब, मांस, यह सब त्याज्य हैं, यद्यपि बड़े २ उपाधिधारी विद्वान (?) तक इनका सेवन करते कराते हैं। लड्डू, कचौरी, रायते, मुरब्बे, चटनियां तथा अन्य ऐसे ही पदार्थों से न तो कभी किसी को आरोग्यता प्राप्त हुई है, न हो ही सकती है।

प्रत्येक ऋतुयें—प्रकृति देवी—कन्द, मूल, फल, साग, अनाज जो पैदा कर देती है वही मनुष्य मात्र का भोजन है। यह सर्व पदार्थ अपनी प्राकृतिक अवस्था में ही सेवन करने से मनुष्य को निरोग तथा दीर्घ-जीवी करते हैं और आत्म विकास में सहायक होते हैं।

परहित करना और स्वादेन्द्रिय पर अधिकार रखना, यही दो विशेषण कर्मवीरता के परम कान्तिमय परिचायक हैं, इन्हीं के द्वारा श्मशानवत् शान्ति का विनाश सम्भव है। इन्हीं के द्वारा भारत वर्ष का प्राचीन गौरव पुनः स्थापित किया जा सकता है। भारत वर्ष अन्य

देशों के लिये आदर्श बनाया जा सकता है। विद्यार्थियों को इन्हीं दो बातों के पढ़ाने की कार्य रूपेण सिखलाने की, अत्यावश्यकता है।

प्यारे पाठक ! कर्मवीर बनो, मनुष्य बनो। तुम अपने पड़ौस में, मुहल्ले में, शहर में, मदरसे में, घर में मनुष्य देखते हो, परन्तु वे क्या वास्तव में मनुष्य हैं? नहीं, नहीं ! केवल सूरत मनुष्य की सी है, अन्यथा एक भी बात मनुष्योचित नहीं है। न उनके विचार मनुष्योचित हैं न कर्म ही। वे चलते फिरते दिखाई नहीं देते हैं बल्कि उनका बाह्याडम्बर फैशन। क्योंकि बाह्य वेष भूषा से ही उनके यहां मनुष्य ज्ञान की पद्धति है। जो जितना अधिक धनी है, फैशनेबिल है, नौकरों के ऊपर हुकूमत रखता है, बढ़िया मांस मदिरा खाता पीता है, विषय भोग के लिये एक से अधिक स्त्रियां रखता है, एक बड़े भारी अहाते में जिसका आनन्द मंदिर बना हुआ है उतना ही वह मनुष्यता में उच्च पदस्थ है और अन्य सब हां हुजूरी करने वाले टर्रखट्टू मेंडक हैं।

प्रिय पाठक ! तुम समझते होगे कि संसार भर के विश्व-विद्यालय कर्मवीर बनाने के लिये ही होते हैं ! नहीं प्यारे नहीं ! यदि ऐसा होता तो झोंकना ही काहे का था। इन विश्व विद्यालयों में पढ़ने वाले, शिक्षा देने वाले स्वयं ही अनाड़ी हैं, सद्ज्ञान शून्य हैं और मूर्खता की कीचड़ में फंसे हुये हैं। जीवन पथ भ्रष्ट हैं। मृत्यु मार्ग अनुरागी हैं।

❀ ❀ ❀

अपने में और अपने चारों ओर जो आलस्य क्रीड़ा देखते हो, वह परले सिरे की स्वार्थपरता है, खुदगर्ज़ी है। हम अपने आपको, अपने बीबी बच्चों को अजीर्ण रोग से-परमावश्यक आवश्यकताओं से भी अधिक आवश्यकताओं से, परिपूरित देखते हैं और अपने पड़ोसियों को भूखा नङ्गा अत्यन्त दीन मलीन अवस्था में देखते हैं। उनकी पतितावस्था पर हम हंसते हैं, खूब रंगरेलियां मनाते हैं। कहते हैं, "अच्छा है साले भूखे मरते हैं, नङ्गे डोलते हैं अपने कर्मों का फल भोगते हैं।" परन्तु

हम को यह बिल्कुल भी नहीं सूझता कि यदि हम चाहें तो उनको सुखी कर सकते हैं। उनके भाग्य का यह दोष नहीं है परन्तु हमारी निर्दयता—सहृदयहीनता—ही के कारण उनकी ऐसी शोचनीय अवस्था है।

❀ ❀ ❀

प्यारे पाठक ! कर्मवीर बनने के लिये सहृदयत्व का पल्ला पकड़ो ! तुमको मोक्षपद प्राप्त होगा। तुम सुख मार्ग के पथिक बन जाओगे, तुम ईश्वर के सच्चे अवतार कहलाओगे। पूजे जाओगे। हृदय सिंहासन पर तुम्हारी मूर्ति स्थापित की जायगी। तुम देश के—समस्त संसार के—सच्चे शिक्षक, सच्चे सेवक होगे। तुम्हारी माता का हृदय—प्रकृति सुन्दरी का हृदय-प्रमोद वीणा से प्रत्येक अणु को प्रति ध्वनित कर देगा। तुम पाप और मृत्यु के विजेता प्रसिद्ध होगे।

सहृदयता के शिखर पर आरूढ़ होकर कर्मवीरता का—मनुष्यता का—आदर्श गायन, विश्व संगीत की अनन्त प्रतिज्ञा, हृदय वीणा पर बजाओ:—

मैं कर्मवीर कहलाऊंगा।
दुख औ' संताप हरूंगा मैं।
नहिं मृत्यु से लेश डरूंगा मैं।
'जय प्रेम' की खूब करूंगा मैं।
मैं कर्मवीर कहलाऊंगा ॥

जो दुखी शरण में आयेगा।
हर विधि वह सुख को पायेगा।
वह प्रेम का पात्र कहायेगा।
उसका मैं साथ निभाऊंगा।
मैं कर्मवीर कहलाऊंगा ॥

गौ विप्र का दुःख हरूंगा मैं।
निज देह का दान करूंगा मैं।
अरि से कर युद्ध मरूंगा मैं।

जी कर अपकीर्ति न लाऊंगा ।
मैं कर्मवीर कहलाऊंगा ॥
फल का आहार करूंगा मैं ।
ईश्वर का प्रेम वरूंगा मैं ।
जग में शुचि ज्ञान भरूंगा मैं ।
मैं जीवन का सुख पाऊंगा ।
मैं कर्मवीर कहलाऊंगा ॥

——::※::——

महाभारत का समारम्भ ।

[लेखक—श्रीयुत अनूप शर्मा बी० ए०, एल० टी०]

घुमड़ रहे हैं गजराज घनराज के से,
उमड़ रहे हैं क्यों समर-मद-माते हैं ।
श्रेणी वाजियों की इन्द्र-वाजि-मान-मर्दिका क्यों,
सजग जगीं हैं वाजिराज हिनहाते हैं ॥
आये रथारूढ़ रणारूढ़ है महारथी क्यों,
प्रबल पदाति देख होश उड़ जाते हैं ।
आज किस हेतु युद्ध-वाद्य बजते हैं यह,
आज किस कारण पताके फहराते हैं ॥
अन्त हो चला है भारतीयों की समुन्नति का,
छलक उठा है ऐसा पूर्ण पाप-प्याला है ।
जन-समुदाय में बढ़ा है पशुता का रोग,
मोह-मदिरा पी के हुआ जो मतवाला है ॥
दिव्य देश-प्रेम के सु-कोमल कलेवर को,
छल की छुरी से छिन्न-भिन्न कर डाला है ।
खो गया स्वदेश का सितारा किसी सागर में,
निकला मनुष्यता का दुखद दिवाला है ॥

बैल चढ़े शंकर विनाश करने के लिए,
सिंह चढ़ी चंडिका डपट डाटने को है।
रुन्ड-मुन्ड-मुन्ड से पहाड़ रचने के लिए,
शोणित-प्रवाह से पयोधि पाटने को है॥
आज महाभारत रचा है कुरु-नन्दनों ने,
अन्तक कठोर घोर ठाट ठाटने को है।
भाई के भले को आज भाई नाशने को खड़ा,
भाई के गले को आज भाई काटने को है॥
अस्त हो चला है आज पूर्ण चन्द्र उन्नति का,
घेरती निपात की महान अमावस्या है।
विद्ध हुई देह हिन्द-देश की शरों से ऐसी,
सिद्ध हुई मानों क्षात्र धर्म की तपस्या है॥
कोप हुआ मोह का प्रकोप पशुता का हुआ,
भूमि रक्त-रंजिता हुई जो श्यामरास्या है।
उलझ रही जो चित्त-वृत्ति युद्ध कंटकों में,
सुलझ रही तो चीर हरण समस्या है॥
खोने लगे वैभव विशद वसुधा का आज,
ढोने लगे पाप-पुञ्ज जाति के निधन का।
सोने लगे शूर नींद मौत को बुला के पास,
धोने लगे द्रोह द्वेष दम्भ मैल मन का।
रोने लगे अबला-समूह डाढ़ मार-मार,
होने लगे विप्लव समीर ऐसा सनका।
मानवता खींच पशुता में हैं डुबोने लगे,
बोने लगे बीज वीर भारत पतन का॥

मैं जिन्दा हूं
पर
कोई शनाख़्त करने वाला चाहिये ।

[लेखक—श्री पं० नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ]

❀ १ ❀

सरकारी या रियासत के पेन्शनरों का प्रतिमास का अनुभव है कि जब तक कोई प्रतिष्ठित पुरुष अथवा सरकारी अफ़सर उनकी शनाख़्त या तसदीक नहीं करता या उनके पेन्शन के काग़ज़ पर "यह वही शख्स है और जिन्दा है" ऐसी तसदीक नहीं करता तब तक, चाहे वह हज़ार बार जिन्दा रहे उसको सरकारी या रियासत के खज़ाने से पेन्शन नहीं मिल सकती—कैसी अजीब बात है कि सारी उमर—नहीं नहीं—उमर का सब से बड़ा और सब से अच्छा हिस्सा सरकार की पेशी में जाय और जब पेन्शन के दिन आये तब लोगों से कहते फिरो कि "मेरे जिन्दा होने की तसदीक करो या मेरी शनाख़्त करो—" कैसी करुणा-जनक दशा है ?

❀ २ ❀

यही दशा इस बूढ़े भारत की हो रही है । इसकी समस्त आयु—उत्तम आयु का बड़ा भाग संसार के उपकार करने में, समस्त जगत् को शान्ति और सभ्यता के पाठ पढ़ाने में गयी, परोपकार में इसने अपना घरबार भी लुटा दिया, किन्तु अब जब कि बुढ़ापा आया, शान्ति से हरिभजन करने और आत्म-चिन्तन करने के दिन आये, पेन्शन के दिन आये तो, इसको पेन्शन तो क्या मिलती इसको जिन्दा मानने के लिए संसार की कोई भी सरकार तैयार नहीं, इसके जिन्दा होने की शनाख़्त तो कोई क्या करेगा, इसके जिन्दा होने की तसदीक भी कौन करने लगा है । यह संसार ऐसा कृतघ्न है, अहसान फरामोशी की भी कोई हद होती है !

❀ ३ ❀

संसार ऐसा कृतघ्न रहे तो रहे, संसार के राष्ट्र इसको मृतप्राय समझ कर इसका तिरस्कार करें तो करें, यह कैसी विचित्र बात है कि जैसे घर के लोग घर के बूढ़े की पर्वाह नहीं करते इसी प्रकार भारतवर्ष के लोग भी अपने बूढ़े भारत की ज़रा-सी भी पर्वाह नहीं कर रहे हैं-मैं भूलता हूँ बाहर के लोगों के कहने में आकर, उन्हीं के सुर में सुर मिलाकर, अपने ही अन्नदाता, प्राणदाता, जन्मदाता, रक्षक, पोषक, बूढ़े भारत को "मृत" समझ रहे हैं-इससे बढ़कर करुण कथा, कष्ट कथा संसार के इतिहासों में कहीं भी देखने को नहीं मिलेगी ! ! !

❀ ४ ❀

भारत बिलबिला कर पूछ रहा है—

प्र०—"क्या मैं ज़िन्दा नहीं हूं ?"

उ०—"जिन्दे अवश्य हो।"

प्र०—"फिर मुझे मुरदा क्यों समझ रहे हैं"

उ०—"इसलिए कि संसार के मार्केट Market में तेरी साख नहीं है"

प्र०—"क्यों पिछली बातों से मेरी साख हो नहीं सकती ?"

उ०—"नहीं, हरगिज़ नहीं"

प्र०—"क्या संसार का कोई राष्ट्र मेरी शनाख़्त नहीं करेगा"

उ०—"दरिद्र की कौन शनाख़्त करता है, दरिद्र पुरुष तो सामने बैठा हुआ भी नज़र नहीं आता"

प्र०—"इतिहास मेरी तसदीक करे तो ?"

उ०—"इतिहास की बातें हैं भूतकाल की, दरिद्र जाति के इतिहास उसकी दरिद्रता में ही विलुप्त हो जाते हैं"

प्र०—"क्या संसार इतना कृतघ्न हो गया है ?"

उ०—"चलती का नाम गाड़ी है"

प्र०—"फिर मैं अपने जिन्दे होने का कौनसा प्रमाण पेश करूं ?"

उ०—"कोई घोर उपद्रव कर जिससे संसार का ध्यान तेरी ओर आकृष्ट

हो जाय, बिन उपद्रव किए किसी की पूछ नहीं होती—देखो नाग अपनी फूँ-फाँ नहीं छोड़ता, उसको सब पूजते हैं—और उसका शत्रु गरुड़ इतना शक्तिशाली है, साक्षात् विष्णु का वाहन है किन्तु उसको कोई नहीं पूजता—नाग को खुश करने के लिए हिन्दू धर्म के त्यौहारों में नाग पञ्चमी का त्यौहार खास तौर पर रक्खा गया है। बेचारे गरुड़ का कोई त्यौहार नहीं—इस तत्त्व को समझो।"

भारत-"अच्छा यह बात है ? मैं तो नहीं समझता था कि संसार इतना कृतघ्न हो जायगा—मुझे स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि कभी संसार के मार्केट (Market) से मेरी साख ही उठ जायगी, मेरी शनाख्त करने वाला कोई राष्ट्र ही नहीं रहेगा, मेरी तसदीक करने वाले इतिहास भी रद्दी की टोकरियों में फेंके जायँगे। अच्छी बात है, मैं भी अब संसार को देख लूंगा-मुझे औरों को शिकायत ही क्या जब घर वाले ही पर्वाह नहीं कर रहे हैं"

❀ ५ ❀

(बूढ़ा भारत मनमें सोचता है)

क्या का क्या हो गया, जमाना उलटा ही चल पड़ा—मैं हिमालय की चोटी पर था आज इतना नीचे खिसका हूँ कि ऊपर देखता हूँ तो आंखें फिर जाती हैं—इसमें सन्देह नहीं बाहर के तो क्या घर के ही लोग मेरी भूतकालीन विभूति को भूल कर भ्रम में मारे मारे भटक कर भ्रष्ट हो रहे हैं—अब कोई उपद्रव रचना ही चाहिये जिस से संसार भर के राष्ट्रों का ध्यान मेरी ओर खिंच जाय, एक बार मेरी ओर ध्यान आ जाय फिर सबको वश करना और मुट्ठी में बांधे रखना मेरे बांये हाथ का खेल है।

(प्रकट रूप से ऊंचा महानाद करता है)

हे संसार के महाराष्ट्रो, राष्ट्रो, जातियो और उपजातियो, जब तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था तब मैं ही समस्त संसार को शिक्षा-दीक्षा, शान्ति, सभ्यता का पाठ पढ़ाता था। जब तुम्हारी गणना जंगली जातियों में होती थी जब तुमको और बातों का तो क्या कपड़े पहनने तक का

शङ्कर नहीं था, तब तुम को मनुष्य कोटि में लाने वाला मैं ही तो था। ज्ञानामृत पिला कर अज्ञानान्धकार से निकालने वाला मैं ही तो था। अब तो कालगति के प्रभाव से, मेरे दुर्भाग्य से मुझे ऐसे हीन दिन प्राप्त हुए हैं। तुम भी ऐसे कृतघ्न हो गये कि प्रत्युपकार तो क्या करते मेरे उपकार का बदला अपकारों से दे रहे हो। ईश्वर तुम्हारा भला करे! तुम्हारा ही क्या दोष, ये मेरे घर वाले ही मेरी अवहेलना कर रहे हैं। अब जहां मैं घर वालों के कान खेंच कर उनको सावधान करूंगा वहां, संभल कर रहो, तुम्हारी आंखों में भी ऐसा तीव्र अञ्जन डालूंगा कि तुम्हें भी होश आ जायगा और धर्म शून्य विज्ञान, प्रकृति पूजा, अस्त्र शस्त्र के भरोसे जो तुम संसार को नरकधाम बना रहे हो इस भयङ्कर भूल का भारी प्रायश्चित्त हो जायगा, जिस चञ्चला लक्ष्मी के विलास पर तुम मुग्ध हो रहे हो वह चञ्चला लक्ष्मी कभी किसी की हो कर नहीं रही वह तो असाधु तथा साधु दोनों के साथ एकसी ही चञ्चला रहती है। इस चञ्चला लक्ष्मी का वाहन है उलूकराज (उल्लू) जो दिवान्ध कहलाता है, जिसको दिन में, प्रकाश में नहीं दीखता है। जो लक्ष्मी स्वयं इतनी चञ्चला हो, जिस के शुभ वाहन उलूकराज हों उस लक्ष्मी के भरोसे संसार का तिरस्कार मत करो, मैं तुमको अभी से सचेत किए देता हूं। सबको आंखें खोलने के लिए मैं अब एक महान् उपद्रव रचने वाला हूं, जिस उपद्रव के सामने फ्रेंच रेवोल्यूशन फीका पड़ जायगा, रूस के बोल्शेविक हार मान जायेंगे, संसार के समस्त सैनिक उत्पात ढीले पड़ जायंगे। मैंने जान लिया कि अब ऐसा किये बिना संसार का ध्यान मेरी ओर नहीं आयेगा और संसार को शान्ति धाम बनाने की एक मात्र अचूक रामबाण महौषधि मेरे ही पास है किन्तु कालचक्र प्रभाव से उसकी क़दर नहीं हो रही है—अब सब संभलो। आकाश वाणी होती है "सावधान! सावधान"—प्रतिध्वनि आ रही है "सावधान, सावधान"—देवता कह रहे हैं "सावधान, सावधान"—इसलिए हम भी कहते हैं—"सावधान, सावधान"।

साहित्य का प्रभाव

[लेखक—एक बी० ए०, एल० टी०]

किसी जाति का समकालीन साहित्य उसकी तत्कालीन नैतिक दशा पर अच्छा प्रकाश डालता है। यदि किसी समाज का साहित्य उच्च श्रेणी का है तो उन व्यक्तियों के नैतिक विचार भी जिन से वह समाज बना है उत्तम होंगे। यदि उसका साहित्य गया और गिरा हुआ है तो निस्संदेह उस समाज के मनुष्यों के विचार तथा आचरण भी वैसे ही होंगे। वीर-रस परिपूर्ण साहित्य समाज के वीरत्व का द्योतक है, और अश्लीलता से लिप्त साहित्य उस समाज के नैतिक पतन का परिचायक है। इसमें किसी भी न्यायसंगत मनुष्य का मतभेद नहीं हो सकता।

अब हमको जरा हिन्दी भाषा के साहित्य की ओर दृष्टिपात करना चाहिये। हिन्दी में आजकल प्रायः मध्यम या जघन्य श्रेणी की पुस्तकें ही प्रकाशित होती हैं*। उपन्यासों और नाटकों की भरमार है जिन में अधिकांश निकृष्ट होते हैं, भाषा व भाव दोनों दृष्टि से। जब तक कि उन में किसी युवक का युवती पर आसक्त होकर उसके साथ पाप पूर्ण व्यवहार के दिखाने की चेष्टा न की जाय तो कथानक का आनन्द ही क्या। कहानियों का केन्द्रीभूत विचार भी प्रायः यही होता है। आश्चर्य तो इस बात पर है कि हिन्दी की कुछ पत्रिकाओं को भी इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि जब तक उनमें कुछ लखनौआपन, थोड़ी सी नज़ाकत, और कतिपय चटकीले मटकीले गंदे चित्र न होंगे तब तक उनका न तो कलेवर ही पूरा हो सकेगा और न उनकी ग्राहक संख्या ही बढ़ सकेगी। व्यापारिक दृष्टि से तमाशा दिखाने वाली थियेटर कम्पनियों के स्टेजों पर क्या, स्कूल व कालिजों के रंग मंच पर भी जब तक लैला-मजनूं की प्रेम-कथा के जोड़ का कोई नाटक न खेला जाय सारा मजा किरकिरा हो जाता है। अगर किसी खेल में पांच सात सुन्दरता की दम भरने वाले

* अब यह दशा नहीं है, परिवर्तन हो रहा है। —सम्पादक।

बालकों ने बढ़िया साड़ियां पहन कर और चेहरे पर बढ़िया 'पाउडर' लगा कर दस बीस ग़ज़ल न गाये, जो यद्यपि बिलकुल ही अश्लील न हों तो अश्लीलता की सीमा को तो छू ही रहे हों, तब तक सारा मामला फीका ही समझा जाता है! हमने माना कि प्रेम-रस भी नवों रसों में एक है और उसका स्थान भी ऊंचा है, परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य रस भी तो हैं और लैला-मजनूं के प्रेमादर्श के अलावा और भी प्रेम-रस के रूप हो सकते हैं।

नाटक, कहानी, उपन्यास आदि की बात तो यह रही, अब जरा विज्ञापनों की ओर भी निगाह डालिये। इन विज्ञापनों को तो वास्तव में हमारे नैतिक पतन के दर्पण ही समझना चाहिये। अपने अधःपतन का पूरा प्रतिबिम्ब हम इनमें देख सकते हैं। किसी भी समाचारपत्र या पत्रिका को उठा लीजिये। नपुंसकता, कमज़ोरी, स्वप्नदोष, दुर्बलता, नाताक़ती, प्रमेह, गर्मी, सुजाक आदि रोगों की औषधियों की ही भरमार है। प्रत्येक वैद्य या औषधि-विक्रेता इस बात का ठेका लेने को तैयार है कि इसमें से कोई भी रोग क्यों न हो उसको उसकी औषधि बात की बात में समूल नष्ट कर देने के लिए अचूक है, रामबाण है। विषय भोग की पिपासा बढ़ाने के लिए सैकड़ों हज़ारों दवाओं का आविष्कार आये दिन होता रहता है। 'अत्यन्त सुन्दर' चित्रों से विभूषित कोकशास्त्र हज़ारों की संख्या में बिकने लगे हैं। प्रत्येक विज्ञापन दाता का दावा होता है कि हमारा कोकशास्त्र असली है। वास्तव में ऐसी पुस्तकों में अश्लीलता की बाहुल्यता ही असलियत की कसौटी समझी गई है। पाठक स्वयं विचारें कि क्या ऐसे विज्ञापनों की उत्तरोत्तर वृद्धि इस बात का पक्का प्रमाण नहीं है कि हमारे पूर्वजों कीसी शक्ति हममें नहीं रही, हम दिन प्रति दिन दुर्बल होते जा रहे हैं और भयंकर रोगों के चंगुल में फंसते जा रहे हैं? मेरे एक मित्र जो अनुभवी डाक्टर हैं कहा करते हैं कि मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष में प्रतिशत ९० मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो गर्मी या सुजाक जैसे

भयंकर रोग के शिकार हैं। यह बात पृथक है कि चाहे यह रोग उनका स्वयं उपार्जित हो या उनके माता पिता की दाय। अच्छे से अच्छे 'सफ़ेद-पोश' विद्वान् अथवा धनवान् जिनके गुप्त रोगों के विषय में उनके परम-मित्र आदि भी कुछ नहीं जानते केवल डाक्टरों या वैद्यों के सन्मुख ही अपनी क़लई खोलने के लिए विवश होते हैं।

हमारा पतन अब बहुत हो चुका है। यदि अपने देश तथा समाज से हमें कुछ भी प्रेम है और अपने जीवन को आनन्दमय बनाने का कुछ भी ध्यान है तो हमारे लिए आवश्यक है कि हम अपने होश सँभालें और सदाचारी बनें। चरित्र के सुधारने के लिए तथा मुर्दा नसों में जोश बढ़ाने के लिए अनेक साधन हैं जिनमें उत्तम साहित्य भी एक है। इस छोटे से लेख में हमारा मुख्य ध्येय पाठकों का ध्यान इसी ओर आकर्षित करने का है। वीर रस से परिपूर्ण साहित्य दुर्बलता को दूर करने की एक अव्यर्थ औषधि है।

हमारी भाषा में गन्दे साहित्य की भर मार होने का उत्तरदायित्व लेखकों तथा सम्पादकों पर अधिक है। यह कहना नितान्त भूल है कि गद्य श्रेणी के प्रेमरस के बिना नाटकों व उपन्यासों को कोई नहीं पूछेगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि 'दुर्गादास' जैसे नाटक के अवलोकन से किसी भी रसिक का हृदय जोश से उछल पड़ेगा। ऐसे नाटकों व उपन्यासों के लिए कथानकों की कमी हमारे इतिहास में नहीं। राजपूताने के इतिहास में आदि से अन्त तक वीरता के ही उत्तम नमूने नहीं हैं तो और क्या है? क्या छत्रपति शिवाजी की जीवनी को लेकर कई सुन्दर नाटकों और उपन्यासों की रचना नहीं की जा सकती? बुन्देलखंड के इतिहास में भी ऐसे वीरों की कमी नहीं है। हमारा प्राचीन ग्रन्थराज महाभारत तो एक बड़ा भंडार है ही। महाराना प्रताप, छत्रपति शिवाजी, वीरवर छत्रसाल आदि किसी भी जाति के गौरव को बढ़ा सकते हैं, गौरव ही नहीं साहित्य को भी उन्नत कर सकते हैं।

इसलिए अपनी हीन दशा सुधारने के लिए परम आवश्यक है कि वीर रस से परिपूर्ण साहित्य की रचना की जाय। स्कूलों व कालिजों के स्टेजों पर तो सदा वीरत्व से ओत प्रोत नाटक ही खेले जायं। यदि ऐसे नाटकों का अभाव है तो इससे न खेलना ही कहीं अच्छा है। क्या थियेट्रिकल कम्पनियां भी इस ओर कुछ ध्यान देंगी? परन्तु अन्तिम भार इसका लेखकों के ही ऊपर है। क्या हिन्दी के लेखक इस ओर कुछ आकृष्ट होंगे।

वीरो !

[लेखक—कविरत्न श्री जगन्नाथ जी मिश्र "कमल"]

१

परिकर कस लो चलो क्षेत्र में, सुनलो बजती रण-भेरी।
धन्वा, तीर, तेग, असि ले लो, करो न किंचित भी देरी॥
भिड़ो बोल जय, लड़ो छोड़ भय, करो शत्रु क्षय, हे बलवान !
पीछे हटना घोर पाप है, लड़ते-लड़ते देदो जान॥

२

कर्म्म-वीर, गम्भीर, धीर हों, समय परीक्षा का आया।
याद करो, क्या भूल गये? जो भीष्म द्रोण ने सिखलाया॥
साहस के बल, चीर विघ्न-दल, दौड़ो बार-बार ललकार।
कटते, मरते, अड़ते, बढ़ते, अहो वीर, झुक पड़ो जुझार॥

३

बदल पैंतरे उदधि-उर्मि से, करो घोर भीषण हुंकार।
बदन अखंड, पौरुष प्रचण्ड, लख रहे चकित सारा संसार॥
दृढ़ प्रतिज्ञ हो, कह दो—कह दो विजयी होना है ठाना।
रण-क्षेत्र में मर जाना है, अमर नाम है कर जाना॥

कवि-कीर्तन

महाकवि भूषण

[लेखक—श्रीयुत पं० भागीरथप्रसाद जी दीक्षित, विशारद]

जब से भूषण के सम्बन्ध में पत्रों में लेख प्रकाशित हुए हैं और उन पर आलोचनात्मक तथा अन्वेषणात्मक लेख निकलने प्रारम्भ हो गये हैं। तब से अब तक इनके बहुत से नये छंद प्राप्त हो चुके हैं तथा होते जा रहे हैं। श्रीयुत पं० मयाशंकर जी याज्ञिक तथा अन्य कुछ सज्जनों ने इस सम्बन्ध में अच्छा प्रयत्न किया है। इधर भूषण को नवीन रूप में प्रदर्शित करने के कारण कुछ वृद्ध और अनुभवी लेखकों तक को यह नवीन भाव खटका है। यद्यपि भूषण का राष्ट्रीय रूप व्यक्तिवाद के पर्दे में छिपा हुआ था, भूषण वास्तव में व्यक्ति के उपासक न थे उन्होंने शिवाजी, बुधसिंह, छत्रशाल आदि की जो प्रशंसा की थी वह केवल राष्ट्र के नाते से की थी। उनके हृदय में एकमात्र राष्ट्र का हित निहित था। इसी से उनका सम्मान अन्य कवियों की अपेक्षा बहुत अधिक था। मुसलमानों का अत्याचार उन्हें असह्य था, औरंगजेबी शासन उनके हृदय में भाले की तरह चुभता था। जजिया टैक्स, मंदिरों का विध्वंस, हिन्दुओं का बलात् यवन बनाना तथा स्त्रियों का अपहरण उन्हें असह्य हो गया था। इसीलिये उन्होंने शिवाजी का आदर्श जनता के सामने रक्खा। शिवाजी ने यवनों से देश, जाति और धर्म की रक्षा के निमित्त अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। जिस राजनीतिज्ञता और बुद्धिमत्ता से राष्ट्र-निर्माण, संगठन और स्वराज्य स्थापन की योजना की थी वह शिवाजी के ही भाग में पड़ी थी। भूषण शिवाजी की इन्हीं

कृतियों पर मुग्ध थे। इसीलिये जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के चरित्रों पर मुग्ध हो कर महाकवि बाल्मीक और गोस्वामी तुलसीदास जी ने सामयिक परिस्थति के अनुकूल आदर्श-चरित की रचना की थी उसी प्रकार महाकवि भूषण ने शिवाजी के जीवन को राष्ट्र के लिये आदर्श चरित्र ही मान कर उनके चरित्र का चित्रण किया था। इसीलिये उन्होंने शिवराज भूषण में शिवाजी को विष्णु, शिव आदि देवताओं का अवतार तक कह डाला है। यही नहीं 'भूली गति भव की' और "भाग्यौ काशीपति विश्वनाथ" कह कर उन्होंने यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया था कि हम शिवाजी की ही आराधना अथवा अनुकरण पर अपनी रक्षा तथा उद्धार कर सकते हैं। महादेव आदि की मूर्तियां हमें सहायता देने में असमर्थ हैं। इससे शिव के लिये अपमान-जनक भाव प्रदर्शित करना यद्यपि प्रत्यक्ष में दिखाई देता है परन्तु वास्तव में उनका हार्दिक भाव शिवाजी के आदर्श का स्थापन करना था न कि शिव की निन्दा। देव कोटि में हिन्दुओं की श्रद्धा अधिक होती है इसीलिये भूषण ने शिवाजी को देव कोटि में रखने का पूर्ण प्रयत्न किया और इसीलिये "सांचो अवतार हर को" तथा राम, कृष्ण और पांडवों की कोटि में बतला कर देव रूप में उन्हें प्रदर्शित किया था।

भूषण ने अधिकांश में राजाओं की ही प्रशंसा की है, साधारण व्यक्तियों में से कोई नेता नहीं चुना। इसका एक प्रधान कारण था। उस समय जनता में साम्य भाव का नाम भी नहीं था। राजाओं के पास शक्ति थी इसीलिये जिन जिन राजाओं ने यवनों के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर रक्खी थी अथवा भूषण के विचारों से सहानुभूति रखते थे उन्हें और भी उत्तेजित करने तथा संगठित करने के लिये भूषण ने उनके दरबारों में प्रवेश किया। शिवाजी के अतिरिक्त कमाऊं नरेश ज्ञानचन्द, मोरंग नरेश, असोथर नरेश भगवतराय खीची और पन्ना नरेश छत्र-शाल प्रथम कोटि में माने जा सकते हैं और जयपुर नरेश सवाई जयसिंह

बूंदी नरेश बुधसिंह, उदयपुर नरेश, रीवां नरेश अवधूतसिंह, श्रीनगर नरेश फतहसिंह द्वितीय श्रेणी में। जोधपुर नरेश तथा अजीतसिंह ने भूषण के भावों से सहानुभूति नहीं दिखलायी इसीलिये उन्होंने अजीतसिंह के पिता जसवंतसिंह को खूब खरी खोटी सुनाई थी। शिवराज भूषण पढ़ने वालों से यह बात अप्रकट नहीं है। सवायी जयसिंह ने शुद्धि आन्दोलन को हिन्दुओं का प्रधान कर्तव्य मान कर पंडितों की एक बड़ी सभा द्वारा व्यवस्था दिलवायी थी। यही नहीं उन्होंने अपने राज्य को विस्तृत करने तथा अन्य सुधारों की व्यवस्था करने का भी पूर्ण प्रयत्न किया था। राजपूताने के राजाओं को भी यवनों के विरुद्ध संगठित करने में आपको अच्छी सफलता मिली थी। मेरे विचार से भूषण इन्हीं की सम्मति से राजपूताने के भिन्न भिन्न स्थानों में राजाओं को सगठित करने के लिये गये थे और जोधपुर नरेश को छोड़कर सब पर इनके भावों का अच्छा प्रभाव पड़ा था। जोधपुर नरेश ने दुर्गादास को (जो यवनों का प्रबल प्रतिद्वंदी था) निकाल दिया था इससे भी भूषण का रुष्ट होना संभव जान पड़ता है।

इसके विरुद्ध मिर्जा जयसिंह ने शिवाजी का बहुत अपकार किया था। फिर भी सवायी जयसिंह तथा रामसिंह का विचार करके शिवराज भूषण में भूषण ने उनकी प्रशंसा ही की है। ये घटनाएं इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भूषण के हृदय में राष्ट्रीयता का कितना उच्च भाव ओत प्रोत था।

शिवाजी के लिये 'ढाल हिन्दुआने की' 'तेरो करवाल भयो जगत को ढाल अब सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है' 'वेद पुरानन की चरचा द्विज देवन की फिर फैली' इत्यादि सैकड़ों वाक्य ऐसे ही उद्धृत किये जा सकते हैं जिनसे शिवाजी की महत्ता भूषण के हृदय में कितनी उच्च भावनाओं के साथ घर किये हुए थी, प्रदर्शित होती है। साथ में 'हिन्दू बचाय-बचाय यही' 'चन्दावत लौं कोई टूटै' आदि वाक्य उदयपुर

वंशीय राणाओं और हिन्दुओं के प्रति भूषण की धारणाओं को स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं। उनका स्पष्ट यह भाव था कि हिन्दुओं की सम्पूर्ण संगठित शक्ति यवनों के अत्याचार के विरुद्ध लगा कर उनका तख्ता उलट दिया जाय, और रक्त की एक बूंद भी आपस के विरोध में न गिरने पावे। इसीलिये 'अमरसिंह चन्दावत' के सल्हेर के युद्ध में मारे जाने पर भूषण ने उक्त भाव प्रदर्शित किया था। इसी प्रकार के भाव उन्होंने समय समय पर प्रकट किये हैं। औरंगजेब के कृत्यों से भूषण को घोर घृणा थी, उनके एक एक शब्द से यही भाव दृष्टिगोचर होता है। 'किबले ने ठौर बाप बादशाह शाहजहां ताको कैद कीन्हों मानों मक्के आग लाई है'। 'असुर औतारी औरंगजेब' 'स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे' इत्यादि वाक्य इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। औरंगजेब के अत्याचार हिन्दुओं पर जितने हुए थे उनसे यह धारणा होना स्वाभाविक है। मथुरा में केशोराम और काशी में विश्वनाथ के मन्दिर जैसे पवित्र स्थानों का ध्वंस करना, सत्य नामी उदासी साधुओं के आचार्य का वध करना, हिन्दुओं पर जजिया टैक्स लगाना, धर्म-कर्म में बाधा पहुंचाना, हिन्दुओं को अन्याय पूर्वक मुसल्मान बना डालना इत्यादि कार्य हिन्दुओं को उत्तेजित करने के लिये पर्याप्त थे। भूषण ने इन्हीं सब कारणों को जनता के सन्मुख रक्खा जिससे एक तीव्र उत्तेजक भाव हिन्दुओं में बह निकला और हिन्दुओं में संगठन प्रवृत्ति न रहने पर भी उन्हें इस भाव ने संगठित कर दिया और स्थान स्थान पर स्वतन्त्रता के लिये प्रबल उद्योग होने लगा।

मध्य देश में भगवन्तराय खीची, रुद्र साहि चन्देल, बसन्तराय सोलंकी आदि ने छोटे समूह में ही स्वतन्त्रता का झण्डा खड़ा कर दिया और यवनों को इस बुरी तरह से पीटा कि उन्हें लेने के देने पड़ गये। बुन्देलखण्ड में छत्रशाल ने, आगरे में जाटों ने, दक्षिण में बाजीराव पेशवा ने, पंजाब में सिक्खों ने, राजपूताने में राणा राजसिंह व सवायी

जयसिंह आदि ने ऐसा प्रबल उद्योग किया कि भूषण के जीवित काल में ही औरंगजेब के विस्तृत राज्य का बहुत बड़ा भाग हिन्दुओं ने अधिकृत कर लिया था और मुगल साम्राज्य देहली की चहारदीवारी से आगे न था। यही नहीं मुगलों का तत्कालीन बादशाह मरहठों की कैद में था, यह था प्रयत्न जो भूषण ने किया था और एक कवि अपनी प्रतिभाशक्ति द्वारा कहां तक सफल हो सकता है। भारत के इतिहास में तो क्या, संभवतः जगत के इतिहास में भी ऐसा उदाहरण दृष्टिगोचर न होगा। इस भाव से साधारणतः समस्त भारत और मुख्यतः हिन्दू जाति सदैव भूषण की ऋणी रहेगी। यदि भूषण के पीछे कुछ दिनों तक हिन्दू सावधानता पूर्वक संगठित रूप में अपने को संभाले रहते तो आज हम भारत को दीनता की पंक्ति में फंसा न देखते, और न देश की यह अधोगति दिखाई देती! पर ईश्वर को यह मंजूर न था। भूषण की इस आदर्श प्रणाली और प्राचीन भद्दे भावों में कितना अन्तर है पाठकों को भली प्रकार विचारना चाहिये। यही नहीं उनके वचनों तथा विवरणों से यह भाव स्पष्ट प्रगट होता है। इतिहास भी इसी की साक्षी देता है।

अन्त में हम भूषण के दो नवीन आदर्श छन्द देकर इस लेख को यहीं समाप्त करते हैं और इसका निर्णय व निष्कर्ष पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं।

गढ़ परनाले ते उतरि पैठि पारि दौरि,
हाथिन गुमान गंजे मंदिन असुर के।
सिरजा खुमान सिवराज के निसान गई,
साह की आसान बहलोल खान उर के।
'भूषन' भनत करनाटक भभरि तिल,
गान खेल मैल घर घर जोय जुरके ॥
धार धार धरती पुकार पुर पाटे फाटे,
धाकन के धुकन कपाट बीजापुर के ॥

यह छंद भूषण ने छत्रपति शिवाजी महाराज की प्रशंसा में कहा है। अब एक और छंद लीजिये जिसे भूषण ने महाराजा छत्रशाल पन्ना नरेश की प्रशंसा में कहा है:—

कासीपाल छत्रसाल रन कर कसै काली,
कालो औ कपाली परितोपै नहलति है।
'भूषन' भनत रन अंगन बिलम नित,
मंगन सों मान बड़दान बितरति है॥
जिरह झिलम जारी भारी सिर पाखर,
सुतारी कैसो पात जाकी भारी नित रति है।
रुंड मुंड काटति कलिंद ककरी से सुंड,
केरासे भुसुंड कुम्हड़ा से कतरति है॥

ये दोनों छंद भी भूषण के उच्च कोटि के छन्दों में गणना करने योग्य है। अन्त में पाठकों से सानुरोध निवेदन है कि शिवराज-भूषण का राष्ट्रीय दृष्टि से मनन करें और उसके आदर्श में ढालने का उद्योग करें ताकि जातीय जीवन नौका को आगे ले जाने में सहायता मिले।

सच्चे शूर

[लेखक—श्रीमान् ठाकुर गोपाल शरणसिंह जी]

प्राण भी पड़े हों उनके जो घोर सङ्कट में,
तो भी दीन-भाव से न शत्रु को निहारते।
टूक टूक चाहे हो शरीर पर युद्ध-बीच,
पीछे हटना वे धर्म खोना हैं विचारते॥
ज्यों ज्यों बढ़ता है बल सबल विपक्षियों का,
त्यों त्यों सिंह-नाद कर और ललकारते।
एक बार ही क्या बारबार हार खाकर भी,
बीर रण-धीर कभी हिम्मत न हारते॥

वीर विलास

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

[लेखक—श्रीयुत परमहंस]

(गताङ्क की पूर्ति)

यद्यपि महारानी लक्ष्मीबाई ने झांसी के शत्रुओं का दमन ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि स्वरूप से किया था और उनको यह पूर्ण आशा थी कि मेरे इन कार्यों का प्रभाव वृटिश सरकार पर अच्छा पड़ेगा परन्तु महारानी के विरोधियों ने महारानी की तरफ से वृटिश सरकार को ऐसा भड़काया कि वह विना सोचे समझे महारानी की सब बातें सुनी अनसुनी कर महारानी लक्ष्मीबाई को विद्रोहियों का अगुवा समझ बैठी तथा उन पर दमन-चक्र चलाना आरम्भ कर दिया।

२३ मार्च सन् १८५८ को झांसी पर अंग्रेजी सेना का आक्रमण हुआ। महारानी लक्ष्मीबाई के सामने यह विकट समस्या उपस्थित हो गई। कहां तो वृटिश सरकार को प्रसन्न करने का प्रबल प्रयत्न और कहां उलटा युद्ध करने को बाध्य होना। अन्त में एक वीर योद्धा की भांति महारानी ने युद्ध करना ही निश्चित किया। दोनों ओर की सेना में घमासान संग्राम जारी हो गया—और बड़ी २ तोपों की मार से सैकड़ों वीर हताहत होने लगे। महारानी की तोपों की मार से एक बार तो अंग्रेजी सेना के छक्के छूट गये और भगदड़ मच गई। परन्तु प्रबल सेना नायक सर ह्यूरोज

ने शीघ्र ही अपने सैनिकों को उत्साहित कर फिर आगे बढ़ाया। और महारानी का युद्ध कौशल देख कर छलबल और चालाकी से काम लेना प्रारम्भ किया। सुनते हैं कि महारानी की सहायतार्थ उस समय पेशवा साहब ने अपने मुख्य सेनापति तात्या टोपे को सेना लेकर भेजा था। परन्तु अंग्रेज सैनिकों को यह ज्ञात होते ही उन्होंने रास्ते ही में उनसे युद्ध आरम्भ कर दिया और तात्या टोपे की सेना को झांसी में न घुसने दिया। जब यह समाचार झांसी के सैनिकों को मिला तो उनकी हिम्मत पस्त होने लगी। फिर भी महारानी ने सैनिकों को वस्त्राभूषण पुरस्कार स्वरूप दे प्रोत्साहित किया। परन्तु एक तरफ तो तलवार से लड़ने वाले वीर सिपाही थे दूसरी तरफ छिपकर गोली चलाने वाले गोरे थे। तब भी महारानी के सैनिकों ने शत्रु-पक्ष के दांत खट्टे कर दिये। ११ वें दिन अंग्रेजी फ़ौज शहर में घुस पड़ी जब महारानी को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने अपनी बची फ़ौज साथ ली और क़िले की छतपर चढ़ कर शहर की दशा का निरीक्षण किया। उसे देख कर उन के दुःख का ठिकाना न रहा। गोरे सैनिक झांसी का माल असबाब लूटने, मकानों में आग लगाने तथा निरपराध स्त्री पुरुषों का वध करने में मस्त थे। यह दशा देख महारानी ने अपने बड़े २ सरदारों को बुलाकर परामर्श किया कि अब विजय प्राप्ति के कोई चिन्ह नहीं देख पड़ते। इस लिये शत्रु सेना को मारते काटते हमें किला छोड़ कर निकल चलना चाहिये और पेशवा की सहायता से फिर संग्राम जारी करना चाहिये।

महारानी अपने थोड़े से बहादुर सैनिकों को साथ लेकर घोड़े पर सवार हुईं और अपने दत्तक पुत्र दामोदरराव को धोती से बांध कर घोड़े पर बिठला कर शहर के उत्तरी दरवाजे से हर २ महादेव की आवाज़ के साथ निकली और कालपी की राह ली। झांसी को अन्तिम प्रणाम कर जब महारानी उत्तर दरवाजे से जा रही थीं, टेहरी की फौज ने उन्हें रोका अंग्रेजी सेना ने भी उनका पीछा किया किन्तु महारानी के तेज के साम कौन ठहर सकता था। उनकी तलवार का मजा चखती हुई वह परा होकर लौट खड़ी हुई। यह समय महारानी के लिये बड़ी विपत्ति का

किन्तु उन्होंने अपने साहस का परित्याग न किया और प्रबल अंग्रेज सेना के भीतर से अपने बुद्धिबल तथा चातुर्य से साफ़ निकल गईं।

झांसी से चल कर महारानी लक्ष्मीबाई अपने थोड़े से वीरों के साथ कालपी पहुँचीं और पेशवा साहब से भेंट की। पेशवा साहब ने महारानी की अनुपम शक्ति की भूरि २ प्रशंसा कर महारानी को सहायता देना स्वीकार किया और अंग्रेज़ों से युद्ध करने के लिये तैयारी की।

अंग्रेज सेनानायक सर ह्यूरोज को जब मालूम हुआ कि विद्रोहियों का दल कालपी में एकत्रित है और वहां महारानी लक्ष्मीबाई युद्ध नेत्री बनाई गई हैं, तो उसने झांसी का उत्तम प्रबन्ध कर कालपी पर चढ़ाई करना निश्चित किया। ५ मई को सर ह्यूरोज ने अपनी सेना को कालपी पर धावा करने का हुक्म दिया और उसने चार बिभाग कर चारों तरफ़ से घेरने का इरादा कर लिया।

इधर पेशवा साहब की महत्वाकांक्षा के कारण महारानी लक्ष्मीबाई की आज्ञानुसार सेना का उत्तम प्रबन्ध न हो सका। हाँ जिस तरफ़ महारानी अपनी सेना के साथ स्वयं उपस्थित थीं उस तरफ शत्रु सेना का कोई उपाय न चल सका। महारानी बड़े रण-चातुर्य से शत्रु सेना को पीछे हटने को बाध्य किया। परन्तु अन्य मोरचों पर अंग्रेज सेना के सामने किसी की दाल न गली और वे कालपी की ओर बढ़ते ही गए। जब पेशवा ने देखा कि विजय पाना कठिन ही नहीं असम्भव है, तो महारानी लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे आदि प्रमुख नेताओं को साथ ले बड़ी युक्ति से कालपी से निकल गये।

पेशवा साहब और महारानी लक्ष्मीबाई आदि कालपी से चलकर ग्वालियर प्रान्त के गोपालपुर गांव में आये और वहां आकर अनेक प्रकार के उपाय सोचने लगे। महारानी ने अनुमति दी कि, प्रथम एक प्रचण्ड किला हस्तगत करने का प्रयत्न करना चाहिये। पश्चात् शत्रुओं से युद्ध कर विजय प्राप्त करना चाहिये। महारानी की यह बात सब ने पसन्द की। निदान ग्वालियर का किला अपने अधिकार में करना

निश्चित हुआ। और ग्वालियर पर धावा बोलने की तैयारी करदी। तात्या-टोपे सिंधिया राज्य के विषय में अच्छी जानकारी रखते थे इन्होंने ग्वालियर पहुँच कर वहां की सेना पर अपना प्रभाव डाला और महारानी की सहायता से पेशवा साहब ने ग्वालियर फतह कर लिया और क़िले पर अपना अधिकार जमा दिया। ग्वालियर की फ़ौज ने भी बिना किसी रोक टोक उन्हें आने दिया और अपना स्वामी समझ कर तोपों की सलामी दी और उनका स्वागत किया। पेशवा साहब बिना प्रयास राजधानी मिल जाने पर विजय की धुन में मत्त हो गये और धन का दुरुपयोग करने लगे। महारानी लक्ष्मीबाई के कई बार चेतावनी देने पर भी वे सुख की निद्रा न त्याग सके।

जब राबर्ट साहब को विद्रोहियों के गवालियर पर अधिकार जमा लेनेका समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने सरह्यूरोज को बम्बई जाने से रोक दिया, और बहुत सी गोरी और काली पल्टन तथा तोपखाना देकर गवालियर पर चढ़ाई करा दी। इधर पेशवा साहब विजय प्राप्त कर आनन्द मना रहे थे। महारानी लक्ष्मीबाई को बड़ा दुख हुआ और उन्होंने पेशवा साहब से कहा कि शत्रु सेना लड़ने को सर पर आ रही है आप शीघ्र प्रयत्न करें। १७ तारीख को दोनों ओर से युद्ध प्रारम्भ हो गया। महा-रानी लक्ष्मी बाई भी अपने वीर योद्धा लेकर समरांगण में उपस्थित हुई और बड़ी तीव्र गति से शत्रु सेना को अपनी तलवार के जौहर दिखाने लगी। पेशवा के वीर सैनिक तात्या टोपे आदि भी मैदान में बड़ी वीरता से शत्रु सेना का संहार करने लगे। परन्तु अङ्गरेजों की रण चतुरता के आगे पेशवा की एक न चली। फिर महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने सिपा-हियों को बड़े गम्भीर स्वर से ललकारा और अपने दोनों हाथों में तलवार ले साक्षात रण-चन्डी का स्वरूप धारण कर बड़ी तीव्र गति से शत्रु सेना का नाश करने लगी। उस समय महारानी के मुख पर अनुपम छटा छा रही थी, क्रोध से नेत्र लाल थे और मुख पर विचित्र कान्ति थी, वे

अपने मधुर वाक्यों से सैनिकों में अपूर्व उत्साह भर रही थीं। महारानी की रण कुशलता देख कर अङ्गरेज सैनिकों के छक्के छूट गए और वे निराश से होने लगे परन्तु उन में फिर स्फूर्ति आई और उन्होंने इधर उधर अपनी सेना को छिपा कर बड़ी चालवाजियों से युद्ध करना आरम्भ किया। जिससे महारानी के सिपाही जीवन की आशा छोड़ खूब पैतरे के हाथ दिखाने लगे। महारानी ने अनेक सैनिकों को यमपुरी का रास्ता दिखाया और अपनी सेना को आगे बढ़ाती चली गई। अंगरेज सैनिक जो कि इधर उधर छिपे हुए थे चारों तरफ से महारानी की फौज पर टूट पड़े। दैव उनके अनुकूल था, उनका यश प्राप्त होने वाला था। अन्त में महारानी की फौज के पाँव न जम सके। जब महारानी ने देखा कि ईश्वर की मर्जी के आगे चारा नहीं चलता—अत्यन्त स्वाभिमान के साथ अपने विश्वासनीय दासियों से कहा कि देखो मेरा शरीर यदि छूट जाय तो ऐसा प्रबन्ध करना कि म्लेच्छ हाथ न लगा सकें और अपने जीवन की आशा त्याग कर बड़े तपाक से शत्रुओं को वध करती हुई अपने घोड़े को आगे बढ़ा कर निकल जाने का ख्याल सोचने लगीं। इतने ही में एक दासी मरी मरी कह कर चिल्ला उठी महारानी ने झपट कर उस दासी के प्राण लेने वाले पिशाच को तो यमपुर पहुँचाया और अपने घोड़े को एड़ देकर नदी पार करने की चेष्टा की। परन्तु घोड़ा एक तो उनका खास घोड़ा न था दूसरे कई दिन के युद्ध से थका हुआ था आगे न बढ़ सका। इधर हुजांस पल्टन के सिपाहियों ने महारानी पर धावा कर दिया। महारानी ने कुछ परवाह न कर अपनी तलवार के घाट बहुतों को उतारा और ऐसी तलवार चमकाई कि हुजांस पल्टन के सिपाहियों के आगे चकाचौंध छा गया। परन्तु एक नर पिशाच ने पीछे से आ कर महारानी के मस्तक पर वार किया जिसे वे न बचा सकीं। इससे उनके सिर का दाहिना भाग विछिन्न हो गया और उनका दाहिना नेत्र बाहर निकल आया। तिस पर भी महारानी अपनी तलवार से

शत्रुओं का नाश करती रहीं ? इतने ही में एक सवार ने झपट कर महारानी के हृदय में किर्च भोंक दी जिससे महारानी की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। ऐसी दशा में भी महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने पर वार करने वाले अंगरेज योद्धा को यमपुरी का मार्ग दिखा कर अपनी तलवार की प्यास बुझाई। इस प्रकार ज्येष्ठ शुक्ला ७ संवत् १९१४ को गवालियर के समीप समरांगण में अद्वितीय शौर्य-गुण मण्डित, दिव्य स्त्री-रत्न झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने अक्षय सुख प्राप्त करने के लिये वीर गति से अपने प्राण विसर्जन किये तथा अपने वंश की कीर्ति समुज्वल कर अपना संकल्प पूर्ण किया।

महारानी लक्ष्मीबाई धन्य है ! धन्य है ! जिसने प्रबल वृटिश सेनाध्यक्षों के दांत खट्टे कर दिये और अपनी वीरता की धाक जमादी। हे परमात्मन् ! वे दिन कब आवेंगे जब महारानी लक्ष्मीबाई के समान शौर्य-गुण सम्पन्न देवियां भारत में फिर उत्पन्न होंगी।

बलि जायँगे।

[लेखक—श्री पं० गणेशीलाल जी सारस्वत, साहित्योपाध्याय]

जा दिन सों एकता की रीति सों उपासना हो,
जा दिन सों कपट समूल मिट जायँगे।
जा दिन सों देश वेष भाषा वस्तु भोजन के,
सेवन को सर्वथा समस्त अपनायँगे॥
जा दिन सों निधन धनेशन के भेद मिटैं,
जा दिन कलेशन के लेश न दिखायँगे।
ताही दिन देश को स्वतन्त्रता मिलैगी,
जबै सारे देशवासी देश ही पै बलि जायँगे॥

धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द

[लेखक—श्रीयुत प्रतापचन्द्र जी जैन]

स्वामी जी का जन्म वि० सं० १९१३ की फाल्गुण कृष्णा त्रयोदशी को जालन्धर जिले के तालबन नामक ग्राम में एक सुप्रसिद्ध क्षत्री कुल में हुआ था। आपका नाम ला० मुन्शीराम रक्खा गया था।

आपके पूज्य पिता काशी में कोतवाल थे। वहीं शिक्षा पाकर सन् १८८० में आप ने वकालत पास की और जालन्धर में प्रेक्टिस आरम्भ कर दी। किन्तु थोड़े ही दिन आप इसे कर पाए थे कि देश और समाज सेवा के अदम्य उत्साह वश आपने उसे छोड़ दिया और स्वामी दयानन्द के भक्त होकर आर्य समाज की सेवा में लग गये।

वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली को दूषित और अपने पथ से गिरने वाली जान कर आपने एक गुरुकुल स्थापित करने का विचार किया। रातदिन परिश्रम करके और गली २ भीख मांग कर आपने तीस हजार रुपए एकत्र किए और सन् १९०२ में बड़ी धूमधाम से हरद्वार के पास कांगड़ी में गुरुकुल का उद्घाटन किया गया। यह आपका प्रधान कीर्ति-स्तम्भ है।

सन् १९१५ में आपने पूर्ण सन्यास ले लिया और तभी से आप स्वामी श्रद्धानन्द कहलाने लगे। रौलट एक्ट के पास होने पर जब देश में असहयोग आन्दोलन आरंभ हुआ तब आप राजनैतिक क्षेत्र में कूद पड़े। सन् १९१९ में हड़ताल के दिन जब देहली में गोली चली थी, स्वामी जी फौजी सिपाहियों की बंदूक के सामने सीना खोल कर खड़े हो गये थे। पंजाब के हत्याकांड के समय आपने डायर-पीड़ितों की रक्षा की थी। हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के आप पूर्ण पक्षपाती थे। देहली की जामा मस्जिद के इमाम पर खड़े हो कर बोलने वाले आप ही एक हिन्दू थे। आप ही के उद्योग से सन् १९१९ में अमृतसर की कांग्रेस को सफलता प्राप्त हुई थी। उसमें आप स्वागताध्यक्ष थे। इसके बाद ही सन् १९२२ में गुरु के बाग वाला सत्याग्रह संग्राम आरम्भ हुआ था, जिसमें आपको भी जेल

जाना पड़ा था। हिन्दी के आप बड़े हामी थे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति पद को भी सुशोभित कर चुके थे। आप हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के परम पक्षपाती होते हुए भी दब कर मेल करना नहीं चाहते थे। मोपला-काण्ड और सहारनपुर की संहार-लीला से आप मुसलमानों का रुख समझ गये थे इसलिए सन् १९२३ में आपने हिन्दू-संगठन और शुद्धि का कार्य आरम्भ किया। भारत के सभी धर्मानुयायियों ने इस कार्य में आप का साथ दिया। यह बात मुसलमानों को बहुत अखरी। वे एक स्वर से स्वामी जी के विरुद्ध विष वमन करने लगे। उनको मारे जाने का भय दिया जाने लगा परन्तु उन्होंने कोई पर्वाह नहीं की।

इधर कुछ दिनों से स्वामीजी बीमार थे। ता० २३ दिसम्बर सन् १९२६ को देहली निवासी अब्दुल रशीद नामक एक यवन ने धोखे से ३ फ़ायर कर स्वामी जी की हत्या कर दी। गोली की आवाज़ सुनते ही स्वामी जी का नौकर धर्मसिंह आ पहुंचा। उसने अपनी जान की पर्वाह न कर कातिल को पकड़ने की चेष्टा की जिससे उसकी जांघ में भी एक गोली लगी। पर वह वीर बच गया और नर-पिशाच कातिल पकड़ा गया। स्वामी जी ने अपने बलिदान से देश में एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी है।

धर्म पर बलि।

[लेखक—श्रीयुत म०, मदनित जी "भद्र"]

पारतन्त्र्य की वन्हि जले जब देश हृदय पर।
होवे अत्याचार जननि के कीरति पथ पर॥
देख दशा बरवीर रक्त से उसे बुझा दें।
माता की जय बोल शत्रु का शीश झुका दें॥
जब देश और निज धर्म पर, बलि हम सब हो जायँगे।
स्वातन्त्र्य वाद्य के तार तब, मञ्जुल राग सुनायँगे॥

विविध विषय

१—हन्त हन्त दुर्दैव—

बड़े ही शोक और परिताप का विषय है कि पिछले महीने में हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के तीन बड़े हितैषी स्वर्ग सिधार गए। दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में पटना के श्री पं० राधाकृष्णजी झा और अन्तिम दिनों में श्री कुँवर हनुमन्तसिंह जी तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी का देहावसान देश की भारी क्षति का कारण हुआ है। हम तीनों महानुभावों के दुःखी कुटुम्बों के साथ समवेदना प्रकट करते हुए मृतात्माओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं।

२—पं० राधाकृष्ण झा—

झा जी जैसे विद्या-व्यसनी, सरल-स्वभावी और मिलनसार व्यक्ति हमने कम देखे हैं। गत वर्ष इन्हीं दिनों हमें एक दिन आपके श्री-सदन पर रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पहला ही परिचय था, पर जिस प्रेम, सहृदयता और अपनायत के साथ आपने हमारा स्वागत किया था, उसे हम कभी न भूलेंगे। झा जी पटना कालेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे। वे अर्थशास्त्र और राजनीति के प्रकाण्ड पंडित थे। इन दोनों विषयों पर जो पुस्तकें आपने लिखी हैं, वे हिन्दी साहित्य के लिए गौरव स्वरूप हैं। हिन्दी के आप बड़े ही प्रेमी थे। पटना यूनीवर्सिटी में हिन्दी को इतना मान मिलना आपके ही परिश्रम का फल है। इधर कई महिनों से आप क्षय रोग से ग्रसित थे। इसी के लिए आप अपने परम मित्र अध्यापक रामरत्न जी के साथ धर्मपुर गए थे और पिछले ५-६ महिने से वहीं इलाज करा रहे थे। एक महिने पूर्व जब अध्यापक जी

के पास आपके स्वास्थ्य सुधरने का समाचार आया था—हमें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। पर अचानक उस दिन 'विश्वमित्र' में आपका स्वर्गवास समाचार पढ़ कर हमें एक आत्मीय के वियोग का सा दुख अनुभव हुआ। निस्संदेह झा जी के स्वर्गवास से हिन्दी की जो हानि हुई है उसका हम अनुमान नहीं कर सकते।

३—कुंवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी—

कुंवर साहब हिन्दी के पुराने सेवक थे। पिछले ३० वर्ष से जिस निस्स्वार्थ भाव से आप हिन्दी की सेवा कर रहे थे वह किसी भी नवयुवक के लिए आदर्श हो सकती है। 'राजपूत' का सम्पादन आप २८ वर्ष से कर रहे थे। इसके द्वारा हिन्दी संसार और राजपूत जाति की आपने चिर-स्मरणीय सेवा की है। आपका 'स्वदेश-बांधव' उस समय का मुख्य पत्र गिना जाता था। 'चित्तौर-चातकी', 'अश्रुमाला', 'सरोजिनी' और 'तारा' आदि पुस्तकों की समालोचना करके आपने हिन्दी का अपार हित साधन किया है। 'मेवाड़ का इतिहास' आदि बीसियों पुस्तकें लिखकर आपने साहित्य की स्तुत्य श्री वृद्धि की है। दूसरे अनेक लेखकों को भी आपसे प्रचुर प्रोत्साहन मिला है। सार्वजनिक कार्यों में भी आप खूब भाग लेते थे। स्वभाव के आप बड़े ही सीधे, सच्चे और मिलनसार थे। क्षत्रिय जाति में आपका बड़ा सम्मान था। इन पंक्तियों के लेखक पर तो कुंवर साहब का बड़ा ही प्रेम था। इस समय आपकी अवस्था ५९ वर्ष की थी। दुःख है कि आपका अचानक स्वर्गवास हो गया जिससे हम इच्छा होते हुए भी आपके ३० वर्ष के सम्पादकीय अनुभव से विशेष लाभ न उठा सके। अगले अङ्क में हम आपका सचित्र जीवन-चरित्र देंगे।

४—स्वामी श्रद्धानन्द जी—

२३ दिसम्बर को सन्ध्या के ३॥। बजे एक धर्मान्ध मुसलमान का गोलियों का शिकार बन कर रुग्ण शय्या पर पड़े हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी स्वर्ग सिधार गए। अब्दुलरशीद तथा उसके जैसे विचार वाले बहुत लोग इस हत्या से भले ही प्रसन्न हों, पर वास्तव में यह उनकी ऐसी भूल हुई है,

कि जिसका वे अनुमान भी नहीं कर सकते। दो लाख से ऊपर एकत्रित हिन्दू जनता जिस भाव से प्रेरित हो कर शव-दाह में सम्मिलित हुई थी और भारत के कोने २ में जैसा शोक प्रदर्शित किया गया है उससे संभवतः उन धर्मान्ध नर-पिशाचों की आंखें खुली होंगी। हम तो यहां केवल यह कह सकते हैं कि स्वामी जी का बलिदान आदर्श बलिदान है। इसके फल स्वरूप हिन्दुओं में एक नहीं अनेक स्वामी उत्पन्न हो कर इस जाति की जाग्रति और वीरता का परिचय देंगे। तथा जिन कार्यों के लिये स्वामी जी बलि हुए हैं उन्हें हमारी जाति दूने उत्साह, चौगुने प्रयत्न और सौगुने बलि सहित करने को प्रस्तुत रहेगी।

स्वामीजी का संक्षिप्त चरित्र और चित्र हम पाठकों के अवलोकनार्थ अन्यत्र प्रकाशित करते हैं।

५—भरतपुर सम्मेलन—

आगामी फरवरी का अन्तिम सप्ताह भरतपुर के इतिहास में एक उल्लेखनीय सप्ताह गिना जावेगा। उन दिनों वहां कई अखिल-भारत-वर्षीय सम्मेलन होंगे, जिनमें प्रमुख हिन्दी साहित्य सम्मेलन है। यह जान कर कि इन सम्मेलनों को सफल बनाने के लिए भरतपुर के राज्याधिकारी पूर्ण प्रयत्नशील हैं, हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। हम भरतपुर नरेश के हिन्दी प्रेम से परिचित हैं। हमें विश्वास है कि उनकी संरक्षता में होने वाला सम्मेलन एक आदर्श सम्मेलन होगा और उसे सफल बनाने में कोई बात उठा न रक्खी जावेगी। तथापि हम दो एक निवेदन कर देना उचित समझते हैं:—

१—सम्मेलन की तिथि और सभापति का निर्णय करने में अत्याधिक विलंब हो रहा है यह अति शीघ्र निश्चित हो जानी चाहिये।

२—सम्मेलन का कार्यक्रम ऐसे ढंग से बनना चाहिए कि उसका पालन पूर्ण रूप से हो सके तथा सब कार्य क्रमानुसार ही होना चाहिए।

३—उत्तम निबंधों के पढ़ने और मार्मिक व्याख्यान कराने के लिए कुछ समय अवश्य नियत करना चाहिए।

४—सम्मेलन के भावी कार्य क्रम पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के लिए भी कुछ समय रहना चाहिए।

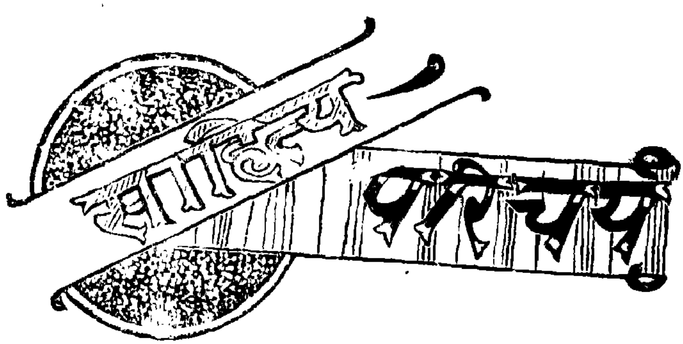
५—इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि अनेक सम्मेलनों की धूम धाम में कहीं साहित्य सम्मेलन का कार्य गौण न हो जाय।

६—बड़ौदा महाराज की दूरदर्शिता—

बड़ौदा महाराज के शासन नैपुण्य की अनेक बातें प्रायः सुनी जाती हैं। हाल ही में आपने एक और ऐसी आज्ञा प्रचारित की है जिससे हमारे चित में सहसा आपके लिए और अधिक आदर के भाव पैदा होते हैं। हिन्दी राष्ट्र भाषा होने वाली है, इसलिए महाराज ने आज्ञा दी है कि बड़ौदा राज्य के प्रत्येक स्कूल में हिन्दी आवश्यक रूप से पढ़ाई जाय। महाराज की यह आज्ञा कितनी विचारपूर्ण, आवश्यक और महाराज की दूरदर्शिता को प्रकट करने वाली है, यह प्रत्येक विचारशील व्यक्ति स्वयं समझ सकता है। हम महाराज के इस आदर्श कार्य के लिए उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं।

७—एक निवेदन—

सहयोगी 'वर्तमान' से हमें विदित हुआ है कि गतांक में प्रकाशित 'प्रोत्साहन' कविता कानपुरी भूतपूर्व 'भविष्य' में प्रकाशित हो चुकी है। अतएव आपने हमारे लेखक पर सन्देह किया है। इस संबंध में हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि 'भविष्य' की फायल हमारे सामने नहीं है जिससे हम वर्तमान के सन्देह का निर्णय कर सकते। और हमारे पत्र लिखने पर भी 'वर्तमान' सम्पादक ने 'भविष्य' के उस अङ्क का भी उल्लेख नहीं किया है। जिसमें 'ठीक ऐसी ही कविता प्रकाशित हो चुकी है' ऐसी दशा में हम नहीं समझ सकते कि यह बात कहां तक सत्य है। तथापि हम यह निवेदन किए देते हैं कि सम्पादक सर्वज्ञ नहीं होते वे नहीं जान सकते कि कब कौन रचना किस पत्र में प्रकाशित हो चुकी है। वे लेखकों के विश्वास पर ही भरोसा कर सकते हैं। ऐसी दशा में जो सज्जन सम्पादकों को धोखा देने की चेष्टा करेंगे वे उनकी सहानुभूति खो बैठेंगे।



रवीन्द्र-कथाकुञ्ज—मूल लेखक-महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक-श्री नाथूराम प्रेमी और बा० रामचन्द्र वर्मा, प्रकाशक–हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग-गिरगांव, बम्बई। पृष्ठ १८८, मूल्य १)

कवीन्द्र रवीन्द्र की ९ आख्यायिकाओं का यह अनुवाद पढ़कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। महाकवि की विमल विचार धारा और रसमयी रचना को हिन्दी में भी ऐसे सुन्दर रूप में पाकर प्रत्येक सहृदय सज्जन संतुष्ट होगा। इस में घनघोर वाक् युद्ध की 'जय पराजय' देखकर 'पड़ोसिन' 'राजतिलक' की 'समाप्ति' तक ठहरती है और वहां से 'जासूस' बन कर 'अध्यापक' और 'अतिथि' पर 'दृष्टिदान' करती हुई उन्हें 'दुर्बुद्धि' बनाकर संपूर्ण कुञ्ज में विहार कर के लौट आती है। निस्संदेह इस कुञ्ज में विहार करने में थोड़ा समय लगता है पर वह पूर्ण रूप से सार्थक हो जाता है। आशा है कि पाठक स्वयं पढ़कर इसका अनुभव करेंगे।

सुहराब-रुस्तम—मूल लेखक–स्व० द्विजेन्द्रलाल राय, अनु०-श्री० मुंशी अजमेरी, प्रकाशक–उपर्युक्त कार्यालय, पृष्ठ ९४, मूल्य दस आने।

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय ने द्विजेन्द्र बाबू के नाटकों का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित करके सचमुच हिन्दी संसार का बड़ा हित साधन किया है। वे साहित्य की एक मुख्य वस्तु हैं। प्रस्तुत नाटक एक प्रसिद्ध मुसल्मानी कथानक पर लिखा गया है और मूल लेखक ने इसे 'जातीय-चरित्र और रुचि गठन करने की चेष्टा' से ही लिखा है। अनुवाद भी

मोती पिल्स



मोती पिल्स

इन गोलियों के सेवन से बीसों प्रकार के प्रमेह, स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन, धातुक्षीणता, शरीर की कमजोरी, पेशाब में जलन, पेशाब में वीर्य का पतन होना, आलस्य, सिर में हर समय दर्द का रहना, आंखों के नीचे अन्धेरा सा छाना, नसों की कमजोरी, बचपन में किए हुए कुकर्मों से उत्पन्न हुई नपुंसकता, भूख का न लगना, खाना हजम न होना, दस्त साफ न होना आदि रोग दूर होते हैं। तबियत मस्त होती है और वीर्य सम्बन्धी सर्व प्रकार के रोगों को दूर कर शरीर की फुर्ती को बढ़ाती है, वीर्य को पुष्ट करती है, नए रक्त का प्रचार करती है, ताक़त को बढ़ाती है। इसमें किसी तरह की हानिकारक वस्तु का मेल नहीं है। सिर्फ काष्ठ औषधियों से तैय्यार की गई है। जो लोग बीसों तरह की दवाई खाकर निराश हो गए हों, उनको एक बार इसे लेकर परीक्षा कर लेनी चाहिए। मूल्य २० दिन की खुराक ४० गोलियों का १।।) पोस्टेज अलग।

हर एक दवा बेचने वालों के यहां मिलती है।

पता—मोती फार्मेसी, चौक—आगरा

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

विषय सूची

सूचना

जिन सज्जनों के नाम 'वीरसन्देश' नमूना स्वरूप भेजा जा रहा है उनसे प्रार्थना है कि इसका वार्षिक मूल्य केवल २) मात्र मनिआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें। जिन महानुभावों का अगले अङ्क के छपने तक मनिआर्डर नहीं मिलेगा उनको पांचवां अङ्क वी० पी० द्वारा भेजा जाएगा आशा है कि वे वी० पी० छुड़ा कर हमें आभारी करेंगे।

यदि किसी महानुभाव को ग्राहक होना स्वीकार न हो तो १ कार्ड द्वारा हमें लिख भेजने की कृपा करें ताकि उनको वी० पी० न भेजी जाय।

वीर-सन्देश



पटुआखाली सत्याग्रह संग्राम के सेनापति

श्री सतीन्द्रनाथ सेन

इधर सतीन्द्रनाथ ने समिधाएँ सुलगाईं, यज्ञ रचा,
उधर यज्ञ विध्वंसक आये, धूल उड़ाई शोर मचा।
पांच मास से पटुआखाली खड़ी अकेली लड़ती है,
अपने यज्ञ कुण्ड की रक्षा के हित अब तक अड़ती है।
आओ वीरो, अब तो उसे बनादो दुर्जय बलशाली।
धर्म युद्ध करने को हम सब चलें आज पटुआखाली॥ 'नवीन'

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग १ } आगरा—माघ शुक्ला २ सं० १९८३-वीर सं० २४५३ { अङ्क ४

वरदान

[लेखिका—श्रीमती विद्यावती जी जौहरी विशारदा]

दीजे प्रभो यही वरदान !
युगल नयन से केवल देखा करूं देश कल्यान।
निज कानों से सदा सुनूं मैं जय-जय-हिन्दुस्थान॥
जिह्वा गावे निशि-दिन केवल मातृ-भूमि गुण-गान।
हिय में मातृ-भूमि महिमा का एक मात्र हो स्थान॥
हाथ सदा रत रहें करन में दुखी-दीन-जन त्रान।
पांव चलें तहँ जहँ स्वराज्य हित होय युद्ध-आह्वान॥
रोम रोम से निकले मेरे स्वतंत्रता की तान।
अङ्ग अङ्ग "विद्या" का होवे माता पर बलिदान॥
लाखों कष्ट पड़ें पर फिर भी तनिक न होऊं म्लान।
मातृ-भूमि उद्धार करूं मैं तज कर अपने प्रान॥

वीरवर लक्ष्मण

[ले०—साहित्य-रत्न श्री पं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल एम० ए० सम्पादक "सैनिक"]

'वीर-सन्देश' का काम अपने पाठकों के पास वीरता और वीरों का सन्देश पहुँचाना है। हिन्दू साहित्य में लेखक को लक्ष्मण की वीरता जितनी प्रकृत और आदर्श मालूम होती है उतनी और किसी की नहीं, इसलिए 'वीर-सन्देश' में वीरवर लक्ष्मण की वीरता का वर्णन करना उपयुक्त ही होगा।

लक्ष्मण प्रकृत वीर थे, वीरता उनके रोम रोम में भरी हुई थी। दूसरे वीरों के जीवन में आपको ढूंढने पर एक न एक छेद—एक न एक ऐसा कार्य जो वीरोचित नहीं कहा जा सकता—मिल जायगा लेकिन लक्ष्मण जी के जीवन चरित्र में आपको एक भी वाक्य, एक भी कार्य ऐसा नहीं मिलेगा जो सर्वथा वीरोचित न हो, जो वीरों के हृदयों को हर्षाने वाला न हो। ऐसा मालूम होता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम की सफलता के लिए वीरता, भक्ति और गृह सेवा के जिन तीन प्रधान गुणों की आवश्यकता है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के तीनों भाई लक्ष्मण, भरत और चरत (शत्रुघ्न) इन्हीं तीनों गुणों के अवतार थे। लक्ष्मण तो वीरता की मूर्ति ही थे। स्वयं गुसाईं तुलसीदास जी ने उनके सम्बन्ध में एक समय यह कहा है "मनहुं वीर-रस सोवत जागा।"

आदि से अन्त तक लक्ष्मणजी के चरित्र को पढ़ जाइये, आपको उसका हर एक कार्य सैनिकोचित अनुशासन और वीरता से लबालब भरा हुआ मिलेगा। कुछ फड़का देने वाले उदाहरण लीजिये—

सीताजी का स्वयंवर हो रहा है। "देश देश के भूपति नाना" तमाम ताक़त लगा कर हार गए लेकिन धनुष टस से मस नहीं हुआ, रावण और वाणासुर ने तो अपनी लाज बचाने के लिए धनुष को छुआ तक नहीं। और सब भूप जोर लगा लगा कर हार गए! यह हालत देख

कर जनकजी के क्रोध और शोक का ठिकाना नहीं रहा। विदेह होने पर भी उनके हृदय से ये स्वाभाविक शब्द निकल ही पड़ते हैं कि:—

"अब जनि कोउ भाखइ भट मानी। बीर विहीन मही मैं जानी॥"

लेकिन ये शब्द सुनते ही:—

"माखे लखन कुटिल भइ भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौंहैं॥

वीर थे, कायरता के आक्षेप को न सह सके भगवान राम के चरणों पर सिर नवाकर बोले:—

"रघुबंसिन्हि में जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल-मनि जानी॥
सुनहुं भानकुल पंकज भानू। कहहुं सुभाव न कछु अभिमानू॥
जो तुम्हार अनुशासन पावहुं। कन्दुक इव ब्रह्मांड उठावहुं॥
कांचे घट जिमि डारहुं फोरी। सकहुं मेरु मूलक इव तोरी॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावहुं। योजन सत प्रमान ले धावहुं॥
तोरहुं छत्रक दन्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करहुं प्रभु-पद सपथ, तो न धरहुं धनु हाथ॥"

कैसे कायरों को भड़का देने वाले शब्द हैं? कैसे प्रकृत आत्म-विश्वासी वीरोचित शब्द हैं? वीरता की प्रति मूर्ति के सिवा ऐसे शब्द और कौन कह सकता है?

लक्ष्मणजी की वीरता का दूसरा उदाहरण हमें उस समय मिलता है जिस समय धनुष टूटने के बाद परशुरामजी महाराज फरसा लिए हुए पधारते हैं और लक्ष्मण से चिढ़ कर कहते हैं:—

"मातु पितहि जनु सोच वश, करसि महीप किशोर।
गरभन के अरभक दलन, परसु मोर अति घोर॥"

लेकिन लक्ष्मणजी हंस कर कहते हैं:—

"इहां कुमड़ बतियां कोउ नाहीं। जो तर्जनी देखि मरि जाहीं॥"

और जब परशुरामजी का पारा किसी तरह से नहीं उतरता तब वे कहते हैं कि:—

"मिले न कबहुं सुभट रण गाढ़े । द्विज देवता घरहिं के बाढ़े ।।"

लक्ष्मणजी की वीरता का तीसरा नमूना हमें उस समय मिलता जब पञ्चवटी में भरतजी के आने की बात सुनकर रामचन्द्रजी के मनमें चिन्ता पैदा होनेसे लक्ष्मणजी को यह आशङ्का होती है कि भरतजी कहीं किसी बुरे उद्देश से तो नहीं आ रहे। अपने उस समय के मनो भावों को उन्होंने नीचे लिखी चौपाई में प्रकट किया है:—

"कहं लगि सहिय रहिय मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ।।"

ऐसा मालूम होता है मानो एक दम कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो! आत्म विश्वास के तो पुतले थे ही । बोले:—

"जौ सहाय कर संकर आई । तौ मारहुं रन राम दुहाई ।।"

दैव के भरोसे के बहाने अपनी कायरता, अपनी अकर्मण्यता और अपनी समस्त हीनता को छिपाने वाले भारतवासी क्या लक्ष्मणजी के इन शब्दों से कोई शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकते :—

"नाथ देव कर कवन भरोसा ।" और

"दैव दैव आलसी पुकारा ।।"

इसी तरह रण में रावण को ललकार उससे कहना कि:—

"रे शठ का मारसि कपि भालू । मोहि बिलोकि तोर मैं कालू ।।"

भी लक्ष्मण जैसे प्रकृतवीर का काम है । 'वीर-सन्देश' और उसके पाठकों के लिए लक्ष्मणजी से अच्छा आदर्श मिलना बहुत कठिन है।

वीर वाक्य

[लेखक—श्रीयुत दिव्य कवि]

डरूं न देख विपुल बाधायें आगे बढ़ कर झेलूंगा;
अग्नी की भीषण लपटों से मैं हंस हंस कर खेलूंगा।
पर्वत के शिखिरों से गिर कर शूली पर चढ़ जाऊंगा;
तप्त तैल की भरी कढ़ाई में हो कर कढ़ जाऊंगा ।।
शूलों की शय्या पर सो कर, सुख से सह लूंगा सब क्लेश ।
किन्तु लजाऊंगा मैं अपना कभी न वर वीरोचित वेश ।।

साहित्य-शास्त्र और वीर-रस

[लेखक—श्रीयुत पं० किशोरीदास जी वाजपेयी शास्त्री]

हम देखते हैं कि रुचि-वैचित्र्य के कारण अर्वाचीन साहित्य शास्त्रियों और कवियों का झुकाव शृंगार की ही ओर अधिक हुआ है और इसी का सबने फिर फिर पिष्ट-पेषण किया है। इतना ही नहीं, किन्तु इस रस में इतना मिठास बढ़ा दिया गया है, कि इसमें कीड़े बज-बजाने लगे और सहृदयों का घृणास्पद सा हो गया है। वास्तव में यह शृंगार रस का दोष नहीं, दोष है–शृंगारी साहित्य-शास्त्रियों और कवियों का। अथवा वे बेचारे भी निर्दोष ही हैं, आप सारे दोष की गठरी भूखे पेट पर लाद सकते हैं। गरीब कवियों को अपने आश्रय दाताओं के मन के झुकाव को परख कर उधर ही चलना पड़ा था। जिस समय हमारी भाषा का काव्य-साहित्य निर्मित हो रहा था, अधिकांश कवियों के आश्रय-दाता मूर्ख, स्त्री-दास और कायर हो गये थे। वे विषय-कीचड़ में इतने फँस गये थे कि, चारों ओर उनको यही-यह दीखता था। उस समय वह उनका गुरु और सखा सचिव था, जो इस ओर का मार्ग बतलावे। मौके के अनुसार कवियों ने हाथ मारा, और "नर्म सचिव" बन बैठे! वे राजाओं को उपदेश देने लगे विविध स्वकीयाओं और परकीयाओं के साथ क्रीड़ाओं का और भेद बतलाने लगे "दूतियों और कुट्टिनियों" के। फिर क्या था? दुराचार इतना फैला कि, पातिव्रत्य को पनाह मिलनी कठिन हो गयी। लोग कहने लगे:—

"इहि मौके पतिव्रत धोकै पियौ"

दूतियों और कुट्टिनियों से घबड़ा कर हितैषी जन कुलबधुओं से सभय होकर कहते थे:—

"भूल न यहि बहिना पने, जब तब वीर विनास।
बचै न बड़ी सबील हू, चील्ह घोंसुआ मास॥"

चारों ओर हाहाकार मच गया था। अन्धकार छा रहा था।

प्रत्येक मत या सम्प्रदाय का काव्य होता है। हम इस युग के साहित्य और काव्य को यदि "वाम-मार्ग" की सम्पत्ति कहें, तो कोई हर्ज नहीं है।

ईश्वर की कृपा से उन दिनों भी इधर उधर कुछ साहित्य-केसरी गर्जना कर रहे थे। उनकी ध्वनि वीर-रस से पूर्ण थी। उनको नायक भी अनुरूप मिल गये थे। काम बन गया था। उन्होंने फिर जो कुछ किया, पाठकों से छिपा नहीं है। आप दोनों श्रेणी के कवियों की कृतियों के परिणामों की तुलना करें और फिर इस बात का विवेचन करें कि, कौन सा रस "रस-राज" है ?

यद्यपि आज-कल साहित्य-जगत् में कुछ परिवर्तन होता देख पड़ता है; परन्तु शोक है कि, साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं की—ऊँचे दर्जे की पत्रिकाओं की—अब भी अधिक प्रवृत्ति उसी शृङ्गार के गारे की ओर है ! यदि आज कवि जनों ने अपना रुख बदल दिया है, वे उधर से दृष्टि हटा चुके हैं, तो इन पत्र पत्रिकाओं में इस रस या विष का व्यञ्जन चित्रों द्वारा ही किया जाता है। प्रायः सभी रंगीन बढ़िया चित्र इसी रस के व्यञ्जक इन में देखने को मिलते हैं।

शृंगार का साहित्य में बेहद अनावश्यक और हानिकर जो बखेड़ा खड़ा किया गया है, उससे संसार रसातल को जाने पर उतारू है। इसे वीरता से रोकना चाहिए। साहित्य के ऐसे ग्रन्थों के बनने की आवश्यकता है, जिनमें वीर-रस का प्राधान्य हो, और इसी के सूक्ष्माति सूक्ष्म भेदों तथा उपभेदों का शास्त्रीय पद्धति से विवेचन हो। यदि किया जाय, तो शृंगार से भी बहुत बढ़ कर इसका विस्तार हो सकता है। पंडित-राज जगन्नाथ अपने रस-गंगाधर में लिखते हैं:—

"वस्तु तस्तु बहवो वीर रसस्य शृंगारस्येव प्रकारा निरूपयितुं शक्यन्ते।"

अर्थात् वास्तव में वीर-रस के भी शृंगार की तरह बहुत से भेद निरूपण किए जा सकते हैं। परन्तु, किए क्यों नहीं ?—"प्राचामनुरोधात्।"

हमें इस बुरी आदत को छोड़ कर सत्साहित्य का निर्माण करना चाहिए, जो हो सकेगा—वीर रस के आश्रय से।

नवयुग का सन्देश

[लेखक—श्रीयुत कर्ण कवि जी]

यही है नवयुग का सन्देश !
कर्म-वीर बन कर तू अपना, पूरा कर उद्देश ॥
यही है नवयुग का सन्देश ॥

*　　*　　*

भंग न हो उत्साह हृदय का ।
झंडा गाड़ स्वधर्म्म विजय का ॥
मार शब्द का मान, भूल मत, गीता का आदेश ।
यही है नवयुग का सन्देश ॥

*　　*　　*

भला विचार सभी का मन से ।
सेवा कर स्वदेश की तन से ॥
जननी देख तुझे हो प्रमुदित, सदा सिंह के वेश ।
यही है नवयुग का सन्देश ॥

*　　*　　*

हाथ न कभी पसार किसी पर ।
मान बनाये रख जीवन भर ॥
सुख, सम्पदा, सुयश चाह तो, कर सन्मार्ग प्रवेश ।
यही है नवयुग का सन्देश ॥

*　　*　　*

हो न विधर्मी एक बन्धु जन ।
"कर्ण" सुरक्षित रहे धरा, धन ॥
करें प्रदान आत्म निर्भयता, भूतनाथ भुवनेश ।
यही है नवयुग का सन्देश ॥

"वीर-सन्देश" पर वीर सन्देश

श्रीमान पं० नाथूराम जी 'शंकर' शर्म्मा ।

शंकर धर्म दिनेश, मोह महातम को हरै ।
सबल 'वीर-सन्देश', साहस भारत में भरै ॥

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा ।

'वीर-सन्देश' के दो अङ्क मिले । निःसन्देह इस ढंग के पत्र की आवश्यकता हिन्दी को थी । आपने जो इस ओर ध्यान दिया है तथा इस त्रुटि को पूर्ति करने का भरसक प्रयत्न किया है उसके लिये आपकी सराहना करते हैं व बधाई देते हैं । पौष के अङ्क में हमें कोई भी लेख ऐसा न मिला जो अनुपयुक्त हो या उपादेयता में कुछ भी कम हो । "बलिदान की वेदी पर" तो सचमुच वीर के ही उपयुक्त है ।

श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा ।

'वीर-सन्देश' के दो अङ्क मिले । पत्र अच्छा निकल रहा है । 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के लक्षण दिखा रहा है । परमात्मा इसे चिरायु और यशस्वी करे । मैं भी कुछ भेजने की चेष्टा करूंगा ।

श्री ला० कन्नोमल जी एम० ए० ।

'वीर-सन्देश' का प्रथम अङ्क मिला, धन्यवाद और बधाई ! पत्रिका बड़ी सुन्दर है । छपाई, कागज और लेख सभी अच्छे हैं । सब से अच्छी और प्रशंसनीय सम्पादन-प्रणाली है । आप बड़े उत्साही और कार्य-कुशल हैं । जिस कार्य को हाथ में लेते हैं उसे पूर्ण सफलता होती है । ईश्वर इस 'वीर-सन्देश' को चिरायु और सफल करे ।

श्री पं० विश्वेश्वरनाथ जी रेऊ साहित्याचार्य ।

'वीर-सन्देश' के प्रथम भाग का दूसरा अङ्क मिला । धन्यवाद! पत्र होनहार है । ऐसे ही सन्देश की इस समय भारत सन्तान को आवश्यकता भी है । आशा है जैसे जैसे पत्र की आयु बढ़ेगी वैसे वैसे इसके वीरत्व भाव की वृद्धि होगी ।

पर बधाई ! और ईश्वर से प्रार्थना है कि नवजात 'वीर-सन्देश' को सुदीर्घ और शक्ति-सम्पन्न जीवन दे जिस से कि वह मुर्दों में भी वीरता की फूँक भर सके !

मैं पत्र के लिये जो कुछ भी कर सकूँगा बड़ी प्रसन्नता से करूंगा।

श्री पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार।

'वीर-सन्देश' का दूसरा अंक भी मुझे मिल गया। यह अंक पहिले से अच्छा रहा। आशा है यह बराबर उन्नति की ओर कदम बढ़ाता रहेगा।

श्री नाथूराम जी प्रेमी।

'वीर-सन्देश' का अंक भी मिल गया, उपकृत हुआ, अच्छा है। सार्वजनिक साहित्य की चर्चा का उद्देश्य ठीक है।

श्री प्रोफेसर मुंशीराम जी शर्मा 'सोम' एम० ए०।

आपके भेजे हुए 'वीर-सन्देश' के दो अंक प्राप्त हुए। धन्यवाद ! आपके पत्र की नीति के साथ मेरी हृदय तंत्री एक हो गई और उसके अन्दर से निम्न तान निकल पड़ी—

अजित हाथों में पलता रहा, वीरता के भर सुन्दर भाव।
राम से रक्षक जिसके रहे, प्रभावित किया पूर्ण पंजाब॥
वही अब पा महेन्द्र सा वीर, प्रकट कर रहा वीर-साहित्य।
शूरता, ध्रुवता, दृढ़ता साथ, दिखाता है जग को लालित्य॥
दासता निशि का हो अवसान, ललिमामय हो व्योम स्वदेश।
जगे स्वाधीन ज्योति फिर यहां, यही है विमल वीर सन्देश॥

मुझे आशा है देश का नवयुक दल आपके 'वीर-सन्देश' से अवश्य लाभान्वित होगा। विद्यार्थियों के लिये तो वीर-सन्देश अतीव उपादेय पत्र है।

साहित्य-रत्न श्री पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ।

देखा 'वीर-सन्देश' सुना वीरों का गर्जन।
साहित्यिक स्वच्छता देखि प्रमुदित मेरा मन॥
कविता ओजस्विनी लेख भी हैं ओजस्वी।
पढ़ वीरों की कथा मुदित हों क्यों न मनस्वी॥
जैसा इसका नाम है वैसा ही सन्देश है।
अक्षर २ में वीरता का ही पूर्ण प्रवेश है॥

ब्राह्मण बोला—परन्तु श्री महाराज मुझे भी तो कोई उपाय बताइये, जिससे मैं कलङ्कित न होऊँ।

राव साहब ने उत्तर दिया—तुम से यही कह सकता हूं, कि अब जो राजकुमार तुम्हारे घर आवे तो उसका बध कर दो !

(४)

ब्राह्मण घर आ कर एक अन्धेरी कोठरी में छुप बैठा। राजकुमार आया और ब्राह्मणी से प्रेम भरी बातें करने लगा और कोई दो ढ़ाई घन्टे तक आनन्द में निमग्न रहा। ब्राह्मण ढाडस बांधे सब कुछ देखता रहा। परन्तु उसकी नसों में मान-रक्षा का रक्त खौल रहा था, क्रोध वश आंखों से खून टपकता था। जब राजकुमार अपनी बुरी वासनाओं को तृप्त करके चलने लगा, तब ब्राह्मण ने पीछे से तलवार का एक ऐसा हाथ दिया कि एक ही हाथ में राजकुमार धराशायी हो गया। ब्राह्मण ने उसके शव को उठाकर चौराहे पर फैंक दिया। घटना रात की थी। प्रातःकाल होने पर राजकुमार का शव लोगों ने देखा। सारे नगर में सनसनी फैल गई, सब ने ब्राह्मण को अपराधी ठहराया और उसे बुरा भला कहने लगे।

(५)

नगर कोतवाल ने ब्राह्मण को बन्दी करके महाराज के न्यायालय में उपस्थित किया और कहा, कि इसने राजकुमार का बध किया है इस लिये इसको भी प्राण-दण्ड दिया जाय। किन्तु राव साहब ने उस ब्राह्मण को निरपराध बताकर सर्वथा मुक्त कर दिया।

जनता एक बड़ी संख्या में मुकद्दमा सुनने और परिणाम देखने आई थी। किसी को आशा न थी, कि राव रतनसिंह इस प्रकार का न्याय करेंगे ! इस लिये ज्यों ही राव रतनसिंह जी ने ब्राह्मण को मुक्त करने की आज्ञा दी, सब लोग दांतों में उँगली दबाने लगे और साधु साधु कहने लगे।

ब्राह्मण पर भी इस न्याय का बड़ा प्रभाव पड़ा। घर जाकर उसने भी अपनी स्त्री का बध कर दिया। इस भांति जहां राव साहब की न्याय की ख्याति चारों ओर फैल गई वहां ब्राह्मण के न्याय और वीरता की प्रसिद्धि भी चारों ओर हो गई।

युद्ध-निमंत्रण

[लेखक—श्रीयुत अध्यापक "वत्सल")

आओ धर्मयुद्ध में वीर !
शतशः विपदाएं सह कर तुम।
अपने प्रण पर दृढ़ रहकर तुम ॥
कर्मक्षेत्र में बढ़ो, सम्हालो अब साहस शमशीर ॥ १ ॥

* * *

क्यों कायर बन कर रोते हो।
आलस शैय्या पर सोते हो ॥
उठो! तोड़दो!! इन्द्रिय-सुख, परवशता की जंजीर ॥ २ ॥

* * *

कर्मठ वीर कभी क्या डरते !
निज सर्वस्व समर्पण करते !!
मर कर कीर्ति समुज्वल करते, हरते जग की पीर ॥ ३ ॥

* * *

उठो ! सत्य बख़्तर दृढ़ कस कर।
दृढ़ता ढाल सम्हालो निज कर ॥
अत्याचार अनर्थ हटाने, चलो बढ़ो रणधीर ॥ ४ ॥

* * *

शीघ्र विजय का नाद सुना दो।
जग में कीर्ति-ध्वजा फहरा दो ॥
अगर मरोगे, सुयश विश्व में पाओगे वर-वीर ॥ ५ ॥

* * *

अगर युद्ध से आप डरोगे।
तो विन आई मौत मरोगे ॥
अतः सम्हालो शस्त्र, बनालो अपना अमर शरीर ॥ ६ ॥

की युद्ध वीरता का अच्छा नमूना है। निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वामी जी की मृत्यु सब भांति वीरता-पूर्ण है और बहुत से वीर ऐसी मृत्यु के लिये उत्सुक बैठे हुए हैं।

पक्षान्तर में जब महाभारत में जयद्रथ आदि सप्तमहारथियों ने अस्त्र लिए हुए भी अभिमन्यु को बध किया था तो भी उस कार्य को नीतिज्ञों ने अनुचित, नीति विरुद्ध और अभद्र कह कर पुकारा था और उसके प्रतीकार के लिए भगवान श्री कृष्ण को भी षड्यन्त्र रचना पड़ा था। उसकी तुलना में इस कार्य्य की नीतिमत्ता, भद्रता और औचित्य तो पासंग भी नहीं ठहरता। एक शस्त्र-हीन, रोग शैय्या पर अशक्त और भीषण रोग के ग्रास पर, सूचना देना तो अलग रहा, प्रत्युत धोखे से प्रहार करना, कायरता ही नहीं—नृशंसता, पाशविकता, पैशाचिकता, हृदय-हीनता एवं अमानुषिकता है।

उस पर इसको वीरता कहने वालों के लिए यदि हम यह कहें कि वे मनुष्य नहीं हैं—हृदय-हीन हैं, स्वार्थान्ध हैं, वे जानते नहीं हैं कि वीरता किसे कहते हैं—तो अनुचित न होगा।

बलि जायेंगे

[लेखक—श्री० पं० गणेशीलाल जी सारस्वत, साहित्योपाध्याय]

जा दिन सों धर्म को प्रचार धाम धाम होइ,
विद्या सों अविद्या के अंधेरे हट जायेंगे।
ब्रह्म बुद्धि भावना ही नाशेगी अनेकता को,
आपस के प्रबल विरोध मिट जायेंगे॥
भाखत 'गणेश' देश देशन में धाक जमै,
तब ही हमारे प्राण प्यारे दिन आयेंगे।
ताही दिन देश को स्वतन्त्रता मिलैगी जबै,
सारे देश वासी देश ही पै बलि जायेंगे॥

आदर्श के लिए

(लेखक—श्री गौरीशंकर जी 'सत्येन्द्र', विशारद)

(१)

पं० विद्याधर जी जैसे सुशील, सच्चरित्र तथा विद्वान् मनुष्य संसार में बहुत कम देखने में आते हैं। आप आदर्शवादी मनुष्य थे, जो मनुष्य आदर्श अथवा सिद्धान्तों को अव्यवहारिक समझते हैं, उनसे पंडित जी की नहीं पटती थी। ऐसी ही शिक्षा आप अपने विद्यार्थियों को दिया करते थे। यद्यपि कभी २ उनका व्याख्यान सुनते सुनते विद्यार्थीगण उकता जाते थे तथापि उनके हृदयों पर पंडित जी का जैसा अधिकार था वैसा और किसी अध्यापक का न था।

एक दिन विद्यार्थियों के साथ सत्य के विषय में बातचीत हो रही थी—सत्य के नाम से ही पंडित जी गद्गद् हो गए। आपका हृदय फड़का, और आपने वीरोचित शब्दों में कहा, "सत्यमेव जयते। सत्यवक्ता की अंत में सर्वदा विजय होती है। उस पर विपत्ति नहीं आती। सत्यशील सर्वदा सुखी है—यह पत्थर की लकीर समझो!" प्रेमनिधि ने विनम्र स्वर में पूछा, "गुरो! यदि सत्यवादी पर कहीं विपत्ति आही पड़े तो क्या आप बचालेंगे?"

"अवश्य, अवश्य, अवश्य!" मेज पर हाथ मारते हुए गुरू जी ने विद्यार्थी को विश्वास दिलाया—"यदि मुझे सत्यवादी पर अत्याचार होने का पता चल जाय तो मैं प्राण पण से उसकी सहायता करने का यत्न करूंगा"।

घंटा बजा। विद्यार्थीगण चले गए। पंडित जी अपने उद्गारों पर विचार करने लगे। "बलिदान करदूंगा, सत्यशील सर्वदा सुखी" उनके कर्ण-कुहर में ये शब्द गूंजने लगे।

❀　❀　❀

(२)

यंग मैन्स क्लब और हाईस्कूल में आज क्रिकिट मैच होने वाला है। सब की धारणा थी कि आज का मैच बड़ा दिलचस्प होगा, कारण कि क्लब का 'फाइनल लीग' में सम्मिलित होना इसी मैच पर निर्भर था। दर्शकों से स्थान भर रहा था। पंडित जी भी आज मैच देखने आए और प्रेमनिधि के पास, जो कि स्कूल पक्ष का गणक (स्कोरर) था, कुर्सी डाल कर बैठ गए। मैच आरम्भ हुआ। एक खिलाड़ी आउट, दूसरा आउट। इसी प्रकार मैच समाप्ति पर आ गया। खेलने वाला अंतिम पक्ष क्लब था। स्कूल के ३०९ रन हो चुके थे। यंग मैन्स क्लब के ९ खिलाड़ी खेल चुके थे और अभी केवल २७५ ही रन हो पाए थे। क्लब वालों के चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं, फिर भी वह कहते थे "अजी अब क्या है, अब तो जीत हुई समझो, यह आखिरी जोड़ा ही बड़ा खिलाड़ी है........।" गणकों ने हिसाब लगाया, प्रेमनिधि ने कहा—"क्लब के रन अभी २९९ ही हुए हैं।" क्लब के स्कोरर ने टोकते हुए कहा—"नहीं ३१९ हो चुके हैं" पंडित जी प्रेमनिधि के पास ही बैठे हुए थे, उसने उनकी सौम्य मूर्ति की ओर देखा और शान्ति के साथ उत्तर दिया. "महाशय! आप भूल कर रहे हैं!" इसी समय मैच समाप्त हो गया। खिलाड़ी तथा दर्शकगण फल जानने के लिए उत्सुक हो उठे। प्रेमनिधि ने कहा "क्लब १० रन से हार गया।" कैप्टेन ने अपने गणक से बातें की और गुस्से में भर प्रेमनिधि से कहा "तुम झूठ बोलते हो हमारा क्लब १० रन से जीता है।" प्रेमनिधि के चेहरे का रंग पलटा, उसने पंडित जी की ओर पुनः देखा और क्रोध को दबाते हुए कैप्टेन को समझाया कि "यह ठीक नहीं है, आप ज़रा सोच समझ कर बातें कीजिए।" कैप्टेन साहब कब मानने वाले थे, तड़क कर बोले—"समझ कर क्या बोलें, तुमने सरासर बेईमानी करके २० रन घटाए हैं।" प्रेमनिधि का साथी जगधर पास ही बैठा हुआ था उससे न सहा गया और भर्राई हुई आवाज़ से बोला "देखते नहीं तुमने ही तो सरासर बेईमानी की है, ये साफ दो बाउंड्रियां तुम्हारे स्कोरर ने ज्यादा चढ़ा

ली हैं।" बात बढ़ी। पंडितजी ने शान्ति स्थापन करने की लाख चेष्टा की किन्तु क्लब के खिलाड़ी मरने मारने पर तुले हुए थे। उन्होंने प्रेमनिधि से कहा—"या तो हमारे २० रन बढ़ा कर हार मानो, नहीं तो अच्छा न होगा।" पंडित जी के सच्चे शिष्य प्रेमनिधि से ऐसा झूठ कार्य कैसे हो सकता था ! उसने पंडित जी के तेज-मय मुख मंडल की ओर देखकर दृढ़ता से उत्तर दिया—"ऐसा नहीं हो सकता, मैंने ठीक और सच लिखा है, मैं कदापि झूठ नहीं लिख सकता।" कैप्टेन का चेहरा बदनामी की आशंका से तमतमा गया, उसने हाथ में बल्ला सम्हाला और प्रेमनिधि को मारने के लिए उसे बढ़ाया। प्रेमनिधि काँप गया, पंडित जी पर से उसका विश्वास हटने लगा। उसकी आंखें मुंद गईं। बल्ला गिरा—कैप्टेन अवाक् रह गया—बल्ला गिरा। 'सत्यमेव जयति' की एक क्षीण ध्वनि हुई और प्रेम-निधि के कानों में किसी के भूतलशायी होने का शब्द सुन पड़ा। वह पसीने में नहा गया, आंखें खोल उसने बगल की कुर्सी को देखा—पंडितजी न थे—कुर्सी खाली थी पंडित जी के उस दिन के शब्द उसके मस्तिष्क में घूमने लगे। शिष्य और सत्य के प्रति पंडित जी का यह कर्त्तव्य—वीरता पूर्ण कर्तव्य ! उसे रोमाञ्च हो आया। उसकी आंखों में जल भर आया उसने भी मन्द स्वर में कहा—"सत्यमेव जयति।"—एक घटना हुई संसार के इतिहास के लिए विचित्र—एकदम नई......।

हम नहीं मौत से डरते हैं।
रण में हँस हँस कर मरते हैं॥
हम परसुराम के कुल के हैं, क्यों रण में पीठ दिखायेंगे।
हम भीम युधिष्ठिर हनूमान का कैसे नाम डुबायेंगे॥
जब तोप धड़ाधड़ तड़केगी।
दुशमन की छाती धड़केगी॥
हम जायेंगे हम जायेंगे, 'विभु' भारी जंग मचायेंगे।
रण जीतेंगे, जग जीतेंगे, भारत का मान बढ़ायेंगे॥

साहित्य-रत्न पं० श्री कृष्णदत्तजी पालीवाल एम० ए०, सम्पादक "सैनिक"

तीस करोड़ भेड़ों के इस नामर्द मुल्क को जितना 'वीर-सन्देश' सुनाया जाय उतना ही अच्छा है। इस दृष्टि से हिन्दी पाठकों को 'वीर-सन्देश' देने का शुभ संकल्प करने के लिये श्रीयुत महेन्द्र को मैं हृदय से बधाई देता हूँ। 'वीर-सन्देश' के अब तक जितने अङ्क मेरे देखने में आये सब सुपाठ्य और एक से एक बढ़कर हैं। आशा है 'वीर-सन्देश' इसी तरह उत्तरोत्तर उन्नति करता रहेगा। यदि वह मरणासन्न बुड्ढे भारत में तनिक भी वीरता का संचार कर सके तो इसका उद्देश्य पूर्णतया सफल समझिये।

नवरत्न श्री पं० गिरिधर जी शर्मा, काव्यालङ्कार।

'वीर-सन्देश' निकाला, बहुत अच्छा किया। मैं इसको देखता हूं और प्रसन्न होता हूँ, आपके उत्साह की सराहना करता हूँ और आशा करता हूं कि इसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होवे।

कविरत्न श्री पं० जगन्नाथ जी मिश्र 'कमल'

यह पत्र 'वीर-रस' प्रधान है। इसके लेख भी अधिकतर इसी सम्बन्ध के हैं। हमारे देश में आजकल ऐसे पत्रों का निकलना सामान्य की बात है। इसके निकालने का ढंग मनोहर एवं चित्ताकर्षक है। सम्पादन कम भी अच्छा है। वीरता का शंख फूकने के लिये आजकल कई पत्र साहित्य क्षेत्र में उतरे हैं किन्तु उनमें मुझे यह पत्र कहीं उत्तम जान पड़ा। मैं सम्पादक और प्रकाशक दोनों ही को तहेदिल से दाद देता हूं और आशा करता हूं वे इस पत्र को दिनों दिन और अधिक उन्नत बनाने की चेष्टा करते रहेंगे।

श्री पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी।

'वीर-सन्देश' अपने सम्पादक की निःस्वार्थ सेवा, कथक परिश्रम और अनुकरणीय लगन का परिचायक है। यद्यपि सम्पादक महोदय अधिक संख्या में उच्च कोटि के लेख प्राप्त नहीं कर सके (और आरम्भ में ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती) तथापि जो लेख उन्होंने प्रकाशित किये हैं वे सुपाठ्य और उपदेश-प्रद हैं।

श्रीमती विद्याधरी जौहरी, विशारदा।

'वीर-सन्देश' वास्तव में एक वीरत्व-पूर्ण मासिक पत्र है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका एक २ लेख, कविता तथा चित्र मानव-हृदय में वीरत्व का संचार करने वाले हैं। हमें आशा है कि 'वीर-सन्देश' वीर-रस के प्रचार में अपने ढंग का एक निराला पत्र होगा और अपने उद्देश्य की पूर्ति में सदा तत्पर रहेगा।

श्री अवधेश उपाध्याय।

'वीर-सन्देश' वीर-रस प्रधान सचित्र, साहित्यिक पत्र है। परंतु इसमें खोज तथा आलोचनात्मक लेख भी रहते हैं। हिन्दी में एक ऐसे पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी। मेरा पूर्ण विश्वास है कि 'वीर-सन्देश' इस कमी की पूर्ति करेगा। छपाई सुन्दर है और इसका सम्पादन योग्यता के साथ होता है।

श्री पं० मुरलीधर बाजपेयी बी० ए०।

'वीर-सन्देश' का प्रथमाङ्क जिस उत्तम रीति से निकला है उससे यह विदित होता है कि वह भविष्य में उत्तरोत्तर वृद्धि तथा उन्नति प्राप्त करेगा। वास्तव में एक ऐसे पत्र की आवश्यकता थी। हिन्दी-संसार को इस ढंग के पत्रों का सम्मान करना चाहिये। आशा है कि महेन्द्र जैसे कार्यदक्ष, साहसी, उत्साह-सम्पन्न, सुयोग्य तथा सहृदय सम्पादक के सम्पादकत्व में यह पत्र हिन्दी संसार की सेवा करने में पूर्णतया सफल होगा।

श्री पी० सी० नाहर, एम० ए०, बी० एल०।

"कविकीर्तन" "वीर-विलास" आदि विषय बड़े ही उपयोगी हैं। श्रीमान् तिवारी जी का "आदर्श युद्ध-वीरता" का लेख बड़ा ही रोचक है। पूर्वीय और पाश्चात्य भावों का अपूर्व समावेश सराहनीय हुआ है। आशा है कि लेखक महाशय के ऐसे ही लेख आगामी अङ्कों में भी प्रकाशित होते रहेंगे।

श्रीयुत विद्याभूषण जी 'विभु'।

'वीर-सन्देश' मिला। अनेक धन्यवाद! मैं ऐसे पत्र की चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहा था। आपने साहित्य की एक बड़ी कमी को पूरा किया। इस युग में ऐसे वीर-रस प्लावित सुन्दर साहित्यिक पत्रों की बहुत आवश्यकता है। आशा है यह

पत्र जातीय-भाव जाग्रत कर देश का कल्याण करेगा। ईश्वर करे इसका घर २ प्रचार हो ताकि भारतवर्ष में वीर शिवाजी और भूषण फिर उत्पन्न हों।

श्री कर्ण कवि जी।

आपका 'वीर-सन्देश' अच्छा निकल रहा है।

श्री पं० भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी।

'वीर-सन्देश' वास्तव में अच्छा निकला। इसमें साहित्यिक सामग्री के साथ २ राष्ट्रीय भावों की छाप है। और इसलिये यह पत्र अपने नाम को सार्थक करने में अवश्य सफल होगा। हर्ष की बात है कि इस विषय में सफल हो भी रहा है। प्रथम अङ्क से द्वितीय अङ्क अच्छा निकला। हम हृदय से इसकी उन्नति चाहते हैं। इस उद्योग के लिये बधाई।

श्री० पं० अनूप शर्मा बी० ए०, एल० टी०।

'वीर-सन्देश' एक मनोहर मासिक पत्र है। इस समय साधारणतया भारतवर्ष को और विशेषतया हिन्दू जाति को वीरत्व संचित करने की आवश्यकता है और मैं आशा करता हूँ कि 'वीर-सन्देश' को प्रत्येक हिन्दी भाषा भाषी के कानों तक पहुँचायेगा।

श्रीयुत हज़ारीलाल जी जैन बी० ए०, एल-एल० बी०।

आपका भेजा हुआ 'वीर-सन्देश' का प्रथमाङ्क पढ़ा। लेख और कविताओं की रचना देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्री विश्वम्भरनाथ जी खत्री।

आप का कृपा पत्र मिला, 'वीर-सन्देश' भी मिला। धन्यवाद! पढ़ कर चित्त प्रसन्न हुआ, पत्र आगरे से निकला है इस से और भी प्रसन्नता हुई। मैं भी आगरे का ही रहने वाला हूं।

कविवर श्री कन्हैयालाल जी जैन।

वास्तव में मुझे आपका लेख तथा कवितादि का चुनाव बड़ा पसन्द आया और बहुत सुरुचिपूर्ण मालूम हुआ। मैं आप के पत्र को प्यार करता हूं। ईश्वर इसे चिरायु करे।

श्री रमाशंकर जी शुक्ल 'हृदय'।

'वीर-सन्देश' के दर्शन हुए। जिस उद्देश्य को ले कर आप कार्यक्षेत्र में आए हैं उसकी इस समय आवश्यकता थी। प्रथमांक देख कर मुझे प्रसन्नता हुई। पत्र का रंग ढंग अच्छा है। आशा है इसके द्वारा सत्साहित्य का प्रचार होगा। मैं सदैव पत्र की सेवा के लिये तत्पर हूँ। लेखादि भेजूँगा।

वाणिज्य-भूषण सेठ लालचन्द जी सेठी।

लेखों का चुनाव और छपाई, सफाई अच्छी है। साथ ही पत्र की नीति भी उत्तम है।

श्रद्धेय बा० कामताप्रसाद जी जैन, संपादक "वीर"।

'वीर-सन्देश' के दर्शन करके हर्ष हुआ। जैसी बाह्याकृति सुन्दर है वैसे ही आभ्यन्तर में भी रसमई बनाने का प्रयत्न किया गया है।

श्री लक्ष्मीसहाय जी माथुर।

आपके सन्देश का प्रथमांक ही उसकी भावी उन्नति का द्योतक है।

गोस्वामी श्री पं० ब्रजनाथ जी शर्मा, सारस्वत।

भारतीय जनता की रगों में शुद्ध प्राय रक्त को पुनः उत्तेजित और परिचालित करने के लिये उनके अतीत गौरव का स्मरण दिलाने का आपने यह बहुत सुन्दर और सुगम मार्ग निकाला है। आपने यह पत्र निकाल कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है।

श्री किशोरीदासजी वाजपेयी, शास्त्री।

'वीर-सन्देश' अपने विषय का देश में एक ही सब से पहिला पत्र है। साहित्य-क्षेत्र में ऐसे एक पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी। आशा है, इस से साहित्य-संसार में भारी क्रांति के साथ युगान्तर उत्पन्न होगा। पत्र की अन्तरंग और बहिरङ्ग सब प्रकार की उन्नति हम हृदय से चाहते हैं।

श्री चतुर्वेदी उमरावसिंह जी पांडेय।

ऐसे साहित्यिक-पत्र की अतीव आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति महेन्द्र जी ने करके हिन्दी साहित्य का अनुपम उपकार किया।

श्री पं० अजितकुमार जी शास्त्री, सम्पादक "जैन गजट"।

आप जो साहित्य सेवा कर रहे हैं, उसके लिये धन्यवाद है।

वीर वाजी-प्रभु

(ऐतिहासिक दृश्य)

[लेखक—श्रीयुत पं० बुद्धिनाथ जी शर्म्मा]

धर्म पालन से स्वर्ग की प्राप्ति होती है किन्तु जननी जन्म-भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है, इसीलिए धर्मोपदेश में देश-भक्ति को उच्च स्थान प्राप्त है। देश भक्ति से वंचित मनुष्य जयचन्द की तरह विश्वासघाती बन जाता है।

धन्य है वह मनुष्य जो निज देश रक्षा के निमित्त अपने प्राणों की आहुति देता है। ऐसे वीर का जितना गुण-गान किया जाय थोड़ा है। यहां हम एक ऐसे ही वीर की कथा सुनाते हैं जिसने अपने जीवन को देश के लिए अर्पण कर दिया था।

दक्षिण में बीजापुर राज्य यावनी-सत्ता से पूर्ण था, बहुत से दुगरा, महाराष्ट्रीय-वीर उनके आधीन थे जिन में रोहिड़ा दुर्ग के अधिपति अपने पराक्रम, वल, शौर्य्य और कर्त्तव्य-परायणता में अद्वितीय थे। इन्हीं गुणों से मुग्ध हो सुलतान ने उनको देश-पांड़े की पदवी से विभूषित करके ५२ गांवों की जागीर प्रदान की थी। इन्हीं के सुपुत्र वाजी-प्रभु देश-पांड़े अपने पिता के तुल्य वीर और पराक्रमी थे। काल चक्र से जब आपके पिता का स्वर्गवास हो गया—तो बीजापुर से आप ही उस गढ़ के अधिपति बनाये गये।

महाराष्ट्र का उत्थान काल था, वीरवर महाराज शिवाजी ने देश-रक्षा हित तलवार ग्रहण की थी और अनेक दुर्ग हस्तगत करने में तत्पर थे। एक दिन महाराज ने रोहिड़ा दुर्ग पर भी आक्रमण किया। वाजी-प्रभु ने दुर्ग रक्षार्थ शिवाजी को वह पराक्रम दिखाया कि महाराज विजय प्राप्त न कर सके। शिवाजी वीर थे, अतः वीर का आदर करना उनका स्वाभाविक गुण था। उन्होंने सोचा कि ऐसा वीर मेरा मित्र हो जाय तो मुझे बड़ी सहायता मिले।

रात का समय पाकर महाराज दुर्ग पर चढ़ गये, और एकान्त स्थान में बाजी प्रभु से मिले। शिवाजी ने कहा—वीर तुम्हें धन्य है! तुम्हारी शक्ति को भी धन्य है! किन्तु इस शक्ति का दुरुपयोग क्यों करते हो? तुम्हारी जन्म-भूमि के प्रति इन विधर्मियों ने क्या २ अत्याचार नहीं किए? इनके दिए हुए त्रास से लाखों कुटुम्ब आर्त्तनाद कर रहे हैं, बहिनों और माताओं का धर्म नष्ट किया जा रहा है, गौ वंश पर आततायियों की तलवार नृत्य कर रही है, देव प्रतिमाएँ और मन्दिर भ्रष्ट किए जा रहे हैं। तुम यह सब देखते हुए भी चुप हो, सुख की नींद ले रहे हो। सोचो कि जिन पर आज इन विधर्मियों द्वारा समस्त अत्याचार हो रहे हैं वह हमीं तुम हैं, हमारे तुम्हारे पुरखाओं का ही उन में रक्त है। क्या अपने भाइयों के प्रति तुम्हारा कुछ कर्तव्य नहीं? यदि है, तो इस दास्य-शृंखला को तोड़ कर सच्चे वीर की उपाधि ग्रहण करो और अपनी जन्म-भूमि को स्वतन्त्र कर दो।

मैं जानता हूं कि तुम अपने स्वामी के प्रति स्वामि-भक्ति का परिचय दे रहे हो। किन्तु सोचो, जो स्वामी अपने आश्रित जनों को दुःख देने ही में अपने को कृतकृत्य जानता हो, स्वार्थ वश परमार्थ को तिलांजली दे चुका हो, क्या स्वामी होने योग्य है? कभी नहीं! यदि अपनी माता और बहिनों पर किये हुए अत्याचारों से तुम्हारा हृदय द्रवीभूत होता है तो आओ मेरा साथ दो और इन दुष्ट दुराचारियों को देश से बाहर कर स्वतंत्रता का उपभोग करो।

बाजी-प्रभु विद्वान और सदाचारी तो थे ही शिवाजी के उपदेश से उन की आंखें खुल गईं। बोलेः—

महाराज क्षमा कीजिये आज से ऐसा नहीं करूंगा। माता भवानी की साक्षी दे कर मैं प्रण करता हूं कि आज से मेरी यह तलवार विधर्मी शत्रुओं का दमन करने में सदैव अग्रसर रहेगी और मेरा क्षण-भंगुर शरीर मेरी मातृ-भूमि के उद्धार हेतु ही पतन होगा।

महाराज ने देश-पांडे को छाती से लगा लिया और बोले:—वीर, मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है, तुम अपनी शपथ का पूरा ध्यान रक्खोगे। बाजी-प्रभु ने दुर्ग की चाबी शिवाजी को दे दी और विधर्मी दस्युओं का दासत्व छोड़कर एक सच्चे देश सेवक की भांति महाराज का साथ ग्रहण किया। शिवाजी महाराज ने आपको सेनापति के पद पर नियत करके आपका यथोचित सत्कार किया।

जब रोहिड़ा दुर्ग के पतन का समाचार बीजापुर पहुंचा तो सुलतान ने क्षुब्ध होकर अफजलखां सेनापति को शिवाजी के दबाने के लिये भेजा। परन्तु वह शीघ्र ही मारा गया। इस समाचार से बीजापुर में सनसनी फैल गई और अफजल खां के पुत्र फाजिल मुहम्मद ने अपने पितृहन्ता से बदला लेने के लिये अगाध सैन्य लेकर पन्हालगढ़ के दुर्ग में शिवाजी को जा घेरा। यह घेरा चार मास तक रहा किन्तु जब शिवाजी ने देखा कि इसी प्रकार घेरा रहने से भूखों मरना पड़ेगा तो वहां से निकलने का उपाय सोचने लगे।

एक रात्रि को ४००० वीर मरहठे लेकर शिवाजी महाराज मुसलमानी सेना को चीरते फाड़ते रांगणा दुर्ग की ओर अग्रसर हुए। जब फाजिल मोहम्मद को यह ज्ञात हुआ तो उसने महाराज का पीछा किया। महाराष्ट्रीय सेना रात्रि की यात्रा से क्लान्त हो एक पहाड़ी घाटी में विश्राम लेना चाहती थी। जब उसने सुना कि बीजापुर की सेना पीछा करती हुई बहुत पास आगई है तो उसी जगह ठहर कर युद्ध करना निश्चय किया। क्योंकि रांगणा दुर्ग अभी दूर था और यह घाटी युद्ध के लिए बहुत उपयुक्त थी।

शिवाजी ने अपने सैनिकों को पुकारकर कहा—वीरो आज समय है कि हम इन देश द्रोहियों को अपनी भुजाओं के बल को दिखा दें और बता दें कि कोपित सिंहों का सामना करना खेल नहीं है।

समस्त सेना एक लिंग की जय बोल कर शत्रु पक्ष पर टूट पड़ी और घमासान मचा दिया। निडर महाराष्ट्रीय वीरों ने तुर्कों की अधिक

सैन्य का कुछ ध्यान न किया और इस योग्यता और उत्साह से धावा किया कि तुर्क सैना के सैनिक घबराने लगे।

समस्त घाटी रक्त रंजित हो गई किन्तु तुर्कों की विपुल सेना राशि में महाराष्ट्रीय अल्प संख्यक वीर विलीन होने लगे और विजय की आशा निराशा में बदल गई। तब बाजी-प्रभु ने महाराज शिवाजी से नम्रता पूर्वक कहा:—महाराज देश को आपकी आवश्यकता है यदि दैवात आपका शरीर पात हुआ तो देश पर फिर काले बादल छा जायँगे। आर्य जाति का जो प्रातःकाल दृष्टि गोचर होने लगा है, वह बिना ही मध्यान्ह के सायंकाल में परिणत हो जायगा इसलिये आप इन चुने हुये वीरों के साथ रांगणा दुर्ग की ओर पधारिये और अपने सकुशल पहुँचने के समाचार मुझे देने के लिये ५ तोपें छुड़वाइये। मैं शपथ पूर्वक आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपके पहुँचने तक इसी घाटी में अपने इन २००० वीरों से यावनी सैना की गति का अवरोध करूंगा। यदि परमात्मा की कृपा हुई तो शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर मातृ-भूमि की सेवा निमित्त सकुशल आकर आपकी चरण रज को सिर पर धारण करूंगा अन्यथा रण भूमि में जाति सेवा हित प्राणाहुति देकर स्वर्ग की राह लूंगा। अब देर का समय नहीं है, जल्दी कीजिये।

वीर-शिरोमणि शिवाजी इस सम्मति के विरुद्ध थे किन्तु अपने रण-बांकुरे वीर के परामर्श और जाति सेवक वीरों के आग्रह की उपेक्षा न कर सके और कुछ वीरों को लेकर रांगणा दुर्ग की ओर चल दिये। इधर वीर बाजी-प्रभु मातृ भूमि का ऋण चुकाने को उपस्थित हो गये, और अपने २००० सैनिकों में से ६० सैनिकों को लेकर घाटी के मुहाने पर जा डटे। शेष सैनिकों को यथा स्थान छिपा दिया। घमसान युद्ध छिड़ गया और रक्त की सरिता बहने लगी। बाजी प्रभु के कई घाव लगे पर वीर उनसे क्या विचलित हो सकता था? द्विगुण उत्साह से शत्रुओं को गिराते हुआ अपनी सैना का उत्साह बढ़ाने लगे। अपने नायक के उत्साह से उत्साहित हो मरहठे वीरों ने वह पराक्रम दिखाया कि निज

सेना की विशेष हानि होती देख फाजिल मोहम्मद किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। बाजी-प्रभु का समस्त शरीर घावों से जर्जरित हो रहा था, किन्तु उज्वल मुख उसी प्रकार प्रकाशमय था। उसे ध्यान था तो यही कि मेरे सैनिक हतोत्साह न हों, चिन्ता थी तो यही कि शिवाजी महाराज के रांगणा दुर्ग में पहुंचने का समाचार नहीं मिला। बाजी-प्रभु तुम धन्य हो ! और धन्य है उन सच्चे सेवकों को जो मृत्यु को आलिंगन करते हुये प्राणों की आहुति देने पर अड़े हुये थे। यकायक पांच बार अररडड धांय का शब्द कर्ण-गोचर हुआ, बाजी-प्रभु की समग्र चिंता दूर हुई। उसने अपनी सेना को वीरोचित उपदेश देकर सुख पूर्वक सदैव के लिए आंखें बन्द करलीं। अपने वीर नेता की अन्तिम आज्ञा सुनकर महाराष्ट्रीय सेना ने हर २ महादेव की जयकार करते हुये भीम विक्रम से धावा कर दिया। थोड़ी देर में शत्रु सैन्य के पैर उखड़ गये और वह परास्त होकर लौट गई। विजय लक्ष्मी महाराज शिवाजी के हाथ रही, पर वीर बाजीप्रभु की मृत्यु घटना से महाराज को बड़ा दुःख हुआ।

देश-बन्धुओं को

[लेखक—नवरत्न श्री पं० गिरिधर जी शर्मा, काव्यालङ्कार]

आक्षेप[१] किये मिटे विरोध[२] ये असम्भव[३] है,
रूपक[४] का यामें यामें का विशेष[५] लाओगे।
असंगति[६] छोड़ो छोड़ो विषम[७] विषाद[८] हेतु[९],
दृष्टान्त[१०] खोटो दिये अनन्वय†[११] कहाओगे॥
तजिके विकल्प[१२] अल्प[१३] सूक्ष्म[१४] तो समाधि[१५] गहो,
अन्योन्य[१६] ह्वै भ्रान्तिमान[१७] लेश[१८] ना सुहाओगे।
कै कै काका उल्लेख[१९], नीति कहूं काव्यालङ्कार*,
ललित[२०] बोले अनुगुण[२१] उल्लास[२२] पाओगे॥

नोट १—२२ तक की संख्या जिन पर लिखी हैं वे सब अलंकारों के नाम हैं।

†—अन्वय नहीं पाने वाले – बेमेल=भले नहीं – अदेखे, आभिजात्य हीन।

*—काव्यालंकारों में=कवि की उपाधि।

कवि-कीर्तन

पंडित टोडरमल जी

[लेखक—श्री न हजारीलाल जी जैन बी० ए०, एल एल० बी० वकील]

'वीर-सन्देश' के गताङ्कों में एक दो जैन कवियों के बारे में कुछ दिग्दर्शन कराया गया है। हम भी यहां पर १८ वीं शताब्दी के समुज्वल गद्य लेखक पं० टोडरमल जी का कुछ परिचय कराते हैं।

पं० टोडरमल जी का जन्म लगभग विक्रम संवत १७९३ ई० में हुआ था! आप जयपुर के रहने वाले खण्डेलवाल दिगम्बर जैन थे, जिसका परिचय आपने 'लब्धि क्षपण सार' में इस प्रकार किया है:—

"नाम धर्यो तिन हरषित होई। 'टोडरमल्ल' कहैं सब कोय॥"

\+ \+ \+

"देश ढूंढा हृदमांहि महान। नगर सवाई 'जयपुर' थान॥"

सुनते हैं जयपुर राज्य के दीवान अमरचंद्र जी ने आपको अपने पास रखकर विद्याध्ययन कराया था। बचपन से ही आप बड़े चतुर, परिश्रमी, विद्याप्रेमी, सरल स्वभावी और शांत प्रकृति के मनुष्य थे।

"१५-१६ वर्ष की ही अवस्था से आपने ग्रंथों का लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपकी रचना से जैन समाज में तत्त्वज्ञान का बन्द हुआ प्रवाह फिर से बहने लगा। जहां कर्म फिलासफी की चर्चा करना केवल संस्कृत प्राकृत के विद्वानों के हिस्से में था, वहां आपकी कृपा से साधारण हिंदी जानने वाले लोग भी कर्म तत्त्वों के विद्वान् बनने लगे। केवल ३२ वर्ष की अवस्था में आप इतना काम कर गए कि सुनकर आश्चर्य होता है"

आपके रचित प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रंथ 'श्री गोमट्टसार जी की

वचनिका', 'त्रैलोक्यसार वचनिका', 'आत्मानुशासन वचनिका', 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय की टीका', 'मोक्षमार्ग प्रकाश' और 'धर्म मर्म पूर्ण चिट्ठी' है।

संसार में यदि अध्यवसाय, परिश्रम और एकाग्रचित्तता का दृष्टान्त लेना हो तो पं० टोडरमल जी से लीजिये। आपके बारे में यह कथा प्रसिद्ध है कि गोमट्टसार जी की वचनिका आप श्री जिनमंदिर जी में ही लिखा करते थे। सिर्फ भोजन के लिए घर आते और फिर मंदिर जी को चले जाते। एक प्रकार से उन्होंने घर से उदासीन वृत्ति धारण करली थी। आपकी मा ने दाल में नमक डालना छोड़ दिया। पंडितजी प्रति दिन भोजन कर जायें पर उन्हें यह न मालूम हो कि आज दाल में नमक डाला गया है या नहीं। ग्रन्थ समाप्त होने के दिन जब वे भोजन करने आये तो माता जी से पूछने लगे—मा! आज तैंने दाल में नमक नहीं डाला है क्या? मा ने उत्तर दिया, लल्ला! मालूम होता है आज तेरा कोई काम खतम हो गया है। पं० जी ने विस्मित हो कर पूछा—मा! तैंने यह कैसे जाना? मा ने कहा—बेटा! आज मैं करीब डेढ़ महीने से दाल में नमक नहीं डाल रही हूं, तैंने आज तक नहीं टोका, तू अपने किसी काम में इतना दत्त-चित्त था कि तुझे अपने भोजन पान का भी होशहवास न था। आज तेरे टोकने से मैं समझ गई कि तू आज निश्चिन्त है। इसी से मैं जान गई कि तेरा कोई कठिन काम समाप्त हो गया है। पंडितजी ने कहा—माता जी! आपका अनुमान बिलकुल सत्य है। कितना अद्भुत परिश्रम है! लगन हो तो ऐसी हो! हिन्दी भाषा प्रेमी आज आपकी रचनाओं को पढ़ कर आत्म शुद्धि करने का प्रयत्न करेंगे और इसके लिए सदा आपके ऋणी रहेंगे।

अब हम यहाँ पंडित जी द्वारा रचित मुख्य मुख्य ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय देते हैं:—

(१) श्री गोमट्टसार जी की वचनिका—इसमें क्षपणासार और लब्धिसार भी शामिल हैं। इसकी श्लोक संख्या लगभग ४५ हजार के

वीर-सन्देश पर

सहयोगियों की सम्मतियां

विश्वमित्र, कलकत्ता।

हम अपने नये सहयोगी की उद्देश्य सफलता चाहते हैं।

उत्कर्ष, आगरा।

प्रत्येक हिन्दी हितैषी को ग्राहक बनकर सहायता करनी चाहिये।

श्री वैंकटेश्वर-समाचार, बम्बई।

लेख और कविताएं अच्छी हैं। हम सहयोगी की सफलता चाहते हैं।

विवेक, प्रयाग।

कविताएं और लेख भिन्न भिन्न विषयों पर हैं। सम्पादकीय टिप्पणियां गम्भीर हैं। पत्र होनहार जान पड़ता है।

भ्रमर, बरेली।

हमारे सन्मुख प्रथम वर्ष का प्रथम अंक है। आरम्भ में वीर-श्रेष्ठ शिवाजी का एकरंगा चित्र है। लेखों और कविताओं का चुनाव अच्छा है। हम सहयोगी का हृदय से स्वागत करते हैं।

दिगम्बर जैन, सूरत।

कार्तिक से प्रकट होने वाले इस नवीन शैली के मासिक पत्र में अनेक भूतपूर्व वीर-रत्नों की जीवनी प्रकट होती है जो जैन अजैन सभी को पढ़ने योग्य हैं। यह नवीन मासिक-पत्र अवश्य मंगाना चाहिए।

जैन-मित्र, सूरत।

इसका पहिला ही अंक प्राप्त हुआ, ४० सफों का यह पत्र सुन्दर टाइप व कागज व ढंग तथा उपयोगी लेखों से अलंकृत है। आशा होती है कि इसके द्वारा गद्य तथा पद्य जैन-हिन्दी-साहित्य का भारत में प्रकाश होगा।

वर्तमान, कानपुर।

लेख सुपाठ्य और सन्तोषदायक हैं। स्वामी नारायणानन्द जी की प्रथम कविता बहुत अच्छी है। ब्रह्मचारी 'भद्र' की 'हल्दीघाटी का युद्ध' रचना वीरतापूर्ण है।

छपाई, सफ़ाई भी अच्छी है। हिन्दी भाषा-भाषियों को पत्र के उत्साही संपादक के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होना चाहिये।

हिन्दू-पंच, कलकत्ता।

एकदम "अप-टू-डेट" साहित्यिक मासिक-पत्र है। इसके सम्पादक आगरे के प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी श्रीयुत महेन्द्र हैं। इसमें केवल वीर-रस के लेख और कविताएं छपती हैं। अब तक ३ अंक निकल चुके हैं, जो एक-से-एक बढ़े-चढ़े हैं। हम इस पत्र का सादर स्वागत करते और इसकी मङ्गल-कामना करते हैं।

महारथी, देहली।

पत्र होनहार प्रतीत होता है। इस में वीर-रस की प्रधानता दी गई है। आरम्भ में एक सादा चित्र भी है। आगरा जैसे साहित्य-प्रिय नगर में एक उच्च कोटि के पत्र की परम आवश्यकता है। यदि यह पत्र सरस्वती और लक्ष्मी के झगड़ों से मुक्त रहा तो सम्भव है कि भविष्य में उस अभाव की पूर्ति कर सके।

राजपूत, आगरा।

कविताएं उत्तेजक तथा मनोरंजक हैं। लेख भी चित्ताकर्षक एवं गंभीर हैं। सम्पादन योग्यता तथा परिश्रमपूर्वक किया गया है। पत्र ने थोड़े से काल में ही पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। अतः होनहार प्रतीत होता है! हम इसके संचालकों के शुभ प्रयत्न को देख कर इसकी हार्दिक उन्नति चाहते हैं और इसके दीर्घायु होने की शुभ कामना करते हैं।

देश, पटना।

पत्र का सम्पादन एक अच्छे ढर्रे पर किया गया है। यथा नाम तथा गुण को चरितार्थ करने की बहुत कुछ कोशिश की गई है। कविताएं भी वीर रस से परिप्लावित हैं। लेखों का संग्रह भी अच्छी रीति से किया गया है। यदि सम्पादक महोदय अपने साहस और परिश्रम को इसी प्रकार कायम रक्खेंगे तो 'वीर-सन्देश' की उन्नति होनी निश्चय है।

समालोचक, सागर।

'वीर-सन्देश' के दो अङ्क हमारे सामने हैं। छपाई, सफ़ाई उत्तम। महारानी लक्ष्मीबाई का चित्र हृदय में वीर-रस पैदा किये बगैर नहीं रहता। इस मासिक पत्र-

में कई लेखकों के लेख बहुत ही ऊँचे हैं। खासकर महारानी लक्ष्मीबाई का जीवन-चरित्र और शायरी का शरबत दिल को फड़का देता है। हिन्दी-प्रेमियों को अवश्य इस 'वीर-सन्देश' को बुलाना चाहिए।

मनोरमा, प्रयाग।

इस पत्र का दूसरा अङ्क हमारे सामने है। इसमें लेख, कविता सब मिला कर १६ हैं। इसमें खोज और आलोचना-सम्बन्धी लेख भी हैं। कविताएँ भी बड़ी सुन्दर हैं। वास्तव में यह पत्र वीर-रस प्रधान, सचित्र, साहित्यिक मासिक पत्र है। हम चाहते हैं कि लोग इसका आदर करें। श्रीयुत महेन्द्र जी योग्य और लगन वाले आदमी हैं। हम चाहते हैं—ऐसे पत्र उन्नति करें। छपाई, सफाई अच्छी है। प्रारंभ में महारानी लक्ष्मीबाई का चित्र भी है।

तरुण-राजस्थान, अजमेर।

यह पत्र हाल ही में निकलने लगा है! पत्र के सम्पादक श्री महेन्द्र जी उत्साही नवयुवक हैं और मातृ-भाषा और देश-प्रेम उनमें काफ़ी तादाद में मौजूद है। सम्पादन कार्य के भी वे पुराने अनुभवी हैं। सन्देश द्वारा वे साहित्य के सभी अङ्गों पर प्रकाश डालना चाहते हैं। आशा है सहयोगी हिन्दी-संसार की समुचित सेवा करने में समर्थ सिद्ध होगा। पत्र विशेषतः साहित्यिक होगा, इसलिए साहित्य-प्रेमियों, खासकर साहित्यशाला के विद्यार्थियों को इसे अपनाना चाहिए।

सैनिक, आगरा।

श्रीयुत महेन्द्र जी उत्साही और देश-प्रेमी नवयुवक हैं। हिन्दी के प्रति आपका उत्कट अनुराग भी सराहनीय है। हमारा अनुमान है कि आपके सम्पादन में 'वीर-सन्देश' एक उच्च कोटि का पत्र बन कर आगरे के एक भारी अभाव की पूर्ति में सहायक हो सकेगा। यह अङ्क यद्यपि बहुत शीघ्रता में प्रकाशित किया गया है किन्तु फिर भी सम्पादन योग्यता के साथ हुआ है और सम्पादकीय वक्तव्य में पत्र में हिन्दी-साहित्य के जिन विविध अङ्गों पर प्रकाश डालने की योजना उपस्थित की गई है, उस से पता लगता है कि पत्र साहित्य के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। हम सहयोगी की उन्नति के हृदय से इच्छुक हैं। हिन्दी-प्रेमियों को इसे विशेष रूप से अपना कर संचालकों को उत्साहित करना चाहिए।

हो है। बहुरि यहां काल दोष तें बुद्धयादिक के तुच्छ होने करि संस्कृतादि ज्ञान रहित घने जीव हैं। तिनिके इस ग्रंथ के अर्थ का ज्ञान होने के अर्थ भाषा टीका करिये है।"

अन्त में आप लिखते हैं:—

'इहां परजंत जीवकाण्ड की है मरजाद,
या के अर्थ जाने निज काज सब सुधरे।
निजमति अनुसारि अर्थ गहि टोडर हू
भाषा बनाई यातें अर्थ गहो सगरे॥'

कर्मकाण्ड—इसमें कर्मों की प्रकृतियों का विस्तृत वर्णन है। जैन धर्म की कर्म फिलासफी बड़ी गहन और मनन करने योग्य है। इसका आदि मंगलाचरण इस प्रकार है:—

'परम भाग सब खंडि कें, करमकाण्ड समुदाय।
सहज अखंडित ज्ञानमय, जयवंत जिनराय॥
विघन हरन मंगल करन, नमौं सिद्ध सुखकार।
नेमचंद जिन जगतपति, साधु वचन गुनधार॥'

लब्धिसार और क्षपणासार—ये दोनों ग्रन्थ श्री गोमट्टसार जी के ही परिशिष्ट भाग हैं। इनमें पांच लब्धियों और कर्म प्रकृतियों के क्षय करने के सम्बन्ध में अच्छा वर्णन किया है। लब्धिसार संस्कृत की टीका के आधार पर लिखा गया है पर क्षपणासार की संस्कृत टीका उपलब्ध नहीं थी इसलिए—"माधव चंद्र त्रैविध देव का बनाया हुआ जो स्वतंत्र ग्रन्थ क्षपणासार है उसी के आधार पर क्षपणासार की हिन्दी टीका लिखी गई है।"
इसका मंगलाचरण इस प्रकार है:—

'नेमिचंद आल्हादकर, माधवचंद प्रधान।
नमों जास उजास तें, जाने निज गुण थान॥
लब्धिसार कौं पायकैं, करि कें क्षपणासार।
हो है प्रवचनसार सो, समयसार अविकार॥'

इनकी भाषा कैसी थी इसका भी नमूना लीजिये। इसी मंगलाचरण के उपरान्त आप लिखते हैं:—

"ऐसे मंगलाचरण करि लब्धिसार के सूत्रनिका भाषा रूप व्याख्यान करिए हैं ताका प्रयोजन कहा सो कहिए हैः—

श्री गोमट्टसार शास्त्र विषें जीव-काण्ड, कर्म-काण्ड, अधिकारनिकरि जीव अरु कर्म का स्वरूप प्रगट किया ताकों यथार्थ जानि मोक्षमार्ग विषे प्रवर्तना। जातें आत्महित मोक्ष है तिस ही के अर्थ विवेकी जीवन का उपाय है.........ऐसा प्रयोजन विचार उद्यम किया तब हम मंत्रादि रचना सहित लब्धिसार नाम शास्त्र का मूल 'गाथानिकर' एक पुस्तक देखा तहां तिन औपशमिक सम्यक्त्वादिकनिका विशेष वर्णन जानि तिनि गाथानिका भाषारूप व्याख्यान करने का विचार भया।"

इस प्रकार यह महा ग्रन्थ विक्रम सं० १८१८ में सम्पूर्ण हुआ जैसा कि 'ग्रन्थ प्रशस्ति वर्णन' में लिखा हैः—

'या विधि गोमट्टसार लब्धिसार ग्रन्थनि की भिन्न २ भाषा टीका कीनी अर्थ गाय कै।'

\+ + +

'संवत्सर अष्टादश युक्त। अष्टादश शत लौकिक युक्त॥
माघ शुक्ल पंचम दिन होत। भयो ग्रंथ पूरन उद्योत॥'

इस महान ग्रन्थ में पण्डित जी ने भिन्न, दशमलव, त्रैराशिक, रेखागणित और बीज गणित के प्रश्नों को हल करने के प्रचलित कायदों से भी सरल कायदे बतलाए हैं, इससे मालूम होता है कि उनको गणित का बहुत अभ्यास था।

(२) मोक्ष-मार्ग-प्रकाशक—यह ग्रन्थ अधूरा है। आप इसको पूर्ण करने ही न पाए थे कि अचानक आपका स्वर्गवास हो गया। "यह बिलकुल स्वतंत्र है। गद्य हिन्दी में जैनों का यही एक ग्रंथ है जो तात्त्विक हो कर भी स्वतंत्र लिखा गया है। इसे पढ़ने से मालूम होता है कि यदि टोडरमल जी वृद्धावस्था तक जीते तो जैन-साहित्य को अनेक अपूर्व रत्नों से अलंकृत कर जाते"—इसमें संसार, नर्क आदि का दुःख वर्णन और मोक्ष प्राप्ति के उपायों का दर्शन अत्यन्त सरल भाषा में दृष्टान्तों द्वारा कराया है।

(५) पुरुषार्थसिद्धिउपाय—यह प्राकृत का ग्रन्थ है इसमें आचार वगैरह का अच्छा वर्णन है। पण्डितजी ने अनेक दृष्टान्तों द्वारा एक एक श्लोक को बहुत अच्छा समझाया है यह अधूरा रह गया था किन्तु सं० १८२७ में पं० दौलतरामजी ने इसकी पूर्ति करदी है।

(६) धर्ममर्म पूर्ण चिट्ठी—यह उपदेश पूर्ण चिट्ठी आपने मुल्तान के पंचों को भेजी थी। इसे छोटीसी पुस्तिका समझिए।

ऊपर जो दृष्टान्त दिए गए हैं उनसे पाठकों को मालूम होगया होगा कि पंडितजी की भाषा जयपुरी थी, भाषामें जोर था और हृदय-स्पर्शी थी। इसी भाषा को और इन्हीं भावों को यदि आप खड़ी बोली में लिखना चाहें तो आप देखेंगे कि वैसा असर नहीं बैठ सकता। सम्भव है इसका कारण यह हो कि पं० टोडरमलजी की आत्मा का प्रतिबिम्ब उनके एक एक अक्षर में निहित है। यही नहीं कि आप गद्य में ही पारंगत हों। पाठकों ने पद्यों की भी रचना देख ली। इनसे पता लगता है कि आप पद्य भी साधारणतया अच्छा बना सकते थे। बस पण्डित जी के पद्य का एक नमूना और लिख कर इस लेख को समाप्त करते हैं।

"मैं हौं जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरौ,
लग्यो है अनादि तैं कलङ्क कर्म मल कौ।
ताही कौ निमित्त पाय रागादिक भाव भए,
भयो है शरीर कौ मिलाप जैसे खल कौ।
रागादिक भावनि कौं पाय कै निमित्त फुनि,
होत कर्म बन्ध ऐसो है बनाव कल कौ।
ऐसे ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग,
बनै तौ बनै यहां उपाय निज थल कौ।"

नोट:—श्री जैनकुमार सभा आगरा के प्रधान मन्त्री श्री बाबूलालजी पाटनी ने पण्डितजी की सब पुस्तकें देकर हमें इस लेख के लिखने में बड़ी सहायता दी है, अतएव हम आपके आभारी हैं।

—लेखक।

नव-विकास

[लेखक—श्रीयुत कन्हैयालाल जैन]

नवल रूप में—

हुआ पुनः अवतीर्ण

कलेवर जीर्ण छोड़ विस्तीर्ण गगन में नूतन तारा एक,
चमकता उज्ज्वलतर हो पुनः सुधा-वर्षा की धारें टेक,
दूर करता निशि की कालिमा,
दिखाता छटा-ललित लालिमा,
मार्ग था यदपि कण्टकाकीर्ण—किन्तु वह
हुआ पुनः अवतीर्ण।

मनोहर वेश—

मन्द मृदु हास

हास में पतित काल के ग्रास जनों को दिखलाता आलोक,
भँवर में पड़ी घूमती नौकाओं को दिये सहारा, रोक,
निराशा में आशा सञ्चार,
पाप में करता पुण्य-प्रचार,
किया उसने निज नव्य विकास—मनोहर वेश
मन्द मृदु-हास।

ज्योति देखी—

फिर जागा देश

अलौकिक वेश-अशेष लिये सञ्जीवनि निधि वसुधा को सींच
भरे देता स्वर्लोक को लोक लोक में शक्ति अपरिमित खींच—
बहाता मधुर सुधा-रस-धार,
चुआता हुआ स्वर्ग का प्यार
आगया पुनः 'वीर-सन्देश'—ज्योति देखी
फिर जागा देश।

पटुआखाली सत्याग्रह संग्राम

पाँच महीने से बंगाल प्रान्तान्तर्गत बारीसाल जिले के एक छोटे से स्थान पटुआखाली में हिन्दुओं का सरकार से सत्याग्रह संग्राम चल रहा है। इस संग्राम में प्रति दिन चार हिन्दू युवक सैनिक बन कर वीरता के साथ युद्ध क्षेत्र में जाते हैं और हँसते हँसते सरकार के जेलखानों को आबाद करते हैं। इस प्रकार अब तक ५०० से अधिक वीर इस संग्राम में सम्मिलित हो चुके हैं।

पटुआखाली छोटा स्थान है और वहां मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं से क़रीब क़रीब दस गुनी अधिक है, फिर भी जिस वीरता से हिन्दुओं ने यह संग्राम छेड़ कर अब तक उसका संचालन किया है उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

संग्राम का कारण साधारण होते हुए भी बड़ा महत्वपूर्ण है। वह है बाजे का प्रश्न। सार्वजनिक रास्तों से बाजे बजाकर निकलना जनता का साधारण अधिकार है। पहले कभी यह प्रश्न छिड़ा ही न था। तब भी नहीं जब भारत के अधिकारी अलाउद्दीन और औरंगजेब जैसे धर्मान्ध यवन बादशाह थे। अंग्रेजों की डेढ़ सौ वर्ष की अमलदारी में भी यह सवाल अभी तीन चार वर्ष से ही छिड़ा है।

सरकार स्वयं कहती है:–"इस बात का कोई सबूत नहीं मिलता कि मस्जिदों के सामने बाजा बन्द कर देने की प्रथा आमतौर पर मान्य *समझी जाती हो।" फिर भी वह चाहती है कि हिन्दू मस्जिद के सामने* ही नहीं उससे कुछ दूर तक बाजा न बजावें–उस मस्जिद के सामने भी बाजा न बजावें जिसमें निमाज़ नहीं पढ़ी जाती। यह पक्षपात नहीं तो और क्या है? मुसल्मान सरे आम हिन्दुओं के मकानों के पास गौकुशी करें सरकार चुप देखती रहे पर हिन्दू बाजा बजाते हुए निकलें तो पकड़ लिए जायँ। पक्षपात का इससे अच्छा प्रमाण और क्या होगा? गौकुशी

पर सरकार एक शब्द भी विरोध का न कहे और झगड़े की जड़ शान्ति प्रिय हिन्दुओं को बतावे तो बताइए हम कैसे न कहें कि सरकार मुसल्मानों से डरती है और हिन्दुओं को दबाना चाहती है।

इसका प्रतीकार क्या हो सकता था? क्या वह जो बड़े बड़े नेताओं की लीलाभूमि प्रयाग में हुआ? रामलीला बन्द करके घर में बैठ रहे! नहीं। यह तो कायरता थी। हम जब तक अपने अधिकारों के लिए मरना न सीखेंगे, हमें अधिकार न मिलेंगे। पटुआखाली के हिन्दुओं ने क्या किया? वही जो एक आत्मभिमानी, अधिकार प्रिय वीर कर सकता था। सत्याग्रह शुरू हो गया। हिन्दू चार चार की टोली बनाकर प्रति दिन बाजा बजाते हुए निषेध स्थान से निकलने लगे और प्रति दिन गिरफ्तार होने लगे। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, डेढ़ सौ दिन से ऊपर होने आए, सरकार अपने पशु बल पर और वीर सैनिक अपने आत्म बल पर विश्वास रख कर संग्राम चला रहे हैं।

यह युद्ध, यह संग्राम पटुआखाली तक ही सीमित नहीं है। इसका प्रभाव भारत के कोने कोने पर पड़ेगा। यही कारण है कि वीर प्रसू हिन्दू जाति के युवक भारत के सभी स्थानों से पटुआखाली जाने को प्रस्तुत हैं। अनेक सैनिक बनकर पटुआखाली पहुंच चुके हैं, अनेकों जाने को तैयार हैं और आवश्यकता रही तो हजारों नहीं लाखों वीर और तैयार हो जायेंगे।

सरकार समझ ले और मुसल्मान भी कान खोल कर सुनलें कि हिन्दू अब सो नहीं रहे हैं। संगठन ने उन्हें जाग्रत कर दिया है और समय की थपेड़ उनमें उत्साह पैदा कर रही है। अब इस सिंह को छेड़ने में किसी का भला न होगा। इसलिए हम कहते हैं कि सरकार न्याय पथ पर आवे और मुसल्मान अपना होश संभालें इसी में उनकी भलाई है! रहे हिन्दू सो वे यह विश्वास रक्खें कि संसार के इतिहास में एक भी ऐसा संग्राम नहीं हुआ जिसमें सत्याग्रहियों को विजय न मिली हो।

विविध विषय

१—वीर भावों की संसृष्टि—

'वीर-सन्देश' के तीन अङ्क निकल चुकने पर हमें यह अनुभव हो रहा है कि वास्तव में देश में एक ऐसे पत्र की आवश्यकता थी, और बड़ी भारी आवश्यकता थी। इस बीच में कोई शताधिक सम्मान्य सज्जनों की, सुप्रसिद्ध साहित्य सेवियों की, सम्मतियां हमें प्राप्त हुई हैं और सभी ने 'वीर-सन्देश' का स्वागत मुक्त कण्ठ से किया है। सभी ने एक महती आवश्यकता की पूर्ति होना बताया है। किन्तु हमारा विचार यह है कि हिन्दी संसार जिस परिमाण में वीर-सन्देश का इच्छुक है उस परिमाण में 'वीर-सन्देश' उसकी पूर्ति नहीं कर सकता। उसकी आंशिक पूर्ति करने के लिए 'सन्देश' का जन्म हुआ है और यथाशक्ति उसी की पूर्ति करने में संलग्न रहेगा।

इस अवसर पर हम हिन्दी के ख्यातिमान लेखकों से यह निवेदन करना चाहते हैं कि हमारे उद्देश्य की सफलता उन्हीं की सहायता और सहयोग पर निर्भर है। बराबर प्रयत्न करने पर भी अभी तक हम ऐसे लेख संग्रह नहीं कर सके हैं जैसे हम चाहते हैं। हमें वीर भावों से पूर्ण कहानियों और वैसे ही अन्य लेखों की आवश्यकता है। लेख यथा संभव छोटे होने चाहिये। बड़े लेखों को छापना अभी 'सन्देश' के छोटे आकार में सम्भव नहीं। कविताओं की अपेक्षा गद्य लेखों में वीर-भाव पैदा करना अधिक कठिन है। यह रस-सिद्ध प्रसिद्ध लेखकों के ही भाग में आता है अतएव हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे कृपा कर 'सन्देश'

के उपयुक्त और समय की गति के अनुकूल लेख लिखने का कष्ट उठावें जिसमें वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति के साथ साथ साहित्य के एक आवश्यक अङ्ग की भी पुष्टि हो।

२—भावी समर और भारत—

स्वार्थ संसार में पाप, दुराचार और अत्याचार का जनक होता है। जब तक अंग्रेजों को उनके स्वार्थ साधन करने में चीनी लोग मदद देते रहे तब तक अंग्रेज चुप रहे और धीरे धीरे चीन में अपना पंजा फैलाते गए। पर जब चीन की आंखें खुलीं और उन्होंने अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों की ओर दृष्टिपात किया तभी अंग्रेजों की भौंहों पर बल पड़ने लगे और चीनियों की स्वातन्त्र्य-प्रियता उन्हें खलने लगी। यही कारण है कि आज चीन और अंग्रेजों में युद्ध की तैयारियां शुरू हो गई हैं।

यह युद्ध वास्तव में पाप युद्ध है। किसी व्यक्ति या राष्ट्र को अधिकार नहीं कि दूसरे के घर या राज्य में बिना उसके मालिक की सम्मति और स्वीकारता के रहे। अंग्रेजों के बढ़ते हुए अत्याचारों और अनाचारों से दुखी होकर चीन वाले चाहते हैं कि अंग्रेज अपने घर का रास्ता लें या नई शर्तें करके चीनी नियमों का पालन करते हुए चीन में रहें। अंग्रेज इसी बात से बिगड़ कर युद्ध करने पर उतारू हो गए हैं और अमेरिका, जर्मन, फ्रांस और जापान आदि को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा कर रहे हैं। पर अभी तक कोई भी राष्ट्र अंग्रेजों को मदद देने को तैयार नहीं। हां चीन के साथ सहानुभूति सभी दिखा रहे हैं। रूस तो पूरा मददगार है ही, जर्मनी का भी कुछ ऐसा ही रुख है। अमेरिका फिर से संधि करने को तैयार है। उधर अंग्रेजों के निज प्रदेश आस्ट्रेलिया तक ने मदद देने से इंकार कर दिया है। इतना सब कुछ होते हुए भी मदान्ध अंग्रेज चीन से युद्ध छेड़ने को उतावले हो रहे हैं। फौजें और जंगी जहाज चीन को रवाना हो गए हैं और हो रहे हैं।

सब से बड़ी दुःख की बात है कि इस पाप में भारत को शामिल

करना। भारत पराधीन है, फिर भी वह इस बात का विरोध कर रहा है कि भारतीय सेनाएं चीन न भेजी जावें। हम जानते हैं कि सरकार जनता की बात को सुनती नहीं तब भी भारत के नेताओं और जनता को सरकार की इस कृति का खुले रूप से जोर के साथ विरोध करना चाहिए।

३—महात्मा जी का हिन्दी प्रेम—

गुजराती भाषी होते हुए भी, अंग्रेजी के प्रकाण्ड पंडित और यशस्वी लेखक होते हुए भी महात्मा गांधी को जितना प्रेम राष्ट्र-भाषा हिन्दी से है उतना और किसी से नहीं। महात्मा जी जैसे उदार-मना संसार मान्य देश नेता के लिए यह है भी स्वाभाविक। 'हिन्दी नवजीवन' में हाल ही में आपने झरिया में दिए गए अंग्रेजी अभिनन्दन-पत्र के सम्बन्ध में लिखते हुए कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जो अंग्रेजी प्रेमी नेताओं और अन्य महानुभावों की आंखें खोल देंगी। हम उन वाक्यों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते:—

"अगर वह मेरी खातिर अंगरेजी में लिखा गया था तो यह बिलकुल बेजरूरी था। मान पत्र बँगला में लिखा जा सकता था और मेरे लिये उसका हिन्दी अनुवाद या अंगरेजी भी तैयार करा लिया जा सकता था। मगर उन श्रोताओं पर अंगरेजी का प्रहार करना उनका अपमान करना था। मैं उम्मेद करता हूं कि वे दिन आ रहे हैं जब कभी किसी सभा की कारवाई किसी ऐसी भाषा में होवे जिसे अधिकांश लोग नहीं जानते हों तो वे सभा से उठ कर चल देंगे।" + + +

"अभिनन्दन-पत्र अपने अपने प्रान्त की भाषाओं में होने चाहिए और मेरे समझने के लिए उनके हिन्दी अनुवाद होने चाहिए। मैंने द्राविड देश के लिए हमेशा छूट दी है और जब कभी उन्होंने चाहा है, अपना भाषण अंगरेजी में ही किया है। मगर मैं यह सोचता हूं कि अब वह समय आ गया है जब उन्हें बड़ी सार्वजनिक सभाओं के लिए अंगरेजी का आसरा छोड़ देना चाहिए। सच पूछो तो हिन्दी सीखना इनकार करके हमारे अंगरेजी दां नेता ही जन समूहों में हमारी शीघ्र प्रगति

के रास्ते में रोड़े अटका रहे हैं। हिन्दी तो द्राविड़ देशों में भी ३ महीने के भीतर भीतर अगर ३ घन्टे रोज समय दिया जाय तो सीख ली जा सकती है।" + + +

"हिन्दी को न सीखने का कोई भी बहाना सिवाय आलस्य या अनिच्छा के हो नहीं सकता।"

४—आगरा विश्वविद्यालय—

हिन्दी प्रधान युक्त-प्रान्त में चार विश्व-विद्यालय पहले से हैं— प्रयाग, काशी, लखनऊ और अलीगढ़। अब जुलाई १९२७ से आगरा विश्व-विद्यालय और खुल जावेगा। प्रयाग विश्व-विद्यालय में अब एम० ए० की परीक्षा हिन्दी में भी होने लगी है, काशी का भी द्वार खुला हुआ है, लखनऊ ने प्रारंभ ही से इतना कर दिया है। रहा अलीगढ़ सो वह अधिकतर मुसलमानों के लिए है। इस प्रकार इन चारों विश्व-विद्यालयों में अभी तक हिन्दी के लिए कोई विशेष काम नहीं हो रहा है। जब संयुक्त प्रान्त की यह हालत है, जो हिन्दी का गढ़ कहा जा सकता है, तब और प्रान्तों से क्या आशा की जा सकती है। यही सब सोच कर हम कहते हैं कि आगरा विश्व-विद्यालय में हिन्दी के लिए कुछ विशेषता होनी चाहिए और होनी चाहिए इसके लिए अभी से कोशिस।

हिन्दी साहित्य के सूर सूरदास आगरे में हुए हैं पर उनके जीवन का कुछ भी हाल किसी को नहीं मालूम। न उनके पदों का ही पूरा २ पता लगता है। कितना जरूरी काम है! कौन करे? विश्व-विद्यालय के अतिरिक्त खोज कराने वाली कोई और उपयुक्त संस्था हो सकती है?

सभी विश्व-विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। होना चाहिए हिन्दी। अगर उसके लिए अच्छी पुस्तकों का अभाव है तो उस की पूर्ति कौन करेगा? जब तब अच्छी पुस्तकों को आश्रय मिलने का कोई स्थान न होगा तब तक कौन उन्हें लिखने और प्रकाशित करने का साहस कर सकता है? यह सब प्रश्न हैं जिन पर गंभीरता से विचार

करके इस बात का उद्योग प्रत्येक युक्त-प्रान्त वासी को करना चाहिए कि आगरा विश्व-विद्यालय में हिन्दी को उचित स्थान मिले और ऐसे लोग उसकी सीनेट और सिन्डीकेट में पहुंचे जो वास्तव में हिन्दी के प्रेमी हों।

५--सरकार का शुभ संकल्प—

युक्त-प्रान्तीय सरकार ने हिन्दी और उर्दू साहित्य की उन्नति करने के लिये एक परिषद् की स्थापना की है जिसमें सरकार द्वारा मनोनीति तीस सदस्य, 'एक्स-ऑफिसियो' छः सदस्य और परिषद् द्वारा मनोनीति छः सदस्य होंगे। इसके सभापति सर तेज बहादुर सप्रू और प्र० मन्त्री डाक्टर ताराचन्द बनाए गए हैं। प्रथम तीन वर्षों के लिए जो तीस सदस्य सरकार ने मनोनीति किए हैं उनमें श्री अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, श्री श्यामसुन्दरदास जी बी० ए०, पण्डित रामनारायणजी मिश्र, पंडित श्यामबिहारी जी मिश्र, पं० श्रीधर पाठक, श्री रत्नाकरजी, पं० बदरीनाथ जी भट्ट, श्री धारेन्द्र वर्म्मा, पं० शिवाधरजी पांडेय, डाक्टर बैनीप्रसादजी और श्री प्रेमचन्द जैसे हिन्दी के प्रख्यात लेखक और साहित्य सेवी भी हैं। अतएव हम निस्संकोच कह सकते हैं कि इसके द्वारा हिन्दी का अवश्य ही हित साधन होगा। इसके व्यय के लिए सरकार ने पचीस हजार रुपया भी देना निश्चित कर लिया है। आशा है आगे भी प्रति वर्ष वह इतना ही रुपया देगी। परिषद् वर्ष में दो बार बैठा करेगी। सरकार परिषद् की एक कार्य समिति भी चुनेगी जिसमें परिषद् के सात सदस्य होंगे। यही समिति परिषद् का समस्त कार्य संचालन करेगी। परिषद् के उद्देश्यों की व्याख्या सरकार ने निम्न भांति की है:—

"(१) विषय विशेष पर अच्छी पुस्तक लिखने वाले को (प्रतिद्वन्द्विता के हिसाब से) पुरस्कार देना।

(२) वैतनिक अनुवादकों से हिन्दी और उर्दू में पुस्तकों का अनुवाद कराना और उन्हें परिषद् की ओर से प्रकाशित करना।

(३) विश्वविद्यालयों तथा साहित्य संस्थाओं को आर्थिक सहा-

यता देकर या अन्य प्रकार से मौलिक वा अनुवाद हिन्दी और उर्दू ग्रन्थ लिखाने का उत्तेजन देना।

(४) अच्छे अच्छे लेखकों को परिषद का सदस्य बनाना।

६—भरतपुर सम्मेलन—

भरतपुर सम्मेलन के सभापति और तिथियों का निर्णय अभी तक नहीं हुआ। सभापतित्व के लिए बड़ौदा नरेश से प्रार्थना की गई थी, पर उन्होंने शायद अस्वीकार कर दिया। फिर शायद उन से प्रार्थना की गई है। क्या उत्तर रहा? पता नहीं। स्वागत समिति सभापति का निर्णय हो जाने पर तिथि निश्चित करना चाहती है। २६ फरवरी से ४ मार्च तक की जो तिथियां प्रकाशित की गई थीं वे अभी अनिश्चित ही हैं, ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में अब निर्णय बहुत ही शीघ्र हो जाना चाहिए। हिन्दी संसार इसके जानने के लिए उत्सुक ही नहीं व्यग्र हो रहा है।

गतांक में हमने कुछ सूचनाएं दी थीं, इस बार पुनः हम उन पर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। भरतपुर में जाकर जो कुछ हमने देखा और सुना है उसके आधार पर हम इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि सम्मेलन-सप्ताह वास्तव में बड़ी शान शौकत, धूम धाम और चहल पहल से व्यतीत होगा। तैय्यारियां ही ऐसी हो रही हैं। पर वास्तविक सफलता मिलने में हमें अभी कुछ सन्देह है, कारण भरतपुर में कार्य-कर्ताओं की कमी है। पं० बालकृष्ण जी दुबे खूब काम कर रहे हैं पर तब भी उन्हें राज्य कार्य करना पड़ता है। श्रीमान अधिकारी जी को रात दिन इसी की चिन्ता है पर उनके सिर भी बहुत काम हैं। अच्छा हो यदि सम्मेलन के प्रेमी कुछ हिन्दी हितैषी सज्जन भरतपुर पहुंच कर आप को सहायता दें। यह अवश्य प्रसन्नता की बात है कि भरतपुर महाराज स्वयं सम्मेलन के काम में बड़ी दिलचस्पी दिखा रहे हैं। यदि ढंग से काम हुआ और दोनों ओर का पूरा ख्याल रक्खा गया तो हमारा अनुमान है कि भरतपुर सम्मेलन ऐसा होगा जैसा न हुआ न हो।

७--सम्पादक सम्मेलन—

गत वर्ष वृन्दावन में हिन्दी सम्पादकों का एक सम्मेलन हुआ था। सभापति थे "आज" के यशस्वी सम्पादक श्री पराड़कर जी। पराड़कर जी का व्याख्यान बहुत विवेचना पूर्ण, मार्मिक और सम्पादक सम्मेलन के सभापति के अनुरूप था। आपने उसमें अनेकों बातें सम्पादकों के मतलब की बताई थीं। उसी समय इस सम्मेलन को स्थायी रूप देने को एक समिति बनी थी जिसके संयोजक थे श्री पं० नरदेव जी शास्त्री। शास्त्री जी ने बहुत परिश्रम से सम्मेलन का कार्य किया और उन्हें उसमें कुछ सफलता भी मिली। अब आपने अस्वस्थ रहने के कारण यह पद त्याग कर पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी को संयोजक बनाया है। चतुर्वेदी जी वास्तव में इस पद के सर्वथा उपयुक्त हैं। सम्पादक का सब से महत्व पूर्ण काम है फायल रखना। चतुर्वेदी जी के यहां जिस सुन्दर ढंग से फायलें रक्खी जाती हैं, वह हिन्दी सम्पादकों के लिए आदर्श हो सकता है। आप प्रचार करने वाले भी गजब के हैं। हम तो समझते हैं कि आप इस फन में यकता हैं। सम्पादन कला के भी आप ज्ञाता हैं। आशा है आप के संचालन में सम्पादक सम्मेलन अवश्य सफलता प्राप्त करेगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ भरतपुर में सम्पादक सम्मेलन भी होगा। हम आशा करते हैं कि हिन्दी पत्र सम्पादक इसे सफल बनाने की चेष्टा करेंगे। इस सम्मेलन के सभापतित्व के लिए श्री पं० अम्बिका-प्रसाद जी बाजपेयी का नाम लिया जा रहा है। हम इसका पूर्ण रूप से समर्थन करते हैं। वास्तव में इस पद के लिए इस समय आप ही सब से अधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं। यदि आप सभापति हुए तो हम समझते हैं कि सम्मेलन को अच्छी सफलता मिल जावेगी। आशा है कि आप स्वीकार भी कर लेंगे। यदि आप किसी कारण सभापति न बनना चाहें तो फिर श्रीमान लक्ष्मीनारायण जी गर्दे सभापति बनाए जायँ। गर्देजी भी इस पद के सर्वथा योग्य हैं।

८--उपहार और पुरस्कार—

'वीर-सन्देश' के लिए उत्तम और उपयोगी लेख लिखने के लिए आमंत्रण देते समय हम यह सूचना और देना चाहते हैं कि वर्ष भर में प्रकाशित सर्वोत्तम कविता पर २५) का पुरस्कार देना हमारे एक मित्र ने स्वीकार किया है। दो उत्तम लेखों पर एक एक रजत पदक देना स्थानीय नागरी-प्रचारिणी सभा ने स्वीकार किया है। यहां हम कहानियों के लिए ५०) पुरस्कार रूप में देने की घोषणा और करते हैं। कहानियाँ वीर भावों से ओत प्रोत होनी चाहिए, 'सन्देश' के ५-७ पृष्ठ से अधिक न होनी चाहिये और हमें फरवरी १९२७ के अंत तक मिल जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त हम यह भी सूचित कर देना चाहते हैं कि उत्तम लेखों पर यदि लेखक स्वीकार करें तो हम पारिश्रमिक भी देते हैं।

जिज्ञासा और समाधान

पूर्व जिज्ञासाओं के उत्तर

राजा लक्ष्मणसिंह कृत मेघदूत

राजा साहब के मेघदूत के द्वितीय संस्करण की एक प्रति मेरे स्मरण में आगरा नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में थी। इस पुस्तकालय की पुस्तकें कचहरीघाट के हिन्दी पुस्तकालय में भेज दी गई थीं और अब श्री हकीम ज्ञानसिंहजी के घर पर हैं। उनके यहां तलाश करने से मिल सकेगी।

—अन्वेषक

बाबा कान्हरदासजी

बाबा कान्हरदासजी मन्सादेवी गोकुलपुरा आगरा में अपने मंदिर में रहा करते थे। उनके वंशज अब भी यहां रहते हैं। बाबाजी ने अनेक राग रागिनियों में बहुत से पद श्री राम और श्री कृष्ण के जीवन के सम्बन्ध में लिखे थे जो बड़े ही भाव पूर्ण और मनोहर हैं। गान विद्या में आप बहुत प्रवीण थे। इनके वंशज सदा आगरे के मुख्य २ मंदिरों में कीर्तन करते थे और इन्हीं के पद हर उत्सव पर गाते थे आपके पुत्र गोविन्ददास जी तो

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग १ | फाल्गुन शु० २ सं० १९८३
ता० ५ मार्च १९२७ | अङ्क ५

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   एक अङ्क का ।)

विषय सूची

वीर-सन्देश पर नई नई सम्मतियां

श्रीमान् पं० रामनरायण जी मिश्र बी० ए०

"वीर-सन्देश मुरझाये हुये भारतियों में जान डालने वाला है।"

महामहोपाध्याय पं० गिरिधर जी शर्मा चतुर्वेदी

"वीर-सन्देश अपने नाम के अनुकूल अच्छी उन्नति कर रहा है।"

श्रीयुत दयाशंकर जी दुबे एम० ए०, एल-एल० बी०

"वीर-सन्देश के गत तीन अङ्क मिले। आपका प्रयत्न सराहनीय है। मैं हृदय से इस पत्र की उत्तरोत्तर वृद्धि चाहता हूं।"

कविवर पं० रामनरेश जी त्रिपाठी

"वीर-सन्देश का सम्पादन बड़ी योग्यता से हो रहा है, लेखों का चुनाव, छपाई, सफाई सब उत्तम है। हिन्दी में ऐसे पत्र की आवश्यकता थी। उसकी पूर्ति का यश आपको मिला। बधाई है।"

श्रीयुत पं० मायाशंकरजी याज्ञिक बी० ए०

"वीर-सन्देश की देश को निस्सन्देह बड़ी आवश्यकता थी। सबही लेख अच्छे और सराहनीय हैं। इससे हिन्दी साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी दूर होगी। भगवान से प्रार्थना है कि आपका उद्देश्य सफल हो, पत्र चिरायु होकर देश की सच्ची सेवा करे।"

वीर-सन्देश—



अमेरिकादि विदेशों में हिन्दू धर्म्म की पताका फहराने वाले
धर्म्मवीर

स्वामी विवेकानन्द

"शक्तिमान पुरुष जिधर चाहते हैं उधर ही समाज को चला देते हैं"
अतएव
प्रत्येक भारतीय को शक्तिशाली बनने की चेष्टा करनी चाहिए।

महावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग १ } आगरा—फाल्गुण शुक्ला २ सं० १९८३-वीर सं० २४५३ { अङ्क ५

उद्बोधन

[लेखक—साहित्य-रत्न पं० दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ]

रहो बैठे क्यों कायर बने वीर की हो आखिर सन्तान।
मूर्खता से भूले निज रूप खो दिया सारा निज अभिमान॥
तुम्हारे पूर्वज कभी न डरे मौत से सदा लड़ाई जान।
रहे मरने को जो तैयार वही जी कर लेता मैदान॥
करो मत विघ्नों की परवाह प्रलोभन को ठुकरादो वीर।
समुन्नत कर दो देश समाज निकालो वही तेज शमशीर॥
हृदय को कर लो वज्र समान सहो चोटों पर चोटें आज।
मौत से भी लड़ने के लिये रखो लड़ने के पूरे साज॥
शत्रुओं से हो यद्यपि घिरे लुट गया है सारा सामान।
किन्तु क्या पिंजड़े में रह शेर भूल जाता है अपनी शान ?
रक्त है वही, हृदय भी वही बना कर उठो! सजग हो वीर!
विश्व है रणक्षेत्र के तुल्य और तुम हो भारत रणधीर॥

युद्ध-वीर

(लेखक—श्रीयुत किशोरीदास जी वाजपेयी शास्त्री)

उत्साह-स्थायी भाव होने के कारण वीर-रस की महनीयता और सब रसों से बहुत बढ़कर है, यह सहृदय-हृदयों से चिर-अनुमोदित और समर्थित सिद्धान्त है; जो प्रत्येक मनुष्य की समझ में सहज ही आ सकता है। वीर के कितने ही भेद साहित्य-शास्त्र ने बतलाये हैं; जैसे, युद्ध-वीर, दया-वीर, दान-वीर, बल-वीर, सत्य-वीर, क्षमा-वीर और पाण्डित्य-वीर आदि। वीर के ये भेद उपलक्षण मात्र हैं। इनसे बहुत अधिक इसके और भेद हो सकते हैं और उन भेदों के सैकड़ों उपभेद होकर अपरिसंख्येयता को पहुंच जाते हैं। परन्तु फिर भी इसके मुख्य-मुख्य भेद तो साहित्य-शास्त्र को करने ही होंगे। ऐसा किये बिना इस शास्त्र की पूर्णता नहीं कही जा सकती। दुःख से कहना पड़ता है कि साहित्य के आचार्यों और कवियों ने इस मुख्य रस की ओर ध्यान नहीं दिया और शृङ्गार—उच्छृंखल शृंगार—की ओर ही अधिक झुके, जिसे अनौचित्य-पूर्ण होने से हम रसाभास कह सकते हैं। अस्तु, इन अर्वाचीन साहित्य के आचार्यों और कवियों के शृङ्गार की ओर प्रवृत्ति का कारण उनकी अपनी चित्त-वृत्ति उतनी न थी, जितनी कि उनके आश्रय-दाता राजा-महाराजाओं की। अर्वाचीन काल के राजा प्रायः कायर और विषय-लोलुप थे; इसीलिये उनके आश्रित कवियों को साहित्य और काव्य के ग्रन्थों में अनावश्यक तथा विषैले शृङ्गाराभास के पचड़े को ठूंसना पड़ा। परन्तु अब समय कहता है कि साहित्य के इस जहर के कीड़े को हटा कर उसकी जगह वीर-रस का विस्तार किया जाय और इस नये साहित्य-शास्त्र के अनुसार ही कवि-जन अपने वीर-रस-परिप्लुत काव्य रचें। इस प्रकार का साहित्य-शास्त्र नया नहीं, पुराना ही है। उसका केवल जीर्णोद्धार भर करना है। इसे "नया" तो हम इस विषमय साहित्य-

शास्त्र की अपेक्षा कहते हैं, जिसमें "शून्य वासगृहम्" की ही अधिकतर भरमार है। वर्तमान राजा-महाराजाओं को भी इधर ध्यान देना चाहिए।

अब हम "युद्ध-वीर" के कुछ मुख्य भेद करके दिखाते हैं। आशा है, साहित्य के मर्मज्ञ इस पर अपनी सम्मति प्रकट करेंगे।

शृङ्गार के "संभोग" और "विप्रलम्भ" की ही तरह युद्ध-वीर के भी मुख्य दो ही भेद पहले हो सकते हैं, जिन्हें हम "समक्ष-प्रतिभट" और "असमक्ष प्रतिभट" नामों से कहेंगे। इनमें से अन्तिम फिर "सञ्जात-युद्ध" और "असञ्जात-युद्ध" भेद से दो तरह का है। इनके संक्षेप में लक्षण और उदाहरण आगे देखिए—

१—समक्ष-प्रतिभट

जब वीर के सामने उसका प्रतिद्वन्द्वी-उसके उत्साह का आलम्बन विभाव—डटा हो, तब यह "समक्ष-प्रतिभट" समझना चाहिए। उदाहरण के लिये "मालती-माधव" के ही पद्य यहां देते हैं। माधव अघोरघण्ट से कहते हैं:—

"जो खेलहु में कहुं सहेली करि सरस उपहास।
नव शिरस-सम सुकुमार यहि कें दयउ पूरि हुलास॥
अरसाइ नउ ये लटपटानीं मुख गयो पियराय।
रे नीच! तेहि तै चहत मारन खड्ग अपनो धाय॥
बस, याहि मो यम-दंड के सम तौल मो भुज-दंड।
अब हीं परै तुव मुंड पै सब भांति सों परचंड॥"

यहां भट और प्रतिभट आमने सामने हैं। युद्ध की तैय्यारी ही है। वस्तुतः इसके भी "असंजात-युद्ध" और "प्रवृत्त-युद्ध" अथवा "उद्यत-युद्ध" और "प्रवृत्त युद्ध" नाम के दो भेद हो सकते हैं। खैर, इस पद्य में तीन रसों की अभिव्यक्ति है, शृङ्गार, दया-वीर और युद्ध-वीर। परन्तु, इनमें से अन्तिम ही यहां प्रधान है अतः वही रस है; उसी को रस ध्वनि कहा जा सकता है। प्रधानता से व्यवहार होता है। पहले दोनों युद्ध-वीर का

उत्कर्ष करते हुए गौण हो गये हैं और इसीलिये वे अलंकार्य्य न रह कर अलंकार हो गये हैं, इस युद्ध-वीर के। इसे ही "रसवत्" अलंकार कहते हैं। यहां शृङ्गार दया-वीर का उत्कर्ष करने से उसका अंग है और वह स्वयं युद्ध-वीर का। पद्य में नायक माधव के उत्साह का आलम्बन-विभाव अघोरघण्ट सामने मौजूद है।

सम्भोग-शृङ्गार में जैसे नायक और नायिका की रति के आलम्बन विभाव परस्पर एक दूसरे हो जाते हैं, वैसे ही युद्ध-वीर के इस "समक्ष प्रतिभट" भेद में भी भट और प्रतिभट के उत्साह के आलम्बन-विभाव आपस में एक दूसरे हो जाते हैं—भट के उत्साह का प्रतिभट और प्रतिभट के उत्साह का भट हो जाता है। देखिए, माधव और अघोर-घण्ट एक दूसरे को फटकारते हुए कहते हैं:—

"काटत कठोर, अस्थि-पिंजर की ग्रन्थिनु जो—
करै झिझनी लौ शब्द कड़कि कड़ाक सों।
नस-जाल छेदनु में आंतन के भेदनु में—
गत-श्रम होत जो भड़कि भड़ाक सों॥
निरातंक विचरै जो मांस-पुंज चीरन में—
जैसे पंक जोरन में सड़कि सड़ाक सों।
यह सोई खड्ग चंड तेरे अंग अंगनि कों—
खंड खंड करै आजु फड़कि फड़ाक सों॥"

यहां माधव और अघोरघण्ट आपस में एक दूसरे के उत्साह के आलम्बन विभाव हैं। वीर-रस प्रधान है, बीभत्स भी झलक मारता है, पर वह प्रधान नहीं, अतः उसे रस-ध्वनि नहीं कह सकते। वह युद्ध-वीर का उत्कर्ष करता हुआ उसी का अङ्ग बन जाता है, अतः वह इसका वही "रसवत्" अलंकार है।

२—असमक्ष-प्रतिभट (असंजात-युद्ध)

भट और प्रतिभट जब आमने-सामने न हों, युद्ध की तय्यारी या उसकी पूर्वावस्था हो तो वीर का यह प्रकार होता है। उदाहरण के लिये

माधव अपने मित्र मकरन्द की प्रेयसी मदयन्तिका से कहता है:—

माधव:—(अपनी भुजा उठाकर)

"दान-सीकर की धार आनन चुवाय रही,
प्रगट मदोतकट जोम को अमर है ।
ऐसे यूथप के सिर कोपि थाप मारे जब,
खरात जासु नख अस्थि कुम्भ पर है ।
अनुचित तोड़ जाकों विक्रम दिखायवे की,
चाट सी लगी रहै नेकु नाहिं डर है ।
साहस में साथी नर-हाथी मद ढायवे को,
सिंह कैसो होत एक वैसो वीर कर है ॥"

इस पद्य में माधव के उत्साह का आलम्बन-विभाव राज-सैन्य सामने नहीं है । आगे चल कर रण-भूमि में सामना होता है । ऐसी दशा में इसे "असञ्जात-युद्ध असमत्त प्रतिभट" कह सकते हैं । पद्य में रूपक और उपमा रस की परिपुष्टि कर रहे हैं ।

३—असमत्त-प्रतिभट (सञ्जात-युद्ध)

जब युद्ध हो चुका हो और प्रतिभट नष्ट-भ्रष्ट या तितर-बितर हो चुके हों, ऐसी दशा में विजयी वीर का उस युद्ध का स्मरण करके तद्विषयक उत्साह जब व्यक्त हो तो वीर रस का यह भेद होता है ।

माधव और मकरन्द राज-सैन्य से युद्ध करके विजय पा चुके हैं। दोनों बातें करते हुए मालती की ओर आ रहे हैं । युद्ध की बातें चल रही हैं, परस्पर एक दूसरे की बातें बतलाते हैं ।

मकरन्द:—(माधव से) मित्र—

"मारि भुज-दण्ड चूर कियो गांस-गांस सब,
भिभसे अरिनु-अस्थि पिंजर धनत जात ।
एक यों अनेक वीर भुवि पै बिछाये चहुँ,
तिन शस्त्र छाँडि छाँडि बलसों हनत जात ।

फरकत कटे रुण्ड मुण्डनि ते पर्‌यो रण,
उदधि उतंग मानों और उफनत जात।
चित्र की लिखी सी दोऊ ओर भट-भीर ठाढ़ी,
तिन बीच बाढ़ी आगे गैलसी बनत जात॥"

इसमें माधव का उत्साह व्यक्त होता है, इसीलिये यह युद्ध-वीर के उक्त भेद का उदाहरण है। अनुप्रास, रूपक और स्वभावोक्ति अलंकारों से रस का उत्कर्ष हो रहा है।

यद्यपि पद्य में मुख्य अभिव्यक्ति "भाव" की है जो मित्र-विषयक रति है। इस मित्र विषयक रति "भाव" का यह वीर-रस उत्कर्ष करता हुआ उसका अंग हो रहा है। इसी कारण से यह मुख्य ध्वनि अलंकार्य्य न रह कर इस 'भाव' का ही उत्कर्ष करने से इसी का अलंकार हो गया है—वही "रसवत्" अलंकार। इसका शुद्ध उदाहरण और समझ लेना चाहिए।

"उत्तर-रामचरित" में श्रीरामजी पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या आ रहे हैं। मार्ग में श्री जानकीजी को वे वे रण-स्थान सवृतान्त बतलाते जाते हैं और वहां पूर्व घटनाओं का स्मरण करके उन का उत्साह व्यक्त होता है, जिसके आलम्बन विभाव सामने नहीं हैं।

इस विषय पर फिर कभी विस्तार से विचार किया जायगा।*

---

* इस लेख के सब पद्य श्री भवभूति-प्रणीत और कविरत्न श्री सत्यनारायण अनूदित "मालती-माधव" नामक प्रकरण से लिये गये हैं। इस प्रकरण को कोई कोई "नाटक" कह-लिख देते हैं जो साहित्य-शास्त्र की परिभाषा के अनुसार ठीक नहीं।
—लेखक।

नोट:—साहित्य के विद्वानों को इस विषय पर विचार करके अपनी सम्मति प्रकट करनी चाहिए। उक्त लेख की सब बातों से संभवतः सब लोग सहमत न हों। ऐसे सज्जनों का अपने विचार 'वीर-सन्देश' में प्रकट करने के लिए सादर स्वागत है।
—सम्पादक।

स्वतन्त्रता का पुजारी ब्रूटस

[लेखक—श्रीयुत दुर्गादास जी]

१

कोई अढ़ाई हज़ार वर्ष पहिले रोम नगर की गलियों में एक पागल घूमा करता था। उस समय रोम में प्रजातन्त्र शासन नहीं था। टारकिन नामक एक बड़ा निर्दयी और अभिमानी राजा राज्य करता था, जिसके अत्याचारों से प्रजा बहुत दुखी थी। वह पागल जिसका नाम ब्रूटस था सर्वदा इसी चिन्ता में रहता था कि उस पापी के हाथों देश का कैसे उद्धार होगा।

ब्रूटस बहुत अमीर घराने का आदमी था परन्तु उसकी बातें सुन कर लोग हंस दिया करते थे। इसलिए वह पागल के नाम से ही नगर भर में प्रसिद्ध हो गया था परन्तु यह कौन जानता था कि यही पागल एक दिन रोम को स्वतन्त्र करेगा।

२

एक दिन ब्रूटस अपने भवन में चिन्ता निमग्न बैठा था कि इतने में उसने बाहर कुछ कोलाहल सुना। वह झट नीचे उतरा। उसने देखा कि इधर उधर सब ओर से लोग 'मारकेट'* की ओर दौड़े चले जा रहे हैं। वह भी तुरन्त मारकेट में पहुँच गया और भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा। वहां जाकर उसने देखा कि एक परम रूपवती स्त्री अपने हाथ में कटार लिये खड़ी है। उसके बाल खुले हुए थे और उसका मुख क्रोध से तमतमा रहा था। सहसा उस स्त्री ने गरज कर कहा, "रोम निवासियो! तुम पर नित्य सहस्रों अत्याचार होते हैं किन्तु तुम सब सुख की नींद सो रहे हो। मैं तुमसे पूछना चाहती हूं कि आखिर इस अत्याचार की कोई सीमा भी है? मैं तुमको आज यह बताना चाहती हूं कि किस

* 'मारकेट'—वह स्थान जहां रोम निवासी सभाएँ किया करते थे।

प्रकार तुम्हारी बहू-बेटियों का सतीत्व नष्ट किया जाता है। कल आधी-रात को राजकुमार ने जो कल तुम्हारा शासक होगा, चोरों की भांति मेरे घर में घुसकर मेरा सतीत्व नष्ट किया है। मैं उसी समय आत्म-हत्या करने जा रही थी परन्तु मुझे ध्यान हुआ कि न जाने कितनी कुलाङ्गनाओं का इसी प्रकार सर्वनाश होता होगा। यही बतलाने के लिए मैं अब तक जीती रही। अब मैं मरने जा रही हूँ। परन्तु क्या आप में से कोई एक भी आगे बढ़ कर मुझे सान्त्वना दे सकता है कि मेरे मरने पर मेरे रक्त का प्रतिशोध लिया जायगा ?"

रमणी उत्तर के लिए रुकी। परन्तु कोई भी आगे बढ़ता हुआ दिखाई न दिया। रमणी ने कटार ऊपर उठाई और क्रोध से लाल होकर कहा "नराधमो ! यह रोम का दुर्भाग्य है कि उसमें तुम जैसे नीच लोग निवास करते हो। जान पड़ता है कि रोम का कष्ट निवारण नहीं होगा और अब रोम पर अत्याचार होता ही रहेगा। यह कहते कहते उस देवी ने अपनी छाती में कटार भोंक ली। कटार लगते ही रुधिर का पनाला बह उठा और रमणी की लोथ वहीं पृथ्वी पर गिर गई। रमणी की लोथ देख कर जनता की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। सच है, दुर्बल मनुष्य जब कुछ नहीं कर सकता तो वह रोने की शरण लेता है।

सहसा भीड़ में कुछ सरसराहट सी हुई। लोगों ने ब्रूटस को उस लोथ के पास आते हुए देखा। ब्रूटस ने कटार को रमणी की छाती से निकाल कर हाथ में ले लिया। एकाएक उसका सिर ऊंचा हुआ और उसने ऊंचे स्वर से कहा, "रोम निवासियो ! अब और नहीं सहा जाता। यह देवी चाहे जिसकी भी कन्या हो किन्तु माता 'रोम' के नाते हम सब की बहिन है—तो क्या हमारी बहिनों पर ऐसे ही अत्याचार होते रहेंगे ? नहीं ! कदापि नहीं !! इन अत्याचारों का अब यहीं अन्त होना चाहिये। अत्याचारी से अधिक पाप का भागी अत्याचार का सहने वाला है। इसलिए अत्याचारी से उसके अत्याचारों का बदला चुकाने के लिए

कमर कस लो। मैं सब लोगों के सामने इस कटार को हाथ में लिए शपथ करता हूं कि मैं इस अबला के रक्त का प्रतिशोध लूंगा। बोलो, कौन इस प्रतिज्ञा की पूर्ति में मेरी सहायता करेगा। जनता के आंसू थम गये। सहस्रों तलवारें म्यान से निकल पड़ीं सहस्रों शब्दों में प्रतिध्वनित हुआ "मैं तुम्हारा साथ दूंगा।"

ब्रूटस ने हंस कर कहा कि यदि तुम मेरा साथ देना चाहते हो तो मेरी इच्छा है कि अत्याचारी के राज्य का यहीं अन्त हो। जनता ने ब्रूटस का संकेत जान लिया। चारों ओर से आवाज आई 'यहीं अन्त होगा'। ब्रूटस ने देखा कि सब लोग राज महलों की ओर दौड़े चले जा रहे हैं। ब्रूटस का मनोरथ पूर्ण हो गया। रोम में क्रान्ति हो गई। राज्य सत्ता को नष्ट कर रोम निवासियों ने प्रजा-तन्त्र शासन स्थापित किया और उसका सभापति चुना गया—'ब्रूटस'।

३

टारकिन कहीं दूर देश में लड़ रहा था। उसे सम्बाद मिला कि उसकी अनुपस्थिति में रोम में क्रान्ति हो गई है। रोम निवासियों ने प्रजातन्त्र शासन स्थापित कर लिया है। टारकिन ने उसी समय अपनी सेना को लौटने की आज्ञा दी।

चारों ओर से रोम नगर टारकिन की सेना से घिर गया। रोम निवासी अपनी रक्षा के लिए ब्रूटस की अध्यक्षता में जी तोड़ कर लड़ने लगे। लाख सिर पटकने पर भी टारकिन की सेना नगर के कोट को न तोड़ सकी। कार्य में विफलता देख टारकिन ने अपने गुप्तचर नगर में भेजे जो नगर के भीतर जाकर बड़े बड़े सरदारों को अपने पक्ष में मिलाने लगे।

इधर ब्रूटस भी बहुत चौकन्ना रहता था। उसने रोम भर में अपने गुप्तचर छोड़ रक्खे थे जो उसे पल पल की खबरें देते रहते थे। एक दिन आधीरात को उसके गुप्तचरों ने बताया कि नगर में एक भारी षड्यन्त्र रचा गया है और यदि षड्यन्त्रकारी क़ाबू में न किये गये तो नगर की रक्षा

नहीं हो सकेगी। ब्रूटस ने उसी समय कुछ सेना को तैयार किया और रात ही रात में एक एक करके सब षड्यन्त्रकारियों को पकड़ लिया। उन सब को कड़ी हिरासत में रख सिपाहियों से कहा कि रात भर वे बन्दियों को कड़ी निगरानी में रक्खें और सुबह होते ही विचार के लिए उन्हें न्यायालय में उपस्थित करें।

सुबह होते ही नगर भर में धूम मचगई कि रात को महा भयङ्कर षड्यन्त्र पकड़ा गया है और राष्ट्रपति ब्रूटस उन देशघातकों का विचार करने जारहे हैं। विस्मय, भय और क्रोध ने बारी बारी से नगर वासियों पर अपना रङ्ग जमाया। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सब न्यायालय की ओर देश घातकों को देखने के लिए दौड़ पड़े परन्तु वहाँ पहुँचकर उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ कि हथकड़ियों में जकड़े हुए षड्यन्त्रकारियों में ब्रूटस के दो लड़के भी हैं। इतने में ब्रूटस ने विचारपति का आसन ग्रहण किया। बन्दी उसके सन्मुख लाये गये और विचार आरम्भ हुआ।

थोड़ी देर बाद ब्रूटस फैसला सुनाने को उठा। जनता भी फैसला सुनने के लिये बिलकुल चुप होगई। ब्रूटस ने कहा "विचार के अनुसार ये सब देशद्रोही और दोषी हैं। और देश द्रोह की सजा है—प्राण दण्ड। अतः मैं आज्ञा देता हूँ कि इन सब को फांसी पर लटका दिया जाय।"

एक सरदार ने आगे बढ़कर कहा "परन्तु इनमें आपके दो......"
ब्रूटस ने बीच ही में उसकी बात काट कर कहा, "हां, उन्हें भी फाँसी दी जाय।" उसी सरदार ने हिम्मत कर फिर कहा, "परन्तु वह तो......।,, ब्रूटस ने फिर बीच ही में कड़क कर कहा, "परन्तु वह देश द्रोही हैं और उनकी उचित सजा मौत ही है।" देखते ही देखते सब क़ैदी फांसी पर लटका दिये गये।

४

एक बर्ष बाद टारकिन ने फिर रोम को घेर लिया। वह भली भांति जनता था कि रोम का दुर्ग दुर्भेद्य है और युद्ध कर के उस पर अधिकार जमाना कठिन है। इस बार वह अपने साथ बहुत बड़ी सेना

लाया था और दो तीन वर्ष के लिए उसने रसद भी जुटाली थी। उसने रोम को तब तक घेर रखने का संकल्प किया जब तक कि भूख और प्यास के मारे नगर निवासी आत्म समर्पण न करदें। उसने रोम जाने वाले सब मार्ग बन्द कर दिये। और एक प्रकार से रोम को बाह्य संसार से पृथक कर दिया।

रोम निवासी बड़े चिन्तित हुए। भावी दशा का चित्र उनकी आँखों के आगे नाचने लगा लोगों में आत्म समर्पण तक करने के लिए कानाफूसी होने लगी।

ब्रूटस को जब नगर-वासियों के भय का पता लगा तो वह बहुत चिन्तित हुआ परन्तु उसने हिम्मत न हारी। उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि जिस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए उसे अपने दो पुत्रों तक को बलिदान करना पड़ा उसे वह शरीर में प्राण रहते हाथ से नहीं जाने देगा।

दूसरे दिन सवेरे ही टारक्विन ने देखा कि ब्रूटस ने रात ही रात में अपनी सब सेना बाहर आ जमाई। उसको यह आशा न थी कि उसकी इतनी बड़ी सेना से रोमन खुल्लम-खुल्ला युद्ध करने का साहस करेंगे। उसने झट अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। परन्तु अभी उसकी सेना तैयार होने भी न पाई थी कि ब्रूटस ने उस पर आक्रमण कर दिया। फिर क्या था, दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। दोपहर तक युद्ध होता रहा किन्तु मुट्ठी भर रोमन भला कब तक इतनी बड़ी सेना का सामना करते। कुछ मारे गये और बाकी बचे हुओं का हौसला टूट गया। अपनी सेना की यह दशा देख ब्रूटस ने झपट कर प्रजा-तन्त्र रोम का झण्डा अपने हाथ में ले लिया और अपने घोड़े को एड़ लगाई। दूसरे ही क्षण वह शत्रु-सेना के मध्य में था। ब्रूटस का खयाल था कि शत्रु सेना तभी तक मैदान में खड़ी है जब तक टारक्विन जीवित है। इस लिए वह टारक्विन को मारने के लिए आगे ही बढ़ता चला गया।

रोमन सेना ने अपने प्यारे सरदार को जब शत्रु-सेना में घुसते देखा तो उसे लज्जा आई। वह उसकी प्राण-रक्षा के लिए शत्रु-पक्ष पर भूखे बाघ की नाईं टूट पड़ी। उधर नगर-निवासी कोट पर खड़े हो युद्ध का हाल देख रहे थे। उन सभों ने भी ब्रूटस को अकेले ही शत्रु-सेना में घुसते देखा था। उनकी रगों में रक्त उबलने लगा। उन्होंने नगर के सब फाटक खोल दिये और जो कुछ जिसके हाथ आया वही उठाकर वे टारकिन की सेना पर टूट पड़े। इस प्रकार टारकिन की सेना पर चारों ओर से मार पड़ने लगी।

सहसा एक ओर से ब्रूटस ने गरज कर कहा, "प्रजातन्त्र रोम की जय"। लड़ते हुए योद्धा सहम गये। वह क्या देखते हैं कि ब्रूटस एक हाथ में टारकिन का कटा हुआ सिर भाले से ऊपर उठाये है और दूसरे हाथ से शत्रुओं का संहार कर रहा है।

रोमन सेना उल्लास से चिल्ला उठी, "प्रजातन्त्र रोम की जय" और फिर शत्रु-सेना पर टूट पड़ी। ब्रूटस का विचार ठीक निकला। अपने सरदार का कटा हुआ सिर देखकर टारकिन की सेना भाग खड़ी हुई।

रोम वालों की जय हुई। रोम-निवासी शत्रु-सेना का संहार कर बड़ी खुशी मनाते हुए नगर को लौटे। परन्तु उनको यह ज्ञान न था कि उनका प्यारा सरदार ब्रूटस जिसने उन्हें विजय दिलाई थी सदा के लिए उनसे छीन लिया जायगा।

५

ब्रूटस का शरीर घावों से चलनी हो गया था। वह युद्ध-भूमि में ही गिर पड़ा। उसके घोड़े ने उसके पास ही तड़प तड़प कर अपने प्राण त्यागे। सब सरदार और रोमकी शोक-निमग्न सेना उसके पास खड़ी थी। ब्रूटस ने बड़ी कठिनता से धीरे धीरे कहा, "देशवासियो! मेरा अन्तिम समय निकट है। मुझे अपने मरने का तनिक भी सोच नहीं है क्योंकि मैं अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए प्राण त्याग रहा हूं, किन्तु मेरी एक अभिलाषा है। यदि वह पूर्ण हो जाय तो मैं अपने को भाग्यशाली

समझूंगा।" सब सरदारों ने एक स्वर में कहा, "आप अपनी अभिलाषा बताइये हम उसे अवश्य पूर्ण करेंगे।" यह सुनते ही ब्रूटस का चेहरा दमक उठा। उसने कहा, "तो सब लोग मेरे शरीर को छूकर शपथ करो कि तुम लोग सर्वदा प्रजातन्त्र रोम के हितों की रक्षा करोगे।" सब सरदारों ने उसका शरीर छूकर प्रतिज्ञा की।

ब्रूटस को यह जानकर कि उसका परिश्रम विफल नहीं हुआ, बहुत सन्तोष हुआ। उसने फिर कहा, "देशवासियो ! जिस स्वतन्त्रता के पौधे को मैंने अपने पुत्रों के तथा अपने खून को बहाकर लगाया है, तुम सदा उसकी वृद्धि के लिए प्रयत्न करते रहो। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह तुम्हारे इस कार्य में सहायता करे।" इतना कहकर उस महान् आत्मा ने इस असार संसार से पयान किया।

कृतज्ञ रोम-निवासी अपने प्यारे सरदार को कभी नहीं भूले। उन्होंने उसकी यादगार में एक विशाल मूर्त्ति बनाकर 'मारकेट' में रक्खी। सैकड़ों वर्ष बाद यदि कोई यात्री किसी रोम-निवासी से पूछता कि यह मूर्त्ति किस की है तो वह बड़े गर्व से कहता, "यह मूर्त्ति उस महान् पुरुष की है जिसने स्वतन्त्रता के लिए अपने पुत्रों और अपने प्राणों की आहुति दी। इसका नाम है स्वतन्त्रता का पुजारी-ब्रूटस।"

परिताप

[लेखक—श्रीयुत कर्ण कवि जी]

वर वीर विनोद किया न गया;
फड़कीं न भुजा खल खण्डन में।
हथियार धरा पर डाल दिये;
उमगीं न उमङ्ग सड़े तन में॥
तज पौरुष योग प्रयोग दिया;
दुख भोग रहे पड़ बन्धन में।
न कुशासन की जड़ काटी गई;
कवि कर्ण रही मन की मन में॥

श्री गुरु तेगबहादुर जी

[लेखक—गोस्वामी श्रीयुत ब्रजनाथ जी शर्मा]

श्रेयान स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः ।।

भारत वसुन्धरा का नाम रत्न-गर्भा और वीर-प्रसूता सार्थक ही है। जब हम इसके इतिहास के पन्ने पलट कर देखते हैं तो ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे हमें भारत-भू के वीर-प्रसूता होने में तनिक भी सन्देह नहीं रहता। राजपूताने का इतिहास तो सारे का सारा वीरों की कृतियों से भरा पड़ा है, पञ्जाब के इतिहास में भी इसकी झलक दिखाई देती है। अन्तर केवल इतना ही है कि राजपूताने के वीरों ने तो भारत-भूमि और अपनी मर्यादा एवं मान-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करके अपनी वीरता का परिचय दिया है। परन्तु पञ्जाब के वीरों ने धर्म पर अपना तन, मन, धन वार अपनी वीरता का परिचय दिया है। पञ्जाब के वीरों ने अपने पीछे सहस्रों की जानें नहीं खोईं, प्रत्युत धर्म के पीछे अपनी जान देने ही में अपना गौरव समझा।

आज हम चारों ओर "स्वात्माभिमान" शब्द तो सुनते हैं पर वह कहने मात्र का स्वात्माभिमान है, कोई उदाहरण देखने में नहीं आता। सच्चे स्वात्माभिमानी केवल कहते ही नहीं, वरन् समय पड़ने पर उसे करके भी दिखा देते हैं—स्वात्माभिमान की वेदी पर अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं, उसी को स्वात्माभिमान कहते हैं और वही कर्त्तव्य-परायणता है। धर्म पर मर मिटने वालों का उदाहरण राजस्थान के इतिहास में विरला ही मिलेगा; परन्तु पञ्जाब के इतिहास में इसकी कमी नहीं। आज जिस वीर के विषय में हम लिखना चाहते हैं वह पञ्जाब-भूमि का ही एक वीर था जो धर्म के लिए आत्मार्पण करके अजरत्व और अमरत्व को प्राप्त हो गया और संसार के लोगों को सिखा गया कि धर्म की वेदी पर

अपनी बलि दे देना पर अपने धर्म को तिलाञ्जलि मत देना। उसी के उपदेशानुसार वर्तमान समय में भी उसी पञ्जाब-भूमि के वीरों—धर्मवीर लेखराम और श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी ने—धर्म के लिए अपने प्राण न्यौछावर करके स्वात्माभिमान, धर्म-प्रेम और धर्मवीरता का परिचय दिया है।

जिनके विषय में हम आज लिखना चाहते हैं वह श्री गुरु नानक देव जी के पीछे नवीं पीढ़ी में श्री गुरु तेगसिंह अर्थात् गुरु तेगबहादुर हुए हैं। जिस समय यह गद्दी पर विराजमान हुए थे उस समय इनकी अवस्था ५२ वर्ष की थी। सन् १६१२ ई० में श्री गुरु तेगबहादुर ने काश्मीर, सिन्ध आदि समीपवर्ती प्रान्तों में घूम २ कर स्वधर्म का प्रचार किया और अनेक शिष्य बनाये। आर्यावर्त के अन्य विविध प्रान्तों में भी स्वधर्मोपदेशक भेजकर स्वधर्म का प्रचार करने में अनेक उपायों का अवलम्ब इसलिए करने लगे थे कि गुरु-धर्म अर्थात् सिक्ख-धर्म का प्रचार हो।

उस समय दिल्ली की मुग़ल-गद्दी पर औरंगज़ेब राज्य करता था। वह समय धर्म-प्रेमी जनों के लिए बड़ा ही कठिन था, क्योंकि उसने हिन्दू धर्म—आर्य-धर्म का भूतल पर से विनाश करने और इसलाम धर्म का प्रसार करने के लिए कोई बात उठा नहीं रक्खी थी। औरङ्गज़ेब की क्रूरता के सम्बन्ध में यहां विशेष कुछ लिखना युक्ति सङ्गत प्रतीत नहीं होता क्योंकि इतिहासज्ञ उससे भली भांति परिचित हैं। जिस औरंगज़ेब ने अपने पिता शाहजहां को वृद्धावस्था में बन्दीगृह में रखकर अनेक प्रकार की यातनाएं दीं, जिसने अपने भाइयों—दारा, शुजा और मुराद—को मरवा दिया, जिसने अपने भतीजों—सुलेमान और सिपर—को ही नहीं किन्तु अपने पुत्र मुहम्मद सुलतान को भी कष्ट देने में कुछ उठा नहीं रक्खा, यदि उसने औरों को कष्ट दिया तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या? उसी औरंगज़ेब ने उस समय काश्मीरियों को स्वाधीन करने और उनमें इसलाम धर्म का प्रचार करने का बीड़ा उठाया और उनको एतन्निमित्त अनेक प्रकार

की यातनाएं देने लगा। उसकी यातनाओं से घबरा कर काश्मीरियों ने श्रीगुरु तेग़ बहादुर के पास रक्षार्थ विनय पत्र भेजा।

एक दिन श्रीगुरु तेग़ बहादुर और उनके शिष्य मुसलमानों के अत्याचार और आर्य धर्म के भविष्य पर विचार कर रहे थे, कि एक शिष्य ने उपस्थित होकर कातर स्वर में कहा:—

"भगवन्! आर्य-धर्म की रक्षा किस प्रकार होगी? देखिए तो काश्मीरियों का क्या हाल हो रहा है? क्या आप इनकी रक्षा नहीं कर सकते?" श्रीगुरु तेग़ बहादुर जी ने विनम्र स्वर में परन्तु आवेश में भ्रकुटी चढ़ा कर कहा—"पुत्र! आर्य्य जिस दिन स्वप्रतिष्ठा भूल जायंगे, जब धर्मान्ध हो जायंगे, और जब धर्म के नाम पर स्वात्माभिमान के साथ बलि-वेदी पर जीवनार्पण करना तुच्छ समझ लेंगे, तभी आर्य-जाति की रक्षा हो सकेगी। इस समय तो धर्म कसौटी पर कसा जा रहा है, धर्म-प्रेमियों की परख की जा रही है। यथाशक्ति धर्म की सेवा करना ही अपना परम धर्म है और उसी में अपना जीवन-सार्थक्य है। मन्थन करने से शक्ति स्वयं प्राप्त होगी। 'मरना है तो क्यों नहीं मरदानगी में।' जब हम जानते हैं कि देह नाशवान है। एक बार मरना ही होगा तो फिर क्यों कायर की भांति बिछौनों में मरना? शक्ति है और समय भी है तो फिर एक वीर की भांति रण में जूझकर क्यों न प्राण दिये जायँ? आर्य लोग जो आर्यत्व में ही सब कुछ समझने लगेंगे तो विधर्मी धर्म को तनिक भी न बिगाड़ सकेंगे।" इन शब्दों के सुनते ही चारों तरफ़ से जय-ध्वनि होने लगी।

गुरु-पुत्र बालक गोबिन्दसिंह जी बोले—"आर्य लोग आर्यत्व में ही सर्वस्व समझते थे, समझते हैं और समझेंगे।" फिर जय-घोष होने लगा।

श्री गुरु तेग़ बहादुर जी ने औरंगज़ेब को ग़रीब आर्यों पर दया करने के लिए एक पत्र लिखा। अत्याचारी मुग़ल शाहंशाह का क्रोध

इससे और भी अधिक बढ़ा। उसने श्री गुरु तेग बहादुर को अपने पास बुलाने के लिए एक पत्र लिखा। वीर श्री गुरु तेगबहादुर जी ने निर्भय होकर बादशाह के लिखे अनुसार उसके पास जाना स्वीकार कर लिया। केवल एक शिष्य को साथ लेकर उन्होंने पूज्य मातृ-भूमि को प्रणाम करके दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

औरंगजेब के कपटाचार के सम्बन्ध में बार बार कुछ लिखना अप्रासंगिक होगा। उसी न्याय का अवलम्बन करके उसने श्री गुरु तेग-बहादुर जी से कहा—"तेगसिंह! तुम्हारी ख्याति सुनकर जो कुछ जान-कारी मैंने प्राप्त की थी उससे कहीं बढ़कर आपके दर्शन से मुझे जानकारी प्राप्त हुई है। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि आपके काफ़िर धर्म में होने के सबब आपका खुदाई नूर मुझपर नहीं पड़ता। मुझे उम्मीद है कि आप पाक मज़हब क़बूल करके हमें अपने नूर से रौशन करेंगे।" इतना कहकर बादशाह चुप हो गया।

श्री गुरु तेगबहादुर ने नम्र स्वर में उत्तर दिया:—"नामवर! एक बार अपने मन में सोच कि धर्म का क्या अर्थ है और धर्म के अस्तित्व की क्या आवश्यकता है। उत्तर क्या होगा? यही न कि आत्मोन्नति के निमित्त ही धर्म की आवश्यकता है। तो बादशाह, क्या पराया धर्म स्वीकार कर लेने मात्र से आत्मोन्नति होगी? क्या मुसलमान हो जाने से मेरी आत्मा का कल्याण हो जायगा? क्या धर्म बदल लेने से मैं सदा जीवित रह सकूंगा? क्या पराया धर्म अंगीकार करने से मेरी इच्छित सिद्धि होगी? यदि कीर्ति के लिए कहो तो शाहंशाह मुझे कीर्ति की अपेक्षा नहीं है। अमीरी छोड़ कर ही यह फ़क़ीरी धारण की जाती है। फ़क़ीरी ही आलमगीरी है और आलमगीरी को ही फ़क़ीरी कहते हैं।

"जहाँगीरी फ़क़ीरी है,
फ़क़ीरी अमीरी है।"

"बादशाह! अज्ञानता के कारण चाहे तुम अपने को आलमगीर मानते हो परन्तु आलमगीरी तो इस फ़क़ीरी ही में है।"

बादशाह बीच में ही बोल उठा, तुम्हारा मजहब क्या किसी शैतान का बताया हुआ है ? इस दुनिया में क्या इन्सान फकीरी करने के लिए पैदा होता है ? नहीं, नहीं ।" श्री गुरु तेगसिंहजी ने कहा, "फकीरी का अर्थ सन्तोष, निरभिमानता, धर्म में दृढ़ता, सम-दृष्टि यही है । बादशाह ! सुख की लालसा से समस्त संसार को जीत लो, परन्तु तुम्हारा मन तुम्हारे सुख का नाश करके तुम्हें दुखी करेगा । संसार को संसार में लिप्त रहने दो केवल अपने मन को जीत लो और फिर देखो कि सच्चा सुख आलमगीरी में है या मन-निरोध रूपी फकीरी में ।"

"तेग ! बहुत मत बोलो: मैं सुनना नहीं चाहता ? मैंने उपदेश करने के लिए तुम्हें नहीं बुलाया है । तुम्हारे लिए तीन रास्ते हैं । उनमें से एक मंजूर करो । पाक मजहब की कबूलियत यह तुम्हारे लिए सब से उम्दा रास्ता है । अगर यह मंजूर नहीं है तो अपनी ताकत दिखलाने के लिए कोई मोइज्जिजा (चमत्कार) दिखलाओ नहीं तो तुम्हारे लिए जेलखाना है। कहो किस रास्ते को मंजूर करते हो ?"

"शाहंशाह ! पहले प्रश्न का उत्तर दे चुका हूं । भले ही मुझे समस्त भूमण्डल का साम्राज्य प्राप्त हो जाय, परन्तु पर-धर्म तो मैं कभी भी स्वीकार नहीं करूंगा । योगी लोग चमत्कार दिखलाने वाले होते हैं और मैं भी दिखला सकता हूं परन्तु अश्रद्धालु और दयाहीन मनुष्य उन चमत्कारों के देखने के योग्य नहीं होते । और मैं चमत्कार दिखलाऊँ तो केवल इस तुच्छ जीवन के लिए । नहीं, नहीं ! ऐ शाहंशाह ! स्वात्माभिमानी धर्मावलम्बी इस अल्प जीवन को तृणवत समझते हैं। बस, मुझे तेरा तीसरा रास्ता मंजूर है । कारागृह में भी मैं उसी परमात्मा की भक्ति करूंगा, अपने इष्टदेव का स्मरण करूंगा और अभेद सागर में आनन्द से विचरूंगा ।"

धर्म-वीर गुरु तेग बहादुर को तुरन्त बेड़ियां पहना दी गई । हे आर्य-धर्म-प्रेमियों ! तुम्हारे महान योग को धन्य है ! जिस गुरु की आज्ञा

पालन करने के लिए अनेक शिष्य-वर्ग सदा उपस्थित रहते थे वही शेर-नर आज तुच्छ यवन-सैनिकों की आज्ञानुसार बेड़ियों की झनझनाहट के साथ कारागृह की ओर जा रहा है ! पालकियों में बैठने वाला दिल्ली नगर की सड़कों पर नंगे पैरों पैदल जा रहा है !

कारागृह में भी उसने अपना समय परमात्मा की भक्ति करने में ही बिताया। भक्ति-वैराग्य के लिए इस महा पुरुष ने 'गुरु ग्रन्थ साहब' में बहुत से पद्य लिखे हैं। यह समय उनको अभेदानन्द साधने के लिए सानुकूल हुआ परन्तु पञ्जाब में विप्लव मचजाने के भय से औरङ्गजेब ने इस वीर पुरुष का अन्त ही कर देना उचित समझा।

प्रातःकाल का समय था। कारागृह के पास के उद्यान के वृक्षों पर नव-फलित फलों का रसास्वादन करने के लिए आये हुए पक्षीगण मधुर गान कर रहे थे। श्री गुरु तेगसिंहजी भी अपने दैनिक कृत्य से निवृत्त होकर प्रेमानन्द में तल्लीन हो रहे थे। इतने ही में नंगी तलवारें लिये दो जल्लाद श्री गुरु तेगबहादुरजी की कोठरी में प्रविष्ट हुए। महात्मा के तेजोमय स्वरूप को देखकर उनका हृदय भी द्रवीभूत हो गया और उन्होंने आर्द्र स्वर से कहा:—"बन्दीवान, बन्दगी करले।"

निर्मल दृष्टि से श्री गुरु तेगसिंह जी ने उनकी ओर देखा और मन्द हास्य से कहा, "सबको इसी मार्ग का अवलम्बन करना है किसी को आज तो किसी को कल।" इतना कह कर धर्म-निमित्त प्राण विसर्जन करने वाला वीर आर्य की अमर आशा के विचार में तल्लीन होकर प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना समाप्त करके मातृ-भूमि को प्रणाम करके कहा, "आर्यों की पवित्र भूमि ! तेरे अन्न जल से मेरा पालन-पोषण हुआ है, इससे तू मेरी माता है और तेरे अन्य पुत्र मेरे बन्धु हैं। मैं अपने बन्धुओं का श्रेय करने के निमित्त कुछ भी न कर सका—इसका मुझे खेद है। यदि यह मृत्यु जो मेरे बन्धुओं को कुछ भी सुखकारक हो तो हे देवि ! मैं कृत-कार्य हो जाऊंगा। मृत्यु क्या है:—

जीव ही सत्य जीव ही प्रियतम,
मृत्यु से नहिं अन्त हुवा ।
खाक से आया खाक हो जाना
आत्मा का नहिं अर्थ हुवा ॥

इस हृदय द्रावक दृश्य का उल्लेख करने की शक्ति हमारी लेखिनी में नहीं है मुझ विचारवान इस समय अपनी विचार शक्ति से काम लें नहीं तो स्वामी श्रद्धानन्द जी के मृत्यु-दृश्य से उसकी आभामात्र ले लें। बस इतना ही !

श्री गुरु तेगबहादुर जी की मृत्यु से सर्वत्र शोक व्याप्त हो गया। आबाल वृद्ध वनिता सब कोई उनका यशोगान करने लगे। सब कोई कहने लगे कि—सिर दिया पर सार न दिया।

असि के प्रति

[लेखक—श्री० कविरत्न श्री जगन्नाथ मिश्र "कमल"]

आ कर में, संग्राम-संगिनी,
रिपु-शोणित-प्यासी तलवार ।
निश्चय कर ले आज बहाना
होगा, तुझे रक्त की धार ॥
समर-वाद्य बज उठे, लगे
करने अनेक सैनिक प्रस्थान।
शीघ्र छिड़ेगा युद्ध, वीर होंगे
कितने पल में बलिदान ॥

समय हो गया, असि! तुम्हारे है
निर्भर मेरा विजयोल्लास ।
भैरव वेश बना ले, काँपे
जिसे देख पृथ्वी-आकाश ॥

हँसना लौटूंगा अवश्य यदि
बनी रहेगी तू अनुकूल ।
रण-चंडी आ, स्वयं बोल जय,
बरसावेगी तुझ पर फूल ॥
दृश्य देखने को बैठे हैं सुरगण
खोल व्योमथल-द्वार ।
इधर दिखाने को रण-कौशल
भुजा फड़कती बारम्बार ॥

प्राण हथेली पर रख चलता
हूँ निर्भय करने संग्राम ।
चल, सहुलास साथ मेरे, हे
वीरों के श्रृंगार ललाम ॥

विजय दिलाना मुझे ठान ले,
भर लूं मैं मन में उत्साह ।
फिर जग में है कौन रोक जो
सके विजय की मेरी राह ॥

वीर बलिदान है

[लेखक—श्री० साहित्योपाध्याय पं० गणेशीलाल जी सारस्वत ।]

—:*:—

तोप दगें धड़ाधड़ तड़ातड़ तीर लगें;
होत रुण्ड-मुण्डन को युद्ध घमसान है ।
लोथिन पै पैर धरि शत्रु के समूहन पै;
सती के सपूतन की बाजति कृपान है ॥
धरती सी फटै डटै धीरन को धीर कैसें;
पै न रणधीरन को मानस मलान है ।
भागत घमण्डी-दल, कायर-कपूतन को;
होत रण-चण्डी पर वीर बलिदान है ॥

वैश्य जाति और वीरता

[लेखक—श्रीयुत गोविन्ददास जी गुप्त बी० ए०]

:o:

मन का हम पर बड़ा असर पड़ता है। मन की स्वस्थता पर ही हमारा शारीरिक तथा नैतिक बल निर्भर है। इसीलिए किसी ने कहा है—'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'। औसान और कुछ नहीं, मन की दृढ़ता है। एकसी ताक़त रखने वाले दो पहलवानों में अधिक साहसी ही को विजयश्री प्राप्त होगी—यह एक अनुभव-सिद्ध बात है।

हममें से अधिकांश छुई-मुई के पौधे सदृश होते हैं। दूसरे के इशारे पर हम नाचते हैं। दूसरों की राय पर ही हम अपने जीवन का दारोमदार समझते हैं। हमारी इस कमजोरी का प्रायः लोग बड़ा बेजा फ़ायदा उठाते हैं। पाठकों को सरल पंचतन्त्र की वह कहानी याद होगी जिसमें कई ठगों ने षड्यन्त्र रच कर ब्राह्मण के मन पर ऐसा असर डाला कि गाय के बछड़े को वह सचमुच अपवित्र पशु—कुत्ता—समझने लगा और अन्त में उसे (ठगों के लिए) छोड़ कर चला गया। एक पुरुष हृष्ट-पुष्ट था। कुछ लोगों ने यह साज़िश की कि इसे कमज़ोर बनाया जाय। बस एक एक करके समय समय पर वे उस से मिले।

एक—भाई तुम्हें क्या हो गया है? पहले तो अच्छे खासे थे! क्या किसी बीमारी से उठे हो?

दूसरा—हैं! यह क्या, तुम्हारी तो शकल ही बदल गयी! भाई, तुम्हें कुछ हो गया है!

तीसरा—क्यों जी! क्या मेरी आँखें मुझे धोका दे रही हैं या शायद तुम में ही कुछ तब्दीली हो गई है? भाई, मेरा कहना मानो तो जल्द हकीम को नब्ज दिखलाओ।

उसने इन लोगों का पहिले तो पूरा विरोध किया। आईने के सामने जाकर गौर से अपना रंग-रूप देखा। पर बार बार भिन्न भिन्न व्यक्तियों

में वही बात सुनने के कारण उसके दिल में यह बात जम गयी कि जरूर मुझे कुछ हो गया है।

इसी तरह एक नहीं सैकड़ों ऐसी सच्ची घटनायें गिनायी जा सकती हैं जिनमें मन की कच्चाई के कारण लोगों की मृत्यु तक हो गयी है, यद्यपि वास्तव में खतरे की कोई बात न थी।

अनजाने रूप में हम दूसरों के ऊपर अपने विचारों द्वारा अपना बुरा या भला असर डालते हैं। इन संकेतात्मक विचारों (Suggestions) ने व्यक्ति से लेकर कई जातियों तक को कायर, निकम्मा और लाचार बना दिया है। इस का उदाहरण साधारणतः हिन्दू जाति और विशेषतः वैश्य जाति है। हम बड़े बड़े प्रभावशाली हिन्दू वक्ताओं के मुंह से सुनते हैं—"हिन्दू डरपोक हैं, बुजदिल हैं।" हमने हतोत्साह करने वाले तो बहुत और प्रोत्साहित करने वाले कम देखे। और इस सम्बन्ध में सब से बड़ा अत्याचार यदि किसी के साथ किया गया है तो वह वैश्य जाति के साथ। न जाने कितनी किम्बदन्तियाँ, लोकोक्तियाँ और दोहे आदि इनके सम्बन्ध में गढ़े गये। उदाहरण के लिये 'वणिक पुत्र जाने कहा, गढ़ लेवे की घात'। 'बनिया पतली दाल के खाने वाले (अर्थात् कमजोर) होते हैं।' 'बनिया गम खाता है।' 'जान बची और लाखो पाये' यह उक्तियां उसी के हिस्से में पड़ी हैं। 'जब बनिया धमकी देगा तो गड़े पत्थर को उखाड़ेगा।' और सुनिये:—

"बनिया 'अ' निया गिड़ गिड़ी सानियाँ अरु ढोल।
ज्यों ज्यों इनको दाँचिये त्यों त्यों बोलें बोल ॥"

यह सब क्या है? वही संकेतात्मक विचार जिसने एक जाति भर को निकम्मा सा कर दिया और अब यही विचार धारा समष्टि रूप से हिन्दू जाति के विरुद्ध बहायी जा रही है। यदि अंगद की तरह हमने अपना पैर न जमाये रक्खा तो हमें भय है कि हम तूल की तरह उड़ जायँगे।

वैश्यों की वीरता के कई उदाहरण इतिहास से दिये जा सकते हैं। पर दूर जाने की क्या आवश्यकता है? अंगरेज जाति संसार में

(A nation of traders) वैश्य जाति कहलाती है। पर, कौन अंग-रेजों को कायर कहने का दुस्साहस कर सकता है ? महात्मा गांधी वैश्य कुलोद्भव हैं। पर क्या उनका कट्टर से कट्टर शत्रु भी उन्हें डरपोक कहने का साहस कर सकता है ? कदापि नहीं।

अब देखना यह है—भीरुता और निर्भयता, कायरता और शूर वीरता वास्तव में किन बातों पर निर्भर है ? हम सब कुछ समझते हैं—हमारा यह दावा नहीं। हम अपनी बुद्धि अनुसार ही इस विषय पर अपने विचार प्रकट करेंगे। अन्धकार मय अपरिचित स्थान में हमें डर लगता है। किन्तु अपने अन्धेरे घर में नहीं लगता। इससे सिद्ध हुआ कि अज्ञान ही हमारे भय का कारण है। जहां भी आप अज्ञान पायेंगे वहां भय अवश्य होगा। अङ्गरेजों की शिक्षा दीक्षा में और भारतीय वैश्यों की शिक्षा-दीक्षा में आकाश-पाताल का अन्तर है। भारत में पैर रखते समय अङ्गरेज भी बेतरह डरते थे। इतिहास इसका प्रमाण है। शाहजहां को विश्वस्तम्भ (proof of universe) तक कहा गया पर वे अङ्गरेज हमारी तरह कूप मण्डूक नहीं रहे। उन्होंने अपने ज्ञान के क्षितिज को बढ़ाया। मानव प्रकृति के तत्वों को पहिचाना और फलत: संसार के अधिकांश भाग पर वे अपना आधिपत्य जमाये हुए हैं। क्योंकि 'विद्या यस्य बलं तस्य' (knowledge is power) पर हमारे वैश्य भाइयों की शिक्षा कहां तक है ? बा० शिवनारायण जी के शब्दों में यहां के वैश्यों की शिक्षा मुड़िया तक ही परिमित है:—

"वह लिपि कि जिसमें सेठ को सठ ही लिखेंगे सब कहीं,
सीखी उन्होंने और उनकी हो चुकी शिक्षा वहीं।"

अज्ञान के कारण हम देही और देह में आत्मा और शरीर में कोई अन्तर नहीं समझते। शरीर को ही सब कुछ समझते हैं। आत्मा अमर है देह नश्वर है—यह भूल जाते हैं। ममता और मोह के कारण कायरता की शरण लेते हैं।

यदि हम अपना स्वरूप पहिचान लें तो हमें पता चले कि हम अमृत-पुत्र हैं, भगवान् के अंश हैं, उसकी विभूति हैं। अपने को किसी से कम समझना अपने मनुष्यत्व पर बट्टा लगाना और विधाता को लांछित करना है। जिस तरह दूसरे मनुष्य हैं, हम भी मनुष्य हैं। जो वह कर सकते हैं, हम भी कर सकते हैं। वीरता किसी की बपौती नहीं।

कभी कभी लोग गुण्डों के दुस्साहस को वीरता समझते हैं। सम्भव है देश की इस नाजुक अवस्था के समय कुछ लोग गाल बजाने में, गालियां देने तथा गुण्डेपन में ही शूरवीरता समझते हों। यह देश का दुर्भाग्य है। हिन्दू और मुसलमानों का भगवान् करे दृष्टिकोण विस्तृत हो, उनकी आंखें खुलें और वह देखें कि उन्हें अपने निहत्थे पड़ौसियों से नहीं किन्तु संसार की बढ़ी हुई जातियों से जीवन-होड़ में भिड़ना है।

'क्षमा' 'अहिंसा' 'गम्भीरता' 'धैर्य' आदि गुण बड़े अच्छे हैं। पर इनके बहाने अपनी कमजोरी छिपाना कायरता है। एक मनुष्य जो मेरा अपमान करता है मैं उसे चींटी की तरह वहीं मसल (कुचल) देने की सचमुच सामर्थ्य रखता हुआ भी यदि क्षमा कर दूं तब तो क्षमा मुझ में गुण है, अन्यथा वह गुण मुझ में नहीं। इसी तरह वह व्यक्ति जिसने अपने को सब तरह से सुरक्षित कर लिया है कभी हिंसा करने की आवश्यकता अनुभव न करेगा और न दूसरे ही उस पर आघात करने का साहस करेंगे।

अतः सच्चे वीर में साहस, स्वावलम्बन, निर्भयता, क्षमा, अहिंसा गम्भीरता, धैर्य आदि गुण होने चाहिये। गुण का दूसरा नाम है आदत। आदत एक दिन में नहीं पड़ जाती। एक जोशीली कविता पढ़ने या सुनने से कोई वीर नहीं हो जाता। हां, बात की चोट इससे कभी २ अवश्य लग जाती है जो मनुष्य के जीवन में एक क्रान्ति उपस्थित कर उस की सोई हुई शक्तियों को जाग्रत कर देती है।

ईश्वर करे न केवल वैश्य जाति के, न केवल हिन्दू जाति के, बल्कि समस्त भारत के हृदय पर पराधीनता के तीखे अनुभव की ठेस लगे और उसके जीवन में क्रान्ति उपस्थित हो कर उसकी सोई हुई सारी शक्तियां जाग उठें!

स्वाभिमानी वीर

[लेखक—श्रीयुत प० बुद्धिनाथ जी शर्मा]

(रंग में भंग के आधार पर)

चित्तौड़ाधिपति महाराणा खेतल सीसोदिया और बूंदी नृपति वीर वरसिंह जी हाड़ा की सेनाएं परस्पर भयंकर मार काट में मत्त हैं, मैदान में खून की नदी बह रही है, चहुं ओर हाहाकार मचा हुआ है; इसी समय राणा खेतल युद्ध हेतु अग्रसर हुये।

वरसिंह ने राणा को प्रेम दृष्टि से देखते हुये युद्ध से अलग रहने का बहुत ही प्रयत्न किया* किन्तु उमड़े हुये समुद्र की भांति उनकी गति का रोकना असम्भव हो गया। महाराणा ने सिंह गर्जन कर कहा—"बूंदी नृपति, युद्ध हेतु ललकारा हुआ शेर पीछे नहीं भागता, सच्चे क्षत्री की म्यान से निकली हुई तलवार बिना शत्रु रक्त चाटे म्यान में नहीं जा सक्ती। यह कहते हुये सीसोदिया वीर बूंदी सैन्य पर टूट पड़ा और रण चंडी फिर चैतन्य हो गई। अन्त में समस्त मेवाड़ वीर वहीं वीरगति को प्राप्त हुये।

जब इस शोकमय घटना की खबर चित्तौड़ पहुंची तो समस्त नगर में घोर रोदन ध्वनि मच गई किन्तु दैवेच्छा किसी से टाले नहीं टलती उस पर किसी का वश नहीं। अन्त को संतोष करना ही पड़ता है। एक दो दिन बाद शोक कम हुआ और चितौड़ का राज-मुकुट महाराणा लाखा के शुभ मस्तक पर रक्खा गया।

राज तिलक होते ही राणा लाखा ने प्रण किया कि बूंदी का दुर्ग तोड़े बिना यदि मैं अन्न जल ग्रहण करूं तो परमात्मा मुझे वीर-गति प्राप्त न हो और रौरव नरक की भयङ्कर यातनायें इस भौतिक शरीर को सदैव जलाती रहें। इस कठिन प्रतिज्ञा को सुनते ही वीर-गण सिहर उठा। किस प्रकार अन्न जल ग्रहण किये बिना शरीर रक्षित रहेगा, किस प्रकार बूंदी दुर्ग तोड़ा जायगा, कोई भी इस विषय में कुछ स्थिर न कर सका। किं

*वरसिंह के छोटे भाई नामसिंह की कन्या का पाणिग्रहण राणा खेतल से हुआ था।

कर्त्तव्य विमूढ़ होकर सब के हृदय भग्न हो गये और वे चिन्ता में डूब गये।

बहुत देर सोच विचार के पश्चात राज मंत्री ने साग्रह निवेदन किया—"श्रीमान का प्रण वीरोचित प्रण है। यह कार्य्य सूर्य्य-कुल के योग्य ही है। स्वाभिमानी वीर शत्रु-मान-मर्दन किये बिना जीवित नहीं रह सक्ता। हमारा सब का धर्म है कि इस प्रतिज्ञा पूर्ति हेतु अति शीघ्र प्रस्थान करें। हम को बूंदी दुर्ग तोड़ना है और अवश्य तोड़ेंगे. किन्तु अन्न जल का छोड़ना कैसे हो सकेगा? बिना खान पान कोई जीवित नहीं रह सक्ता! फिर प्रण कैसे पूरा होगा? दोनों ओर ही संकट है—एक ओर कठिन प्रतिज्ञा और दूसरी ओर बिना अन्न शरीर रक्षा। राजन विज्ञ मनुष्यों ने कहा है कि शुभ साधना हेतु शरीर रक्षा सर्वोपरि है। यदि आप अन्न जल त्याग देंगे तो कौन ऐसा कृतघ्न है कि आपका अनुकरण न करेगा। अतः मेरी तुच्छ सम्मति है कि प्रथम बूंदी का कृत्रिम दुर्ग यहां बनवाया जाय और उसको तोड़कर महाराज नियम पालन कर अन्न जल ग्रहण करें। तत्पश्चात भीम विक्रम से बूंदी के असली दुर्ग को मिट्टी में मिलाया जाय। सब ने इसका अनुमोदन किया कुछ देर चुप रह कर अन्त में राणा को उक्त प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा और बहुत शीघ्र बूंदी आकृति का गढ़ बनवाया गया।

थोड़ी देर में यह सम्बाद चित्तौड़ में चारों ओर फैल गया उसी समय राणा का नौकर बूंदी निवासी वीरवर कुम्भ हाड़ा जो आखेट करने जङ्गल में गया था निज साथियों सहित उधर आ निकला। उसके कानों में भी यह बात पड़ी। बूंदी की अवहेलना को वीर सहन न कर सका मुख गम्भीर हो गया। मारे हुए मृग को वहीं रख कर दुर्ग की मिट्टी से निज मस्तक पर तिलक चढ़ाया और कहने लगा—

"ऐ मेरी जन्मदात्री माता, तेरा मैं बहुत ही ऋणी हूं। मेरे रहते हुए किस की सामर्थ्य है कि तेरी ओर दृष्टि कर सके। मैं चाहे जहां चला जाऊं तेरा ही हूं, फिर तेरा ध्यान क्यों न रक्खूं, तू स्वर्ग से भी बढ़कर है और मेरी पूजनीय है, मैं डरपोक नहीं हूँ, मुझे मौत से क्या डर।"

वीर कुम्भ ! इन्हीं विचारों को लिए निज मातृ-भूमि की रक्षा में दृढ़ था उसी समय राणा लाखा शस्त्र लिये निज प्रतिज्ञा पालने को कुछ सैनिकों के साथ वहाँ आ पहुँचे। कुम्भ ने खड़े हो कर अपने धनुष को सम्हाला और राणा को सम्बोधन कर कहा—"राणा सावधान! यहां न आना। वरन—मैं शस्त्र छोड़ने पर बाध्य हूँगा। मैं आपका नौकर हूँ, इसी से आगाह करता हूँ, आप लौट जाइये। चित्तौड़ के राना को इस बुरी तरह सत्य का संहार करना शोभा नहीं देता। मैंने आपको केवल शरीर दिया है, मान नहीं, राजपूत मान पर सब कुछ न्यौछावर कर सक्ता है। सीसौदिया वीर का धर्म है कि बूंदी जाकर प्रण का पालन करें, अन्यथा बिना अन्न जल ग्रहण किये देह विसर्जन करदें। अच्छा होता यदि आप कृत्रिम दुर्ग बनाकर यहां आने का दुःख न उठाते अपितु, मन ही मन बूंदी का दुर्ग तोड़ कर अन्न जल ग्रहण कर लेते। यह मेरी जन्म-भूमि है अपने रहते मैं इसको तिरस्कृत नहीं होने दूंगा।" इस बात को सुन राणा सन्नाटे में आ गए और सहसा आगे न बढ़ सके।

राजपूत जाति तू धन्य है ! और धन्य है तेरे वह सपूत जो बात के पीछे जान को तुच्छ समझते हैं ! दृढ़ प्रतिज्ञ कुम्भ की बात को सुन राणा ने कहा—"वीर तुम्हारे विचार सर्वथा मान्य हैं, किन्तु जब तुम स्वयं बूंदी के सुपुत्र यहां मौजूद हो तो मेरा प्रण पालना सत्य का संहार नहीं हो सक्ता।"

यह सुन कुम्भ ने तीक्ष्ण बाण से उत्तर दिया, जिसे राणा ने अपनी ढाल पर रोका, बस वहीं विकट संग्राम छिड़ गया। किन्तु अकेला वीर कब तक सामना कर सक्ता था। अन्त में वीर कुम्भ कई रिपुओं को मार कर निज मान रक्षा के हेतु धराशायी हो गया।

उक्त घटना संवत १३९२ विक्रम की है, जिसको बीते छः सौ वर्ष के लगभग हो गये किन्तु वह चित्र की भांति आज भी नवीन है और सदैव ही इस स्वाभिमानी वीर कुम्भ की स्मृति रक्षा करेगी।

भीष्म कृत श्रीकृष्ण स्तुति

[लेखक—श्रीयुत पं० ठाकुरप्रसाद जी शर्म्मा एम० ए०]

(श्रीमद्भागवत् १. ९. ३३-३८ का अनुवाद)

स्याम छबि निरखि लजात हैं तमाल घन
त्रिभुवन सोभा ऐन नैन अरुनारे हैं,
लोल अलकावली की सोभा लसै आनन पै
पारथ के सारथी जो पीत पट धारे हैं।
सोहत सघन स्रम बिन्दु सों मुखारबिंद
समर की रज सों मलिन कच कारे हैं,
मेरे तीखे बान भेदे जिन के सरीर त्रान
तिन पद मेरे तन मन प्रान वारे हैं॥ १॥

सुनि सखा बैन बार लाई न कमलनैन
सैननि के बीच रथ सपदि चलायो है,
सैनिक दिखाइबे में काल दीठि डारि, आयु
रिपुन की हरी, भार भूमि को घटायो है।
गुरुजन सामुहे निहारि मन पारथ को
भयो है बिमुख, दोष बुद्धि में समायो है,
कुमति हरी है कहि ज्ञान जिन भगवान
तिनके चरन कंज ध्यान मैं लगायो है॥ २॥

अपनो निगम तजि जन पन राखिबे को
रथ त्यागि मेरे बध लागि प्रभु धाये हैं,
डोलत धरनि भारी कोप कै गजेन्द्र पर
धावत मृगेन्द्र की सी सोभा सरसाये हैं।
मो से आततांई ने न दया नेकु लाई मन
ताही समै तीखे बान चपरि चलाये हैं,
पूरित रुधिर सों भयो है अंग अभिराम
सोई छबि छाये घनस्याम मन भाये हैं॥ ३॥

आदर्श-बलिदान

[लेखक—श्रीयुत रामचन्द्र शर्म्मा 'विशारद']

"गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने घाव ।
खेत पुकारैं सूरमा, अब लड़ने का दाव ॥"

१

एक अकेली नवयुवती को अति घबड़ाई हुई आते देख कर रणधीर ने पूछा:—तुम कौन हो और क्यों ऐसी व्याकुल भगी जा रही हो ?

युवती—मैं एक भाग्य-हीना विधवा क्षत्राणी हूँ। मुसलमान गुण्डों के डर से ऐसी विह्वल भगी जा रही हूँ। किसी हिन्दू ने मेरी रक्षा के लिए साहस नहीं दिखाया ! हा ! निर्लज्ज हिन्दू समाज !!

रणधीर—मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। तुम घबड़ाओ मत। शान्त होओ ! जो मैं पूछता हूं, बताओ।

युवती—मैं ठहर नहीं सकती, क्योंकि आक्रमण-कारी पास ही आ रहे होंगे। मैं ठहरूंगी तो वे आ पहुँचेंगे और मैं संकट में पड़ जाऊंगी।

रणधीर—तो उनके आ पहुँचने से क्या भय है ! डरो मत ! मेरे रहते किस की ताक़त है कि चूं तक करे !

युवती—देखो ! वही तीनों आ रहे हैं।

रणधीर—आने दो, क्या भय है !

युवती—वे तीन हैं और आप अकेले हैं ! मुझे कैसे बचा सकते हैं ? बड़ा संकट है !

रणधीर—हा ! निरी अबला ही हो ! क्षत्राणी होकर भी इतना डरती हो। यदि तुम अपने स्वरूप को पहिचानो तो अकेली होने पर भी ये अंगुली तक नहीं दिखा सकते। मैं भी क्षत्री हूं। मेरे शरीर में भी उन्हीं वीर क्षत्रियों का रक्त है, जो सैकड़ों हज़ारों को भी तिनका गिनते थे। ये तीन क्या तीस भी मेरा कुछ नहीं कर सकते ! तुम निर्भय रहो। किस का दम है जो मेरे रहते मेरी मां-बहनों को छेड़े ?

रणधीर की उत्साह-पूर्ण बातें सुन कर युवती को कुछ धैर्य हुआ। रणधीर उमंग से भरा आगन्तुक गुण्डों की ओर देख रहा था। युवती कुछ विचार कर रणधीर से कहने लगी, 'यदि मेरे पास भी कोई हथियार होता, तो मैं भी यथा-शक्ति आप को सहायता पहुंचाती'।

रणधीर—तुम डरो मत। मेरे सामने भला इन तीनों की क्या चल सकती है! मैं तो इन्हें एक ही हाथ में साफ़ कर दूंगा। परन्तु यदि तुम्हारी लालसा है तो मुझे इसकी प्रसन्नता है। लो! मेरे पास तलवार भी है, और डण्डा भी। किसे चाहती हो? जो जी चाहे ले लो।

युवती—मुझे तलवार ही दे दीजिये। यदि इन पापियों को मेरे हाथों दण्ड मिले तो अधिक समुचित होगा।

तीनों गुण्डे आ धमके और युवती के साथ रणधीर को खड़ा देख कर आपस में कुछ विचार करने लगे। एक ने युवती की ओर सम्बोधन करके कहा:—"तुम क्यों रूठी जा रही हो? मैं तुमको ढूंढ़ते ढूंढ़ते परेशान हो गया। परिवार में जहां दस-पांच लोग रहते हैं वहां बोल-चाल हो ही जाती है। चलो, वापिस चलो।"

युवती—रे नीच! अब इस तरह पाखंड करके सफल होने की आशा करता है। मैं तुमसे ज़रा भी नहीं डरती। मेरे पास आने का दुःसाहस न कर, नहीं तो तुरन्त ही उस का पुरस्कार दे डालूंगी।

वह मुसलमान नव-युवक पुनः कुछ बोला ही चाहता था कि रण-धीर ने बीच में बाधा देकर क्रोध पूर्वक कड़क कर कहा:—"जो कहना हो, मुझ से कह। मैं तेरी नीचता अच्छी तरह समझता हूं। खबरदार! यदि फिर उससे बोला तो सिर तोड़ दूंगा।"

अन्य दो मुसलमान—वाह साहब! यह कहां का इन्साफ़ है? उसकी औरत है। घर में झगड़ा होने के कारण रूठ कर भागी जा रही है। वह उसे लौटाने आया है। वह न बोलेगा तो और कौन बोलेगा! तुम उस में दखल देने वाले कौन हो? क्या दुनियां में तुम्हीं एक ताक़त-वर आदमी रह गये हो?

रणधीर—जान पड़ता है कि तुम्हारे सिर पर काल नाच रहा है। हम मना कर रहे हैं और तुम लोग सुनते तक नहीं ! यदि कुशल चाहते हो तो अब भी लौट जाओ।

तीनों—वाह ! लौटेंगे क्यों ? काल तो तेरे सिर पर सवार है।

रणधीर—क्या समझते हो ? अभी हिन्दू जाति वीरों से शून्य नहीं हुई। तुम्हारा कपट-जाल यहां नहीं चलने का !

तीनों—हिन्दू कब से बहादुर बने हैं ! इन्हें मार खाने, मार जाने और भागने से कब फ़ुर्सत मिली है ? बड़ी शेखी बघार रहे हो। लो अब हम कहते हैं कि यह औरत हिन्दू ही है। हम लोग इसे भगा ले जायंगे। अगर दम है तो रोको।

ऐसा कह कर वे गाली देते हुए उस युवती की ओर चल पड़े। रणधीर भी ललकारते हुए सामने आकर भिड़ गया। दो मुसलमान तो उससे युद्ध करने लगे, और एक युवती की ओर बढ़ा। उसने जैसे ही उसकी ओर हाथ बढ़ाया वैसे ही उस पर ऐसी तलवार पड़ी कि वह कट कर अलग जा गिरा। हाथ कट जाने पर वह अंडबंड बकने लगा। परन्तु उस वीर बाला ने खोपड़ी पर तलवार का एक हाथ ऐसा जमाया कि वह पृथ्वी पर गिर कर बलि-प्रदान के अध-कटे बकरे के सदृश लोटने लगा। उधर दो गुण्डे जो रणधीर पर प्रहार कर रहे थे उनमें से एक के सिर पर रणधीर ने ऐसा डण्डा जमाया, कि उसका सिर पके बिल्व फल की भांति फट से फूट गया। गुद्दी बाहर निकल पड़ी और वह धराशायी बन गया। तीसरे की कमर पर वीर रमणी की तीखी तलवार अचानक पड़ी और वह सुपारी के वृक्ष की भांति हिलने लगा। दूसरी बार में रुण्ड से मुण्ड दूर जा पड़ा। यह देख रणधीर बोला:—"धन्य बहन ! धन्य हो ! अभी हमारी जाति में वीर ललनाओं की कमी नहीं।" वायु की प्रेरणा से दिशायें भी उन्हीं शब्दों को प्रतिध्वनित कर धन्यवाद देने लगीं।

२

तीसरे पहर का समय है। खुली छत पर डैस्क सजा हुआ है। उससे लगे हुए रणधीर और पद्मा कुर्सी पर बैठे समाचार-पत्र पढ़ रहे

हैं। जब कोई विशेष घटना आती है, तो एक दूसरे को दिखाने लगते हैं। उन दोनों के मुख पर कभी आनन्द, कभी कौतूहल, कभी उद्वेग, कभी विषाद और कभी शान्ति की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ रही है। अचानक एक तुमुल-ध्वनि ने दोनों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। देखते हैं कि धूल उड़ रही है और बहुत से आदमियों की भीड़ इधर ही आ रही है। कुछ सोच कर दोनों कमरे में चले गये और वीरों के वेष में सजे सजाये पुनः उसी कुर्सी पर अकड़ कर आ बैठे। उन दोनों के शरीर से वीरता टपक रही थी। वे उस दल की ओर ऐसे देख रहे थे, जैसे सिंह मृग झुंड की ओर देखता हो। देखते ही देखते मुसलमानों का वह विशाल दल रणधीर के मकान के पास आ पहुँचा। 'अल्लाहो अकबर' 'यही है' 'मारो काफिर को' 'लूटलो' 'काफिर को मारने से बहिश्त मिलता है' 'बदला लेने का यही मौक़ा है' 'बदला क्या सूद दर-सूद से भी ज्यादा लेंगे' की आवाजें कसी जाने लगीं। शेख रहीम ने जो इस गोल का सरदार था, रणधीर की ओर सम्बोधन करके कहा—"ऐ रणधीर! देख यह मजमा तुझे क़त्ल करने और लूटने के लिए आया है। उस दिन उन मुसलमानों को अकेले में मार कर तू उस औरत को अपने घर ले आया था। मुसलमान ऐसी कौम नहीं है कि एक मुसलमान के साथ कोई बुरा बर्ताव करे तो दूसरा मुँह देखे? हमने महरबानी करके सिर्फ औरत को दे देने पर ही तुझे माफ़ कर देने की खबर भी भेजी थी, लेकिन तेरे सर पर तो शैतान सवार है। अब भी औरत को वापिस करदे और अपनी जान बचा ले।"

रणधीर सुनते ही अग्निवर्ण हो गया। मुख-मण्डल से स्फुलिंग झड़ने लगीं। आँखें लाल हो आयीं। भुजाएँ फड़कने लगीं। वह झट से उठ खड़ा हुआ और रहीम को सम्बोधन करके बोला:—"ऐ धर्म के शत्रुओ! मैं तुम्हारी नीचता से ज़रा भी नहीं डरता। ऐसे ऐसे हजार 'मजमों' को भी मैं तिनका समझता हूं। मैं तुम्हारी 'मेहरबानी' को नफ़रत की निगाह से देखता हूँ। शैतान तो तुम्हारे सिर पर सवार है।"

रणधीर बोल ही रहा था कि इधर उधर से गालियों की बाढ़ सी आ गयी। रणधीर के राजपूती रक्त ने जोश मारा। वह तेजी के साथ चल पड़ा। पद्मा भी सिंहनी की भांति दौड़ पड़ी और फाटक खोल कर दोनों एक ही साथ निकल कर शत्रुओं से जा भिड़े।

फिर क्या था ? कायर-दल तितर-बितर होने लगा, कोई सामने नहीं ठहरता। किसी को सामने न पाकर रणधीर और पद्मा इधर से उधर फाँदते और जो सामने पड़ जाता एक ही हाथ में उसका काम तमाम कर डालते। थोड़ी ही देर में पृथ्वी रुंड मुंडों से पट गई, रक्त की धाराएँ इधर उधर बहने लगी।

रहीम यह कह कर कि 'औरत को पकड़ लो' पद्मा की ओर चल पड़ा और कुछ लोगों के साथ उसे घेर लिया। पद्मा चंचल तलवार घुमाती हुई निर्भीकता से डपट कर रहीम से बोली—"रे पापी, नीच ! तूने क्या समझ रखा है ? यदि स्यार सिंहनी की इच्छा करने लगे तो क्या वह सफल मनोरथ हो सकता है ? ले अब अपनी तलवार का मजा तुझे चखाती हूं। यह कह कर पद्मा ने एक हाथ ऐसा जमाया कि रहीम का सिर धड़ से जुदा होकर पृथ्वी पर लोटने लगा। घेरने वालों की तो और भी दुर्दशा हो गयी। किसी का पेट फट कर अंतड़ी बाहर निकल पड़ीं, तो किसी का मस्तक कट कर दो टूक हो गया। बचे बचाये लोग मैदान छोड़कर भाग गये। पद्मा अपने प्यारे भाई की खोज करने लगी। और उसे न पा कर अचानक बोल उठी, "हे, भगवन् ! मैं तुम्हें असंख्य बार अभिवादन करती हुई प्रार्थना करती हूं, कि इस भोली भाली हिन्दू-जाति को ऐसी शक्ति प्रदान करो जिससे उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान हो जाय और अवसर आने पर उसके शत्रुओं को नत मस्तक होना पड़े।" ऐसा कह कर पद्मा अनेक पापियों के स्पर्श से अपवित्र हुए करवाल को पवित्र करती हुई अपने वीर भाई रणधीर से जा मिली।

कवि-कीर्तन

तलवार की होली

[लेखक—श्रीयुत किशोरीदास जी वाजपेयी, शास्त्री]

काव्य-जगत में कवि-राज श्री भिखारीदास का नाम प्रख्यात ही है। आप कवि भी थे और सहृदय भी। सब रसों की कविता करने पर भी शृंगार को ही इन्होंने भी हिन्दी के और और कवियों के समान विशेष आश्रय दिया है। देखने में आता है कि इस युग के शृंगारी कवियों को समस्त संसार ही शृंगार-मय दीखता था—"दै शृंगार-चसमा चखनि, देखहिं तन्मय जग सदा"—ऐसे ही शृङ्गारियों के लिए कहा गया है।

सो, शृङ्गारी कवि बाबा भिखारीदास जी तलवार की करामात देख रहे थे; पर होली की रँगीली छटा ने उनकी आँखों में छाकर उन्हें गुलाबी कर दिया था; उन्हें वह छम-छमाती हुई तेजस्विनी तलवार भी नायिका-रूप में दीखने लगी। शृङ्गार की प्यारी सखी होली की तसवीर सामने आ गयी। वे बोल उठे:—

कढ़ि कै निसंक पैठि जाति झुंड-झुंडनि में,
लोगन को देखि दास आनन पगति है।
दौरि दौरि जाहि ताहि लाल करि डारति है,
अंग लगि कंठ लगिबे को उमगति है॥
चमक-झमक वारी ठमक-जमक वारी,
दमक-तमक वारी जाहिर जगति है।
राम असि रावरे की रन में नरन में,
निलज बनिता सी होरी खेलन लगति है॥

वाह वाह ! कैसी होली हो रही है !! वस्तुतः निर्लज्ज बनिता ही ऐसी होली खेलती हैं और वे ही खेल सकती हैं। बेचारी सती-साध्वियों में इस होली की लाली कहाँ? हां, यदि वे भी—"यहि पार्वे पतिव्रत तार्वे" रखकर—इन्हीं की श्रेणी में नाम लिखा लें, तो इनमें भी यह करामात आ सकती है।

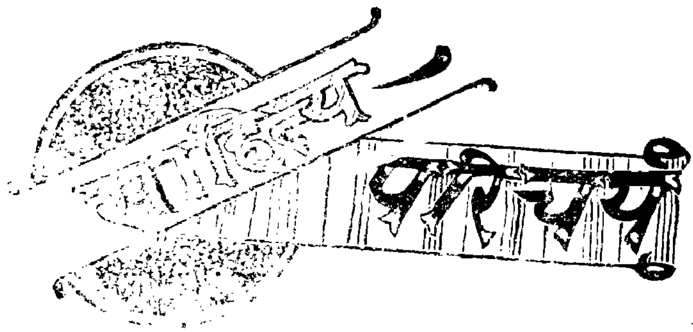
अच्छा, तो कहिए तलवार की होली कैसी रही ? है किसी बात की कमी ? हमें तो कोई कमी नज़र नहीं आती। हाँ, होली वाले "मत-वालों" को कदाचित् एक कमी दीखती हो—वही सखी हर पत्ती की। परन्तु इसके बिना भी होली के इस मज़े में कोई कमी नहीं हो सकती; क्योंकि क़ुदरती नशा चढ़ा है—जोश में चूर-चूर दिल हो रहे हैं।

भगवती कृपाण-देवी की इस होली में और क्या क्या है ? इसमें अनुप्रास अलंकार की झड़ी लगी है। "रन में न रन में" यमक का दृश्य है। समस्त पद्य पूर्णोपमा का किला है। इस किले का मालिक "वीर" है। शृङ्गाराभास इसी को इस समय अनुयायी है अतः "रसवन" भी रसीली छान रहा है। होली में "शंकर" और "संसृष्टि" भी प्रायः हो जाती है; सो यहां भी है। शब्दालंकारों की आपस में मिले हुए जौ-गेहूँओं की तरह "संसृष्टि" है। "पूर्णोपमा" और "रसवन" की अच्छी जोड़ी है गँठजोड़ा भी हो गया और इस होली में "शंकर" भी हो गया! दोनों का एक आश्रय है—दोनों पूरे पद्य-पर्दे में झलकते हैं। बस ! और क्या चाहिए ?

प्यार

[लेखक—श्रीमान् मोहनलाल जी महतो "वियोगी"]

बह तेरा है प्यार जिसमें समझ रहा था निष्ठुर यार,
धिक् मेरी दुर्बुद्धि, धन्य है देव ! अनूठा सद्व्यवहार।
प्यार किया सुमनों को तोड़ा, गूँथा हार बना डाला-
प्यार किया सोने को डाहा, पीटा तार बना डाला।
प्यारी नदियाँ हैं सागर में मिल अपनापन खोतीं,
प्यारी होने के कारण ही छिदे मनोहर मोती॥



मुक्तधारा—अनुवाद-कर्त्ता, पण्डित धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री तर्क शिरोमणि, एम० ए०; प्रकाशक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर, कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव, बम्बई। पृष्ठ संख्या १२० + ४; मूल्य ग्यारह आना।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज़ का यह ५६ वां ग्रन्थ महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बंगला नाटक का हिन्दी अनुवाद है। कवि-शिरोमणि रवीन्द्र की किसी रचना की आलोचना करना सूर्य को दीपक दिखाना है। नाटक का सारांश इस प्रकार है कि उत्तरकूट के राजा रणजित के इञ्जीनियर विभूति ने पच्चीस वर्ष तक लगातार घोर परिश्रम करके एक ऐसा बांध बनाया है जो "मुक्तधारा" झरने के पानी को शिवतराई राज्य के निम्न प्रदेश में जाने से रोकता है। परन्तु राजकुमार अभिजित, जो 'मुक्तधारा' के पास पड़ा पाया गया था और जिसे राजा ने गोद ले लिया था, चाहता है कि सब लोग झरने के प्रवाह का एकसा लाभ उठा सकें। राजकुमार बन्दी कर लिया जाता है, परन्तु वह अपने को बन्दीगृह से मुक्त करके चुपचाप यन्त्र के भीतर घुसकर उसके पुर्ज़ों को खोल देता है। यन्त्र नष्ट हो जाता है और झरने का प्रवाह पूर्ववत स्वच्छन्द हो जाता है। इसी वीरता-पूर्ण कार्य में राजकुमार की मृत्यु हो जाती है। नाटक का अनुवाद अच्छा हुआ है। भाषा सरल, सजीव और सुन्दर है। आरम्भ में प्रोफ़ेसर महोदय ने नाटक तथा उसके पात्रों के सम्बन्ध में एक विचार-पूर्ण आलोचनात्मक विस्तृत भूमिका लिखी है। मूल नाटक में आये हुए बङ्गला गीतों का भाषानुवाद चिरगाँव निवासी सुकवि मुंशी अजमेरी जी ने किया है।' इससे पुस्तक की शोभा द्विगुणित हो गई है।

संयुक्त प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक—संग्रहकर्त्ता, जैनधर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी; प्रकाशक, श्री हीरालाल जैन एम० ए०, जैन होस्टल, प्रयाग। आकार मंझोला; पृष्ठ संख्या १२४ + ४; मूल्य छः आना।

प्रस्तुत पुस्तक का विषय नाम से ही प्रकट है। किसी जाति के क्रम-बद्ध इतिहास लिखने में उसके प्राचीन स्मारकों से कितनी सहायता मिलती है—यह स्पष्ट है। ब्रह्मचारी जी इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से सरकारी गज़ेटियरों से संयुक्त प्रान्त के जैन स्मारकों के वृत्तान्तों का संग्रह किया है। उपोद्घात-लेखक श्री हीरालाल जैन के इस कथन से हम पूर्णतया सहमत हैं कि एक ऐसे जैन पुरातत्त्व शोधक समाज का संगठन होना चाहिए जिसके सदस्य धार्मिक, साहित्यिक व ऐतिहासिक प्राचीन बातों का विशेष रूप से शोध करें। जैन मात्र को प्रस्तुत पुस्तक पढ़कर अपने प्राचीन स्मारकों के पवित्र वृत्तान्त से अपने पूर्वजों का परिचय प्राप्त करना चाहिए। —रामस्वरूप गुप्त।

निम्नलिखित पुस्तकें भी मिल गई हैं। प्रेषक महानुभावों को धन्यवाद!

हिन्दी-सन्देश—रचयिता, श्री रामवचन द्विवेदी 'अरविन्द'; प्रकाशक सुलभ साहित्य सदन, दुबौली, पो० नियाज़ीपुर (शाहाबाद)। आकार मंझोला; पृष्ठ-संख्या २० + ४; न्योछावर दो आना।

संगठन का बिगुल—लेखक, श्री अयोध्याप्रसाद गोयल 'दास' देहली; प्रकाशक मंत्री जैन संगठन सभा देहली। आकार मंझोला; पृष्ठ संख्या २८ + ४; मूल्य एक आना।

वर्ण-दशा—रचयिता, श्री रामवचन द्विवेदी 'अरविन्द' प्रकाशक, सुलभ साहित्य सदन दुबौली, पो० नियाज़ीपुर (शाहाबाद)। आकार मंझोला; पृष्ठ संख्या २० + ४; न्योछावर दो आना।

हमारा प्राचीन गौरव—लेखक श्री आनन्द भिक्षु आनरेरी जनरल मैनेजर प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन; प्रकाशक, श्री भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थ-माला, वृन्दावन। आकार मंझोला; पृष्ठ-संख्या २०; मूल्य =)

विविध विषय

१—आत्मीय—

हमें दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि गत १८ फरवरी को हमारे पूज्य नाना जी (श्री बिहारीलाल जी) का देहान्त हो गया। हमारे माता पिता का देहान्त छोटी अवस्था में ही हो जाने से आपने ही हमें और हमारे बड़े भाई साहब को पाला पोसा और पढ़ाया लिखाया था। और हमीं को आपने अपना पुत्र मान कर रखा था। हम पर आपका जैसा स्वाभाविक प्रेम था वह अकथनीय है। आपके वियोग से स्वभावतः हमें जो चोट पहुंची है वह हमीं जानते हैं। किन्तु संतोष की बात यह है कि आपने अपनी पूर्णायु भोग कर लगभग ८० वर्ष की अवस्था में सब प्रकार से संतुष्ट होकर वैराग्य भावों के साथ इस शरीर को छोड़ा।

आप स्वभाव के बड़े सरल, शान्त और सन्तोषी थे। अपने भाई, भानजे, भतीजे, धेवते तथा अन्य अनेकों को सब प्रकार से योग्य बनाकर भी कभी आपने यह न सोचा कि मैंने किसी पर कुछ अहसान किया है।

तीस वर्ष तक आप मध्य प्रान्त में शिक्षा विभाग के निरीक्षक रहे थे और लगभग तीस ही वर्ष तक आपने सरकार की पैंशन प्राप्त की। इतनी अवधि तक सरकार की पैंशन प्राप्त करने का सौभाग्य बिरले महानुभावों को ही प्राप्त होता है।

आपके विचार बड़े ऊंचे रहते थे आपके ही साहाय्य से आपकी जातीय सभा स्थापित हुई थी और ६ वर्ष तक आप ही "जैसवाल जैन" को प्रकाशित करते रहे थे। समाचार पत्र पढ़ने के आप बड़े शौकीन थे। आपके धार्मिक भाव भी बहुत अच्छे थे।

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस ...

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्र जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रहा उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग १ } आगरा—चैत्र शुक्ल २ सं० १९८४—वीर सं० २४५३ { अङ्क ६

वीर-भावना

[लेखक—राष्ट्र-कवि श्री० माधव शुक्ल]

मत दे स्वराज्य, मत दे वैभव करतूती।
भर दे भगवन रजपूतों में रजपूती॥
परवाह नहीं दाने दाने को तरसें।
परवाह नहीं गोली या गोले बरसें॥
एक रहे प्रेम, विश्वास, एकता, जग में।
मन रहे लगा भारत के हित साधन में॥
माधव बस दे मरने की मजबूती।
भर दे भगवन राजपूतों में रजपूती॥*

* भरतपुर सम्मेलन में लेखक द्वारा निर्धारित एक गान।

[illegible]

[illegible] ।

[illegible] किंत चह व्रण ।

[illegible] पर्णी [illegible] ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible] कि सिन साधन म ॥

[illegible] की मसवूनी ।

[illegible] ॥

[illegible] निर्जीरित [illegible]

आल्ह-खण्ड

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी वाजपेयी शास्त्री]

हमारे युक्त-प्रान्त में "आल्ह खण्ड" बहुत प्रसिद्ध है। बैसवारे में तो इस की बड़ी ही धूम है। जहां बरसात के दिन आये कि लगी ढोलक गड़गड़ाने और "आल्ह-खण्ड" के वीर-रस-परिप्लुत छन्द गूंजने- "खट-खट खट-खट तेगा बाजै चम-चम चमकि उठै तरवारि।" तथा— "बड़ लड़ैया महुबे वारे जिन की बेंड़ि बहै तरवारि" इत्यादि। विशेषतः कृषकों और श्रम-जीवियों ही में अभी तक इस का विशेष आदर और प्रचार है। हमारे छैल-छबीले बाबू लोगों के कोमल हृदयों में इस के शब्द कहीं अपनी कठोरता से आघात न पहुंचा दें; मानो इसी डर से उनसे यह और इससे वे अलग रहते हैं! उन्हें तो लखनऊ की "ठुमरी" और हाथरस वाले "चौबोला" जी-जान से प्यारे हैं, जिन में वह मजा आता है कि, वाह वाह! अस्तु नाम के कीड़े को उसी का रस मीठा लगता है। यह तो अपनी अपनी रुचि है—"भिन्नरुचिर्हि लोकः।"

कदाचित् दो बरस की बात है। सुदूर—सात समुद्र पार—योरुप से एक विद्वान ने इस "आल्ह-खण्ड" पर कुछ टीका टिप्पणी प्रकाशित की थी और हिन्दी-साहित्य के महारथी मान्यवर श्री महावीर प्रसादजी द्विवेदी के पास समालोचना के लिये भेजी थी। द्विवेदी जी ने "सरस्वती" में उसकी समालोचना की भूमिका में अपने शब्दों में, ये भाव प्रकट किये थे—"आल्ह-खण्ड का जैसा कुछ आदर होना चाहिये था, नहीं हुआ। इसका प्रचार केवल कृषकों और श्रम-जीवियों ही में है। हमारे यहां की बाबू पार्टी इससे नाक-भौं चढ़ाकर दूर रहती है, यह बड़े खेद की बात है। परन्तु हीरा पारखियों के पास पहुंच जाता है।" द्विवेदी जी जान-बूझ कर भूल जाते हैं कि, इस समय बेचारे जुल्फ-धारी और मांग-पट्टी वाले बाबुओं को "चन्द्रकान्ता" से एक मिनट की फुरसत नहीं। नाहक वे उनको दोष देते हैं।

अच्छा, अब देखिए कि, यह "आल्ह-खण्ड" है क्या ? यह है एक वीर रस का अच्छा काव्य। साहित्य-शास्त्र में काव्य के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अवर। "आल्ह-खण्ड" को हम उत्तम काव्य और पण्डित-राज श्री जगन्नाथ की—रस गङ्गाधर में की हुई—गणना के अनुसार उत्तमोत्तम काव्य समझते हैं। उत्तम किंवा उत्तमोत्तम काव्य की सब बातों का इस में समुचित समावेश है। एक भी बात की कमी नहीं है। पढ़ते और सुनते ही चित्त फड़क उठता है, भुज-दण्डों के साथ वीर रस की तरङ्गे सहृदयों के हृदय-उदधि में हिलोरें लेने लगती हैं।

जहां किसी रस अथवा भाव की ध्वनि निकलती हो, उसे उत्तम अथवा उत्तमोत्तम काव्य कहते हैं। आल्ह-खण्ड के एक एक पद से वीर-रस टपका पड़ता है। यह युद्ध-वीर के रस से इस प्रकार भरा है जैसे बढ़िया काबुली अंगूर अपने मीठे सुस्वाद रस से। जो कुछ भी है—रस-मय है। ग्रन्थ की कौन कहे, इसके प्रत्येक वाक्य, पद, पदांश, वर्ण और मात्राएं रस-मन्दाकिनी बहाने के लिये शंकर की जटाएं हैं। यदि कभी हिन्दी में भी, संस्कृत के काव्य-प्रकाश के ढंग का, कोई साहित्य-ग्रन्थ बनेगा तो, इस ग्रन्थ के बनाने वाले को प्रत्येक प्रकार की ध्वनि ढूंढ़ने के लिये जगह जगह उतना श्रम न करना पड़ेगा—सब कुछ एक इस "आल्ह-खण्ड" ही में मिल जावेगा।

छन्द भी इसके रस के अनुकूल ही हैं—सोने में सुगन्ध है। अच्छा मेल है। छन्द की जमावट कान में पड़ते ही तलवार उठाने को जी करता है। छन्द के अतिरिक्त और सब कुछ भी अपने रस के अत्यन्त अनुकूल हो कर उस का पोषण करता है। रस काव्य की जान है, सर्वस्व है। शब्द और अर्थ उस के शरीर हैं। ओज आदि तीन उस के गुण तथा अनुप्रास और उपमा आदि अलंकार हैं। गुण साक्षात् उस के धर्म हैं, और इन का सदा ही उस से सम्बन्ध रहता है। अलंकार उस के धर्म नहीं—इन की उपस्थिति वैसी आवश्यक भी नहीं और इन

का उस से साक्षात्, अथवा नित्य सम्बन्ध भी नहीं। ये तो उस के शरीर—शब्द और अर्थ—को विभूषित कर के परम्परा से उस का कुछ उत्कर्ष करते हैं। सरस वस्तु में अलंकारों की उतनी जरूरत नहीं। परन्तु, यदि हों, तो बहुत अच्छा: रस का उत्कर्ष करते ही हैं। हां, यदि वस्तु नीरस हो, तब फिर इन—अलंकारों—का होना आवश्यक हो जाता है। जहां—चित्र में—आत्मा का अभाव हो और कोई उस में सजावट भी न हो, तो फिर वह क्योंकर सहृदयों के हृदयों को अपनी ओर खींचेगा और किस प्रकार उसे कोई काव्य कहने का साहस करेगा? ऐसे काव्य, जहां रस न हो कर केवल ऊपरी ही तड़क-भड़क शब्दों और अर्थों को विभूषित कर की गई हो, अवर अर्थात थर्ड-क्लास-काव्य कहलाते हैं। इन के दो भेद हैं—शब्द-चित्र और अर्थ-चित्र। शब्दालंकार होने से प्रथम और अर्थालंकार होने से द्वितीय होता है। अतएव "आल्ह-खण्ड" उत्तम काव्य है, वह रस-मय है। उसी की ओर बातें देखिए, पहले गुण देखिए।

"आल्ह-खण्ड" में वीर-रस है, और सो भी प्रधान युद्ध-वीर। इस रस का उत्कर्ष "ओज" गुण से होता है। ओज के बोझ से आल्ह-खण्ड के पद्य खचा-खच भरे हैं। उन में अब जरा सी भी और किसी गुण के लिये गुंजाइश नहीं। हां, उसने "प्रसाद" पर अवश्य प्रसाद कर के उसे अपना अनुयायी बनाया है।

गुण का व्यञ्जन वर्ण-घटना-विशेष से होता है। इन वर्ण-घटनाओं का नाम है—"रीति"। तीन गुणों का व्यञ्जन करने वाली तीन पृथक् २ रीतियां हैं। ओज का व्यञ्जन "गौड़ी" रीति करती है। इसी को कोई "परुषा" भी कहते हैं। यह "गौड़ी" रीति सदल बल अपनी छावनी "आल्ह-खण्ड" में डाले डटी है। इस रीति की नीति ने और रीतियों को फटकने नहीं दिया है। अगर कहीं दूसरी कोई आई भी है, तो दासी होकर। इस प्रधान रीति से वह गुण व्यक्त हो कर रस का परिपाक करता है कि, देखते ही बनता है।

अलंकारों की अवश्य "आल्ह-खण्ड" में कमी है। सो, इसकी बाबत हम पहले ही कह चुके हैं कि सरस वस्तु में उनकी उतनी आवश्यकता नहीं। यही नहीं, प्रत्युत सरस वस्तु में बड़े बड़े बीहड़ "यमक" और "पहेलिका" जैसे अलंकारों की भरमार करना दोष माना गया है। ऐसा करने से रस का आनन्द मारा जाता है। मीठी ईख चूसने में उस की गांठ बीच में पड़ कर चूसने वाले के मजे को कैसा किरकिरा कर देती है? वही बात यहां है। सरस वस्तु को तो एक-दो अलंकार ही काफ़ी होते हैं। सुन्दर भावुक को एक अंगूठी ही उस की सुन्दरता के लिये बस होती है। इसके विपरीत यदि वह गंवारों की तरह विविध गहनों से लत-पत हो जाय: तो, सहृदय उस की इस सजावट पर जरा हंसेंगे—यह भद्दापन उस की भावुकता को बट्टा लगा देगा। हमारा "आल्ह-खण्ड" इस भद्देपन से बाल बाल बचा है। उस में अलंकार हैं, अवश्य शब्दालंकार भी हैं और अर्थालंकार भी, परन्तु, वे अत्यन्त सूक्ष्म और प्रसिद्ध हैं। इसी से उस की शोभा बढ़ जाती है। रस के उत्कर्ष की पराकाष्ठा हो जाती है।

दोषों का अस्तित्व काव्य को बिगाड़ देता है। "आल्ह-खण्ड" काव्य दोषों से बहुत बचा है। यों तो आप बड़े से बड़े कवि की कृति में दोष पा जायंगे। कालिदास और बिहारी भी अछूते नहीं। परन्तु, इन का बाहुल्य बहुत भद्दा होता है और वही समनस्कों के मनों को विमुख करता है। अन्य काव्यों की भांति "आल्ह-खण्ड" में भी लोग दोष ढूंढ़ सकते हैं, पर इस से उसकी उत्तमता नहीं जा सकती।

थोड़े में "आल्ह-खण्ड" बहुत बढ़िया काव्य है। शोक है कि अभी तक किसी अच्छे प्रकाशक ने इस का संग्रह और सम्पादन करा कर इसे बढ़िया ढंग से प्रकाशित करने की नहीं सोची। आश्चर्य है कि, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन या नागरी-प्रचारिणी सभाओं का भी ध्यान इधर न गया। हम आशा करते हैं कि, इस काव्य का उद्धार किया जायगा। इस के प्रणेता आदि के बारे में फिर लिखा जायगा।

धधकती हुई आग के प्रति

[लेखक—श्री० केदारनाथ मिश्र गौड़ 'प्रभात']

अयि स्वतन्त्रता की लोहित-प्रतिमे !
तेजस्विनि करालिनी !!
अयि ज्वलन्त-यौवना-वासनामयि !
उन्मादिनि विलासिनी !!
अयी स्वर्णमयि ! मुक्त-कुन्तले !
व्योम-वाटिका-विहारिणी !!
प्रलय-हासिनी ! रक्त-पिपासिनी !
गहन-गर्व-उर-विदारिणी !!

वायु-वीन पर झूम-झूम कर
गाओ अट्टहास मय गान ।
आता हूँ मैं अपनी अन्तिम—
आहुति देने तुम्हें अजान ।

अयी शून्य की दिव्य-ज्योति !
हे कुटिल-काल के भृकुटि-विलास !!
मृत्यु-चक्र-चालिनी कालिका के—
अनन्त भैरव उल्लास !!
विप्लव-गायन की ज्वलन्त-कड़ियां हे !
हे अमर्ष की मूर्ति !!
अयी लालसाओं की घातिनि !
हे जीवन की अन्तिम-पूर्ति !!

बढ़ो—बढ़ाकर शिखा-बाहु
फैला दो अपनी शीतल (?) गोद ।
आता हूं सानन्द आज मैं
करने वहां अदृश्य-विनोद ॥

वीर संभाजी का अपूर्व बलिदान

[लेखक—श्री० बाबा राघवदासजी]

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध देशभक्त सावरकर (बैरिस्टर) अपनी 'हिन्दुत्व' नामक पुस्तक में लिखते हैं:—"Hinduttwa is not a word but a history" अर्थात् "हिन्दुत्व न केवल शब्द बल्कि इतिहास है।" उनकी यह सदुक्ति वास्तविक रीति से चरितार्थ होजाती है। जब हम इतिहास के पन्ने उलटने लगते हैं, समस्त मनुष्य की शक्तियों का परिचय उसकी परीक्षा के समय में हुआ करता है। वैसे तो प्रत्येक मनुष्य अपने सम्बन्ध में यह कह सकता है और कहा भी करता है कि "मेरे लिये यह काम बहुत ही सरल है, मैं तो उसको बात की बात में कर डालूंगा? मेरा यह सिद्धान्त है और समय आने पर मैं इस पर अपना जीवन तक अर्पण कर दूंगा" आदि। पर जब सचमुच समय आ पहुँचता है, उस समय कितने सिद्धांत-वादी अपने संकल्प पर दृढ़ रहते हैं? हां यह बात सच है कि जो महा-पुरुष उस पर दृढ़ रहे हैं उन्होंने बड़े स्थायी कार्य कर दिखाये हैं। भगव-द्भक्ता मीराबाई ने विष का प्याला पीकर अमरत्व प्राप्त किया। इतना ही नहीं, सैकड़ों हजारों नास्तिकों में भगवान की भक्ति उत्पन्न करदी। बालक हकीकतराय ने दीवारों में अपने को चुनवा कर सिक्ख जाति का मुख सदा के लिए उज्जवल कर दिया। महात्मा सुकरात, दान-वीर कर्ण, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, सती शिरोमणि पद्मिनी और रणशूर लक्ष्मीबाई ने अपने बलिदान से संसार में एक अद्भुत शक्ति पैदा कर दी है जिसको देख कर हम सब उनके सामने नत मस्तक हो जाते हैं। यह मानव जाति इन सिद्धान्त वीरों के ऋण से कदापि मुक्त नहीं हो सकती—इसीलिए वह सैकड़ों हजारों वर्षों से इनका गुणगान करते हुए भी नहीं अघाती।

आज हम अपने पाठकों को एक ऐसे ही वीर का परिचय देना चाहते हैं जिसको जानते हुए भी हम लोग भूल गये हैं और एक प्रकार

से उसकी अवहेलना कर रहे हैं ! उस वीरका नाम है छत्रपति संभाजी! महाराष्ट्र इतिहास के जानकार जानते हैं कि ये संभाजी महाराज हिन्दू-राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज के पुत्र थे। शिवाजी महाराज की मृत्यु के पश्चात् संभाजी को ही हिन्दू राज्य की गद्दी का अधिकार प्राप्त हुआ था। अपने राज्य काल में वह विलासी थे, उन्होंने मुसलमानों से हिन्दुओं की रक्षा करने के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किया। पूंछ पकड़ कर हाथी को पीछे खींचने की शक्ति होने पर भी महाराष्ट्र की शारीरिक शक्ति विकास करने में भी सहायक न हो सके। अपनी सौतेली माता को मार डाला। अपने पिता के अनुभवी मन्त्रियों को निकाल कर उनके स्थानों पर अयोग्य मन्त्रियों को रक्खा जिस कारण उनको स्वयं शत्रुओं के हाथ में जाना पड़ा। इन्हीं सब कमजोरियों के होते हुए भी उस नर-वीर ने एक अपूर्व कार्य करके अपनी महत्ता का परिचय दिया और वह भी अपने अन्तिम दिनों में !

संभाजी महाराज तुलजापुर ग्राम के पास औरङ्गजेब द्वारा कैद करवाये गये। यह नीच कार्य एक षड्यन्त्र रच कर किया गया था। कैदी संभाजी औरङ्गजेब के पास लाये जाते हैं। औरङ्गजेब आनन्द से फूला नहीं समाता। उसको अपनी विजय आंखों के सामने दीखने लगती है। वह संभाजी से कहता है कि "मुसलमानी धर्म स्वीकार करो या तलवार के घाट उतरो" संभाजी महाराज वीर-भाव से उत्तर देते हैं कि "औरङ्गजेब! स्मरण रक्खो यह हिन्दू वीर शिवाजी का पुत्र है! वह हिन्दुत्व को छोड़ कर मुसलमानी धर्म कभी स्वीकार नहीं कर सकता !! औरंगजेब इस हिन्दू वीर की कठोरतम परीक्षा लेने का निश्चय करके उसको कारागार में भेज देता है। दूसरे दिन एक हत्यारा मुसलमान संभाजी के पास आता है और कहता है कि मुसलमानी धर्म स्वीकार करो अन्यथा आज तुम्हारा एक पैर काट दिया जावेगा ! वह दृढ़-प्रतिज्ञ वीर अपने प्यारे हिन्दू धर्म पर अटल है, और पैर कटवाने को तैयार हो जाता है। एक दिन दाहिना दूसरे दिन बांया, इसी तरह

हाथ की उंगलियां, बांह, आंख, कान, सबको एक करके वह हिन्दू वीर हिन्दू-धर्म के हिन्दू-जाति के नाम पर अर्पण कर देता है।

इस तरह १८ दिन व्यतीत हो गये अब केवल सिर सहित धड़ बाकी है अब भी परीक्षा समाप्त नहीं हुई है। १९ वें दिन औरङ्गजेब स्वयं आता है और संभाजी महाराज से कहता है कि "संभाजी अब भी मुसलमानी धर्म स्वीकार करो" वह महावीर फिर भी कहता है "मैं हिन्दू रह कर ही मरना पसन्द करता हूं" अब औरंगजेब की आंख खुली और उसे मालूम पड़ा कि हिन्दू-जाति से लोहा लेना सरल कार्य नहीं है। सच पूछा जाय तो यह वही दिन था जब औरङ्गजेब को विश्वास हो गया कि मराठों को जीत कर हिन्दू-जाति को मिटा देना कठिनतर कार्य है। वहीं से मुसलमानों की हिम्मत हार गई।

उसी दिन हत्यारे ने संभाजी महाराज का सिर धड़ से अलग कर दिया और उनके जीवन के साथ ही मुसलमानी सम्राज्य का भी अन्त कर दिया। पाठको! यह कितना बड़ा बलिदान था। १८ दिन तक अपने को अत्यन्त पीड़ित अवस्था में पाकर जिस पुरुष का हिन्दू-धर्म प्रेम विचलित नहीं हुआ उसके धैर्य की उसके दृढ़ निश्चय की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है! हम कह सकते हैं कि वर्तमान संसार के इतिहास में इस बलिदान की बराबरी का बलिदान हुआ ही नहीं।

महात्मा ईसा और सुकरात के जो बलिदान हैं उनमें उनको अधिक से अधिक एक दिन का कष्ट हुआ! पर इस हिन्दू वीर को लगातार १८ दिन! फिर भी अपने धर्म में अटल रहा। क्या हिन्दू जाति के लिये यह कम गौरव की बात है? यही बलिदान था कि जिससे संभाजी महाराज की मृत्यु के बाद नेतृत्वहीन महाराष्ट्र ने औरंगजेब जैसे पराक्रमी कट्टर मुसलमान बादशाह को पछाड़ कर छोड़ा और उसको मरने के लिये भी दिल्ली जाने का अवसर नहीं दिया।

इस हिन्दू महापुरुष को हम लोग भूले हुए हैं। सबेरे का भूला संध्या को लौट आने पर भूला नहीं कहा जाता। ठीक इसी तरह इस

समय भी यदि हिन्दू इस महापुरुष को अपने हृदय में योग्य स्थान दें तो हमारा हिन्दुत्व प्रेम बढ़े बिना न रहेगा ! छत्रपति शिवाजी महाराज ने हिन्दू राज्य की स्थापना की तो उनके पुत्र संभाजी महाराज ने हिन्दू-धर्म का मूल्य क्या है इसको सोदाहरण दिखला दिया ! इसीलिये हम कहते हैं कि "हिन्दुत्व एक शब्द नहीं इतिहास है"।

शहीदों के रक्त के तिक्त बचन

[लेखक—श्री० गोविन्ददास जी गुप्त बी० ए०]

नर पिशाच ! रे साव-धान हो ! पोल आज तब खोलूँगा ।
मैं निरीह-निष्पाप-नरों का-रक्त विश्व में डोलूँगा ॥
कण कण में कर क्रान्ति उपस्थित तेरे बल को तोलूँगा ।
तनिक ठहर जा जादू सा मैं सर पर चढ़ कर बोलूँगा ॥ १ ॥
निष्ठुर ! निर्भय ! क्या कहता है ? कलुष करों को धोलूँगा ।
चैन करेगा ? देखूँ कैसे ! रस में विष को घोलूँगा ॥
आत्म-ग्लानि के रहते कहता, "सुख-निद्रा में सोलूँगा" ।
याद रहे मैं प्रेत भयङ्कर सर पर चढ़ कर बोलूँगा ॥ २ ॥

शुभ सन्देश

[लेखक—साहित्योपाध्याय पं० ब्रह्मदत्त जी शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०]

कायर हिन्दू जाति के हरने सारे क्लेश ।
धन्य भाग निकला सुभग, पत्र 'वीर-सन्देश' ॥
सुनिये मन दे नवयुवक, उचित वीर-सन्देश ।
करिये निज कर्त्तव्य का पालन फिर निश्शेष ॥

स्वदेशाभिमानी वीर गुग्गा

[लेखक—श्री० दुर्गादास जी]

(१)

विजयोन्मत्त सिकन्दर की सेना ने भारत को पवित्र भूमि में प्रवेश किया। एक एक करके पाश्चात्य देश के छोटे छोटे राज्यों को उसने जीतना आरम्भ किया। प्रबल आंधी के समान आती हुई उसकी सेना को भला वह छोटे छोटे राज्य क्या रोकते! एक एक करके सबको दासता की बेड़ी पहिननी पड़ी।

धीरे धीरे सिकन्दर तक्षशिला की सीमा तक चढ़ आया। उस समय वह अत्यन्त प्रबल राज्य था। वहां के दुर्भेद्य अजेय दुर्ग तथा वहां की विजयोल्लासकारिणी सेना ने उसकी धाक दूर दूर देशों में जमा रक्खी थी। उस समय अम्भी नामक राजा वहां शासन करता था। सिकन्दर ने अपने दूतों को अम्भी के पास यह कहला कर भेजा कि या तो तुम हमारा आधिपत्य स्वीकार करो या युद्ध के लिए तय्यार हो जाओ।

दूत तक्षशिला पहुँचे। राजा ने उनको उत्तर देने के लिए एक विराट सभा की। दुर्भाग्यवश, अम्भी बड़ा डरपोक निकला। उसको लड़ाई के नाम से ही चिढ़ थी। उसने स्वतन्त्रता का गला घोंट कर परतन्त्रता को ही गले लगाना स्वीकार किया। उसके सरदारों ने बहुत समझाया परन्तु उसने लड़ाई स्वीकार न की। सुलह का पैग़ाम लेकर दूत वापिस लौटे। सब सरदार तो लहू का घूंट पीकर रह गये किन्तु सेनाध्यक्ष वीर गुग्गा से न रहा गया। उसने भरी सभा में खड़े होकर राजा का विरोध किया और कहा कि आपको मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता बेचने का कोई अधिकार नहीं है। यह सुलह नहीं—बल्कि देशद्रोह है। हम क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय शरीर में प्राण रहते किसी शत्रु का प्रताप नहीं सह सकते। मुझे आशा है कि श्रीमान् अपने नाम पर और अपने क्षत्रियत्व पर बट्टा नहीं लगायेंगे।

वीर-गुग्गा यह कह कर बैठ गया। किन्तु उसके दुःख और क्रोध का वारापार न रहा जब उसे ज्ञात हुआ कि उसकी बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। क्रोधवश वीर गुग्गा सभा-भवन से उठ कर चला गया।

\+ + +

(२)

एक नदी के किनारे छोटी छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ एक दुर्ग था जो एक घाटी की रक्षा के लिए बनाया गया था। यही वीर गुग्गा का घर था। सभा से अपमानित हो जब वहां से वह लौटा था तब से उसको रह रह कर यही खयाल आता था कि सिकन्दर भारत-वासियों की शूर-वीरता की बाबत क्या खयाल करता होगा। निस्सन्देह यह माता पाञ्चाल भूमि के माथे पर कलङ्क का टीका लगाना है। यह अपने पुरुषों की कीर्त्ति डुबाना है। तो क्या सिकन्दर यही खयाल करता रह जायगा कि भारत-भूमि वीर-विहीन हो गई है। यह सोचते २ उसकी आंखें डबडबा आईं।

वह यही सोच रहा था कि उसके कमरे में किसी ने प्रवेश किया वह उसका लड़का महेन्द्र था। महेन्द्र ने कहा कि तक्षशिला से अभी खबर आई है कि कल पौरस पर चढ़ाई करने के लिए सिकन्दर इसी घाटी के रास्ते से जायगा।

घाटी का नाम सुनते ही वीर गुग्गा चौंक पड़ा। जिस पहेली को वह हल करना चाहता था वह सहज में ही हल हो गई। उसके वृद्ध शरीर में गोया फिर से स्फूर्ति आ गई। उसने जी ही जी में कहा कि दम में दम रहते देश पर 'वीर-विहीनता' का कलङ्क नहीं लगने दूंगा। उसने महेन्द्र से कहा कि पुत्र शीघ्रता से दुर्ग के सब कर्मचारियों को तथा मेरे सब पुराने सिपाहियों को सहन में इकट्ठा होने की आज्ञा दो।

\+ + +

(३)

सहन लोगों से खचाखच भर गया। वीर गुग्गा ने उन सब को सम्बोधित कर कहा—"प्यारे मित्रो! जिस प्रकार क्षत्रिय-कुल-कलङ्क कुक्ष

राजाओं ने दासता का जूआ गले में डाल कर पाञ्चाल भूमि का अपमान किया है वह आप सब जानते हैं। किस तरह पर आपके राजा अम्भी ने भी उनका अनुकरण किया और मेरे विरोध करने पर किस प्रकार मुझे सभा से अपमानित होकर निकलना पड़ा वह भी आप सब जानते हैं। तो क्या सिकन्दर इसी तरह से हमारी जन्म-भूमि को पावों तले रौंदता हुआ चला जायगा? तो क्या सिकन्दर को यह दिखा देना आवश्यक नहीं है कि पाञ्चाल-भूमि वीर-शून्य नहीं हो गई। क्या उसको जतलाना जरूरी नहीं है कि हमारे शरीर में भी उन्हीं आर्यों का रक्त बहता है जिनका डङ्का सारे संसार में बज चुका है? क्या उसको दिखाना जरूरी नहीं है कि हमें भी मरना और मारना आता है? सब ने कहा—"अवश्य! अवश्य!" मित्रो! मैं यही कहना चाहता हूं कि हम लोगों का यह कर्त्तव्य है कि जो कलङ्क का टीका हमारे देश भाइयों ने हमारी जन्म-भूमि के माथे पर लगाया है उसको धो डालें और ईश्वर ने उनका अवसर भी हमें सहज ही में दे दिया है। कल विजयोन्मत्त सिकन्दर यहां से—इसी घाटी से—गुज़रेगा। मित्रो! मेरी इच्छा है कि उस घमण्डी से यहीं लोहा लेकर उसका सिर नीचा किया जाय। मैं चाहता हूँ कि हम लोग देश पर बलिदान हो जायँ तथा उसके गौरव को मनायें। बोलो! आप लोगों की क्या राय है?"

सब ने कहा—हम लोग बड़ी खुशी से मातृ-भूमि के लिये अपने प्राण देंगे।

वीर गुग्गा के सैनिक अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर सुबह होने की बाट जोहने लगे।

\+ + +

(४)

दूसरे दिन वीर गुग्गा अपने सब सिपाही लेकर जो गिनती में केवल पांच सौ थे घाटी के तङ्ग रास्ते में आजमा और बड़ी उत्कण्ठा से सिकन्दर के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

\+ + +

सिकन्दर के गुप्तचरों ने उसे बताया कि घाटी के तङ्ग रास्ते को रोके हुए पांचसौ सिपाही एक बूढ़े की अध्यक्षता में डटे हैं और बहुतेरा समझाने पर भी वह वहां से नहीं टलते—वह आपसे युद्ध मांगते हैं। हम लोगों को यह भी पता चला है कि वह राजा अम्भी का पुराना सेना-नायक है। सिकन्दर ने लापरवाई से सौ जवानों का एक दस्ता भेजा और कहा कि उन लोगों को वहां से हटा दो और यदि नहीं हटें तो सबको बांध कर मेरे पास ले आओ।

थोड़ी देर बाद सिकन्दर ने "पाञ्चाल भूमि की जै," वीरवर "गुग्गा की जै" की जय ध्वनि सुनी। उसे बड़ी हैरानी हुई जब उसे पता चला कि उसके सौ सिपाहियों को वीर गुग्गा ने काट गिराया है। सिकन्दर के विस्मय और क्रोध का वारापार न रहा। उसने दूसरा दस्ता भेजा। तीसरा भेजा। चौथा भेजा। परन्तु नतीजा वही। उसको विश्वास नहीं होता था कि केवल पांच सौ सिपाहियों के साथ वीर गुग्गा ने उसका मुकाबला करने का साहस ही नहीं बल्कि उसके चार दस्ते फौज भी काट डाली। उसने सेल्यूकस को बहुत सी सेना देकर कहा कि जब तक उस बूढ़े को पकड़ कर मेरे पास न ले आओ तब तक मेरे पास जिन्दा न लौटना। सेल्यूकस फ़ौज लेकर घाटी में पहुंचा। यूनानी सिपाही अपने लम्बे २ भाले लेकर कर आगे बढ़े किन्तु पाञ्चाली वीरों के तीरों की मार और तलवार की काट के सामने उनकी कोई पेश न चली। घाटी लोथों से पूर हो गई। परन्तु वीर गुग्गा और उनके साथियों ने हिलने का नाम तक न लिया। सिकन्दर यह सब अपनी आंखों से देख रहा था। उसकी आंखों में खून उतर आया। वह खुद अपनी सेना के चुने हुए सिपाही लेकर घाटी में पहुँचा और ज़ख्मों से चूर थके मांदे पाञ्चाली वीरों पर टूट पड़ा। परन्तु वीर गुग्गा ने कुछ भी परवाह न की। वह अपने सिपाहियों को ललकार कर दूने उत्साह से लड़ने लगा। परन्तु कहां वह संसार का अद्वितीय सेना-नायक सिकन्दर और कहां बूढ़ा सेनाध्यक्ष गुग्गा और

उसके मुट्ठी भर सिपाही! विपक्षियों को नाकों चने चबबाकर एक एक करके सब वीरों ने अपने प्राण विसर्जन किये। इस तरह स्वदेशाभिमानी वीर गुग्गा ने साथियों सहित देश गौरव हित अपने प्राण तो दिये, किन्तु मरने के पहिले वह विपक्षियों के चार हज़ार सैनिक धराशायी कर चुके थे।

\+ + +

(५)

कभी २ ऐसी घटनायें हो जाया करती हैं कि प्रत्यक्ष होने पर भी उनमें विश्वास नहीं होता। यही हाल सिकन्दर का था। उसकी अपनी आंखों के सामने उसको चार हज़ार सिपाहियों को प्राण देने पड़े परन्तु उसे विश्वास न होता था, उस अजेय सेना को जिसने आधी दुनियां कब्जे में कर ली थी–जिसके 'सूसा' और 'आरबेला' तक की बड़ी लड़ाइयों में दो हज़ार से अधिक आदमी काम न आये होंगे—उसी सेना के चार हज़ार चुने हुए सैनिकों को एक बुड्ढा अपने मुट्ठी भर साथियों से काट गिराये ?—असम्भव !

सिकन्दर को यही ज्ञात हुआ कि अम्भी ने उसे धोखा दिया है अतः अपनी ही सहायता को आते हुए अम्भी को उसने कौशल से क़ैद कर लिया।

बेड़ियों से जकड़ा हुआ अम्भी सिकन्दर के सामने लाया गया। अम्भी की अब आंखें खुलीं। वीर गुग्गा के सभा वाले शब्द "ये सुलह नहीं–देश द्रोह है" उसके हृदय में गूंज उठे। वह वीर गुग्गा की वीर गति का हाल सुन चुका था। उसे रह रह कर खयाल आता था कि क्यों उसने उस वीरवर की बातों पर ध्यान न दिया। वह इसी सोच में था कि सिकन्दर ने ऊंचे स्वर से कहा—"अम्भी !"

अम्भी जैसे नींद से जाग उठा। उसने अपने आपको संभाला और अकड़ कर खड़ा हो गया।

सिकन्दर ने फिर कहा—"अम्भी ! तूने विश्वासघात किया है इसलिए मरने के लिए तैयार हो जा।"

अम्भी ने कड़क कर कहा—"विश्वासघात मैंने नहीं तुमने किया है"। उसका यह कहना ही था कि एक सरदार ने आगे बढ़कर उसके एक लात लगाई और कहा "सम्राट सिकन्दर के सामने यह गुस्ताखी !"

लात का लगना ही था कि अम्भी के तन बदन में आग लग गई लाख ही कायर क्यों न हो परन्तु वह क्षत्रिय था उसके आंखों से खून टपकने लगा मानो सोता हुआ शेर जाग उठा। दूसरे ही क्षण कड़ कड़ की आवाज हुई और बेड़ियों से मुक्त अम्भी उस सरदार की गर्दन पर था। उसकी तलवार छीन कर उसने उसका सिर धड़ से अलग किया और फिर वही तलवार लिए सिकन्दर पर लपका परन्तु इतनी देर में सिकन्दर संभल चुका था और उसके दूसरे सरदार राजा पर टूट पड़े। अम्भी कई एक सरदारों को मार कर खुद भी वहीं ढेर हो गया।

मरते २ उसको यही ध्यान रहा कि यह उसके देश-द्रोह का ही फल है।

गजेन्द्र मोक्ष

[लेखक—श्री० अनूप शर्मा बी० ए०, एल० टी०]

क्रुद्ध ह्वै करत युद्ध बहु बल बारे दोऊ,
उथल-पुथल जल थल लौं करत भे।
दोऊ दोऊ ओरन को ऐंचत झपटि डटि,
दोऊ गहि दोऊन को धाय कै धरत भे॥
झटकि झटकि कै पटकि दोऊ दोउन को,
झिझकि झिझकि कै उझकि अभिरत भे।
मन्दर से ग्राह-गज कन्दर से बाये मुख,
मानस के अन्दर धुरन्धर लरत भे॥

(२)

भूमि से खमंडल लौं व्याप्यो मंडलीक रव,
बरस हजार लौं न कोऊ विचलत भे।

मीन मच्छ के तन विषाद के निकेतन भे,
सारे जड़-चेतन समेतन हलत भे ॥
द्विरद दराज दै अवाज व्रजराज टेरयो,
हिम्मत हिरानी जब ढाढस ढलत भे।
त्रासन सों ग्राह की उसासन पुकारयो ज्योंही,
त्योंही कमलासन के आसन चलत भे ॥

(३)

दौर धौरे गज के गुविन्ददास-ग्राह गहि,
सीतल ज्यों सोम मोम-हीतल पिघलिगो।
वित्त साधु-संतन के चित्त दयावन्तन के,
हिय में विमुक्त करिवे को भाव हलिगो ॥
आगे गये दौरि भक्त-हेत हरि भागे गये,
पाछे पौन पवि पच्छिराज लौ पिछलिगो।
आपै आप गज को बचाय धाय आये लौटि,
आपै आप नक्र के गले पै चक्र चलिगो॥

(४)

दीन को बचायो दौरि दास को दरस दीन्हो,
दीन को बचैय्या और रखैय्या निज दास को।
फारि धायो गगन विचारि कै विरद धायो,
शरद सेकार धायो निज जन पास को ॥
धायो अति वेग सों विहाय इन्दिरा को संग,
हारि निज ईशता निहारि अवकाश को।
आये हरि उतरि अकास ते पताल ज्योंहीं,
ग्राह गयो उछरि पताल ते अकास को ॥

अद्भुत-आत्मोत्सर्ग

[लेखक—श्री० महन्त शिवगुलाम भारती 'शङ्कर' रजादेपुरी]

(१)

मुग़ल वंशावतंस अकबर का दबदबा प्रताप के प्रताप को दबा न सका। प्रताप को अधीनस्थ करने के लिए अकबर द्वारा अनेकों षड्यन्त्र रचे गये, पर प्रताप की बहादुरी और साहस के सामने किसी की दाल न गली। बड़े २ मुग़ल योद्धाओं, बलवानों का मान-मर्दन हो गया। राजपूताने की वीर-प्रसविनी भूमि ने पग पग पर अनेकों माई के लाल पैदा किये हैं। जहां अगणित राजपूत वीरों, क्षत्राणियों ने स्वदेश की रक्षा-निमित्त अपना अमूल्य रक्तपात किया है, वहां उस स्थल पर, उस समय, उस वीर भूमि के वीर बच्चों ने भी कम साहस का काम नहीं किया है। आज हम 'वीर-सन्देश' के पाठकों को 'विजयसिंह' नामक वीर क्षत्रिय बालक का चारु-चरित्र भेंट करते हैं।

(२)

महाराणा प्रताप जब अकबर की अधीनता कबूल न करके दुर्गम दुःसह बनों में सपरिवार कालक्षेप कर रहे थे और दुश्मन की फ़ौज उनकी टोह में चारों तरफ़ चक्कर लगा रही थी, वे जहां किसी को पाते उसी से प्रताप का पता पूछते फिरते थे। न बतलाने पर शत्रु के सैनिक गण क्रोध में आकर उन लोगों को यथोचित दण्ड देते थे। प्रायः यही घटना चारों तरफ़ घटित हो रही थी।

जवाहर खां अकबर के सेनापतियों में से एक जवांमर्द और विश्वास-पात्र सेनापति था। उसे पता लगा कि प्रताप अभी २ इसी रास्ते से होकर गुजरे हैं, वह घोड़ा दौड़ाता हुआ सशस्त्र ससैनिक उसी रास्ते से सघन बन में घुसा। थोड़ी दूर पर उसे जंगल के बाहर विजयसिंह नामक एक राजपूत बालक मिला। अवस्था उसकी चौदह वर्ष की

थी। उसके मुख की आभा-प्रभा अत्यन्त दमनीय थी, वीरता तो उस की नस २ से झलक रही थी, वास्तव में था वह बड़ा ही साहसी और दिलेर। जवाहर खां का घोड़ा उसके पास पहुँच गया, सेनापति ने सगर्व पूछा—

"क्योंजी, इस रास्ते मे जाते हुए तुमने प्रतापसिंह को देखा है ?"

"जी नहीं, मियां साहब ! मैं तो अपने काम में लगा हूँ। हां, प्रताप को जानता अवश्य हूँ, उन्हें कौन नहीं जानता ? क्या आप उन्हें गिरफ्तार करने के लिए इस सैनिक वेष में घूम रहे हैं। अगर जीना चाहते हैं तो यहीं से दबे पांव वापिस लौट जाइए, नहीं तो इस सघन बन में टिड्डी दल के समान राजपूत सेना आप को चट कर जायगी। मियां साहब ! आप को तनिक शरम नहीं आती, जो डांकुओं की तरह इस प्रकार पीछा कर रहे हैं ! जाकर चिल्लू भर पानी में डूब मरो, एक आदमी के लिए इतनी बड़ी फौज ! इसी बूते पर प्रताप का सामना करने चले हो ? क्या मैं कभी प्रताप के साथ विश्वासघात कर सकता हूँ ? तुम्हें विश्वास है ? क्या मैं देश का शत्रु हूं ? राजपूत प्राणों की बलि देकर स्वदेश और धर्म की रक्षा करते हैं। मुझे भी तुम वैसा ही समझो।"

सेनापति की त्योरी बदल गई होठ चबाने लगा। चौदह वर्ष के छोकड़े का इतना साहस ! क्रोध के मारे वह आग बबूला हो गया, बोला— "क्या तेरी मौत नजदीक आई है जो इस तरह की छेड़ छाड़ बादशाह सलामत के सिपहसालार के साथ कर रहा है ?"

"जी हां सिपहसालार साहब ! राजपूत मौत से नहीं डरते। मृत्यु तो उनके लिए एक कौतुक मात्र है, राजपूताने की भूमि इसी से निर्दोष है। मैं आप की असलियत समझ गया था कि बन्दर घुड़की दिखला कर प्रताप का पता पूंछ लें। पर मैं आप से भी ज्यादा मक्कार हूं। मेरे देखते प्रताप की जान पर आफत आये यह मैं कहां तक गवारा कर सकता हूं ? क्या इसी से आप मुझे मौत का भय दिखला रहे हैं ?"

सेनापति का गुस्सा और अधिक बढ़ गया। उसने चट सिपाहियों को हुक्म दिया कि इस मुंह लग्गू ढीठ छोकड़े को फौरन बांध लो, छोटे मुंह बड़ी बातें कर रहा है।

(३)

हुक्म की देर थी, सिपाहियों ने विजयसिंह को तुरन्त बांध लिया। दिन डूबने में आध घण्टे की देरी थी, सेनापति ने कहा—

"इसे सीधे लश्कर में ले चलो।"

आगे २ चार सिपाही विजयसिंह को घेरे हुए लिये जा रहे थे, पीछे सेनापति का घोड़ा और उसके पीछे पांच सौ सशस्त्र यवनों की टोली 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि उच्चारण करती हुई जा रही थी।

विजयसिंह को लिये हुए जवाहर खां लश्कर में जा पहुँचा, अफवाह जोरों के साथ फैल गई कि प्रतापसिंह गिरफ्तार होकर आ गया। प्रताप का नाम सुनकर बादशाही खेमे से मुगल-सम्राट अकबर मारे खुशी के उछलते कूदते बाहर आये। जवाहर खां नजदीक पहुंच गया और अभिवादन करके बोला—

"जहांपनाह! आज राजपूताने का एक छोटा सा शिकार गिरफ्तार करके हुजूर वाला की खिदमत में लाया हूँ।"

"क्या कहा, जवाहर खां, क्या बड़ा शिकार हाथ नहीं लगा?"

गगन-भेदी स्वर से विजयसिंह बोल उठा—"बड़े शिकार को गिरफ्तार करना जरा टेढ़ी खीर है!"

जवाहर खां बोला—"हुजूर इस छोकड़े की जरा बात तो देखिए, प्रताप को खोजते हुए हम लोग इसके पास से गुजरे पता पूछने पर यह लौंडा टर्राने लगा, कहने लगा कि हम लोगों के देखते प्रताप पर आफत आए यह कैसे हो सकता है? बहुत कहा सुना पर काम नहीं चला, यह बड़ा ही मक्कार छोकड़ा है।"

जवाहर खां को बुला कर अकबर ने उसके कानों में कहा—"अच्छा तो उसे प्राण-दण्ड का भय दिखा कर और कुछ राज्य तथा धन

का प्रलोभन दिखलाकर प्रताप का पता पूछो। मुमकिन है कि वह लालच में आकर बतला दे।"

"नहीं महाराज! ऐसा तो मुझे यक़ीन नहीं है," जवाहर खां ने उत्तर दिया।

मुगल-सम्राट अकबर ने कहा—"अच्छा तो उसे मेरे सामने कल पेश करो, मैं उससे खुद बातें करूंगा"।

(४)

विजयसिंह को जवाहर खां ने हुक्म के मुताविक बादशाह के रूबरू पेश किया, ख़ीमे के अन्दर पांव रखते ही विजयसिंह ने कर्कश स्वर से आलाप किया "महाराणा प्रतापसिंह की जय, जननी जन्म-भूमि की जय!"

अकबर को उसके इस साहस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। कहने लगा—"साफ़ २ प्रताप का पता बतला दो, इसके बदले में तुम्हें जागीरें दी जांयगी, काफ़ी इनाम दिया जायगा, अन्यथा प्राण-दण्ड!!!"

विजयसिंह ने कहा—"मुगल राज! प्रलोभन और भय से कोई राजपूत बालक कभी अपने पथ से विचलित नहीं हो सकता। आप अपना इनाम और जागीर अपने पास रखिये। राजपूताने की वीर-प्रसविनी भूमि में जन्म लेकर मैं उसे कभी कलङ्कित नहीं करूंगा। आप प्रसन्नता पूर्वक मुझे प्राण-दण्ड की आज्ञा दीजिए। मैं अधिक समय तक आपका मुंह देखना नहीं चाहता।"

विजयसिंह की इस बात पर ख़ीमे के अन्दर के सभी लोग उस मनचले नवयुवक को एक टक देखने लगे। अकबर ने प्रलोभन दिया, पर विजयसिंह ज़रा भी टस से मस नहीं हुआ।

लाचार होकर अकबर ने हुक्म दिया—"अच्छा तो इसे फांसी पर अभी चढ़ादो।"

(५)

हुक्म के मुताविक जल्लाद आ पहुँचे। कुछ मिनट और घन्टों में

विजयसिंह की पवित्र आत्मा संसार से विदा हो जायगी, तमाम लश्कर में ऐसी बातें लोग कर रहे हैं।

विजयसिंह खुशी खुशी फांसी के तख्ते के पास जा पहुँचा, जल्लादों से कहा कि तुम लोग तकलीफ मत करो मैं खुद ब खुद फांसी पर चढ़ जाऊंगा।

चारों तरफ निस्तब्धता छा गई। देश के मान के लिए, जननी जन्म-भूमि के उद्धार के लिए, एक नवयुवक खुशी २ फांसी पर चढ़ने के लिए जा रहा है। धन्य स्वदेशानुराग ! धन्य प्रगाढ़-प्रेम !!

देखते २ युवक ने गले में रस्सी लगा ली और अत्यन्त भाव भरे शब्दों में बोल उठा—"जननी जन्म-भूमि की जय, महाराणा प्रताप की जय, राजपूताने की जय"।

युवक फांसी पर लटक गया ! प्राण-पखेरू उड़ गया !! बादशाह अपना सा मुंह लेकर रह गया। विजय की इस अद्भुत विजय पर चारों तरफ वाह ! वाह ! होने लगी।

धन्य राजपूताने की वीर-प्रसविनी भूमि !!!

वीरोल्लास

[लेखक—श्री० श्री शिवदुलारे जी त्रिपाठी 'नूतन']

सुनि कै धड़ाके वीर बांके श्री शिवा के वेगि,
बन्द भए नाके सारे शाह के नगर के।
करके करेजे डर खाय अरि नारिन के,
सहमि सकानी भूलीं काम काज घर के ॥
देखि रण चण्डी का तमाशा गे सनाका खाय,
कायर कपूत रण भूमि छोड़ि सरके।
खरके कृपान उर अरके अधीरन के,
तरके तुरङ्ग भुजा वीरन के फरके ॥ १ ॥

कीन्हो है चित्तौर पै चढ़ाई चोपि पातसाह,
धाए मूढ़ मुगल मचाय कै अली अली।
दोनों ओर तोपन में बेगि आगि लागि चली,
झुके झूमि सूरमा बहादुर महाबली॥
घेर घेर फेर फेर ऐसी शमशेर चली,
शत्रु चमू भागि चली ढूंढ़े न मिली गली।
जम्बुक जमाति चली भूत प्रेत पांति चली,
हहरात शोणित की निकसि नदी चली॥ २॥
एहो रण शूरो! नर देह ना मिलैगी फेरि,
फेरि अस औसर न बीरो तुम पाइयो।
दाग नहिं लागै कुल कानि में सचेत रह्यो,
शान रजपूती भली भांति कै निबाहियो॥
वीर प्रन पाल्यो देखि संगरन हाल्यो,
और खेत छोड़ि भूलि कै न भागि चले आइयो।
कहत पुकारि ललकारि बार बार यहीं,
पीठि न दिखाया जूझि जायो भले भाइयो॥ ३॥
कीजै न बिलम्ब अम्ब दूध को लजावो नहीं,
लीजिये कृपान ओ कमान बीर मरदो।
ह्वै कै निरशंक बंक बैरिन पै टूटि पड़ो,
माया मोह छोह को तहा करके धर दो॥
काटि काटि मुंड मुंड माली का सिंगार करो,
शोणित से योगिनी के खप्पर को भर दो।
देवल ढहैयन को चोटी के कटैयन को,
ढंढ़ि ढूंढ़ि भूमि में पछार छार कर दो॥ ४॥

वीर-रस की आवश्यकता

[लेखक—साहित्य-रत्न श्री बाबूराम जी विन्थरिया, साहित्यान्वेषक]

संसार में रुचि वैचित्र्य का प्रधान है। कविता की आवश्यकता और अनावश्यकता के अनेक तथ्य इसी सिद्धान्त के अन्तर्हित है। यदि एक ओर यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् अफ़लातून और मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब के मतानुसार 'कविता' को नितान्त ही निरर्थक समझने वाले महानुभावों का बाहुल्य है तो दूसरी ओर इस विचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले सहृदय सज्जनों की भी कमी नहीं है। अंग्रेजी भाषा के प्रकांड पंडित, कविवर शैली ने कविता की परिभाषा पर विचार करते हुए स्पष्ट लिखा है—"Poetry is what redeems from decay the Visitation of the devine in man" अर्थात् कविता वह वस्तु है, जो मानव हृदय में दैवी अंश को, जो समय-समय पर स्फुरित होता है। जाग्रत रखती है। यही क्यों एक अन्य विद्वान् की दृष्टि में तो कविता का महत्त्व और भी अधिक है। उसका कथन है—

"The light which never was land or sea,
The consecration and the poets dream."

अर्थात् जो प्रकाश जल और थल में कहीं नहीं है वह पवित्र होकर केवल कविता के स्वप्न में है। इसी प्रकार हमारी परम पूजनीया संस्कृत भाषा के एक विद्वान् ने काव्य के विषय में कुछ अत्युक्ति लिये हुए, परन्तु अत्यन्त मार्मिक भावों से कविता का विस्तार क्षेत्र अपनी निम्नांकित शब्दावली में इस प्रकार प्रगट किया है:—

जानीते यन्न चन्द्रार्कौ, जानाते यन्न योगिनः।
जानाते यन्न भर्गोपि, तज्जानाति कवि स्वयम्॥

यदि हम इन बातों पर तनिक भी श्रद्धा और विश्वास रक्खें तो हमें अन्त में इस सिद्धान्त पर पहुंचना पड़ता है कि प्राचीन काल में बड़े बड़े

विद्वानों के निर्मल चित्तों पर कविता का अटल और अक्षुण्ण साम्राज्य उपस्थित था।

सच पूछिये तो कविता संतप्त हृदयों को साहाय्य प्रदान कर उनके जीवन को सुखमय बनाती है। उससे आबाल वृद्ध सभी स्त्री पुरुष धार्मिक, उद्योग-शील, साहसी, तथा कर्तव्य-शील बनते हैं। संपूर्ण मनुष्य समुदाय आनन्द प्राप्ति के लिये निरन्तर चेष्टाओं में संलग्न रहने का स्वभाव रखता है। उसके इस मनोवान्छित फल की संसिद्धि के लिये कविता एक अत्युत्तम तथा सुगम उपाय है। यह जुदी बात है कि यदि कोई कवि अपने कर्तव्य का यत्किंचित ध्यान न रखते हुए इस कार्य की सिद्धि कराने में असमर्थ रहे क्योंकि कविता "लोकोत्तर आनन्द की प्रदाता है—जिसे हम दूसरे शब्दों में रसों का भंडार" भी कह सकते हैं—इसी कारण वह मनुष्य की कामनाओं की पूर्ति के लिये जादू का सा असर रखती है। उसने बड़ी बड़ी कुरीतियों को कपूरवत् उड़ा दिया है। बड़े बड़े कामी उससे उपदेश ग्रहण कर सत्यानुगामी बन गये हैं। उसने बड़े बड़े राज्य-सिंहासनों को हिला दिया है और बड़े बड़े ऋषि मुनियों के चित्तों में करुणा का सागर बहा दिया है, यदि न मानो तो तुलसी, सूर, बिहारी, केशव, तथा लालन आदि कवियों से पूछ लो।

चिरकाल से आलस्य की घोर निद्रा में पड़े हुए बूढ़े भारत ने भी इस स्वतन्त्रता के युग में करवट बदल कर अंगड़ाई लेना आरम्भ किया है। उसे भी अब अपनी शारीरिक, आचारिक तथा आत्मिक उन्नति के उपायों की खोज का खटका हुआ है। ऐसे समय में हमारे कवि समुदाय का क्या कर्तव्य है? इस प्रश्न का उत्तर शायद सभी विचार शील बड़ी सरलता से दे सकेंगे। मैथिलीशरण गुप्त ने हमारे प्रश्न का उत्तर बड़े सूक्ष्म किन्तु अत्यन्त मार्मिक शब्दों में इस प्रकार दिया है—"केवल मनोरंजन ही कविता का काम नहीं है किन्तु उनकी कविताओं में समुचित उपदेश तथा आदेशों को भी स्थान देने की आवश्यकता है।" ऐसे कठिन समय में हमारे लिये 'रस-राज' के

उपदेश उतने लाभदायक नहीं हो सकते जितने अपने देश, अपनी जाति तथा अपने राष्ट्र की दुर्दशा पर आंसू बहाने वाले टूटे फूटे भग्न हृदयों से निकले हुए शब्द। अब वह समय आ गया है जब हमको अपने पूर्वजों के निर्मल चरित्रों उनकी अनुपम कीर्तियों तथा उनकी शानदार विजयों का स्मरण दिला कर हमारे उत्साह-हीन हृदयों में आशा का साम्राज्य स्थापित करा दिया जाय। मेरे तुच्छ विचार में इस कार्य्य के साधन चार हैं—प्रथम इस अनिश्चित समय को बाढ़ में बहते हुए धर्म को सहारा देना, द्वितीय अपने भोले भाले भाइयों के आँसुओं को बहता देख कर चार आंसू स्वयं भी बहाना अथवा उनकी नैराश्य-मूलक गहरी आहों के साथ अपनी भी आहों को संयोजित करना, तृतीय अपने दीन तथा दुखी भाइयों की सहानुभूति प्रदर्शणार्थ द्रव्यादि से उनकी सहायता करना और चतुर्थ न्याय और अधिकारों के लिये उनमें अन्दोलन की स्फूर्ति लाना। बस जिन कवियों को उपरोक्त चारों बातों के वर्णनों में जितनी ही सफलता मिलेगी, हम उन्हें उतना ही उत्तम कवि मानेंगे। रस विचार से देखना चाहो तो देखलो कि किस रस में इन चारों बातों के अभीष्ट साधन की सामर्थ है, फिर निश्चित होने पर उसे ही अपना वर्णनीय विषय मानलो।

मेरे विचार से उपरोक्त चारों ही बातें इस समय बांछनीय हैं और इन चारों की सिद्धि के लिये ही हमारे 'वीर-रस' चार श्रोतों, धर्म-वीर, दया-वीर, दान-वीर और युद्ध-वीर के रूप में प्रवाहित हुआ। बस इस समय में हमारा परम कर्तव्य है कि इन श्रोतों के प्रवाह के मार्ग में जो कंटक तथा कंकड़ पत्थर पड़े हैं और जिन से उनका अवरोध होता है, उनको एक दम निकाल कर बाहर करदें। जिससे यह चारों ही अमल धाराएं बेखटके प्रवाहन करने लगें। 'वीर-सन्देश' के विचारशील प्रकाशक तथा संपादक दोनों ही सज्जनों ने इस कार्य्य को अपने पवित्र हाथों में लेकर देश तथा जाति का जो उपकार किया है उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। हमारी हार्दिक कामना है कि ईश्वर उनकी सहायता करें। साथ ही पाठकों से नम्र निवेदन भी है कि वह इस पवित्र कार्य्य में उनका हाथ बटावें।

कवि-कीर्तन

राजपूताने की हिन्दी सेवा

(भरतपुर सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष के पद से दिए हुए भाषण का एक अंश)

[लेखक—श्री पं० मायाशंकर जी याज्ञिक बी० ए०]

राजपूताने में सम्मेलन का यह प्रथम अधिवेशन है। इस प्रदेश की समस्त जनता हिन्दी भाषा-भाषी ही है और चिरकाल से जो साहित्य सेवा इस प्रदेश की जनता ने की है वह भली भांति विदित है। उसका वर्णन करना सहज नहीं है क्योंकि वह एक वृहत् इतिहास की सामिग्री है। परन्तु इस शुभ अवसर पर प्राचीन साहित्य सेवियों का विस्मरण करना कृतघ्नता एवं पाप है। इसी विचार से राजपूताने ने जो हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की है उसका अत्यन्त संक्षेप से वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

हिन्दी के आदि कवि पृथ्वीराज रासो के कर्ता चन्दवरदाई; उनके पुत्र जल्हन, विसलदेव रासो के रचियता नरपति नाल्ह और विजयपाल रासो के कर्ता नल्लसिंह आदि से लेकर बिहारी, सूदन, पद्माकर, सूर्य्यमल इत्यादि इत्यादि यहां के सहस्रों कवियों ने साहित्य भंडार को भरा है और अपनी अक्षय कीर्ति स्थापित की है।

राजपूताने के प्रत्येक राज्य के अनेक राजा महाराजा केवल कवियों को आश्रय प्रदान ही नहीं करते थे वरन् स्वयं भी साहित्य से प्रेम रखते थे और कविता करते थे। मेवाड़, मारवाड़, बीकानेर, जयपुर, भरतपुर आदि किसी राज्य को देखिए सभी में एक नहीं अनेक महाराजा कवियों के आश्रयदाता हुए और स्वयं कविता कर साहित्य भंडार की वृद्धि करते रहे

हैं। महाराणा खुमान, महाराणा कुंभा, प्रातः स्मरणीय आर्य-कुल-कमल दिवाकर महाराणा प्रताप आदि कितने ही मेवाणाधिपति कविता करते थे। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह तो अपने 'भाषा-भूषण' के कारण हिन्दी काव्य के आचार्यों में गिने जाते हैं बीकानेर के महाराज रायसिंह जी, महाराज पृथ्वीराज, महाराज अनूपसिंह जी, जयपुर में महाराजा मानसिंह, महाराज प्रतापसिंह, कृष्णगढ़ाधिपति महाराज सावतसिंह उपनाम नागरीदासजी, बून्दी में रावराज-बुद्धसिंह, अलवर में महाराज बख्तावरसिंह जी आदि अनेक नरेशों ने कविता रची और कई ने तो प्रशंसनीय कवित्व शक्ति का परिचय दिया।

मुसलमानों के अत्याचारों से अपने धर्म और देश की रक्षा क्षत्रियोचित कठिन कर्मों से तो इन नरेशों ने की और हिन्दू सभ्यता और जाति को नष्ट होने से बचाया पर साथ ही साथ साहित्य सेवा भी ऐसे बांकपन से की कि आज हमको यह असमंजस होता है कि उनका क्षात्र-धर्म विशेष प्रशंसनीय है अथवा साहित्य-सेवा। मैं तो नहीं कह सकता कि संसार भर में और भी कोई ऐसा प्रदेश है जहां वीरता और कवित्व शक्ति का ऐसा सम्मिलित इतिहास में मिलता हो जैसा कि राजपूताना की आर्य सन्तान ने अपने कठिन काल में कर दिखाया था। मानों देश-प्रेम और काव्य-रसिकता की आदर्श भूमि यही है।

इतिहास लेखक कर्नल टाड क्षत्रियों की अद्भुत वीरता और देश-प्रेम पर मुग्ध थे। वीर और कवि अन्य देशों में भी हुए हैं परन्तु बहु-संख्यक नरेशों में शौर्य के साथ कवित्व-शक्ति तथा काव्य-प्रेम जैसा कि इस प्रदेश में देखा गया वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

केवल राजा महाराजा ही नहीं रानी महारानी भी कविता प्रेम में पगी हुई थीं। कृष्णगढ़ की छत्रकुंवर, रूपनगर की बनीठनीजी, ब्रजदासी रानी बांकावत जी तथा सुन्दर कुंवरि आदि ने भजन बना कर भगवान का गुणगान किया है। इस प्रकार वीर माताओं ने भी भगवान की आराधना के साथ काव्य-प्रेम और कवित्व-शक्ति का परिचय दिया और अपना

जीवन आज कल की स्त्रियों के लिए अनुकरणीय बना गई। तभी तो भारतेन्दु जी देशाभिमान से प्रेरित हो लिख गए "धन धन भारत की चत्राणी।"

अनेक कोमलांगी पतिव्रता पद्मिनी की भांति धर्म की रक्षा के लिए अपनी आहुति सहर्ष दे गईं और आर्य जाति को सदा के लिए गौरवान्वित कर गईं और उसी प्रदेश की पुण्य भूमि में मीराबाई ने जन्म लेकर 'मेरे तो गिरधर गोपाल' के आलाप से देश प्रदेश को प्रतिध्वनित कर दिया। अपना समस्त जीवन कृष्ण गुणगान की एक भावमयी तान बना कर अगणित आर्तजनों को भगवच्चरणों का आश्रय दिला भवसागर से पार लगा दिया। उस दिव्य गान को साधारण काव्य समझना अज्ञान है। मीराबाई का तो समस्त जीवन एक अलौकिक काव्य था। इस 'प्रेम दिवानी' मीरा ने अपनी अमृतमयी वाणी से भक्ति का ऐसा प्रवाह निर्झरित किया कि वीर-प्रसवनी भूमि सदा के लिए भक्ति-रस से प्लावित हो गई।

अन्य रजवाड़ों की तरह भरतपुर राज्य भी साहित्य सेवा में पीछे नहीं रहा। इतिहासज्ञ इस राज्य का महत्व इसी बात में समझते हैं कि जाटों ने मुसलमानों का बड़ी वीरता से मुकाबला किया और दिल्ली आगरा को भी अपने पराक्रम से कंपा दिया और मुग़ल साम्राज्य को नष्ट करने में सब से अधिक भाग लिया। और अलौकिक युद्ध कौशल से हिन्दू धर्म की रक्षा की। परन्तु उन को शायद यह नहीं मालूम कि जाट सरदारों तथा राजा महाराजों की साहित्य सेवा इससे किसी प्रकार न्यून नहीं है। विक्रम की ११ वीं शताब्दी में जब हिंदी का जन्म हुए थोड़ा ही काल हुआ था श्रीपथ (वर्तमान बयाना) के महाराजा विजयपाल ने नल्ह कवि को विजयपाल रासो निर्माण करने पर ७०० गांव तथा अतुल धन दिया था। महाराज बदनसिंह स्वयं कविता करते थे और अनेक कवियों के आश्रयदाता थे। उन के पुत्र वीर-शिरोमणि महाराज सूरजमल उपनाम सुजानसिंह के आश्रित सूदन कवि ने सुजान-

चरित रचा। इस में महाराज सूरजमल के युद्धों का वर्णन पूर्ण वीर-रसात्मक कविता में किया है। वीर रस का यह काव्य प्रथम श्रेणी का गिना जाता है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका बड़ा महत्व है। महाराजा के दिल्ली लूटने का वर्णन करते हुए सूदन ने कहा है।

देस देस तजि लच्छमी, दिल्ली कियो निवास।
अति अधर्म लखि लूट मिस, चली करन ब्रजवास॥

परन्तु भरतपुर राज्य केवल लक्ष्मी का ही निवासस्थान नहीं बन गया था। सरस्वती ने भी पूर्ण कृपा कर अनेक कवियों को यहां जन्म दिया था। जिस प्रकार महाराज पृथ्वीराज को चन्द, महाराज शिवाजी को भूषण और बुन्देलखण्ड-केसरी महाराज छत्रसाल को लाल कवि की ओज पूर्ण कविता ने अनेक युद्धों में उत्साहित किया था उसी प्रकार सूदन ने रणक्षेत्र में महाराज सूरजमल का उत्साह-वर्धन किया था। महाराज सूरजमल को शृंगार रस की कविता पसन्द नहीं थी। विलासता प्रिय लोगों को ऐसी कविता रुचिती है। महाराज सूरजमल जी के हृदय में तो जाति-हित और देश-प्रेम की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। उसके अनुकूल वीर-रस प्रधान कविता ही उनको पसंद थी और उसी की समयानुसार आवश्यकता भी थी। दत्त, जुलकरन, सुधारक हरिवंश आदि भी इनके आश्रित कवि थे। वीर-रस की कविता कर इन्होंने भी महाराज सूरजमल जी से सम्मान प्राप्त किया था। सूदन के वंशज अभी तक राज्य से सहायता पाते हैं। महाराज सूरजमल जी ने शिवराम कवि को 'नवधा भक्ति' नामक छोटे से ग्रन्थ की रचना पर छत्तीस हजार रुपये दिये थे जैसा कि कवि ने स्वयं लिखा है:—

जबै ग्रंथ पूरन भयो, तबै करी बकसीस।
खरे रुपैया मान ते, दए सहस छत्तीस॥

कविवर सोमनाथ को धन ग्राम आदि देने के अतिरिक्त अपने राज्य का दानाध्यक्ष भी बनाया था और यह पदवी उनके वंशजों को अब भी प्राप्त है।

इनके भाई प्रतापसिंह जी के आश्रित सोमनाथ आदि अनेक कवि थे जिन्हों ने उत्तम श्रेणी की रचना की है। महाराज सूरजमल जी के पांचों पुत्र भी कविता प्रेम में अपने पूर्वजों के समान थे। महाराज जवाहरसिंह जी के यहाँ महाकवि देव, रंगलाल, जोधाराय, भूधर आदि कवि थे। नवलसिंह जी तथा रतनसिंह जी के यहां शोभ कवि, ब्रज, चन्द और मुरलीधर थे। महाराज रणजीतसिंह के यहां उदयराम, गुलाम मुहम्मद, मोहनलाल थे। नाहरसिंह जी के यहां भोलानाथ थे।

इससे पता चलता है कि इस राजवंश में सभी के हृदय में काव्यानुराग कैसा प्रबल था। महारानी किशोरी भी स्वयं काव्य रचना करती थीं। उनका यशगान सुधाकर और जयसिंह ने किया है।

महाराज बलदेवसिंह जी और उनकी महारानी भी काव्य रचना करते थे। इन के बनाये बड़े ही सरस पद मिलते हैं। महाराज 'चतुर प्रिया' और महारानी 'चतुर सखी' नाम कविता में रखते थे। इनके पुत्र महाराज बलवन्तसिंह जी के समय में रसानन्द धाऊ गुलाबसिंह जी, लक्ष्मी नारायण, मोतीराम, बदुनाथ, बलदेव आदि अनेक कवि हुए और उनकी रचना भी अति उत्तम होती थी।

महाराज जसवंतसिंह जी तथा महाराज रामसिंह जी के राज्य-काल में भरतपुर में उत्तम कवियों की कमी नहीं थी। काशीराम जी रसालदार उपनाम मनोहर, हनूमान, हरिनारायण, रामनारायण, जानी विहारीलाल औदीच्य, तथा दीवान जानी बिहारीलाल कवि तथा लेखक हुए थे।

वर्तमान भरतपुर नरेश महाराज ब्रजेन्द्र सवाई सर श्री कृष्णसिंह जी बहादुर के० सी० एस० आई० का हिन्दी-प्रेम सब को भली भांति विदित ही है। इस राज्य में लगभग सौ वर्ष से—जब अंग्रेज सरकार के हाथ में प्रबन्ध आया था—सरकारी काम उर्दू में होता था। श्री महाराज ने राज्याधिकार प्राप्त करते ही पहिली आज्ञा यह दी कि समस्त

राज कार्य नागरी में हो। राज के प्रत्येक कर्मचारी को हिन्दी सीखने के लिये तीन मास का अवकाश दिया गया था। परन्तु मुसलमान कर्मचारियों तक ने एक ही मास में नागरी में काम करने की योग्यता प्राप्त कर ली। एक भी मनुष्य हिन्दी न सीखने के कारण अपने काम से नहीं हटाया गया। हिन्दी की सरलता का इस से उत्तम प्रमाण और क्या मिल सकता है? यदि अन्य हिन्दू नरेश भी ऐसा ही प्रबन्ध अपने राज्य में करें तो, कैसे सौभाग्य की बात हो।

मरदाने की

[लेखक—श्री० रघुबरदयाल जी मिश्र 'मान' विशारद]

याद रखो हड्डियां दधीचि की औ विप्रवरो,
शंकर के शंख की औ भगवें निसान की।
राना परताप औ शिवा के वंशजो न भूलो,
शान राजपूती और केसरिया बाने की॥
भूलो मत भामासा को एहो दानवीरो आज,
परवा करो न नौजवानो जान जाने की।
देश, धर्म, जाति पै मिटाओ अपने को 'मान',
राह धरो स्वामी श्रद्धानन्द मरदाने की॥

भारत की वीरता

[लेखक—श्री० जगन्नाथप्रसाद जी खत्री "मिलिन्द"]

धनिक हमारे अभिमान के नशे में मस्त,
सम्पदा "मिलिन्द" लुटी भारत की सारी है।
ज्ञान के गले में फांसी कष्ट की कठोर डाल,
डाइन दरिद्रता ने दारुणता धारी है॥
धर्म के दलाल धूर्त साधुओं की सत्ता छाई,
धर्म की महत्ता इस देश से सिधारी है।
कायर कपूतों की नपुंसकता देख-देख,
आज दुखी भारत की वीरता बेचारी है॥

राजा टोडरमल और पं० टोडरमल

[लेखक—श्री० बाबूलाल जी पाटनी]

वीर-सन्देश के चौथे अङ्क में कविवर टोडरमल जी के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसे पढ़ कर मुझे 'कविता कौमुदी' में प्रकाशित 'टोडरमल' का स्मरण हो आया। कौमुदी के टोडरमल उपर्युक्त कविवर टोडरमल नहीं हैं, वे हैं सम्राट् अकबर के कर-विभाग के मंत्री राजा टोडरमल। किन्तु उनकी कविता के नमूने में जो पहिला छन्द दिया गया है वह राजा टोडरमल का नहीं है। वह छन्द गुणभद्राचार्य कृत और पं० टोडरमल द्वारा अनुवादित 'आत्मानुशासन' ग्रन्थ में मङ्गलाचरण के पश्चात् भूमिका स्वरूप दिया गया है। कौमुदी में यह छन्द इस प्रकार छपा है:—

"सोहै जिन सासन में आतमानुसासन सु जीके दुखहारी सुखकारी साँची सासना।
जाको गुन भद्रकार गुण भद्र जाको जानि भद्र गुन धारी भव्य करत उपासना॥
ऐसे सार सास्त्र को प्रकास अर्थ जीवन को बने उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना।
तातें देस भाषा अर्थ को प्रकास करु जाते मन्द बुद्धि हू के हिये होवै अर्थ भासना॥"

छन्द का यह रूप कुछ विकृत सा है। इसका शुद्ध रूप यों है:—

"सोहै जिन सासन में आतमानुसासन सु तजाको दुखहारी सुखकारी साँची सासना।
जाको गुनभद्र कर्त्ता गुण भद्र जाको जानि भद्र गुन धारी भव्य करत उपासना॥
ऐसे सार सास्त्र को प्रकासैं अर्थ जीवन को बने उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना।
तातें देस भाषा करूं अर्थ को प्रकास करूं जातें मन्द बुद्धि हू के होवै अर्थ भासना॥"

इसके प्रथम दो चरणों में मूल ग्रन्थ और ग्रन्थ प्रणेता की प्रशंसा की गई है और अन्त के चरणों में संस्कृत से भाषानुवाद करने का अभिप्राय बताया गया है। इसे एक बार भी ध्यान-पूर्वक पढ़ लेने के पश्चात् यह निश्चय हुए बिना नहीं रहता कि यह छन्द किसी जैन धर्मावलम्बी का लिखा हुआ है और किसी जैन ग्रंथ की भूमिका-मात्र है। उसे राजा टोडरमल का लिखना सरासर भूल है।

आत्मानुशासन ग्रंथ को प्रकाशित हुए आज बीस वर्ष से अधिक हो गए। यदि प्रयत्न किया जाता तो वह छपा हुआ भी मिल सकता था। किन्तु बिना देखे भाले कविवर टोडरमल के छन्द को राजा टोडरमल का लिखना कविवर के साथ अन्याय करना है। ऐसे 'कविता कौमुदी' के सम्पादक ने जैन कवियों पर की भी विशेष कृपा है। जिस पुस्तक में ६० कवियों का परिचय दिया गया है उसमें एक भी जैन कवि नहीं है।

प्रारंभ में सम्पादक महोदय ने जो इतिहास दिया है उसमें 'हिन्दी और जैन' शीर्षक में उन्होंने कविवर बनारसीदास का थोड़ा सा परिचय ज़रूर दिया है किन्तु मूल पुस्तक में उनका कुछ वर्णन करना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा। तभी तो वृन्दावन, भूधरदास, द्यानतराय, भगवतीदास आदि उच्च कोटि के जैन कवियों का भी परिचय नहीं दिया गया। अपनी पुस्तक में सम्पादक जिसे चाहे स्थान दे जिसे चाहे स्थान न दे इसमें हमारा कुछ ज़ोर नहीं किन्तु एक कवि की वस्तु को बलात् दूसरे की बनाने का अधिकार उसे नहीं। यह हमें इस कारण लिखना पड़ा कि टोडरमल के और जो दो छन्द कौमुदी में दिए गए हैं वे ही दो छन्द 'शिवसिंह सरोज' में हैं और संभवतः वहीं से कौमुदी में लिए गए होंगे; तीसरा छन्द जो पं० टोडरमल जी का है वह त्रिपाठी जी ने बढ़ाया है। अतएव इस भ्रम के फैलाने का दायित्व उन्हीं पर है। आशा है कि त्रिपाठी जी अगले संस्करण में इसे ठीक कर देंगे और पं० टोडरमल तथा अन्य जैन कवियों के विषय में भी कुछ लिखना आवश्यक समझेंगे।

बाबा कान्हरदास

बाबा कान्हरदासजी के सम्बन्ध में श्री० केदारनाथजी भट्ट का नोट मैंने पढ़ा परन्तु उससे मुझे सन्तोष नहीं हुआ। उनकी 'पद रामायण' अप्राप्य नहीं है, परन्तु मैं यह जानना चाहता था कि इसके अतिरिक्त उनके और भी कोई ग्रन्थ हैं या नहीं और उन के फुटकर पद भी कहीं मिल सकते हैं या नहीं। बाबा जी के वंशज तो अशिक्षित से हैं, उनके पास बाबा जी के जीवन चरित्र अथवा काव्य सम्बन्धी कोई सामग्री नहीं है। सम्भव है कि उन के शिष्यों के वंशजों से—यदि उनका पता चल सके तो—कुछ प्राप्त हो सके। इस सम्बन्ध में यदि कोई सज्जन कुछ अधिक प्रकाश डालेंगे तो मैं उनका बड़ा कृतज्ञ होऊंगा। कान्हरदास जी एक अमर कवि हैं और आगरे को उनकी जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। अब से ६५ वर्ष पूर्व वह जीवित थे। आगरा निवासियों का उन के प्रति कुछ कर्त्तव्य है। यदि 'वीर-सन्देश' द्वारा कुछ अधिक पता न मिला तो मैं कुछ दिन आगरे रह कर और खोज करूंगा और जो कुछ सामग्री मेरे पास है उसे संशोधित कर के प्रकाशित करूंगा। आशा है कि भट्ट जी से इस में सहायता मिलेगी। —ठाकुर प्रसाद शर्मा (एम० ए०)

साहित्य परिचय

होलिकाङ्क—होली के अवसर पर अधिकांश हिन्दी सहयोगी अपने अपने विशेषाङ्क निकाला करते हैं। इस वर्ष भी अनेक पत्रों ने होली मनाई। इनमें कलकत्ते के पत्र छपाई सफाई, रंग रूप और चित्रादि की दृष्टि से बाजी मार ले गए। 'मतवाला' के अफजल बध, साहित्य शब्दार्थ गड़ही आदि लेख खूब रहे। 'हिन्दू-पंच' के अधिकांश लेख मनोहर और चित्ताकर्षक थे। दो रंगीन चित्र भी थे। 'भारत-मित्र' ने भी अच्छी सफलता पाई। 'विश्वमित्र' का रंग कुछ फीका रहा। इधर 'शंकर' का नृत्य अच्छा रहा। 'प्रताप' की गंभीरता में भी मजा था। "मनिक" को होली से क्या संबंध, परन्तु तब भी यह रंगीला रहा जानदार। मासिक-पत्रों में 'हिन्दी मनोरञ्जन' और 'भ्रमर' ने अच्छा प्रयत्न किया। 'पूर्णेन्दु' वास्तव में पूर्णेन्दु रहा।

विशेषाङ्क—'मनोरमा' का सम्मेलनाङ्क इतना मोटा ताजा और सुन्दर निकला है कि देखकर ही तृप्ति हो जाती है। २०० पृष्ठ में ४३ लेख और ९५ चित्र। मूल्य ३) मात्र !!! बढ़िया रहा। 'भारतवीर' का सम्मेलनाङ्क भी निकला पर मनोरमा से इसकी क्या तुलना। 'आर्यमित्र' का बलिदान अङ्क सचमुच अपने ढंग का अनूठा रहा। वीरों के इस चरित्र संग्रह को तो प्रत्येक भारतवासी को देख जाना चाहिए। ऐसा सुन्दर अङ्क निकालने के लिए हरि जी को बधाई। 'दिगम्बर जैन' का निर्वाण अङ्क ५३ लेख और १६ चित्रों का संग्रह है। जैनी लोग देखें तो कई लेख उपयोगी और महत्व पूर्ण पा सकते हैं।

खिलौना—सम्पादक और प्रकाशक—पं० रामजीलाल जी शर्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग। वार्षिक मूल्य २)

यह बालोपयोगी मासिक-पत्र जनवरी से निकलने लगा है। इस पत्र ने सचमुच बाल-साहित्य में क्रान्ति उपस्थित करदी है। ऐसा कौन हिंदी प्रेमी होगा जो अपने बालक के लिए इतना सस्ता और सुन्दर 'खिलौना' न मंगावेगा ?

सूरदास की विनय-पत्रिका—सम्पादक वियोगी हरि, प्रकाशक-हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। पृष्ठ १०२, मू० ≡)

इस छोटी सी पुस्तक में महाकवि सूरदास के विनय भक्ति संबंधी पदों का संग्रह है। पाद टिप्पणियों में पाठान्तर और अन्त में शब्दार्थ देकर पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बनादी गई है।

सामायिक पाठ—टीकाकार-स्व० पं० जयचन्द जी, प्रकाशक-मुनि अनन्त कीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला समिति बम्बई, पृष्ठ २० + ६५ मूल्य ।-)

हिन्दुओं की सन्ध्या की भांति जैनी लोग सामायिक करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में संस्कृत पाठ के साथ हिन्दी भाषा की टीका भी देकर पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिए उपयोगी बनादी गई है। इसके पढ़ने से आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

निम्न लिखित पुस्तकें भी प्राप्त हो गई हैं, प्रेषक महोदयों को धन्यवाद !

१-जयदेव ब्रादर्स बड़ौदा का कैलेंडर १९२७।
२-पञ्चाग सं० १९८४—डाक्टर एस० के० बर्म्मन, कलकत्ता।
३-सोलहवां वार्षिक विवरण—हिन्दी साहित्य सम्मेलन।
४-स्मृति-दिनोत्सवांचा अहवाल—भा० स० आपटे, चिटणीस।
५-मनोभाव—लेखक-पं० मंगीलाल लवानियां, कसेरट बाजार, आगरा।
६-मातृभूमि—रामस्वरूप गुप्त 'रमेश', खंडेहा जट्टारी (अलीगढ़)
७-प्रेमोल्लास—लेखक-श्रीमन।
८-श्री निम्बार्काचार्यस्तन्मत ञ्च—ले०-पं० किशोरीदास शास्त्री।
९-क्षत्रिय जाति को धर्म का सन्देश—ठा० गंगासिंह चौहान, बाह (आगरा)
१०-राजस्थानी संगीत (पहिला भाग)—ब्रह्मवारी हरि। मूल्य -)

विविध विषय

१—भरतपुर सम्मेलन—

जिस सम्मेलन की धूम मची हुई थी, वह धूम के साथ ही हो गया। २९-३०-३१ मार्च को भरतपुर का 'सेवर' स्थान जगमगा रहा था। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, सम्पादक-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन, म्यूजीकल राइड, शेर-भैंसा संग्राम, प्रदर्शिनी आदि आदि की खूब धूम रही। आर्य-सम्मेलन पहले ही हो चुका था। 'म्यूजीकल-राइड' फौजी-प्रदर्शन का मनोहारी दृश्य था। शेर-भैंसा संग्राम ने तो कुछ हिन्दी साहित्य-सेवियों को विषय-निर्धारिणी-समिति से भी खींच लिया था। खादी-प्रदर्शिनी, शस्त्रास्त्र-प्रदर्शिनी और साहित्य-प्रदर्शिनी का उद्घाटन महामना मालवीयजी ने किया था। हिन्दी पताका को फहराने का शुभ कार्य स्वयं भरतपुर नरेश द्वारा हुआ था। महाकवि रवीन्द्रनाथ टगोर ने हिन्दी के मंच पर अपने अंग्रेजी और बंगला व्याख्यान का आस्वादन कराया था। प्रातः संध्या बैंड बाजों की धूम रहती थी। गोस्वामी तुलसीदास जी सशरीर एक उद्यान के बीच में विराजमान थे। पुस्तकालय और वाचनालय भी खुले थे। प्रातः संध्या बैंड बाजों की तुमुल ध्वनि सुन पड़ती थी। कुछ हिन्दी पुस्तक विक्रेता भी पहुंच गए थे। इस प्रकार इन तीन दिनों में भरतपुर में काफी चहल पहल रही।

२—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन—

सत्रहवां हिन्दी साहित्य-सम्मेलन भरतपुर में बड़ी शान-बान के

साथ हो गया। सैकड़ों साहित्य-सेवियों के अतिरिक्त कवीन्द्र रवीन्द्र, महामना मालवीय, सेठ जमनालाल बजाज, इन्दौर के नायब दीवान श्री कीबे, श्री टंडन जी आदि अनेक प्रतिष्ठित सज्जन भी पधारे थे। स्वागताध्यक्ष का भाषण राजस्थान के हिन्दी इतिहास पर प्रकाश डालने वाला था। सम्मेलन के सभापति रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा का भाषण विद्वत्ता पूर्ण एवं मनोहारी था। उनकी वेष भूषा तथा चाल ढाल सचमुच एक पुरातत्वज्ञ के उपयुक्त थी। उन्हें सभापति बनाकर सम्मेलन ने अपना गौरव बढ़ाया। प्रतिनिधियों की दृष्टि से सम्मेलन को अच्छी सफलता मिली। बंगाल, बिहार, मध्य प्रान्त, मध्य देश और पंजाब ही नहीं बम्बई और मदरास प्रान्त के लोग भी सम्मेलन में सम्मिलित हुये। युक्त प्रान्त और राजपूताने के प्रतिनिधि तो अधिक होने ही चाहिए थे। सम्मेलन ने अनेकों प्रस्ताव इस बार भी 'पास' कर दिए। इन प्रस्तावों में कई प्रस्ताव बहुत उपयोगी भी हैं। पर उनको कार्य रूप में परिणत करना उतना आसान नहीं है जितना पास करना। श्री सतीशचन्द्रराय का एक निबंध पढ़ा गया। कई विद्वानों के व्याख्यान हुए। लंका के संबंध में श्रीमान् कीबे का भाषण और महामहो० पं० गिरिधर शर्मा का उसका उत्तर विशेष महत्त्व के थे। कई महिलाओं के भी व्याख्यान हुए जिनमें श्रीमती कीबे मुख्य हैं। श्री माधव शुक्ल ने अपने गायन से जनता को खूब प्रसन्न किया। उपस्थिति प्रतिदिन अच्छी रही। पर जैसी आशा थी, सम्मेलन को आर्थिक सहायता कुछ भी न मिली, यह खेद की बात है। राज्य की ओर से रुपया पानी की तरह बहाये जाने और सब तरह के साधन उपलब्ध होने पर भी अधिकांश सज्जन स्वागत समिति के प्रबन्ध से संतुष्ट न रहे, यह सत्य है, किन्तु इस में अधिकतर दोष राज्य के कुछ मुंहलगे अधिकारियों ही का है, जिन्होंने सम्मेलन को सफल बनाने से अधिक महाराज को प्रसन्न करने की चेष्टा की। महाराजा भरतपुर के साहित्यानुराग की तो हमें प्रशंसा ही करनी पड़ेगी।

३—सम्पादक-सम्मेलन—

'कर्मवीर' सम्पादक पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी की अध्यक्षता में सम्पादक-सम्मेलन का द्वितीयाधिवेशन हो गया। स्वागताध्यक्ष अधिकारी जगन्नाथदास जी के व्याख्यान से सम्मेलन के कार्य पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। चतुर्वेदी जी का भाषण बहुत ही मार्मिक, विद्वत्ता पूर्ण और आलोचनामय था। सम्मेलन में लगभग एक सौ नए पुराने सम्पादक उपस्थित थे। २५ सदस्यों की एक स्थायी समिति कार्य संचालन के लिए बनाई गई है, जिस के सभापति और मंत्री क्रमशः पं० माखनलाल जी और पं० बनारसीदास जी हैं। आशा है कि इन चतुर्वेदी द्वय की अध्यक्षता में इस वर्ष सम्मेलन अपना स्थायी कार्यालय बनाकर कुछ काम प्रारंभ कर देगा और इसके द्वारा हिन्दी पत्र सम्पादकों को यथेष्ट सहायता प्राप्त होगी।

४—आश्चर्य-जनक फैसला—

पाठक भूले न होंगे, सहयोगी 'प्रताप' के प्रतापी सम्पादक श्री विद्यार्थी जी और प्रकाशक श्री सुरेन्द्र शर्मा को मैनपुरी के इजलास में दारोगा शिवदयालसिंह वाले मामले में छः छः मास जेल या चार चार सौ रुपया जुर्माने की सजा हुई थी। 'प्रताप' की ओर से इसकी अपील सैशन जज के यहां की गई। जज महोदय ने इस मामले को स्वयं न निपटाकर हाईकोर्ट को भेज दिया और यह सम्मति दी कि सजा कम दी गई है, हाईकोर्ट को चाहिये कि सजा को बढ़ा दे। हाईकोर्ट में मामला चला, श्री कपिलदेव मालवीय 'प्रताप' की ओर से वकील थे। आपने मामला इतनी सुन्दरता और योग्यता से हाईकोर्ट में पेश किया कि उसका फल सुनकर हमें अवाक् रह जाना पड़ा। जिस मामले में न्याय होने की बहुत कम आशा थी, बड़े से बड़े वकीलों का मत जिसके संबंध में अच्छा न था, वह मामला हाईकोर्ट के दो जजों ने सर्वथा पलट दिया। 'प्रताप' के सम्पादक और प्रकाशक रिहा कर दिए गए उन का जुर्माना वापिस मिलेगा और दारोगा शिवदयालसिंह पर सैशन में





मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

शिवाजी अङ्क

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग १ | वैसाख शुक्ल २ संवत् १९८४ ता० ३ मई १९२७ | अङ्क ७

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क का ।)

विषय सूची

क्षमा प्रार्थना

गताङ्क में हम वीरवर खड्ग बहादुरसिंह का चित्र देना चाहते थे, किन्तु वह न आ सका। इसबार भी अब तक उसकी प्रतीक्षा की गई, किन्तु अभीतक ब्लाक के न मिल सकने के कारण इस अंक के प्रकाशन में एक सप्ताह का विलम्ब हो गया है। इसके लिए हम पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं। गताङ्क में कोई चित्र नहीं दिया गया था, अतएव इस अङ्क में दो चित्र दिए जा रहे हैं।

—मैनेजर।

वीर-सन्देश



हिन्दू धर्म रक्षक

वीर केशरी छत्रपति शिवाजी

जीवन की प्रत्येक साँस में भरा हुआ था सच्चा त्याग !
भावों की प्रत्येक लहर में मातृ-भूमि के प्रति अनुराग !!
भोग-विलास स्वार्थ-सुख, वैभव का, सुखसे, बलिदान किया !
ऐ मतवाले वीर, धर्म्म की वेदी पर बलिदान किया !!

महावीर प्रेस, आगरा ।

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश" ॥

भाग १ } आगरा—वैसाख शुक्ल २ सं० १९८४—वीर सं० २४५३ { अङ्क ७

शेर शिवाजी

[लेखक—श्रीयुत कविवर मिलिन्द जी]

शेर शिवाजी, तुझे जन्म दे, छत्राणी हो गई निहाल !
कब भारत में पैदा होंगे, घर घर, तुझसे निर्भय लाल !!
देश, धर्म के पागल प्रेमी, तू साहस का सागर था !
वीर-व्रती, तेरे व्रत पर जगका वैभव न्यौछावर था !!
जीवन भर सन्तप्त रहा, पर, फीका पड़ा न तेरा रंग !
खेला कठिन कण्टकों पर तू तीखी तलवारों के संग !!
जीवन की प्रत्येक साँस में भरा हुआ था सच्चा त्याग !
भावों की प्रत्येक लहर में मातृ-भूमि के प्रति अनुराग !!
भोग-विलास स्वार्थ-सुख, वैभव का, सुखसे, बलिदान किया !
ए मतवाले वीर, धर्म्म की वेदी पर बलिदान किया !!

वीरता का युग !

[लेखक—श्रीयुत रमाशङ्कर जी शुक्ल 'हृदय' विशारद, बी० ए०]

इतिहासज्ञ स्वभावतः समय-विभाग के प्रेमी होते हैं। इन्हीं की कृपा से हम 'सत्ययुग' और 'स्वर्गयुग' जैसे नाम सुना करते हैं। फिर यदि ये इतिहासज्ञ केवल शुद्ध-इतिहास के प्रेमी न हो कर राजनीतिज्ञ भी हों, देश के नेता भी हों, तब तो इनके मुख द्वारा 'प्राचीनता' और 'प्राचीन युग' की भयङ्कर पुकार सुनने में आती है। परिपाटी कुछ ऐसी चल पड़ी है और भारतवर्ष में इसका बहुत जोर है कि प्रत्येक अवसर पर प्राचीनता की दुहाई दी जाती है। प्राचीनकाल हमारे सामने आदर्श के उच्च उदाहरण छोड़ जाता है। किसी नई बात को सीखने और बताने के लिए प्राचीन वस्तु का उल्लेख और एक प्रकार से उसका तुलनात्मक विवेचन करना पड़ता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि प्राचीन वस्तु के अप्रत्यक्ष किम्वा प्रत्यक्ष सम्बन्ध तथा आश्रय से नवीन वस्तु की श्रेष्ठता कम हो जाय। इसी से जब हम प्राचीन युग के वैभव का वर्णन पढ़ते हैं तब इस बात की कल्पना हमारे चित्त में नहीं रहती कि काल और युग-धर्म एक सापेक्ष बात है। कल की बात हमारे लिए पुरानी बात हो जाती है, उसी प्रकार इतिहासज्ञों का एक युग दूसरे युग से पुराना पड़ जाता है। कल यदि मारकाट की आवश्यकता थी और आज नहीं है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि कल हम वीर थे, आज कायर हैं। अथवा यदि आज हम मारकाट मचाते हैं और कल तक ऐसा नहीं करते थे तो यह नहीं कह सकते कि कल की अपेक्षा आज हम वीर हैं। रामायण और महाभारत काल में मारकाट का विषद वर्णन पढ़ने को मिलता है परन्तु जिसे सत्य-युग कहते हैं उसमें यह बात नहीं है। तब क्या यह कहना चाहिये कि सत्य-युग में वीरता थी ही नहीं ! यदि ऐसा है तो आज भी सत्य-युग का आदर्श हम क्यों सम्मुख रखते हैं ? यदि मारकाट का नाम

ही वीरता है तो आज के सभ्य और सुशिक्षित मनुष्यों की अपेक्षा आदि कालीन असभ्य और बर्बर ही अधिक वीर कहे जा सकते हैं। यदि यह बात नहीं है अर्थात् यदि मारकाट ही का नाम वीरता नहीं है तो सबसे ज्यादा मारकाट करने वाली राजपूत जाति ही क्यों सबसे अधिक वीर कही जाती है ? यदि मारकाट के व्यतिरिक्त भी वीरता कोई अस्तित्व रखती है तो राजपूतों के राज्य काल ही को वीरता का युग कहना अथवा राजस्थान ही को वीर-भूमि कहना व्यर्थ है।

ज्यादा ऊहापोह की आवश्यकता नहीं। कोई ऐसी वस्तु अवश्य है जिसके अस्तित्व में हम वीर कहे जाते हैं और जिसके अभाव में कायर ! रण में प्राण लेने वाला भी वीर कहा जाता है और रण में प्राण देने वाला भी वीर कहलाता है ! रण-क्षेत्र में क्रीड़ा करने वाले राम और कृष्ण वीर कहे जाते हैं तो अहिंसा का उपदेश देने वाले भगवान महावीर और बुद्ध कायर नहीं कहे जा सकते ! जिस प्रकार खड्ग से अत्याचारी का दमन करने वाला भी वीर है उसी प्रकार सत्य और स्पष्ट कथन द्वारा अत्याचार का विरोध भी वीरता है। सत्य और स्वाधीनता के लिये रक्त-पात भी वीरता है और शान्ति भी। दमनचक्र को तोड़ना भी वीरता है और दमनचक्र में पड़ना भी। और तो क्या मुक्ति के लिये मृत्यु भी वीरता है और जीवन भी। दूसरों को रुलाना भी वीरता है, और खुद रोना भी !

रक्तपात में उत्तेजना है—अभिमान और क्रोध है। एक को मारते देख दूसरे का खून उबल पड़ना स्वाभाविक है। सेनापति के आदेश पर एक सेना का दूसरी सेना पर टूट पड़ना कर्त्तव्य-परायणता की उत्कृष्ट सीमा है। सेनानी का वीर होना ही बहुत कुछ है। उदाहरण मौजूद है। वीर सेनापति के नेतृत्व में वही सेना वीरता दिखाती है और उसी के अभाव में कायरता पूर्वक भाग जाती है। वृक्ष की ओट से तीर चलाने वाले राम के प्रति बालि का यह कथन कि—

'धरम हेतु अवतरेउ गुसाईं। मारेउ मोहिं व्याध की नाईं'

क्या राम के वीरत्व में कलङ्क नहीं लगाता ? मशीनगनों और वायुयानों द्वारा गोलों की वर्षा कर सोती हुई सेना को मार डालना क्या वीरता कही जा सकती है ? इसी प्रकार सड़ियल लोगों पर अप्रत्यक्ष प्रहार होने पर उनका मरण क्या वीरों का मरण कहा जा सकता है ? अपने स्त्री पुत्र और स्नेहियों की रक्षा में व्याकुल होकर आँसू बहाने वाला कायर नहीं कहा जा सकता और न चोरी के लिए कोड़े खाने वाला वीर ! अस्त्र शस्त्रों का धारण ही वीरता नहीं है और न उनका धारण करना कायरता। एक फौजी अफसर स्त्री के साथ चारपाई पर लेटा हुआ रात में चोर के आने पर स्त्री के जगाने पर भी उसका हाथ दाब कर चुपचाप पड़े रहने को कहता है, पति की अनुपस्थिति में एक स्त्री चोरों का सामना कर उनसे अपने बालक की रक्षा करती है। सिक्ख वीर होते हैं यह वहीं तक सच है जहाँ तक वीरता का सम्बन्ध मनुष्य से नहीं, शरीर से नहीं वरन् मनोभावों से है। सिक्ख धर्म के सिद्धान्त, वीरता के सिद्धान्त हैं और उनको मानने और समझने वाला सिक्ख न होकर भी वीर हो सकता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से वीरता के युग की कल्पना पर प्रकाश पड़ता है। यह सहसा नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन-युग क्यों वीरता का युग था ? पाठक धृष्टता के लिये क्षमा करें। श्रीरामचन्द्र को हम उसी समय सच्चे वीर के रूप में देखते हैं जब वे राज-पाट छोड़ कर पिता की आज्ञा मान कर चौदह वर्ष का कठिन वनवास स्वीकार करते हैं, परन्तु जब वे सीता के लिए सेना एकत्रित कर लड़ाई ठानते हैं तो उनकी वीरता का वही मूल्य रह जाता है जो रावण की वीरता का अपने राज्य की रक्षा के लिए होता है। लक्ष्मण राम से कहीं वीर थे और उनकी वीरता सचमुच अपूर्व थी। किन्तु महाभारत काल में राज्य-लोलुप बन्धुओं का परस्पर लड़ कर मर मिटना क्या वीरता का सच्चा आदर्श कहा जा सकता है ? यदि राजपूतों का जमाना वीरता का युग था तो जहाँ माहाराणा प्रताप जैसे वीर थे वहीं मानसिंह जैसे कायरों की भी तो कमी न थी। शिवाजी पर सब को अभिमान हो सकता है परन्तु उनके उत्तराधिकारी के कारण कौन

नत मस्तक नहीं होजाता ? उनके राज्यकाल को वीरता का समय निर्धारित कर देना भी इसी प्रकार भूल है।

रक्तपात निम्न श्रेणी की वीरता है—यह पशुधर्म है। वीरता का आदर्श इससे कहीं उच्च है। हमें खेद है कि जनसाधारण ही की नहीं प्रत्युत विद्वानों की भी धारणा कुछ कुछ ऐसी ही रही है कि जिस जिस काल में अधिक रक्तपात और मारकाट मची है वही समय वीरता के युग के नाम से सम्बोधित किया गया है। जिस व्यक्ति ने इस रक्तपात में सब से अधिक भाग लिया है उसकी श्रेष्ठ-वीरों में गणना की गई है। ऐसे लोगों के मतानुसार तैमूर, नादिरशाह, अहमदशाह, कैसर विलियम, लेनिन आदि की वीरों में गणना की जासकती है! क्या यह ठीक है ? क्या यह सच नहीं है कि सच्ची वीरता उसी का नाम है जिसकी शत्रु, मित्र सब सराहना करें। मनुष्यों के एक भाग के लिये उपर्युक्त व्यक्ति वीर माने जा सकते हैं परन्तु दूसरों के लिये उनकी गणना अत्याचारियों में की जा सकती है। क्या अत्याचार भी वीरता है ?

हम प्रयत्न करेंगे कि अगले लेख में वीरता के युग की ठीक ठीक विवेचना की जाय।

श्री शिवाष्टक

[लेखक—साहित्य-रत्न श्री बाबूराम जी बिथरिया 'नवीन' साहित्यान्वेषक]

—::*(०)*::—

शार्दूल विक्रीड़ित छन्द

हिन्दुस्तान-अनूप-रूप-महिमा, देशाभिमानी सदा।
कीर्तिस्तम्भ, मनस्वि, युद्ध-सुखमा, छत्राधिकारी तथा॥
ज्ञानी, गौरवशील, धीर, वर-धी, सत्येन्द्र भूपेन्द्र जै।
सीमा-हिन्द, सु-सिन्धु नीति-नव के, जै जै शिवा जै शिवा॥१॥

सद्बुद्धी-गुरु-रामदास-प्रतिभा, दाता शुभानंद के।
दीनों के शुभ-कल्पवृक्ष सुखदा, माली स्वदेशादि के॥
पुण्यों की प्रतिमा स्व मातु-पितु के, कौशल्य के धाम जै।
ग्राही 'भूषण' के सु-काव्य-कल के, जै जै शिवा जै शिवा॥२॥

दैवी-विक्रम-शील सिंह जगके, ज्ञाता महाराष्ट्र के ।
संस्थापी पुनि जाति-कीर्ति-गरिमा, लोकोपकारी महा ॥
दुष्टों के अरि, मित्र देव-द्विज के, गोपाल ! कामारि* ! जै ।
दुर्द्धर्षी-यवनादि-राष्ट्र-हरता, जै जै शिवा जै शिवा ॥३॥

पाखंडी-नवरंग-रंग-जड़ता, विध्वंस कारी सदा ।
सूबा अफ़ज़ल आदि प्राण-हनता, दुष्कर्म के दंडदा ॥
क्षत्री-धर्म-सुकर्म-मर्म-गुरुता, वीरत्व की मूर्ति जै ।
यौनों† से कर के वमूल करता, जै जै शिवा जै शिवा ॥४॥

'दिल्ली' को दुलही 'सितारगढ़' की, तूने बनाया अहा ।
बाराती महराष्ट्र-सैन्य-यश को, थापा अहो साहसी ॥
खट्टे दांत 'चकत्त' के कर प्रभो, थर्रा दिया तख्त को ।
यौनों† की सब आन-बान हरता, जै जै शिवा जै शिवा ॥५॥

अत्याचार मुहम्मदी सब नसे, स्वातंत्र्य का भाव था ।
वैधव्या, अबला हुई निरभया, चंपा बनीं भौंर को ॥
चोटी चारु बचा, स्वदेश धन को, गो, देव, देवी रखे ।
हे हिन्दू-गण की सु-नाक-रक्षक, जै जै शिवा जै शिवा ॥६॥

वेदों की ध्वनि से हुई ध्वनित थी, देवालयों की अली ।
घंटा, शंख-निनाद से गृह गली, गूंजी सभी, देश की ॥
यज्ञों के रंग से रँगे घर सभी, तेरी कृपा से प्रभो ।
हे प्रात स्मरणी (य) सु-धर्म धरणी, जै जै शिवा जै शिवा ॥७॥

भूलेगी तुझको न भारत-प्रजा, जात्युपकारी ! कभी ।
गा-गा-गान, सुकीर्ति-कृत्य प्रभु का, संताप लेगी सदा ॥
है विनती प्रभु से 'नवीन' कवि की, आवें शिवा से यहाँ ।
सद्धर्मी, सु-रुची अनेक अब भी, जै जै शिवा जै शिवा ॥८॥

---

* कामारि शब्द का प्रयोग शिवाजी के जीवन की विशेषता प्रगट करता है, उन्होंने इन्द्रीजीत होने के कारण तथा शरणागत प्रतिपालक होने के कारण कई रूपवती स्त्रियों को पाकार भी सादर लौटा दिया । वे इन्द्रिय लोलुप नहीं थे ।

† योनों = यवनों ।

विचार-तरंग

[लेखक—श्रीयुत सुरेन्द्र जी शर्मा]

हमारे वेद-शास्त्र और सैकड़ों धर्म-ग्रन्थों में यह बात बड़े जोर के साथ कही गई है कि आत्मा अमर है, तलवार और गोली उसे काट-मार नहीं सकती, आग उसे जला नहीं सकती, विश्व की कोई भी प्रबल शक्ति उसका विनाश नहीं कर सकती, आदि। परन्तु, जब मरने का सवाल आता है, हवाई जहाज से हमारे सिरों पर बम का गोला गड़गड़ाता है, तब, कायरों की तरह प्राण बचाने के लिए बावन कोठों में घुस जाने को हमारा जी चाहता है! इसकी अपेक्षा भौतिकवाद के वायुमण्डल में पड़ा हुआ एक अंग्रेज युद्धक्षेत्र में अपने प्यारे देश के लिए हँसते हँसते अपने प्राण दे देता है! उसकी और हमारी स्थिति में कितना अन्तर है!

\+ + +

आत्मा की अमरता आज हमारी पोथियों में बन्द है। मृत्यु से हम बहुत घबड़ाते हैं। जितना हम मृत्यु से दूर भागने की चेष्टा करते हैं, उतना ही अधिक मृत्यु हमारा पीछा करती है। प्लेग-अकाल में हम अभागे भारतवासी कीड़े-मकोड़ों की तरह लाखों ही काम आजाते हैं। हड़तालों के समय मिलों के मजदूरों के रूप में, तथा जलियाँ वाला बाग में मूक भेड़ों के रूप में, हजारों की तादाद में हम गोलियों से भून डाले जाते हैं। परन्तु, फिर भी हम मृत्यु से कोसों दूर भागते हैं। क्या इस तरह के अवसरों पर हम वीरों की तरह मृत्यु को हँसकर गले लगाते हैं, या जानवरों की तरह हमारा शिकार किया जाता है? इस दशा में, रण-भूमि में अपनी मातृभूमि के लिए हँसते हँसते प्राणोत्सर्ग करने वाले अंग्रेज सिपाही की मृत्यु, हमारी अपेक्षा कितनी गौरव-पूर्ण है!

\+ + +

एक सैनिक को महा संग्राम में प्रवेश करते समय अपार आनन्द होता है। रण-वाद्य का महा नाद सुनकर उसकी नस नस में बिजली दौड़

उठती है। शत्रु का मान मर्दन करने के लिए उसकी भुजायें फड़क उठती हैं। उत्साह और वीर-भावना से मतवाला होकर वह संग्राम का श्रीगणेश करता है। उसकी चमचमाती हुई भुजाली शत्रु दल को काट काट कर मेदिनी पाट देती है, और खूब जी भर कर रक्त-पान करती है। जीवन की अन्तिम श्वास तक वह योद्धा अपने अरमान निकालता है। यदि सफल हुआ, तो विजय-दुन्दुभी बजी, अन्यथा मृत्यु-शैय्या पर पड़ा हुआ सिपाही एक मधुर हास्य के साथ यह कहते हुए वीर-गति को प्राप्त होता है कि युद्ध-क्षेत्र में किया हुआ बलिदान ही सिपाही का भूषण है!

\+ + +

वीर का गुण नैसर्गिक वीरता है। वीर कड़ी से कड़ी विपत्ति को भी हर्ष से सहन करता है। महा भयानक झंझा के झोंके उसे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकते। आततायी तो वीर के नाम से घबड़ाते हैं। अत्याचारी उसका बाल तक बाँका नहीं कर सकते। वीरों का जन्म ही अत्याचारियों से सङ्घर्षण करने के लिए होता है। जहां बेगुनाहों पर जुल्म होता है, वहां संतप्तों की रक्षा के लिए वीर के भुजदण्ड फड़क उठते हैं। निहत्थों, औरतों और बच्चों पर वीर का हाथ नहीं उठता। जहाँ पशु बल के मद से चूर होकर नृशंस लोग अत्याचारों की आग बरसाते हैं, वहां, उस जलती हुई आग में कूद पड़ना, तथा आततायी का संहार कर अत्याचारों की आंधी को समूल नष्ट कर देना वीरों का स्वाभाविक धर्म है। यदि ऐसे सङ्कट के समय वीर घर में छिप कर अपने प्राण बचाले तो, उसके एक पशु से भी बदतर होने में कसर ही क्या रह गई? क्योंकि अत्याचारी के विरुद्ध पशु का भी हृदय भभक उठता है।

\+ + +

भगवान् कृष्ण ने युद्ध-क्षेत्र में मोहावृत्त अर्जुन को गीता के आदेश के रूप में एक सिपाही का अर्थ समझाया और समझाई यह बात कि लोक-कल्याण के लिए अत्याचारियों का संहार करना किसी दशा में भी बुरा नहीं है। फिर, उन अत्याचारियों में चाहे, अपना कोई आत्मीय हो

वीर-सन्देश



'प्रताप' के प्रतापी सम्पादक

श्रद्धेय गणेशशंकर जी विद्यार्थी

मैनपुरी मानहानि केस में हाईकोर्ट से निर्दोष प्रमाणित होकर सम्पादकों के लिये एक उच्चतम आदर्श और अत्युपयोगी उदाहरण पैदा करने वाले निर्भय वीर।

महावीर प्रेस, आगरा।

क्यों न हो ! हमारे कुछ आधुनिक तत्ववेत्ता गीता के इस प्रसङ्ग को रूपक के नाम से पुकारते हैं। उन्हें अपने मतानुसार ऐसा कहने का अधिकार है। परन्तु, हिन्दू-धर्म तथा गीता के तात्विक सिद्धान्तों के अनुसार यह कहावत भी यहां सदा से प्रचलित रही है—"हन्ते को हनिये, पाप-दोष न गनिये।"

\+　　　　+　　　　+

सन् १८५७ के ग़दर से अब तक बाजीराव, तांत्याटोपी, लक्ष्मीबाई, खुदीराम, कन्हाईलाल, करतारसिंह, पिंगले आदि अनेक योद्धा भारतीय स्वतंत्रता के यज्ञ में आत्माहुति दे चुके हैं! परन्तु, इनके बलिदान से इस देश के गुलामों की नींद में कोई खलल नहीं पड़ा। मनुष्यता के नाते हम से कभी इतना भी नहीं बन पड़ता कि वर्ष में एक दिन बैठकर इन बलि-वीरों की स्मृति में दो आँसू भी बहा लें। यदि वे आत्माएँ किसी अन्य देश में जन्मी होतीं, तो, उनकी पुण्य स्मृति में स्थान स्थान पर स्तम्भ खड़े किये जाते, समय समय पर उनके नाम पर श्रद्धाञ्जलियां चढ़ाई जातीं और हाट-बाजारों और सड़कों के नाम उनकी पवित्र नामावलियों से सुशोभित होते। परन्तु, हम कृतघ्न भारतवासी अपने अमर शहीदों को भूल गये। वीरों की स्मृति रक्षार्थ हमने कोई प्रयास नहीं किया। क्यों? इसलिए कि, हम वीर-पूजा करना ही नहीं जानते। वीरों की क़द्र वीर ही किया करते हैं, कायर नहीं। कायरता वश, अथवा किसी मत-भेद के कारण, वीरता, निस्पृहता और भक्ति-भावना की ज्वलन्त मूर्ति रणचण्डी लक्ष्मीबाई को भूल जाना पतन की चरम सीमा है! गुलामी का अमिट चिह्न है!

\+　　　　+　　　　+

कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, लाहौर आदि नगरों में अनेक विदेशी शासकों के स्मारक हैं। उनके बनाने में इस देश का रुपया खर्च किया गया है। ये स्मारक समय समय पर हिन्दुस्तान के पतन और गुलामी की याद दिलाते हैं, और याद दिलाते हैं, उन अपमानों और जुल्मों की

जो विदेशी शासकों ने स्वार्थान्ध हो कर हमारे ऊपर किये। इन स्मारकों से हमारे आत्म-सम्मान पर बड़ी ठेस लगती है। इनके स्थान पर, यदि, प्रताप, शिवाजी, लक्ष्मीबाई, तिलक, कन्हाईलाल आदि के स्मारक होते, तो, कितना अच्छा होता! इन महापुरुषों के नाम पर, यदि हमारे बाजार, सड़कों, बगीचों आदि के नाम होते, तो, हमारे देश के बच्चे निकलते-बैठते इन पुण्य स्मारकों पर नजर डालते और तब, गर्व से उनकी छाती फूल उठती और गौरव से उनका मस्तक ऊँचा हो उठता। हम अपने महा पुरुषों के स्मारक खड़े करने का कोई महत्व नहीं समझते, उन महापुरुषों का जो अपना सब कुछ दे कर इसी देश के लिए जिये, और इसी के लिए मरे! इस दशा में, हमारी कायरता और अज्ञान पर यदि दुनियां आज हँसे, तो ताज्जुब क्या है? गुलामों की इस प्रकार की दयनीय दशा, आधुनिक संसार के लिए भर्त्सना की चीज है!

+ + +

हमारे देश के अधिकांश युवक फैशन और ठाठ-बाट के गुलाम हैं और युवतियां सुनहरी जेवर, बढ़िया कपड़े, और ऊपरी चमक की। करोड़ों किसानों और मजदूरों की—उन किसानों और मजदूरों की जिन्हें सुबह से शाम तक बड़ी मिहनत करने पर भी भरपेट भोजन नहीं मिलता—दयनीय दशा उनके संग-दिल पर कोई असर नहीं करती। यूनिवर्सिटी की ऊँची डिग्रियां ले लेने के बाद भी वे शिक्षा के वास्तविक मर्म से कोसों परे हैं, उस मर्म से जिसके अनुसार दुनिया में सादगी से रह कर ऊँचा सोचने की भावना जागृत हो उठती है। उनकी डिग्रियां देख कर कुछ लोग उन्हें शिक्षित के नाम से पुकार सकते हैं, किन्तु, विचारशील व्यक्तियों की नजर में, चलते-फिरते, प्राणियों के रूप में वे बिल्कुल मुर्दे हैं, ऐसे मुर्दे जिन पर सामयिक परिवर्त्तन की वायु के झोंके कोई असर नहीं पहुंचा सकते।

+ + +

रूस में जारशाही का सितारा बुलन्दी पर था। शासकों के अत्याचारों से वहाँ की प्रजा पिसी जा रही थी। किसान और मजदूर जानवरों की जिन्दगी बसर करते थे। एक राजकुमारी कैथेराइन, जो उस समय युवती थी, अपने राज-भवन से दर्द भरा दिल लेकर निकल पड़ी। महलों से लेकर झोंपड़ों तक में उसने जारशाही के अत्याचारों के विरुद्ध आग भड़कादी। कारखानों में जाकर कैथेराइन ने मजदूरों में स्वावलम्बन और स्वतन्त्रता का मन्त्र फूंका। गरीब मजदूर ऊँचे दर्जे के रहन सहन के कारण राजकुमारी से बचने लगे। यह देख कर साधारण कुलियों में काम करने के लिए कैथेराइन ने अपनी राजसी पोशाक उतार फेंकी और फटे-पुराने कपड़े पहन कर सदा के लिए गरीबी अख्त्यार करली यहाँ तक कि तेजाब आदि से जला कर अपना चेहरा खुर्रा बना लिया! फिर बेधड़क हो, कारखानों में उसने क्रान्ति का बीज बोया। फल-स्वरूप राजकुमारी कैथेराइन साइबेरिया के जंगलों में सदा के लिए निर्वासित करदी गई। किसी गुलाम देश के विलास-प्रिय युवकों का मन कैथेराइन ऐसी वीराङ्गना के बलिदान से भले ही आकर्षित न हो, किन्तु जिन दृढ़ चरित्र युवकों के अटूट विश्वास और उनके मिटने की भावना पर किसी देश का उत्थान निर्भर हो, उनके लिए तो ऐसी रण-देवियों की पुण्य गाथा सदा आदर और पूजा की चीज रहेगी।

प्रलय

[लेखक—श्री० भुवनेश्वर सिंह जी 'भुवन' कविरत्न]

भड़क उठे भीषड़ बड़वानल मच जाये फिर उथल पुथल।
एकबार होके प्रमत्त बस फड़क उठे यह बसुधा तल॥
बज्र प्रहारों से नृशंस के हिय होजायें चकनाचूर।
प्रलयंकरी तुफानों से न बचे भारत में कोई क्रूर॥
विश्व-विधायक के चरणों में कलियुग का लय हो जाये।
सत्य, शील, सौन्दर्य्य, सरलता मय सतयुग मोहन आये॥

दानवीर शिवाजी

[लेखक—श्रीमान् बाबा राघवदास जी]

हिन्दू-धर्म-संस्थापक श्री शिवाजी महाराज का नाम कौन ऐसा हिन्दू है जो नहीं जानता ? श्री शिवाजी महाराज के राज्य संस्थापन की बात तो सब पर विदित है पर उनके त्याग—उनके दान—की बात बहुत कम जानते हैं। आज हम अपने पाठकों की जानकारी के लिये उसके संबंध में कुछ लिखेंगे।

श्री समर्थ-गुरु रामदास महाराज छत्रपति शिवाजी महाराज के ज्ञान-गुरु और नीति-गुरु थे। प्रत्येक विचार पूर्ण अवसर पर वह श्री समर्थ जी के चरणों में पहुँचते और उनसे भेट करके अपना कार्यक्रम निश्चित करते थे। श्री समर्थ जी छत्रपति जी के कार्य में पूरी सहायता करते थे। श्री समर्थ जी का किया हुआ संगठन जीता जागता संगठन था। उनके महन्त और कार्यकर्ता महाराष्ट्र के प्रत्येक ग्राम में पहुँचे हुए थे। इतना ही नहीं, प्रत्येक ग्राम पर उन कार्यकर्ताओं का पूर्ण प्रभाव था। उनकी आज्ञा होने का विलंब कि तत्काल देश तथा धर्म के नाम पर ग्रामीण भाई मरने को तैयार। इसी संगठन के द्वारा श्री समर्थ रामदास जी अपने पट्ट शिष्य की पूर्ण रीति से सहायता करते थे! और उनके उत्साह को दुगुणित करते थे। अस्तु

श्री शिवाजी महाराज इस सहायता को कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से देखते थे। एक दिन वह बैठे थे कि उनके हृदय में विचार आया कि यह राज्य जिनके कृपा कटाक्ष से प्राप्त हुआ उनके ही चरण कमलों में अर्पण कर दें।

'शुभस्य शीघ्रम्' इस सदुक्ति के अनुसार उन्होंने दूसरे दिन जब कि समर्थ जी महाराज भिक्षा निमित्त द्वार पर पधारे (श्री समर्थ महाराज का यह नियम था कि वह और उनके महन्त कार्यकर्ता प्रति दिन अपने खाने भर की भिक्षा माँग कर भोजन करते थे। इस भिक्षा माँगने में कई

बातें थी। एक तो कार्यकर्ता ग्राम २ जाता और घर २ की स्थिति, नर नारी, बालक के स्वभाव, उनकी शारीरिक मानसिक अवस्थाओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता था जिससे समय पर सैन्य, धन आदि संग्रह करने में, बड़ी सहायता मिलती थी) और श्लोक कहकर अन्त में "जय जय रघुवीर समर्थ" इन शब्दों से भगवान रामचन्द्र का जय जयकार किया। आज शिवाजी महाराज स्वयं अँजुली में चावल लेकर आये और श्री समर्थ जी के झोली में छोड़ दिये। श्री समर्थ आश्रम–सज्जनगढ़–पर लौट आये और अपनी भिक्षा झोली से चावल निकाले। इतने में उन्हें उसमें एक पत्र मिला। पत्र देखकर बड़े आश्चर्य से उसको उन्होंने खोला और देखा कि उसमें "आपका ही दिया हुआ यह राज्य आपके ही चरणों में अर्पण है।

—शिवाजी"

यह वाक्य लिखा हुआ है। इसको पढ़कर श्री समर्थजी के आनन्द का ठिकाना न रहा। अपने शिष्य की ऐसी उच्च वृत्ति देखकर कौनसा ऐसा गुरु है जिसको प्रसन्नता न होगी।

आज जिस राज्य और उसके भोग के लिए खून की नदियाँ बहाई जा रही हैं। नाना प्रकार के कपट जाल फैला कर करोड़ों नर नारियों को गुलाम बनाने में जिसका उपयोग किया जा रहा है। जिसके दान देने की बात कौन कहे पर जिसका साधारण से साधारण लाभ दूसरों को दे देने की इच्छा नहीं होती। वह राज्य, वह सुख, वैभव का केन्द्र शिवाजी महाराज ने प्रसन्नता-पूर्वक गुरु-चरणों में अर्पण कर दिया था।

श्री समर्थ गुरु रामदास ने दुपहर के समय शिवाजी महाराज के पास बुलावा भेजा। आदेश पाते ही छत्रपति जी सज्जनगढ़ पहुँचे और गुरु चरणों में प्रणाम करके बैठ गये। श्री समर्थ जी ने उस पत्र का ध्यान दिलाते हुये कहा—"शिवाजी यह तुमने क्या किया! कहीं राज्य भी दूसरों को दिया जाता है? कुछ बात नहीं अब भी अपना यह राज संभालो'।

यह शब्द सुनकर छत्रपतिजी नत मस्तक होकर बोले "कृपानिधान राज्य आपका है! आर अब उस पर मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है"।

श्री समर्थजी ने छत्रपति को राज्य लौटा लेने को बहुतेरा समझाया पर शिवाजी महाराज अपने वचन पर अटल रहे। परीक्षा का समय था पर शिवाजी महाराज ऐसा परम धार्मिक मातृ-पितृ गुरु-भक्त इसमें कब अनुत्तीर्ण होने वाला था ? विवश होकर स्वामी जी ने एक युक्ति सोची और छत्रपतिजी से कहा-"शिवा मैं यह मानता हूँ कि राज्य मेरा है पर तुम्हें मालूम ही है, मैं इसका प्रबन्ध स्वयं न कर सकूंगा। अतएव इसका प्रबन्ध मेरे नाम से तुमही करो और राज्य मेरा-अर्थात् साधु का है यह दर्शाने के लिए मराठों का जरतारी का जो निशान है उसको हटा कर उसके स्थान में भगवा-गेरुआ रंग का निशान करदो।"

शिवाजी महाराज ने इस बात को स्वीकार कर लिया और तब से आज तक मरहठों का निशान गेरुआ निशान है। जो मरहठा राज्य एक साधु का-सब हिन्दुओं का-होने का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। आज भी जहां कहीं मरहठों का निशान है वह गेरुआ निशान है।

पाठक ! कितना बड़ा है यह त्याग ? निर्धन दुखियों का त्यागी बनना सरल है पर वैभवशाली, वीर श्रेष्ठ सेनापति और राज्य संस्थापक होकर फिर भी राज्य को गेंद के जैसा ठुकरा देना, सचमुच शिवाजी महाराज जैसे महापुरुषों का ही काम है।

इसीलिये तो अब बड़े बड़े इतिहासकार कह रहे हैं कि वर्तमान संस्था के उपलब्ध इतिहास में छत्रपति शिवाजी महाराज के साथ तुलना करने योग्य कोई राजपुरुष हुआ नहीं, जिसमें ईशभक्ति, प्रजावत्सलता, स्त्रियों के प्रति सम्मान, मातृ पितृ गुरुभक्ति, राजनीति, ज्ञान शौर्य, संगठन चातुरी, प्रबन्ध शक्ति स्वभाषा प्रेम, आदि आदि अनेक गुण एक समयावच्छेद करके एक ही में उपलब्ध हों। क्या पाठक हम लोग शिवाजी महाराज के इस अनुपम त्याग से कुछ भी शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न करेंगे ?

शिवाजी

[लेखक—श्रीयुत पं० गोकुलचन्द जी शर्मा बी० ए०]

——::※::——

धँसते हुए धर्म के रक्षक शिवजी के अवतार शिवाजी,
बढ़ती हुई विधर्म-व्याधि के वारक वज्र-प्रहार शिवाजी।
मुग़लों की मद से मतवाली सेना के संहार शिवाजी,
दुष्ट-दण्डिनी खड्ग-खण्डिनी खांड़े की खरधार शिवाजी॥

शठ समर्थ के त्रास शिवाजी,
पर 'समर्थ' के दास शिवाजी।
राष्ट्रिय-धर्म विकास शिवाजी,
वीरों के उल्लास शिवाजी॥

परम पवित्र चरित्र शक्ति के तेजोमय ध्रुव धाम शिवाजी,
लूट लुटेरों का धन दुर्मद-मर्दक लोक ललाम शिवाजी।
क्रूर कुटिल यवनों के दल के यद्यपि काम तमाम शिवाजी,
तदपि क़ुरान और मसजिद के रक्षक उन्नत नाम शिवाजी॥

यवनं के सम्मान शिवाजी,
निर्भयता के दान शिवाजी।
आर्यों के अभिमान शिवाजी,
महाराष्ट्र के ज्ञान शिवाजी॥

दुर्ग विजेता रण-कौशल के अति अद्भुत आचार्य शिवाजी,
सुभटों को फड़काने वाली बिजली के से कार्य शिवाजी।
रिपुओं के दुर्भेद्य व्यूह को भीम-तुल्य अनिवार्य शिवाजी,
राष्ट्र-भाव की प्रथम कल्पना दिव्य छत्रपति आर्य शिवाजी॥

जीवन के उत्कर्ष शिवाजी,
भारत के आदर्श शिवाजी।
अखिल विश्व अभिराम शिवाजी,
नत शिर तुम्हें प्रणाम शिवाजी॥

——

छत्रपति शिवाजी

[लेखक—श्रीयुत मदनगोपाल जी पोद्दार]

महा-प्रतापी छत्रपति शिवाजी के विषय में प्रचलित शिक्षा प्रणाली की अनुकम्पा से बहुत कुछ गलत-फ़हमी फैल रही है। अंग्रेज इतिहास लेखकों ने महाराष्ट्र केसरी की धवल कीर्ति पर कालिमा पोतने का भरसक उद्योग किया है। इन लेखकों की स्वार्थ सिंचित कुटिल कूट नीति के कारण ही आज लाखों शिक्षित भारतवासी वीर शिरोमणि महाराज शिवाजी को चोर, डाकू, निर्लज्ज, लुटेरा, पहाड़ी चूहा, अत्याचारी और प्रजा-पीडक आदि समझते हैं। किन नीच विचारों से प्रेरित होकर इस प्रकार क्यों इतिहास के पृष्ठ कलंकित किये गये हैं इसका विवेचन करना यहां आवश्यक नहीं है। हमें तो यहां पर छत्रपति की आदर्श वीरता आदि का दिग्दर्शन मात्र कराना ही अभीष्ट है।

प्रो० रालिन्सन साहब लिखते हैं—"लोगों का कहना है कि शिवाजी ने देश को विदेशियों के पंजे से मुक्त करने के लिये, पाश्चात्य दृष्टि से, शठता और नीचता का प्रयोग किया, किन्तु यह कथन सर्वथा असत्य है"—(Shivaji the Marhatha by H. G. Rawlinson) यही नहीं, रालिन्सन तो यहां तक कहते हैं कि शिवाजी भारत के नैपोलियन थे—"Like nearly all great warriors—Napoleon is a conspicuous example—Sivaji was also a great administrator .....successful organisor and statesman." अर्थात् "प्रायः सभी महान योद्धाओं की तरह, नैपोलियन का उदाहरण बहुत उपयुक्त है, शिवाजी एक महान शासक, सफल व्यवस्थापक और प्रकाण्ड नीतिज्ञ थे।" शिवाजी की वीरता के विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है परन्तु यहां पर दो चार मुख्य मुख्य बातें लिखना पर्याप्त होगा। अकेले शिवाजी का महान पहाड़ी किलों को जीतना, कट्टर वीर अफ़जलखां को मारना, शायस्ताखाँ को शिकस्त देना, बीजापुर के युद्ध में विजयी होना और शूर

व्याघ्र मुगल सम्राट औरंगजेब के दांत खट्टे करना इत्यादि काम कुछ साधारण वीरता और साहस के न थे। शिवाजी के उत्कर्ष के पूर्व महाराष्ट्र जाति कुछ भी महत्त्व नहीं रखती थी किन्तु शिवाजी ने उन्हें एक महान राष्ट्र में गूंथ दिया और जमुना से तुंगभद्रा तक तथा द्वारका से जगन्नाथ तक सारा देश मुसलमानों की आधीनता से पूर्णतया मुक्त करके एक अविच्छिन्न अखण्ड और शक्तिशाली हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना करदी। और यह सफलता उन्होंने चार महान शक्तियों (मुगल साम्राज्य, बीजापुर, पुर्तगाल आदि) को चूना लगा कर प्राप्त की थी।

प्रो० एस० एन० सेन लिखते हैं कि "शिवाजी के सैनिकों की संख्या २०० से अधिक नहीं होती थी और इन्हीं के द्वारा उन्होंने आश्चर्यजनक काम किये थे।" इस छोटी सी पर सुसंगठित सेना द्वारा ही शिवाजी ने महा-प्रबल मुगल-सम्राट की बड़ी बड़ी सेनाओं को बार बार हत-वीर्य किया था। प्रतिक्षण यह प्रतीत होता था कि मुट्ठी भर मरहठे अब विलीन हो जाते हैं। पर हुआ क्या, शिवाजी की वीरता ने मरहठों का दिन दुगुना उत्कर्ष किया और दुश्मनों को नीचा दिखाया। रालिन्सन साहब का कहना है कि "शिवाजी एक महान शूरवीर और सुविक्रान्त महा-पुरुष था और दुर्जय शत्रुओं से युद्ध कर विजयी होता था"। इनकी वीरता ने औरंगजेब जैसे कट्टर शत्रु से भी इनकी तारीफ करवाई! इनकी इस अद्वितीय वीरत्व-शक्ति के उत्पादन का श्रेय नैपोलियन की भांति इनकी माता द्वारा सुनी हुई वीर-रस पूर्ण कहानियां थीं।

शिवाजी एक राष्ट्र निर्मापक थे, उन्होंने अपनी अकथनीय वीरता से महाराष्ट्र—राष्ट्र की नींव इतनी सुदृढ़ बनादी थी कि उनके विलीन होने पर भी राष्ट्र प्रबल शत्रुओं से बच कर बहुत कुछ समय तक स्वतन्त्र बना रहा। यह शिवाजी के राष्ट्र-निर्माण कौशल का ही फल था। लोगों का कहना है कि यदि शिवाजी लगभग एक शताब्दी पहले जन्म लेकर ऐसा राष्ट्र निर्माण करते तो इसमें सन्देह नहीं कि आज भारतवर्ष का इतिहास कुछ और ही होता। लिखने का तात्पर्य यह है कि यह काम डाकू लुटेरों

का नहीं हो सकता—डाकू लुटेरे तो टीपू आदि थे जिनके राज्य का अन्त उनके अन्त के साथ ही हो गया।

शिवाजी की राजनैतिक विषयों में असाधारण प्रगति और योग्यता थी। राज-नीतिज्ञता में इनके जोड़ वाला मिलना कठिन है। लोग सिकन्दर आदि की उपमा इन्हें देते हैं, पर सिकन्दर कितना ही जगज्जेता क्यों न हो, शिवाजी की राजनीति उससे बहुत बढ़ी चढ़ी थी। शिवाजी का अष्ट-प्रधान मण्डल आजतक एक आदर्श राज्य प्रबन्ध माना जाता है। लोग इस मण्डल की तुलना इंगलैण्ड के प्रचलित मन्त्रि मण्डल (Cabinet) से करते हैं। किले वगैरह के विषय में "लोकहित वादी" का मत है कि—Shivaji, famous for his forts अर्थात् शिवाजी किलों के लिये प्रख्यात हैं। फौज और जहाजी बेड़े का संगठन भी इनके पास अद्वितीय था।

शिवाजी का देश-प्रेम बहुत कुछ बढ़ा चढ़ा था। देश को विदेशियों के पंजे से मुक्त करने के लिये उनमें सच्ची लगन थी और इस कार्य में फलीभूत होने के लिये आजन्म उन्होंने उद्योग किया। विदेशियों की बढ़ती देख कर उनका खून खौल उठता था। धार्मिक श्रद्धा भी इनमें कुछ कम नहीं थी। गौ रक्षा के लिये इन्होंने अगणित बार मुसलमानों से टक्कर ली।

हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की।
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी कर में॥
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज।
देव राखे देवता, स्वधर्म राख्यो घर में॥

इनकी धार्मिक धारणाओं पर महात्मा रामदास का बहुत कुछ प्रभाव था।

शिवाजी का जन्म प्रो० यदुनाथ सरकार के मत से ६ अप्रैल सन् १६२७ को हुआ था, पर इसकी सत्यता में सन्देह है। ५ अप्रैल सन् १६८० तक एक वीर आदर्श उपस्थित कर देश को धर्म में प्रतिष्ठित और देशभक्ति से परिपूरित कर हिन्दुओं की विजय-पताका फहरा कर महाराष्ट्र वीर-केसरी शिवाजी इस लोक से परलोक सिधार गये। शिवाजी ने

अपने उज्ज्वल उदाहरण से यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू जाति भी राष्ट्र-निर्माण और शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकती है। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू-जाति अब भी महान् आत्मा और बड़े से बड़े सम्राट उत्पन्न कर सकती है। शिवाजी ने यह प्रत्यक्ष दिखा दिया है कि हिन्दुत्व रूपी वृक्ष में अब भी शक्ति का संचार हो रहा है और सदियों तक राजनैतिक पराधीनता में दबे रहने पर भी यह उन्नत एवं पल्लवित, कुसुमित और फलप्रद होकर गगन चुम्बी हो सकता है।

प्रस्थान

[लेखक—श्रीयुत जयनारायण जी झा "विनीत" विद्यालंकार, विशारद]

आह ! यह कैसी करुण पुकार, तुम्हारी जननी की है वीर।
सुनो, सम्हलो, कर दो उद्धार, बुझाओ जी की जलन गभीर॥
भुजायें हैं यम-दंड प्रचंड, तेज में उग्र प्रलय मार्तंड।
तुम्हारी गति है प्रलय समीर, अनल हो, अरि है ईंधन, वीर॥१॥

पला गीदड़ की मांद मँझार, सिंहसा विसरा वीर्य्य अपार।
करो आत्म-स्मृति, धर्म-ध्यान, कमर कस करो, शीघ्र बलिदान॥
मृत्यु के पहले अगणित बार, भीरु मरते,—मरते पर वीर,—
सदा को अमर बना, इकबार, छोड़ते सुयश पयोधि गभीर॥२॥

जगा दो जग को भारत-वीर, अजय हैं विजय तूण के तीर।
वज्रवत् गरज लिये शमसीर, कँपा दो भू, नभ को रणधीर॥
बजा रण वाद्य, गर्ल से भाल, किये ऊँचा "मा की जय" बोल—
बना उत्साह उदधि विकराल, समर को बढ़ो, वीर ! जी खोल॥३॥

रण-स्थल करता है आह्वान, वहीं माता की करुण पुकार।
सुनो ऐ सजग शूर-सन्तान, समर साजों से हो तैयार॥
विजय नादों से नभ को पूर, गुँजाता वीर गान की तान—
कँपाता भू को फिर फिर, शूर ! करो रण को सत्वर प्रस्थान॥

पवित्र स्मृति में

[लेखक—श्रीयुत गौरीशङ्करजी 'सत्येन्द्र' विशारद]

——:❀:——

❀१❀

अनन्त ! आओ आज तुम भी अपनी अलख वेदना विश्व को सुनाओ अतीत में उस दारुण ज्वाला को गर्भित रखने से काम नहीं चलेगा, तुम्हारी इस रहस्यमय तमतमाहट में जो एक असहनीय क्लेश निहित है उसके प्रतिघात की झलक में मानव समाज के लिए जो भव्य-सन्देश है, उससे हमें अधिक वंचित न रक्खो। तुम्हीं से सीखा है, तुम्हीं से सीख रहे हैं, तुम्हीं से सीखेंगे। पथ-प्रदर्शक ! तुम्हारा संकोच पथिक के सत्यानाश का कारण हो सकता है ..... अच्छा सुनाओ-क्या कह रहे हो ?

'यही दिल्ली शहर था, किन्तु उस समय इस भारत के भाग्य विधायक शहर में मुगल सम्राट शाहजहाँ का शासन काल समाप्ति पर था, औरङ्गजेब, वह युवराज औरङ्गजेब जिसने दक्खिन की उपाध्यक्षता के समय अपने को त्यागी फकीर प्रसिद्ध कर दिया था, राज्य लोभ से पागल हो उठा था। देव तुल्य पिता को बन्दी करके अपने सिंहासनारूढ़ होने के मार्ग में बाधक शुजा को देशान्तरों में निर्वासित कर तथा मुराद को विश्वासघात के साथ बध कराके स्वयं शासन की डोर अपने हाथ में ले चुका था। उसी शाहन्शाह के सामने शाहन्शाह का बड़ा भाई, दाराशिकोह बन्दी की दशा में जीवनखाँ द्वारा लाया गया। उस जीवन-निराश के भाग्याकाश के कुटिल ग्रहों ने अमित आपदा में उसकी एक मात्र सहायका, एक मात्र स्नेह-भाजना हृदयेश्वरी नादिरा को छीन कर धैर्य के बाँध को नितान्त छिन्नभिन्न करके उसकी दशा को दीन-दयनीय बना दिया। वही जीवन-निराश अधीर दारा, औरङ्गजेब के सामने आया। इस समय वह सिंहासनारूढ़ सम्राट औरङ्गजेब था, उसका छोटा भाई औरङ्गजेब नहीं ! विधाता की इस अविधि विषमता का उसे बड़ा कटु अनुभव हुआ, उसने ऊपर अन्तरिक्ष में शून्य-दृष्टि से देखा और देखता रहा। शाहन्शाह के

फ़रमान से शाहन्शाह के भाई का दिखावा फटे चिथड़ों से सारे नगर में कराया गया। इसी नगर में वह कभी राज्य कर चुका था, इसी नगर में उसने अपने जीवन की महत्व-पूर्ण, वैभव-पूर्ण घड़ियाँ व्यतीत की थीं। वहाँ ऐसा अनादर ! इससे भी घोर मानसिक सन्ताप और क्या हो सकता था ! और भी उस दादा दारा को, सहृदय सज्जन दारा को, निष्पक्ष प्रेमी दारा को, धर्म-द्रोही बतलाया गया !! हा ! सहृदय दारा !

\+ + +

वह गहन रात्रि थी, घोर तम घन से आकाश आच्छादित था, सर्वत्र भयंकरता थी। उस समय आज्ञा दी गई, जल्लादों को अपना कार्य पूरा करने की। जिस समय बेचारा अबोध सिपहर शिकोह-दारा का अवशेष प्रेम-केन्द्र पुत्र बधिकों के हाथ में उसी के सामने दिया गया। उस का हृदय टूक टूक हो गया, कातर अश्रु पूर्ण नेत्रों से चौदह वर्षीय कोमल कुमार को निरख कर दया आशा से औरङ्गजेब की ओर देखा, घुटनों बैठ हाथ जोड़ कर उसने सम्राट से कुछ भिक्षा मांगनी चाही। उसके रुंधे कण्ठ से अस्पष्ट स्वर में अनन्त-वेदना से केवल एक शब्द निकल पाया, "भाई"। आज्ञा हो चुकी थी, तलवारों का वार हो गया, नृशंसता काँप उठी, भयंकरता दहला गई, दीन दारा चीख पड़ा, सम्राट औरंगजेब हँस पड़ा। अच्छा हुआ दुखी दारा को भी दहकते संसार से छोटे भाई ने छुट्टी देदी।

"मनुष्यता ! मनुष्यता ! क्या यही तेरा रूप है ?......"

अनन्त तुम्हारी इस दारुण-दुख ज्वाला से मेरा हृदय दहका जाता है। ओह बेचैनी ! क्या कहते हो, ठहरूं अच्छा और सुनाओ—अरे ये क्या भावुक हृदयों के साथ ऐसे कठिन समय में तुम भी मखौल करते हो। ये क्या लुटेरे पहाड़ी चूहे की कथा सुनाने का समय है ? अपने विशाल गर्भ में से किसी अमूल्य रत्न की झांकी कराओ। इससे तो अच्छा हो राम या भीष्म की हां कथा कहो ! किन्तु तुम अपनी हठ नहीं छोड़ते। अच्छा इसे ही सुनाओ। जब तुम ऐसी हठ कर रहे हो तो अवश्य ही इसमें कुछ विशेषता होगी—सुनाओ !

❀२❀

सुनो—व्यंकोजी ने शिवाजी का पत्र पढ़ा। व्यंगपूर्ण मुस्कराहट के साथ शिवाजी को सम्बोधन कर कहा, "तुम्हारी अपेक्षा मुझे अपनी भलाई का अधिक ध्यान है—तुम मेरे सौतेले भाई हो, किन्तु मैं तुम्हारे इन ममता-पूर्ण प्रलोभनों में आकर अपने को नष्ट नहीं कर देना चाहता, तुम्हारा जीवन अस्थिर लहरियों की भांति परिवर्तनशील है। तुम स्वराज्य की दुहाई देते हो किन्तु इसमें तुम्हारा अकपट स्वार्थ है, मैं मूर्ख नहीं—तुम कहते हो पिता जी की जागीर में से तुम्हें आधा बाँट दिया जाय, पर यह जागीर बीजापुराधीश के आधीन है। तुम पिता की जीवितावस्था में बीजापुर-राज्य के विरोधी रहे हो अतएव पिता जी के भी शत्रु थे। तुम्हारा कुछ भी हक़ उस पर नहीं, तुम्हारा हिन्दू-राज्य......।" इतना कहते कहते व्यंको जी का मुख विकृत होने लगा, उपहास के अन्तर्गत जो विचित्र वैमनस्य होता है उसी का विकट रूप उसके मुख-मंडल पर झलक आया। तीव्र आवेश में उसने कहा—"हा हतभाग्य वंको—तू भी आखिर शाह जी का पुत्र है, फिर शिवा में ही क्या सुर्खाब का पर लगा है जो उसकी तूती आज चारों ओर बोल रही है और तेरा नाम परिमित सीमा में ही ज्ञात है?" उसके नेत्रों में क्षणिक उन्माद छटा छा गई, यह था वह विकार जिसे उसके हृदय ने शून्य से पूछा। "शिवा जी स्वराज्य का लालच देकर हिन्दू-राज्य की स्थापना के बहाने निज स्वार्थ साधना चाहता है—किन्तु नहीं। यहाँ उसकी दाल न गलेगी। मैं बीजापुर को सहायता के लिए लिखूंगा और शिवा के छक्के छुड़ा दूंगा" उसने दृढ़ शब्दों में कहा, जो अट्टालिका की दीवारों से टकरा कर उसमें गूंजने लगे।

\+ + +

शिवाजी ने जिसे तुम लुटेरा कहते हो, पहाड़ी चूहा कहते हो! ये बातें अपने गुप्तचर से सुनीं—सुन कर उनकी आँखों में जल भर आया। अपने पिता का स्मरण हो आया, जिन की दृढ़ भक्ति उनके हृदय में अभी तक थी। पन्हाले का वह अन्तिम-मिलन, वह महत्व-पूर्ण मिलन

भी उनकी आँखों के सामने नाच गया। तुलजा भवानी को पुकार कर उन्होंने कहा "माँ! मेरे छोटे भाई को सुमति दे, तेरे आशीर्वाद से जिस स्वराज्य-स्थापन का व्रत मैंने लिया है, माँ! उस में भाई ही विमुख हो—यह विरोध नहीं देखा जाता" + + + उन्होंने और भी सुना कि वंको जी ने हंबीरराव मोहिते की टुकड़ी पर धावा किया और बन्दी हो गया। डाकू शिवाजी इस आपस के रक्त-तर्पण को न सह सके। बालकों की तरह कातर स्वर में कह उठे "माँ! माँ! यह अत्याचार, भाइ का भाइ के साथ········ यदि कोइ दुष्ट होता भवानी खड्ग! तो तुम म्यान में न होतीं—पर सामने विरोधी भाइ है······यह वेदना।"

+　　　　+　　　　+

व्यंको जी बन्दी करके शिवाजी के सम्मुख लाए गए। न देख सके वीर-उदार शिवाजी वंको जी की इस मलिन दशा को—अपने छोटे भाई के बन्धन अपने हाथों खोले लुटेरे शिवाजी ने। किसी ने समझाया "महाराज! यह भाई नहीं दुश्मन है—ऐसे भाइयों के साथ दिल्लीश्वर के जैसा दंड विधान काम में लाना चाहिए।" सुनकर शिवाजी को रोमाञ्च हो आया उन्होंने कहा "भाई! मैं मनुष्य हूँ अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकता। मनुष्यत्व की हत्या करना उन्हीं शाहन्शाह को शोभता है—धार्मिक-सम्राट दिल्लीश्वर को शोभता है-" ये पवित्र भ्रातृ-प्रेम में पगे शब्द वंको जी ने सुने और सिर झुका दिया—भाई शिवा जी के सामने या महाराजा शिवाजी के सामने?

शिवाजी के जल सरनावत इब्राहीम खां ने यह बात सुनी और अपने प्रबल उद्‌गारों को कह डाला—"सच है, वीर-उदार मनुष्य का धर्म केवल मनुष्यत्व होता है, ध्येय स्वतंत्रता होती है। शिवाजी तुम्हारे परोक्ष में कह रहा हूँ—तुम्हारी कार्य-प्रणाली से मैंने एक बात जानी—तुम व्यक्ति अथवा धर्म के द्वेषी नहीं—तुम्हारी कृपाण यदि किसी के विरुद्ध उठती है तो आततताइयों के या शाहन्शाह वादियों के—" तभी रोशनआरा ने अपने हृदय को समझाते हुए—मन की भावनाओं को

सान्त्वना देते हुए कहा था—"तरंगो, और कुछ नहीं तो उस नर-रत्न को स्मरण ही कर लिया करो"—मुझे निश्चय है तब विपक्षी खाफी खां इतिहास लेखक ने अनेकों पक्षपात पूर्ण घृणित अपवाद के साथ ही एक दो सच्ची बात लिखी थी—"उसका (शिवाजी का) यह एक नियम था कि उसके साथी लूटते हुए, मस्जिदों, ईश्वरीय पुस्तकों तथा किसी की स्त्री को हानि न पहुँचावें। जब कभी पवित्र कुरान की पुस्तक उसके हाथ लगती तो वह उसका आदर करता और अपने किसी मुसलमान अनुयायी को दे देता। वह असहाय हिन्दू अथवा मुसलमान अबला की उस समय तक रक्षा करता जब तक कि उसके सम्बन्धी आकर उसे न ले जाते"। तत्कालीन शासन कर्ताओं की कार्य-प्रणाली पर ध्यान देते हुए खाफी खां के ये शब्द आज गौरवमय और उज्ज्वल-ज्योति के प्रकाशक ज्ञात होते हैं। शिवाजी ! देव शिवाजी ! तुम्हारी पवित्र-स्मृति क्या है ? अकर्मण्य आतताइयों के लिए जलता हुआ किन्तु भव्य, भविष्य सन्देश, इच्छा-शक्ति का अपूर्व प्रतिरूप। तभी तो सुनने से दुर्बल हृदय थरा जाते हैं, कपटी काँप जाते हैं। किन्तु इस पवित्र-विश्व-मन्दिर में अब इनके लिए स्थान न रह जायगा—यह तुमने बता दिया है—इसी की पवित्र-स्मृति में—"अनन्त ! अनन्त ! तुम्हारा अतीत ऐसा काला, ऐसा उज्वल है; ऐसा भद्दा, ऐसा सुन्दर है ! तुम अनन्त हो—ऐसे मधुर चरित्र की एक और झांकी कराओ, आज न सही फिर कभी। अनन्त ! मुझे बड़ा आनन्द अनुभव हो रहा है—ऐसे पवित्र आदर्श की स्मृति में मैं आँसू बहाऊँ या फूल बरसाऊँ ? कुछ बताया नहीं······क्या कहा"—"वारो, इस पवित्र वीर-स्मृति में मनुष्यता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व।"

शेर-शिवराज

[लेखक—श्रीमान पं० हरिशङ्कर जी शर्मा, कविरत्न]

कहाँ है, वीर शेर शिवराज ?
देख दीनता आर्य जाति की, होता दुःख महान।
संकट सह २ सिसक रही है, हा! हा!! ऋषि सन्तान॥
नष्ट हो गये सभी सुख-साज!
कहाँ है, वीर शेर शिवराज ?

❀ ❀ ❀ ❀

गो, ब्राह्मण अबलाओं पर हा! होते अत्याचार।
वीर कहाने वाले कायर, सोये पाँव पसार।
बचावे कौन आज हा लाज!
कहाँ है, वीर शेर शिवराज ?

❀ ❀ ❀ ❀

दूध, दही, पट अन्नादिक से, भरे रहे भण्डार।
पर अब टुकड़े और चीथड़े तक को हैं लाचार॥
बन गये औरों के मुहताज!
कहाँ है, वीर शेर शिवराज ?

❀ ❀ ❀ ❀

किसी समय जगती पर दमका, जिनका दिव्य दिनेश।
आज वीर बनने की क्षमता, रही न उनमें शेष॥
भला फिर कौन कहे सरताज!
कहाँ है, वीर शेर शिवराज ?

❀ ❀ ❀ ❀

मन्दिर, मूर्ति, मठों पर, फिर से होने लगे प्रहार।
चोटी और जनेऊ बचना, हुआ हाय! दुश्वार॥
पुकारे पीड़ित पड़ा समाज!
कहाँ है, वीर शेर शिवराज ?

शिवाजी की सफलता का रहस्य

[लेखक—श्रीयुत महेन्द्रप्रताप शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०]

जिस प्रकार मनुष्य-शरीर की रक्षा और उन्नति के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र रूपी मस्तिष्क, भुजा, उदर एवं पैरों के परस्पर साहाय्य की आवश्यकता होती है उसी प्रकार एक देश और जाति के जीवन के लिए इन चारों वर्णों का सहयोग लाज़िमी है। जहां इनमें परस्पर विरोध हुआ और एक ने भी अपने कर्त्तव्य से मुख मोड़ लिया, देश और जाति के पतन में देर नहीं लगती। यों तो जातीय जीवन की रक्षा के लिये चारों ही वर्णों के मनुष्यों की आवश्यकता रहती है। पर फिर भी किसी किसी परिस्थिति में भिन्न भिन्न एक खास वर्ण की आवश्यकता अधिक प्रतीत होने लगती है। जब देश में मस्तिष्क का अभाव हो जाता है, पुरुषों का विवेक इस्तीफा दे देता है और वे बुद्धि से काम न लेकर रूढ़ियों और अन्ध परम्परा के शिकार हो जाते हैं— आवश्यकता होती है कि एक ब्राह्मण आवे और उन्हें सच्चे मार्ग की ओर ले चले। जब देश में क्षात्रित्व का अभाव हो जाता है, वीर-पुरुषों की नाड़ियों में बहने वाला गर्म खून ठण्डा पड़ जाता है और उनके हृदय स्वाधीनता और वीरता के भावों के लिये मरु-भूमि बन जाते हैं तब देश की निगाहें एक क्षत्रिय के दर्शन के लिये तड़फड़ाने लगती हैं। यही बात अन्य दो वर्णों के बारे में भी है। ऐसे अवसरों पर जिन महापुरुषों का आगमन होता है उन्हीं को भक्त और श्रद्धालु लोग अवतार मान कर पुकारते हैं और कृष्ण भगवान ने उन्हीं को ईश्वर का अंश बताया है। हमारे देश और जाति में भी समय समय पर ऐसी आत्मायें प्रादुर्भूत होती रही हैं। हिन्दूपति शिवाजी महाराज भी ऐसे ही क्षत्रियों में से एक थे।

भारत के अर्वाचीन इतिहास में सिक्ख, राजपूत और मरहठाओं की वीरता एक से एक बढ़कर है। मालूम नहीं यदि ये तीन वीर जातियां

युद्ध-क्षेत्रों में अपने वीरत्व का परिचय देकर विदेशीय यवनों के दाँत खट्टे न कर देतीं तो आज हिन्दुओं की क्या दशा होती। हिन्दुओं की चोटी और गौओं की रक्षा के लिये ही गुरू गोविन्दसिंह, राणा प्रताप और शिवाजी महाराज का जन्म हुआ था। शिवाजी हिन्दुओं के सब से अन्तिम रक्षक थे। उनके बाद यद्यपि अनेक ब्राह्मण शक्तियां (धार्मिक एवं सामाजिक सुधारक व्यक्तियां) हुईं परन्तु कोई क्षत्रिय शक्ति देखने में नहीं आयी। शिवाजी की वीरता, हिन्दू धर्म के लिये जान और मान का समर्पण आदि गुणों ने हिन्दुओं के हृदयों में विशेष स्थान पा लिया है। आज मराठे ही नहीं अपितु हिन्दूमात्र उनके नाम को एक विशेष आदर भाव के साथ स्मरण करते हैं। आज शिवाजी का नाम सुनते ही हिन्दुओं के मस्तिष्क आदर के साथ झुक जाते हैं और उनकी नसों का खून तेजी से दौड़ने लगता है। दक्षिण में आज भी जब किसी व्याख्यान में उनका नाम आ जाता है तो जनता घोर करतल ध्वनि कर उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करती है। दक्षिण की महिलायें बच्चों की लोरियों में शिवाजी के पवित्र और वीर नाम को स्थान देकर उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करती हैं। इससे बढ़कर—उनकी मूर्त्ति के आगे ब्राह्मण और मराठा का भेद भाव एक दम लुप्त हो जाता है। अब तो जब तक इस हिन्दू जाति का नाम है शिवाजी की स्मृति नष्ट नहीं हो सकती। सचमुच ही ये बातें उस वीर और पवित्र आत्मा की प्रतिष्ठा अनुकूल हैं।

यदि शिवाजी के जन्म के समय की देश की स्थिति और उनके कुल की दशा को देखा जाय तो यह आसानी से समझ में नहीं आता कि एक साधारण कुल में जन्म लेकर शिवाजी महाराज एक वीर नेता तथा एक बड़े साम्राज्य के संस्थापक किस प्रकार हो गये। इसका साधारण समाधान यही किया जायगा कि वे अपने साथ ही अद्वितीय शक्तियां लेकर आये थे, अथवा 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत उनके बारे में चरितार्थ होती है परन्तु एक खोजपूर्ण मस्तिष्क इससे सन्तुष्ट न होकर अन्य कारणों के जानने की चाह करेगा। शिवाजी की

सफलता का रहस्य उनकी अद्वितीय संगठन शक्ति और हिन्दुओं का सब प्रकार के भेदभाव छोड़कर उनकी सहायता करना था। सब को एकत्रित कर और स्वयं नेता होकर लोगों से काम लेना शिवाजी में स्वाभाविक तौर पर था। वे अपढ़ होते हुये भी अच्छे से अच्छे शासकों में थे। उनको यह आता था कि मुर्दे दिलों से किस प्रकार काम लिया जा सकता है। इस प्रकार उनकी सफलता में यह एक वैयक्तिक कारण था परन्तु इसके साथ ही साथ जनता का सहयोग भी कम मूल्य नहीं रखता। बात यह है कि उस समय सारा भारत यवनों के अत्याचार की चक्की में पिस रहा था। हिन्दू आपस के भेदभाव को भूल कर इस प्रयत्न में थे कि किसी प्रकार दुश्मन से पीछा छूटे, अपने घर की बातें तो फिर हो लेंगी। अत्याचार तभी हुआ करते हैं जब बाहर से किसी प्रकार का खटका नहीं होता। जब तक बड़ों पर बाहर से मार नहीं पड़ती बड़े छोटों पर अत्याचार करते हैं परन्तु जैसे ही खटका होता है उनका रुख बदल जाता है। दूर जाने की आवश्यकता नहीं—आज कल भी जब हम पर मार के भय का भूत आता है, हम चमार और जुलाहे भाइयों से मिन्नतें करते हैं, उनको तरह २ के आश्वासन देते हैं। परन्तु जहां भय का अन्त होता है हमारी सारी सहानुभूति काफ़ूर हो जाती है और हम लगते हैं फिर वे ही अत्याचार करने। शिवाजी महाराज के समय क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय सभी भय के मारे कांप रहे थे, उस समय वे अपने बनावटी जात पात के झगड़ों को भूल गये और शिवाजी के झण्डे के नीचे कन्धे से कन्धा लगा कर खड़े हो गये, फिर क्या था। सफलता हाथ लगनी ही थी। शिवाजी ने बड़ी २ लड़ाइयां जीतीं। बड़े २ वीरों की तलवारें कुण्ठित करदीं और अन्त में एक साम्राज्य भी स्थापित कर दिया। यह सब कुछ हुआ पारस्परिक सहयोग और शिवाजी की योग्यता के कारण। परन्तु जब शांति का साम्राज्य हो गया और सब जगह अमन चैन की बांसुरी बजने लगी हवा का रुख बदल गया। बाहर के दुश्मन का डर नहीं फिर अपने में से ही दुश्मन बनाये गये और फूट की बेल बो दी गई। जात पांत के भूत

ने आ फिर दर्शन दे दिया—लगे बड़ों के छोटों पर अत्याचार होने। ब्राह्मण ब्राह्मण में द्वेष फैल गया। ब्राह्मण मराठाओं को फिर शूद्र करार देकर उनसे घृणा करने लगे। यह मतभेद और पारस्परिक झगड़ा समाज के कामों तक ही सीमित नहीं रहा अपितु राजनैतिक क्षेत्र में भी पैर अड़ाने लगा। फिर क्या था। फूट तो बड़े २ साम्राज्यों की नींव हिला देती है। शिवाजी के सारे किये कराये पर ९ वर्ष में पानी फिर गया।

यह स्वार्थ और कृतघ्नता का एक पक्का उदाहरण है। समाज के स्वार्थी ठेकेदारों ने अपने स्वार्थ के आगे देश और जाति का स्वार्थ न देखा। उनकी अदूरदर्शी आँखों को यह न दीख पड़ा कि यह सामाजिक भेद-भाव और अत्याचार सारे समाज के ही पतन का कारण होगा। परन्तु कर्म तो उनके अधीन था फल नहीं। जैसा बोया गया वैसा फल मिला इस प्रकार स्वार्थ सिद्धि और अपने ही उद्धारक शिवाजी के भावों और गद्दी के प्रति कृतघ्नता की गई। फिर इस प्रकार के लोगों को सुख कहाँ।

आज भी देश में यदि ठीक वही स्थिति नहीं जो शिवाजी के जन्म के समय थी तो उससे कुछ २ मिलती हुई अवश्य है। शिवाजी का जीवन आज भी हमें वही शिक्षा दे सकता है। यदि हमें उससे लाभ उठाना है और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशन करना है तो हमें दोनों बातें समझनी चाहिये एक तो एक नेता के नेतृत्व में कार्य करना और दूसरे सामाजिक, धार्मिक आदि सब प्रकार के भेद-भावों को छोड़कर एक दिल से काम करना। यही हिन्दू संगठन का ध्येय है और इसके बिना निस्तार नहीं।

बलिदान करो

[लेखक—श्रीयुत गोविन्दास जी गुप्त बी० ए०]

जो मानव हैं पाप-कर्म-रत, बलि होने के पात्र नहीं।
वे पदार्थ भी जो अपुण्य हैं, कहलाते क्या हव्य कहीं ?
शुचि चरित्र के जो नरवर हैं, हो सकते बलिदान वही।
बिना पुण्य बलिदान पाप है, त्याग-धर्म का सार यही ॥
अगर आत्म-बलिदान ध्येय है, तो अपना उत्थान करो।
उन्नत होते हुए सखे फिर, करो त्याग, बलिदान करो ॥

शिवाजी महाराज

[लेखक—श्रीयुत प्रो० रामस्वरूप जी द्विवेदी बी० कॉम०]

भारत के आधुनिक इतिहास में शिवाजी और महाराणा प्रताप ये दो व्यक्ति इतने प्रसिद्ध हैं कि इनका परिचय कराने की आवश्यकता नहीं। जब से भारत में विदेशी आक्रमण प्रारम्भ हुए तब से अब तक उस में ऐसे सहस्रों और लाखों स्वाभिमानी पुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने यथाशक्ति देश को पराधीनता पाश से निकालने का प्रयत्न किया परन्तु अपने कार्य में पर्याप्त सफलता इन्हीं दो व्यक्तियों को मिली। इस का कारण है। सफलता के लिये जैसे उत्कट देश-प्रेम, स्वार्थ-त्याग तथा शारीरिक और मानसिक बल की आवश्यकता है वैसे ही धीरता, गम्भीरता, दूरदर्शिता और लगन की जरूरत है। इन दोनों व्यक्तियों में यह गुण थे और इसीलिये वे सफल हुए। आज भारत के नेताओं में यह सभी गुण एक व्यक्ति में दृष्टि-गोचर नहीं होते—यही कारण है कि इस देश की राजनैतिक परिस्थिति नहीं सुधरती।

शिवाजी ऐसे समय में पैदा हुए थे जब विदेशी बादशाहों ने हिन्दुओं को हर तरह से दबा रक्खा था। सारे देश में मुग़ल राज्य की धाक थी—ऐसे शक्तिशाली राज्य के विरोध के लिये बड़े ही साहस की आवश्यकता थी। शिवाजी ने ऐसी परिस्थिति में शस्त्र उठाने की टानी इसीसे उनकी शूरता तथा प्रतिभा का परिचय मिलता है। आज नवयुवकों के हृदय में स्फूर्ति पैदा करने वाली यदि कोई चीज़ है तो शिवाजी और राणाप्रताप की जीवनी। सैकड़ों वर्षों से पराधीन रहने से अधिकतर भारतवासी विदेशी शासन को अब मामूली बात समझने लगे हैं। लाखों में एकाध व्यक्ति ही ऐसा मिलेगा जिस को पराधीन जीवन भाररूप या असह्य प्रतीत होता हो। इन में से कुछ तो यह समझ कर रह जाते हैं कि हमारी शक्तियां परिमित हैं, हम देशोद्धार में सफल नहीं हो सकते। वास्तव में यह बात बहुत अंशों में ठीक भी है।

परन्तु क्या ऐसी स्थिति में देश को स्वतन्त्र देखने की आशा बिलकुल ही भुला देनी चाहिये ? ऐसी शंकायें उत्पन्न होने के समय शिवाजी का जीवन आशा की ज्योति का काम देता है। कैसे उस वीर ने समयोचित साधनों का उपयोग किया—और किस प्रकार सफल हुआ ? उस समय 'गुरिला' युद्ध से शिवाजी ने काम लिया- किन्तु आज ऐसा समय है जब न समर काम में आ सकता है और न गुरिला युद्ध। इस समय यदि किसी चीज की आवश्यकता है तो प्रचार, संगठन और सत्याग्रह की। प्रेस हमारे हाथों में एक ऐसा अमोघ अस्त्र है कि हम सारे देश में हलचल पैदा कर सकते हैं। सर जान सीले के शब्दों में 'जिस दिन भारतवासी विदेशियों को अपने ऊपर राज्य करने में मदद देना लज्जाजनक समझने लगेंगे उसी दिन विदेशी राज्य का कायम रहना मुश्किल हो जायगा।' देश में यदि आवश्यकता है तो विचार विप्लव की। भारतवासी विदेशी शासन को भार समझने लगें तो स्वतन्त्र होते देर न लगे। महात्मा गांधी ने इस कार्य को उठाया—परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अभी समय नहीं आया। इसके लिये एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जिसमें शिवाजी के समान साहस और धैर्य हो—जो देश को एकता के सूत्र में बांध दे।

श्री कृष्ण से प्रार्थना

[लेखक—श्री० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री]

कंस के कराल काल ! कृष्ण ! याचना है एक,
दान-सिरमौर ! प्रभु ! ध्यान आप दीजिए।
माँगूँ न विचित्र कोष, सेना विकराल बड़ी,
इन्द्रियों के भोग भी भले ही दूर कीजिए॥
इन्द्र का भी चित्त जिसे देख लोट-पोट होय,
ऐसी राज-सम्पदा भी नाथ ! मत दीजिए।
प्यारी तलवार और चंचल तुरंग एक,
अलग न होवें कभी, जन्म कहीं दीजिए॥

कवि-कीर्तन

शिवाजी और भूषण

[लेखक—साहित्य-रत्न श्री पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, एम० ए०]

मानव-समाज में कवि का स्थान बहुत ऊंचा है। मनुष्य भावों का बण्डल है। कवि-गण उसके भावों को उभार कर उसे देवता या राक्षस जो चाहें बना सकते हैं। मनुष्यों पर उनके हृत्तन्त्री के तारों में झनकार दे सकने वाले कवियों का प्रभाव परम प्रबल होता है। मानव-जाति के इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएँ भरी पड़ी हैं जिनमें कवि की एक चमत्कारोक्ति ने बड़े बड़े मनुष्यों के मन के रुख को एक मिनट में बदल दिया है। अकबर को गौ हत्या रोकने के लिए प्रेरित करने की कथा, महाराणा प्रताप को अपने पवित्र प्रण पर दृढ़ रखने की बात, जयपुर के एक 'कमसिन' के प्रेम में पागल नरेश को होश में लाने की कहानी जिन्हें मालूम है, उन्हें इस सम्बन्ध में कुछ अधिक बताने की आवश्यकता नहीं है।

मनुष्य की हृत्तन्त्री बजाने में प्रवीण कवि कायर को वीर बना देते हैं, मुर्दों में जान फूंक देते हैं, अत्याचारी आततायी को दयानिधान कर देते हैं; संक्षेप में मानव मन को जिधर चाहते हैं उधर झुका देते हैं। ऊपर जिन आश्चर्यजनक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया जा चुका है उन्हें छोड़ भी दिया जाय तो भी साधारणतः कवियों की कृतियां मानव-जीवन को प्रति दिन प्रभावित करती रहती हैं। किसे नहीं मालूम है कि हिन्दी भाषा भाषियों के चरित्र निर्माण में कबीर और सूरदास के पदों का और गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण का विशेष और महत्त्व-पूर्ण भाग है? कौन नहीं जानता है कि अपढ़ कुपढ़ लोगों तक के जीवन

को कवियों की सूक्तियां कितना प्रभावान्वित करती हैं? क्या कोई इस बात से इनकार कर सकता है कि कवियों की रचनाएँ प्रतिदिन कोटिशः मनुष्यों को लोकोत्तर आनन्द देती रहती हैं।

भूषण हिन्दी के ऐसे ही लोकोत्तर आनन्द प्रदायक, मानव हृत्तन्त्री को बजाने में निपुण प्रकृत कवियों में से हैं। वे हिन्दी में वीर-रस के अद्वितीय कवि हैं—उन्होंने अपनी समस्त कृति को वीर-रस में रंगा है। भूषण का शिवाजी से विशेष सम्बन्ध है। किंवदन्ति तो यह है कि औरंगजेब को खरी खोटी सुना कर भूषण शिवाजी की शरण में गए और वहां उन्हें मनोवांच्छित राज्याश्रय मिला। कहा जाता है कि भूषण शिवाजी की राजधानी में सन्ध्या समय पहुँचे थे इसलिए वे एक देवालय में ठहर गए। संयोग से, कुछ रात बीते महाराजा शिवाजी भी अकेले उस देवालय में पूजनार्थ पहुँचे। भूषण ने उनसे शिवाजी के दरबार का हाल पूछा और कहा कि मैं उनसे भेंट करके उनके दरबार का राज-कवि बनना चाहता हूँ। कहते हैं कि शिवाजी महाराज ने उनसे कहा कि अच्छा आप हमें तो एकाध छन्द सुनाइए। इस पर भूषण ने कड़क कर यह कवित्त पढ़ा:—

"इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़वसु अम्ब्र पर रावन सदम्भ पर रघुकुलराज है।
पौन बारि-वाह पर शंभु रति नाह पर ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावाद्रुम दुन्ड पर, चीता मृग-झुंड पर भूषन वितुन्ड पर जैसे मृगराज है।
तेजतम अंस पर, कान्ह जिमि कंसपर त्यों मलिच्छ बंस पर सेर शिवराज है॥"

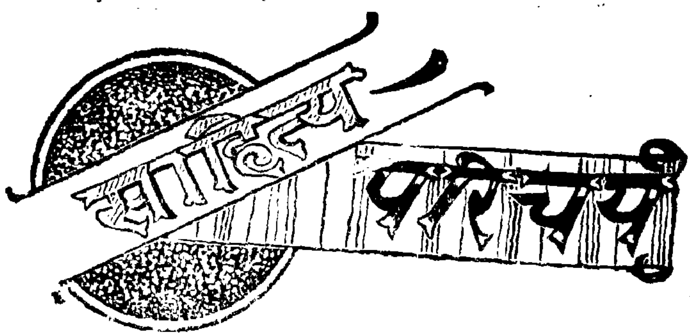
कहते हैं कि शिवाजी महाराज इस कवित्त को सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भूषण से अठारह बार उक्त कवित्त सुना और जब उन्नीसवीं बार उन्होंने कवित्त सुनाने की प्रार्थना की तब भूषण जी नट गये तब शिवाजी ने अपना परिचय दिया और कहा कि हमने प्रतिज्ञा की थी कि जितनी बार आप यह छन्द पढ़ते, उतने ही लक्ष मुद्रा, उतने हाथी और उतने ही गौ हम आपको देंगे सो अधिक मिलना आपके भाग्य में न था। इस बात पर लोगों में बहुत मत-भेद है। कोई कोई कहते हैं कि

अठारह बार नहीं बावन बार भूषण ने यह छन्द पढ़ा। कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने एक नहीं बावन भिन्न भिन्न छन्द पढ़े जो 'शिवा बावनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। किसी किसी का कहना है कि शिवाजी ने उस समय अपना परिचय नहीं दिया, केवल भूषण से दरबार में इतना ही कहा कि कल दरबार में अमुक समय पर शिवाजी से तुम्हारी भेंट हो सकती है। जब भूषण नियत समय पर दरबार में पहुँचे तब उन्होने देखा कि कल जिस आदमी को कवित्त सुनाया था, वही शिवाजी है।

कुछ लोगों का यह भी मत है कि यह कहानी सब की सब ग़लत है। भूषण शिवाजी के समय में हुए ही न थे, वे उनसे मिलते कहाँ से। कुछ भी हो, हमें इस किस्से बाजी से कोई मतलब नहीं। हमारे लिए तो इतना काफ़ी है कि शिवाजी की स्तुति करके भूषण अमर बन गए और भूषण अपनी कृति से हिन्दी-भाषा-भाषियों में शिवाजी की कीर्त्ति को अमर कर गए। हिन्दी-भाषा-भाषियों में भूषण की कृति से शिवाजी की कीर्ति अमर हुई और शिवाजी महाराज की कीर्त्ति कहने के कारण भूषण की कृति कृत-कृत्य हुई। शिवाजी और भूषण के इस सम्बन्ध से कोई इनकार नहीं कर सकता। भूषण के ये छन्द आज भी बहुत प्रचलित हैं:—

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन वारी ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करैं कन्दमूल भोग करैं, तीन बेर खातीं सो तौ तीन बेर खाती हैं॥
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग, बिजन डुलातीं तेब बिजन डुलातीं हैं।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥

बेद राखे बिदित पुरान राखे सार युत रामनाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में। मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में। राजन की हद राखी तेग बल सिवराज देव राखे देवल
स्वधर्म्म राख्यो घर में॥



हिन्दू-पाद-पादशाही——ले०—देशभक्त विनायक दामोदर सावरकर, अनुवादक—श्री पलटूसिंह मास्टर, मिलने का पता—कलकत्ता पुस्तक भण्डार, १७१ ए हरीसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ ३०० मू० १॥)

यह पुस्तक बड़े मौक़े पर प्रकाशित हुई है। शिवाजी की जयन्ती के इस शुभ अवसर पर ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। इस में मराठा उत्थान का पूरा विवरण देते हुए विद्वान लेखक ने हिन्दू साम्राज्य की स्थापना और उसके लिए किए हुए बलिदान का पूरा विवरण दिया है। शिवाजी, शंभाजी, बाजीराव, नाना तथा भाऊ, माधोराव आदि का पूरा वर्णन पूर्वार्द्ध में और आदर्श, सब से उत्तम साधन, मरहठों का युद्ध कौशल, हिन्दू आन्दोलन आदि का वर्णन उत्तरार्द्ध में दिया गया है। पुस्तक बहुत अच्छे ढंग से लिखी गई है और प्रत्येक भारतवासी के पढ़ने योग्य है। हम ऐसी सुन्दर पुस्तक का सादर स्वागत करते हैं।

श्री सीताराम चरितायन——लेखक, श्री सीतलसिंह गहरवार, प्रकाशक और सम्पादक जयप्रकाशसिंह मौकावलेनवीस कलक्टरी, मेखलोटगञ्ज, गया। आकार रायल अठपेजी। बालकांड में पृष्ठ १०१ मू० १), अयोध्याकांड में पृष्ठ ४१ मूल्य ॥), अरण्य, किष्किन्धा और सुन्दरकांड में पृष्ठ २० + २५ + ७० मूल्य १=)

इस नवीन रामायण में गोस्वामी तुलसीदास जी के समान ही दोहे और चौपाइयों में रामचरित्र का वर्णन किया गया है। गोस्वामी जी

की रामायण से मूल्य विशेष होने के अतिरिक्त और क्या विशेषता इस में है—यह समझ में नहीं आया।

विशेषांक —(१) चाँद का अछूतांक-सम्पादक श्री नंदकिशोर जी तिवारी, पृष्ठ १९२ चित्र ५२ और मू० २)—चाँद अपने विशेषांकों के लिए प्रसिद्ध हो रहा है। यह अंक अछूतों के संबंध में बड़े ही ठाठ से निकला है। चित्र, लेख, कविताएं, समाचार सब कुछ अछूतों के ही संबंध में हैं। ऐसे सुन्दर और सुसम्पादित अंक के लिए चाँद के व्यवस्थापक जी बधाई के पात्र हैं। (२) हिन्दूपंच का श्री रामाङ्क—सम्पादक-पं० ईश्वरीप्रसाद जी शर्मा, पृष्ठ १००, मूल्य ।।।) चाँद के समान हिन्दू पंच ने भी इस १ वर्ष के भीतर ही विशेषांकों की धूम मचा दी है। इस अंक में अनेक चित्रों के अतिरिक्त प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों के अनेक पठनीय और मननीय लेख तथा कविताएं भी हैं। पंच ने साप्ताहिक पत्रों में क्रांति पैदा कर दी है। (३) साधु-सर्वस्व का कुम्भाङ्क—सम्पादक-वैष्णव, देवदास (देव), पृष्ठ ९२, मूल्य १) इस अंक में ५१ लेख तथा कविताओं में साधुओं के उपयोग का बहुत कुछ मसाला है। साधुओं और महन्तों के चित्रों की भी भरमार है।

निम्न लिखित पुस्तकें भी मिल गई हैं, प्रेषकों को धन्यवाद !

१—क्या ईश्वर जगत्कर्ता है ?—महावीर ग्रन्थ कार्यालय, आगरा।

२—महावीर ब्रह्मचर्याश्रम, कारंजा-सप्तम अष्टम वार्षिक विवरण।

३—जैन-धर्म के विषय में अजैन विद्वानों की सम्मतियां—प्रकाशक मुं० केसरीमल मोतीलाल रांका, ब्यावर, मूल्य –)

४—जैन दर्शन और जैन धर्म—प्रका० उपरोक्त, मूल्य)।।

५—अन्य धर्मों से जैन धर्म में विशेषताएं—प्रका० उपरोक्त, मूल्य)।।

६—श्री कुम्भ-यात्रा की सफलता का सन्देश—ले०-टहलराम गिरधारीदास 'सामन्त'

७—अधर्म फैलाने वालों को बिना खर्च बैकुण्ठ जानेका रास्ता—ले० उपरोक्त।

विविध विषय

१—हिन्दू-धर्म रक्षक शिवाजी—

शिवाजी महाराज भी मनुष्य थे, उनके भी वही मन वही इन्द्रियां और वैसा ही शरीर था—जैसा और दूसरे करोड़ों मनुष्यों के होता है। वे देवता न थे, अवतार भी न थे—किन्तु थे दीन देश की दयनीय दशा से दुःखी दिलवाले देशभक्त हिन्दू। वह हिन्दू जिसने हिन्दू जाति की सम्मान रक्षा की, जिसने जाति को मरने से बचाया। वह हिन्दू जिसने मंदिर, मूर्ति और माताओं की रक्षा की, वह हिन्दू जिसने गौ, ब्राह्मण और चोटी की रक्षा में अपना जीवन अर्पण कर दिया। ऐसे हिन्दू वीर को हम देवता कहें तो ठीक, अवतार कहें तो ठीक और मनुज कुल भूषण कहें तो ठीक। जिस समय आततायी औरंगज़ेब ने हिन्दुओं का अपमान करने का बीड़ा उठा रक्खा था, प्रतिदिन मंदिर और मूर्तियां विध्वंस की जाती थीं, जब स्त्रियों की रक्षा दैवाधीन थी, जब जबर्दस्ती हिन्दू मुसल्मान बनाए जाते थे, गोवंश का नाश किया जाता था, धर्म-ग्रन्थ जलाये जाते थे, जब हिन्दू जाति की नौका तूफानी समुद्र में डगमगा रही थी, उस समय शूर श्रेष्ठ शिवाजी ने गौ ब्राह्मण और हिन्दू जाति की रक्षा के लिए तलवार उठाई थी। ऐसे वीर, ऐसे साहसी, ऐसे पराक्रमी वीर की वह तलवार आज पूजने योग्य है। उस वीर की स्मृति में हिन्दू मात्र का कर्त्तव्य है कि अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करे और अपनी मा, बहिन और बेटियों अपने धर्म-स्थानों और गौओं की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाय। इनकी ओर जो पामर आंखें उठावे उसकी आंख निकालने को तैयार हो जाय। जो भी इनका अप-

मान करे—हिन्दू धर्म का अपमान करे—उसे रसातल का रास्ता दिखा दे। जब यह बात हो जायगी जब हम अन्याय का बदला लेना सीख जावेंगे—तभी हम समझेंगे कि हम उस सूरवीर की सच्ची जयन्ती मना रहे हैं और सच्चे रूप में उसका अनुकरण कर रहे हैं।

२—पुरुष श्रेष्ठ शिवाजी—

भले ही कोई शिवाजी महाराज को पहाड़ी चूहा कहे और भले ही उन्हें कोई लुटेरा कहे पर वे क्या थे यह धीरे धीरे प्रकट होता जा रहा है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ हैवेल लिखते हैं—"अपने प्रतिद्वन्दी मुग़ल सम्राट औरंगजेब से ऐतिहासिक व्यक्तित्व में प्रत्येक दृष्टि से मराठा शिवाजी बढ़े चढ़े थे।" यवनों के कट्टर दुश्मन होने पर भी शिवाजी ने कभी कोई काम कायरता पूर्ण नहीं किया। प्रसिद्ध मुसल्मान इतिहास लेखक खाफी खां तक ने इसे मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि इस पुरुष ने इस्लाम धर्म का अपमान नहीं किया, स्त्रियों और बच्चों को कभी नहीं सताया, कुरान का आदर किया, मस्जिदों को कभी नहीं बिगाड़ा और कोई भी काम धर्मान्धता का नहीं किया। इतना होते हुए भी उसने अपनी स्वाभाविक शक्तियों के द्वारा देश में मराठा शासन की नींव डाली और हिन्दू धर्म का जय जय कार किया। धन्य शिवाजी !!

३—वीर केशरी शिवाजी—

शिवाजी की वीरता का क्या कहना ? यूरोप में नेपोलियन की वीरता शिवाजी की कुछ कुछ समता कर सकती है। जिन परिस्थितियों में पैदा होकर और रह कर शिवाजी ने अपना पराक्रम दिखाया वह उनका ही काम था। ऐसा वीर, और उसे पहाड़ी चूहा कहा जाय ! हाय ! हाय !! कुटिलता की भी हद हो गई !!! औरंगजेब ने स्वयं लिखा है— "शिवाजी बड़ा वीर था" "उसके विरुद्ध मेरी फौजें १९ वर्ष तक लड़ती रहीं फिर भी उसका शासन बढ़ता ही गया"। शायस्ताखां जैसे वीर को मार भगाना, अफजलखां जैसे अपने से दूने जवान को मार डालना, मुग़ल

सम्राट् औरंगजेब को नाकों चने चबवाना, बीजापुर को वश में लाना, पोर्चूगीज़ों को दबाना, फ्रांसिसियों से रुपये वसूल करना और वीरता की दम भरने वाले अंग्रेज़ों से नज़राने लेना, पहाड़ी चूहों का काम नहीं होता यह काम होता है वीरों का ! ऐसे वैसे वीरों का नहीं, उन वीरों का जिन्हें संसार के इतिहास में बहुत ऊंचा स्थान मिलता है, जिनका नाम गर्व से लेकर जिह्वा पवित्र होती है, मन सौ हाथ ऊंचा उछलता है और जिनके अनुकरण से देश में क्रांति पैदा होती है । ऐसे वीर की त्रिशत वर्षीय जयंती पर वीर-सन्देश भी वीर पूजा के पवित्र धर्म को पालता हुआ अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता है । और आशा करता है कि शिवाजी की यह जयन्ती देश में नवीन जागृति पैदा करेगी और उसके फल स्वरूप हिन्दू जाति अपनी हज़ारों वर्ष की गुलामी की जंजीरें तोड़ने के प्रयत्न में अग्रसर होगी ।

४—राष्ट्र निर्माता शिवाजी—

शिवाजी महाराज की अद्भुत निर्माण शक्ति की प्रशंसा सभी निष्पक्ष विद्वानों ने की है । शिवाजी के स्मारक का उद्घाटन करते हुए स्वयं प्रिंस-आफ वेल्स ने कहा था कि "श्री शिवाजी अपने समय के अद्वितीय राष्ट्र निर्माता थे" । प्रो० यदुनाथ सरकार की सम्मति में—'शिवाजी राज्यासन पर बैठने के छः वर्ष पश्चात् ही स्वर्गवासी हो गए । यदि वे कुछ दिन और रहते तो निस्सन्देह बहुत कुछ कर जाते । तथापि अपने देश महाराष्ट्र में उन्होंने शान्ति स्थापित कर दी थी । जिस कार्य के योग्य जो व्यक्ति हो वही कार्य उसे सौंपना चाहिए, यह बात वे जानते थे और इसका उन्होंने पालन किया । साथ ही योग्यता के अनुसार ही उन्होंने लोगों को पुरस्कृत भी किया । धर्म पालन की भी पूर्ण स्वतन्त्रता थी । सुराज्य—अच्छे शासन—के लिए और क्या चाहिए ?' शासन सम्बन्धी नियमों और प्रणाली के विषय में इतना ही कह देना है कि आज भी उसी प्रणाली का अनुकरण करके अँग्रेज लोग इतने बड़े राज्य का शासन कर रहे हैं । हम गुलाम हैं हमारी अपनी कोई शक्ति अभी संगठित नहीं है पर जब ऐसा होगा तब देश के कौने कौने में शिवाजी की कीर्त्ति स्तम्भ खड़े होंगे और जगह जगह उनकी मूर्ति प्रतिष्ठित की जायगी ।



मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

महाराणा प्रताप अङ्क

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग १ — ज्येष्ठ शुक्ला २ संवत् १९८४ सा० १ जून १९२७ — अङ्क ८

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   एक अङ्क का ।)

विषय सूची

चित्र सूची

नम्र निवेदन

लीजिए, 'वीर-सन्देश' का महाराणा प्रताप अङ्क भी आप के सामने है। हमारा पिछला अङ्क 'शिवाजी अङ्क' था। यह दोनों अङ्क इतनी शीघ्रता में तैयार किए गए कि जैसे हम उन्हें निकालना चाहते थे वैसे न निकाल सके। तथापि जो कुछ भी हो सका, किया गया। सहयोगी सम्पादकों और मान्य विद्वानों से सादर निवेदन है कि कृपा कर इन दोनों अङ्कों के संबंध में अपने विचार प्रकट करने का कष्ट उठावें।

—व्यवस्थापक।

वीर-सन्देश



हिन्दु-कुल-केसरी
प्रणवीर महाराणा प्रतापसिंह

चित्तौर का उद्धार कर, विध्वंस कर यवन-ध्वजा,
शीशौदिया-कुल-केतु, फहरा कर न दूं डङ्का बजा।
तब तक न शय्या-शयन, नृप-प्रासाद-वास करूँ कभी,
यह प्रण किया मैंने दिशाओ! कान दे सुन लो सभी।।

महावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग १ } आगरा—ज्येष्ठ शुक्ला २ सं० १९८४—वीर सं० २४५३ { अङ्क ८

वीर-भावना

(गीति)

[लेखक—श्री० 'कर्ण' कवि जी]

जननी जन्म भूमि बलि जैहों !
क्षत्रिय कुल गौरव रण बंका, वीर प्रताप कहैहों।
जननी जन्म भूमि बलि जैहों !
बन शिवराज बली खल-दल सिर काल घटा घुमड़ैहों॥
जननी जन्म भूमि बलि जैहों !
शान्तिमयी स्वाधीन रागनी, यावज्जीवन गैहों !
जननी जन्म भूमि बलि जैहों !
'कर्ण' राखि निज टेक सर्वदा, धर्म्म-ध्वजा फहरैहों॥
जननी जन्म भूमि बलि जैहों !

कर्मक्षेत्र में

[लेखक—श्री० प्रोफेसर मुंशीराम जी शर्मा 'सोम', एम० ए०, कानपुर]

"Go ye comrades; for the commander-in-chief calls you. Join the forces and fight the battle of Freedom."

प्यारे सोम !

देखो दिशाओं को चीरती हुई यह ध्वनि कहां से आरही है ? भैया, उठो, शीघ्र उठो; वह देखो; वह संदिग्ध नाद निकट आजाने से स्पष्ट सुनाई पड़ रहा है। अभी तक वह दूर था; परन्तु अब तो पांच या छः खेत ही रहा होगा। ओह ! कैसी मीठी तान है। उठो, जल्दी उठो—देखो कोई गा रहा है:—

मधुप ! चल, तू उस वन की ओर—
जहाँ स्वतंत्र विहंगम के दल करते कल कल शोर ॥ १ ॥
अतिशय गहन, तमावृत निशिदिन, पथ पद-चिह्न-विहीन।
सघन निकुंजों की छाया में हो जाता मन लीन॥
दिखाई देता ओर न छोर ॥ २ ॥
अति विशाल तरुवर वृन्दों से आवृत, बन के बीच।
दिव्य-मातृ-मंदिर में नव तरु रहे भक्त जन सींच॥
पवन की आती मधुर हिलोर ॥ ३ ॥
सुखा सुखा कर शोणित अपना, गाते मीठे गीत।
मातृ-शक्ति-आराधन में ही होते दिवस व्यतीत॥
ध्येय-विधु के हित बने चकोर ॥ ४ ॥
मार्ग विषम है, बिछा हुआ है भीषण कण्टक-जाल।
किन्तु निडर हो बढ़ते जाना दे मृदु-मोहन ताल॥
करेगी माँ, निज करुणा-कोर ॥ ५ ॥

\+ \+ \+

माघी अमावस्या थी। पुण्य-तोया जान्हवी के तट पर उस दिन बड़ी भीड़ हो रही थी। कुछ लोग आते थे—कुछ जाते थे। कुछ "हर, हर, बं, बं," करते हुये त्रैलोक्य-तारक शिव जी के लिंग के ऊपर पुष्प-अर्घ्यादि चढ़ा रहे थे। एक ओर साधुओं का जमघट था। वे अपनी करताल और सितार पर नाना प्रकार के भजन गाते हुये प्रभु उपासना में लीन थे। दूसरी ओर ग्रामीण जन अपनी ढोलक और मंजीरों पर विविध प्रकार के गीत गा रहे थे। व्यापारी लोग भला ऐसे जमघट को क्यों छोड़ते ? वे भी अपनी दूकान सजाकर ग्राहकों को सौदा दे रहे थे। आज कुंभ का पर्व था—इसी हेतु भगवती भागीरथी का कलकल निनाद लोगों के भीषण और कर्कश नाद में लीन हो गया था। ऐसे ही समय-ऐसी ही अवस्था में—लोगों ने देखा, साधुओं का एक जत्था "मधुप ! चल, तू उस वन की ओर" वाला गीत गाता हुआ पांच छः खेत की दूरी पर चला आ रहा है। थोड़ी देर में जत्था लोगों की भीड़ को चीरता हुआ एक निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया। कुछ संत वहाँ पहिले से ही विद्यमान थे उन्होंने उठकर जत्थे का स्वागत किया। पश्चात सब अपने अपने स्थान पर बैठ गये।

\+ \+ \+

देवेन्द्र—भाई सोम ! कल तुम गंगा तट पर स्नान के लिये गये थे। तुम्हें याद है, वहीं एक सन्यासी ने विविध जनाकुल सभा में क्या व्याख्यान दिया था ?

सोम—हां भैया ! वह बड़े उच्च स्वर में बोल रहा था। कभी कभी बोलते बोलते उसका कंठ रुँध जाता था। तब जनता भी करुण-रस धार में प्लावित हो उठती थी। मैंने कई पुरुषों को अपनी आँख पोंछते देखा था।

देवेन्द्र—हाँ उस सन्यासी के व्याख्यान से सब के हृदय द्रवीभूत हो रहे थे। साधु ने बड़े मार्मिक शब्दों में वर्तमान देश दशा का चित्रण किया था। क्या तुम्हें उसके व्याख्यान की बातें स्मरण है ?

सोम—स्मरण क्या, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह

सन्यासी अब भी मेरे सामने व्याख्यान दे रहा है। मेरे कर्ण कुहरों में उसकी आवाज ज्यों की त्यों, अभी तक गूंज रही है।

देवेन्द्र—तुम जानते हो उस सन्यासी का क्या नाम है ?

सोम—हाँ, लोगों से कहते सुना था कि उसका नाम स्वामी देश तीर्थ है।

देवेन्द्र—अच्छा, तो, उसके व्याख्यान की कुछ बातें सुनाओ।

सोम—ओह! कैसे सुनाऊं ? उसके व्याख्यान से मेरा हृदय-देश उसी प्रकार नीरव और निस्तब्ध बन गया है जैसे किसी कवि के रसीले राग से मनुष्य मंत्र मुग्ध हो, कुछ क्षण के लिये निश्चेष्ट हो जाता है।

देवेन्द्र—अच्छा, उसका सार ही बता दो।

सोम—भैया! उन साधुओं के जमघट में वह कह रहा था-नहीं, नहीं, वह कह रहा है-"मेरा देश! मेरा स्वर्गीय देश!! मेरी प्यारी जन्म भूमि!!! जिसके घर द्वार पर कभी हाथी चिंघाड़ते थे, आज शून्य स्थली में परिवर्तित है। जिसके दरबार में कभी याचक लोग हाथ पसार कर याचना किया करते थे, वही आज परमुखापेक्षी है। हाथ पसारने वाले आज उसके भाग्य-विधाता बने हुये हैं। सहस्रों धाराओं द्वारा उसका शोणित चूसा जा रहा है। अब उसकी जान उसके प्राण निकलने में देर ही क्या है? हा! जिस देश के अन्दर विपुल धन-धान्य पैदा होता था जो मातृ-भूमि अपने बच्चों का पालन पोषण कर संसार भर की मंडियों को अपने खाद्य द्रव्यों से पाट देती थी, वही शस्य-श्यामला, भारत माँ, आज अपने लाड़ले लालों को, अपनी आँखों के सामने एक एक दाने के लिए चार चार आँसू बहाते हुए देख रही है!!!"

देवेन्द्र—आह! देश की दशा का कैसा सच्चा वर्णन है!!

सोम—"उस सम्पन्न और वैभव-पूर्ण अवस्था वाले, अपनी वर्तमान पद-दलित दशा में स्वप्न में भी यह विचार नहीं कर सकते कि उनका अतीत काल इतना उज्ज्वल, इतना तेजोमय और इतना गौरव-शाली रहा है। वे आज दीन हैं, दारिद्र्य-दग्ध हैं और हैं निरे नर-कंकाल।

हा ! इनके भयंकर स्वरूप को देख कर यमराज भी एक बार भयभीत हो जावेगा"। फिर वह सिंह ध्वनि करता हुआ बोला—"मैं जानता हूँ, देश का एक दल आरी के लिए वृक्ष का बेंट बना हुआ है। वह देखता हुआ भी नहीं देखता, सुनता हुआ भी नहीं सुनता। किसी षड्यन्त्रकारी ने उसे ऐसा पंजे में फाँसा है-किसी बीन वाले ने इस हिरण को ऐसा मुग्ध कर लिया है—कि वह अपने आस्तित्व को—अपने हानि-लाभ को—समझने में इस समय सर्वथा असमर्थ है। परन्तु वह दिन दूर नहीं; जब वह वास्तविकता का अवश्य दर्शन करेगा।" फिर वह श्रोताओं को सम्बोधन करता हुआ कहने लगा-"श्रीमानो ! तुम्हारा देश दुखी है। तुम इन बुभुक्षित नर-कंकालों को देखो, इन बहुमूल्य वस्त्रों को अपने शरीर से उतार दो। भोग-विलासों के लिये यह समय नहीं है। देश के ऊपर आपत्ति है। तटस्थ और निश्चेष्ट हो कर मत बैठो !"

देवेन्द्र—हाँ, देखा था, उसी समय अनेकों धनी सज्जनों ने अपने आभूषण उतार कर सन्यासी के चरणों में फेंक दिये थे। अपने बहुमूल्य वस्त्र दीनों को दे दिये थे, सब कह रहे थे—"अवश्य, इस धन की क्या आवश्यकता है, यह क्षणिक है, चंचल है, अस्थिर है। वह काम करो जो स्थायी है अविनाशी है, और नित्य है।

सोम—सन्यासी ने कहा-"दुःखियों के दुखों को दूर करना धर्म है, पराधीनता के पाशों को छिन्न भिन्न करना प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है देश के ऊपर आई हुई आपत्ति को हटाना परम पुनीत कार्य है। इस कर्त्तव्य के आगे—इस धर्म के आगे वस्त्र और धन का कोई मूल्य नहीं, यही क्यों, धर्म रक्षा के लिए यदि प्राण भी जाते हों तो भी चिन्ता नहीं। धन इस जीवन में नहीं तो दूसरे में प्राप्त हो जायगा परन्तु धर्म वह धन है, कर्त्तव्य ऐसी लक्ष्मी है जिसके प्राप्त करने के लिये अपने सर को सर्वदा हथेली पर रक्खे रहने की आवश्यकता है। आज तुम्हारे सामने यही कर्त्तव्य है, यही धर्म है, बोलो इसका पालन करोगे ?"

देवेन्द्र—ओह ! जिस समय सन्यासी के मुख से ये शब्द निकले

समस्त श्रोता-जन एक स्वर में बोल उठे-अवश्य ! अवश्य !!"

सोम—फिर उस सन्यासी ने गरजती हुई आवाज़ में कहा—"मातृ-भूमि के सपूतों ने प्रारम्भ में ही चेष्टा की थी कि यह बंधन कट जावें। वे दूरदर्शी थे उन्होंने भावी दुःख को भली भांति समझ लिया था, इसी बन्धन के भंजन में इसी दुःख को दूर करने में—भारत की राजसी शक्ति ने संवत् १९१४ में अपने बल का अन्तिम प्रयोग किया था। वह प्रयोग असफल हुआ और बंधन, ढीले नहीं, अत्यन्त कड़े होते चले गये। क्षात्रशक्ति का ह्रास हो चुका है, परन्तु एक शक्ति अब भी तुम्हारे पास है। वह शक्ति एक अमोघ अस्त्र के रूप में है। वह ब्रह्मास्त्र है जिससे लक्ष्य का अचूक वेध होता है। तुम्हें, इस समय, इसी अस्त्र का प्रयोग करना होगा।"

देवेन्द्र—आह ! मेरे भुजदण्ड अब भी फड़क रहे हैं। कौन कहता है, क्षात्रशक्ति का ह्रास हो गया ? अरे ! फ्रांस की रण-भूमि में किस शक्ति का प्रदर्शन हुआ था ? मिश्र और पैलस्थान (Palestine) में कहाँ की क्षात्रशक्ति ने विजय श्री प्राप्त की थी ? (फिर चाहे वह विजय दूसरों के लिये ही क्यों न हो) और-और-अभी, थोड़े दिन पहिले, चीन को पारतंत्र्य की सुनहरी बेड़ियां पहनाने में किस शक्ति ने कार्य किया था ? भारत की क्षात्रशक्ति ! तू मरी नहीं, जीवित है—प्राणमयी है—परन्तु—हा, आज तेरा प्रयोग तेरी शक्ति के विवर्धन में नहीं—शत्रु शक्ति के विकाश में लगाया जाता है—तेरा अस्तित्व अब भी वैसा ही अक्षुण्ण है जैसा कभी पहिले था। परन्तु परन्तु नहीं—इन भुजदण्डों में अब भी वही बल है—अब भी वही शक्ति है। कौन कहता है—क्षात्रशक्ति का ह्रास ! ओह ! एकान्त असत्य ! सर्वथा मिथ्या !! झूठ !! महाझूठ !!!

सोम—भैया ! यह तुम क्या कह रहे हो ? सन्यासी के शब्द नहीं सुनते ?

देवेन्द्र—अरे आवेश में आ कर मैं क्या क्या कह गया। भाई क्षमा करो। हाँ, फिर स्वामीजी ने क्या कहा ?

सोम—वे बोले "भारत की धन श्री आज सात समुद्र पार विश्राम कर रही है। राज श्री ने जब से रुष्ट हो कर प्रस्थान किया—तब से आज तक उसका दर्शन नहीं हुआ। हमारे ही अमानुषिक आचारों और पैशाचिक पापों से प्यारी श्रम श्री भी शत्रुओं के वश में होती चली जाती है। इस अवस्था में हमारे लिये अब केवल एक ही मार्ग है—एक ही ब्रह्मास्त्र है—जिसको ग्रहण कर हम इस अवनत अवस्था में भी शत्रु-दल तो क्या संसारभर को हिला सकते हैं। उस ब्रह्मास्त्र में से अग्निशिखाओं की वह लपट निकलेगी जिसके स्पर्श मात्र से पराधीनता का कूड़ा-करकट भस्म हो जायगा। ज्वाला धधकेगी—एकबार अवश्य धधकेगी जिसमें मलों का नाश होगा, दोषों का ह्रास होगा—दासता का दमन और पापों की प्रलय होगी—संहार अपने वीभत्स भयावह मुख-व्यादान में अघ-ओघों को निगल जायगा। फिर स्वाधीनता का नील-नभ निर्मल हो-कर आविर्भूत होगा—एक नये रूप में स्वातंत्र्य की अरुण किरणें पृथ्वी तल पर पड़ेंगी। संसार भर में नवीन जीवन का संचार होगा—फिर नवीन भावना, नव उमंग और नव्य उत्साह से संसार की वादन-शक्ति व्यञ्जित होगी; और एक बार उच्च स्वर में, इस तान को विश्व भर में गुँजा देगी :—

पाया आज सुखद स्वराज !
निर्मल नभ में फूट रही है, ऊषा, सज नव साज ॥ १ ॥
अरुण किरण के बाल जलधि में डूबा तिमिर-जहाज।
पराधीनता के पाशों पर पड़ी भयंकर गाज ॥ २ ॥
जगती तल पर रही सुनहरी रमणीयता विराज।
पहिने हैं स्वतंत्रता देवी अति तेजोमय ताज ॥ ३ ॥
शान्ति सखी शृंगार सजाले, अब काहे की लाज ?
धर्म-दिवाकर उदित हो गया, हर्षित सकल समाज ॥ ४ ॥

प्रताप की तलवार या गंगा की धार

[लेखक—एक शास्त्री महोदय]

पानीदार तीव्र धार चमकति चम चम,
सन सन चलति मचत हाहाकार है।
बहै बारि धारा सम दुहूं दिसि काटति है,
छाँटति है पाप जग पुन्नि-बिसतार है॥
अगनित पापिन की मुकति करी है छिन-
माहिं तन परसत, लागी नाहीं बार है।
बार बार लेऊँ मैं बलैयाँ एहो परताप!
तेरी तरवारि की धौं सुरसरि-धार है॥ १॥

एक बहै पूरब की ओर ढारू भूमि पाइ,
दूजी पुनि दक्खिन तें उत्तर बहति है।
धारन करी है एक सिवजू ने आदर तें,
दूजी 'एकलिंग' सिव धारे उमहति है॥
एक देति सुभ गति हिन्दुनि को भक्ति कीन्हें,
दूजी तुरकन को मुकति बकसति है।
एक पर[1]-ताप को घटावै पै बढ़ावै दूजी,
गंगा औ प्रताप-तरवारि बिलसति है॥ २॥

मिली जमुना सों एक दूजी जमननि फौज,
बड़ी-बड़ी बाहिनीन[2] एक जाको बलु है।
दुरग पहार एक फोरे सब मारग के,
दुरग पहार सम तोरै दूजी कलु है॥
एक देति मोच्छ दूजी, अर्थ धर्म काम मोच्छ,
सब सुख साज देर लागति न पलु है।
एहो महाराना श्री प्रताप! तेरी तरवारि,
दूजी सुरसरि को जगत जग बलु है॥ ३॥

---

१ पर-ताप=दूसरे का सन्ताप और शत्रुओं का सन्ताप, २ नदी और फौज।

वीर-सन्देश



राजस्थान केसरी

वीरवर श्री विजयसिंह जी पथिक

राजपूताने में शिक्षा, स्वतंत्रता और निर्भयता का
मंत्र फूंकने वाले एवं उसके उद्धार के लिए
अगणित कष्ट उठाने वाले यह नरसिंह
चार वर्ष बाद हाल ही में कारा-
गार से मुक्त हुए हैं।

महावीर प्रेस, आगरा।

आदर्श-वीर महाराणा प्रताप

[लेखक—श्री० किशोरदास जी वाजपेयी, शास्त्री]

निशिचरनेत्रयोर्यस्य प्रतापो संव्यधाद् भृशम् ।
चाकाचिक्यं नमस्तस्मै प्रतापाय महौजसे ॥

पापी पर-तापी¹ कामी छली कालनेमि सम,
जौन बादशाह जान्यो जाको परताप² है ।
हिन्दूपति हिन्दूजाति-भानु जाके तेजबल,
निसिचर निकर सिरनि पर-ताप³ है ॥
पन-परिपाली साही वैभव बिरागी एक,
बात लागि जाने जग सहे भूरि ताप हैं ।
समर उछाह पूरयो रूस्यो रन-रंग बीर,
दमकत अजौं महाराना "परताप" है ॥

महाराणा प्रतापसिंह वीर थे, आदर्श वीर थे, मानव-समाज के भूषण थे और अपने धर्म पर मर मिटने वाले थे। उन में वे सब गुण समुदित रूप से विद्यमान थे, जिनके अस्तित्व से कोई भी महापुरुष देवता कहा जा सकता है। इनकी वीरता को आप चाहे जिस कसौटी पर कसिए, चाहे जैसी अग्नि परीक्षा कीजिए, वह कुन्दन ही निकलेगी। और ये सब परीक्षाएँ तो हो ही चुकी हैं। अब संसार में उनकी वीरता के कसने के लिये कोई कोरी कसौटी है ही नहीं। सब तरह से उनकी परीक्षा हो चुकी है अतः दुनिया में अब किसी को भी उनकी आदर्श-वीरता में कुछ भी सन्देह नहीं। उनके शत्रुओं ने भी उनकी वीरता मानली थी—स्वीकार करली थी। यह सब है। हमें उनकी आदर्श-वीरता के साफ दर्शन इतिहास-दर्पण में हो रहे हैं; पर फिर भी यहाँ पर हम यह बात अवश्य देखेंगे कि वे कौनसी बातें हैं, जिनसे संसार ने महाराणा प्रताप को और छत्रपति शिवाजी को आदर्श वीर माना।

१ दूसरों को दुख देने वाले, २ प्रताप, तेज, ३ बड़ा भारी ताप।

केवल किसी को मारने-काटने आदि से ही कोई वीर नहीं कहा जा सकता। तैमूर और महमूद आदि को कोई भी वीर नहीं कहता। ये लोग तो हिंसक जानवर थे, जो अपने पेट के लिये निरीह जीवों तक को निर्दयता से अपना शिकार बनाते हैं। इसके ही साथ उसे कायर भी नहीं कहा जाता, जो रण में मारा जाय अथवा जिसकी हार हो जाय। हाँ, यदि कोई प्रतिभट की प्रचण्ड मार से घबड़ा कर अपने प्राणों के लोभ से, रणभूमि छोड़कर भाग खड़ा होता है, तो वह अवश्य ही कायर है। वास्तव में यही सच्चा कायर है। पर, जो अपने शत्रु को प्रबल देखकर मन में सोचता है कि इस समय मेरी जीत सम्भावित नहीं; क्योंकि शत्रु-बल प्रबल है, अतः यह मौका बचा जाना चाहिए और फिर दूसरी बार भारी भिड़न्त के साथ मैं इसको पीसकर इसके खून से अपने हाथों को रञ्जित कर लूंगा। ऐसा सोचकर वह आगामी तैयारी के साथ युद्ध करने की इच्छा ही से उस विघ्न-मय मौके को बचा जाता है और फिर मौका पाकर अपनी कसर निकालने की चेष्टा करता है, तो वह केवल वीर ही नहीं, प्रत्युत वीर-शिरोमणि कहा जा सकता है। सारांश यह कि उत्साह जब तक हृदय में जागृत रहता है, वीर है और उत्साह-भंग होते ही कायर। साहित्य शास्त्र में जहाँ रसों का विचार किया गया है, वीर-रस का स्थायी-भाव 'उत्साह' बतलाया गया है। वीर का उत्साह मनोभाव स्थायी है। उत्साह है तो वीर है और उत्साह नहीं तो फिर वीर कहाँ? परन्तु इस उत्साह के विषय में भी कुछ जानना आवश्यक है।

स्मरण रखना चाहिये कि वह 'उत्साह' अधर्म मूलक न हो। इसी कारण हम उस पापी दुरात्मा नर-पिशाच को वीर नहीं कह सकते जिसने पृथ्वीराज से कई बार हार खाकर अन्त में उनके साथ वह धोखेबाजी की थी। धर्म की अथवा मनुष्यता की रक्षा के लिये जो आततायियों के दलन का कारण स्वरूप उत्साह होता है, वही वीरता का मूल है। इस लक्षण के अनुसार राम वीर हैं रावण नहीं, अर्जुन वीर है दुर्योधन नहीं, शिवाजी वीर हैं औरङ्गजेब नहीं और महाराणा प्रताप वीर हैं अकबर नहीं।

अकबर छिपा हुआ रुस्तम था। वह हिन्दुओं में मिलकर इन्हें मारता था—इनके धर्म और जाति-गौरव पर आक्रमण करता था, पूरा 'कालनेमि' था; लोहे की बेड़ी था, हथकड़ी था और कटार था; जिस पर सोने का झोल चढ़ा था। यही कारण है कि उसको समय समय पर, केवल क्षत्रियों ही ने नहीं, वीर क्षत्राणिओं ने भी नीचा दिखाया था। ऐसे छिपे हुए पापी के विरुद्ध तलवार उठाना किसी वीर-बाँके का ही काम था; क्योंकि उसने अपने कपटाचरण से अधिकाँश हिन्दू-जनता का भी चित्त अपनी ओर खींच लिया था, जैसे आज दूसरे लोगों ने अपने कौशल और चाँदी के जूते के बल से हम में से अधिकांश को अपने बूट-धारी पाद-पद्मों का चुम्बन करने वाला बना लिया है। यही एक बड़ी भारी कठिनाई थी। इससे दुतरफा युद्ध करना पड़ता था। बाहर के शत्रु की रखवाली करनी तो आसान है; पर घर के चोर को कौन पकड़े! महाराणा ने इस समय बड़े कौशल और बहादुरी से काम लिया। उनके समान वे ही थे। जब तक वे इस धर्म्म-युद्ध रूपी महायज्ञ को करते रहे, उन्हें अनुकूल परिस्थिति मिली ही नहीं। यदि परिस्थिति अनुकूल होती, तो न जाने क्या हो जाता। कहिए, ऐसी विकट दशा में एक प्रबल बादशाह से पच्चीस पच्चीस वर्ष तक मोर्चा लेना और उसे नाकों चने चबवा देना क्या कोई आसान बात है? कहने में तो देर नहीं लगती है, पर उस का जरा मन से अनुभव करने पर भीषणता की झलक सामने आ जाती है। उसे वेही जानते थे, जिन्होंने अनुभव किया था और दूसरों को इस के कहने सुनने ही भर में क्या पता चल सकता है? "बाँझ कि जाने प्रसव की पीरा।"

इस प्रकार जब हम छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रताप की तुलना करने बैठ जायँ, तो—कम से कम मुझे तो—बहुत फ़र्क मालूम पड़ता है। एक के समय में दुष्ट औरङ्गजेब के प्रत्यक्ष अत्याचारों से सब चिढ़े हुए थे और मनसे उसका अन्त देखना चाहते थे। दूसरे के समय में कपटी अकबर ने अपने जहरीले पर मीठे व्यवहार से सब को मुग्ध कर

लिया था। कई हिन्दू राजाओं को तो उसने यहाँ तक अपने माया जाल में फँसा लिया था कि, वे उसे अपनी बहनें और बेटियाँ तक दे चुके थे और ये सब महाराणा के पड़ोसी थे। दिल्ली से पूना कितनी दूर है; पर चित्तौड़ सिर पर ही है। एक बात और है छत्रपति को समर्थ स्वामी का उतना ही बड़ा सहारा था, जितना चन्द्रगुप्त को चाणक्य का और इन्द्र को बृहस्पति का। इधर महाराणा के पास ऐसा कोई सुयोग न था। समर्थ स्वामी के द्वारा महाराष्ट्र में संघटन का सारा काम हुआ था। समर्थ स्वामी के अतिरिक्त और अनेक साधु-सन्त उस समय उस संघटन में लगे थे। स्वयं समर्थ स्वामी ही के सहस्रों शिष्य इस काम को करते थे। इससे छत्रपति को बहुत बड़ी मदद मिली; जिससे इधर महाराणा बिलकुल वञ्चित थे। वीरों के उत्साह बढ़ाने के लिये कवि-वाणी की शक्ति जादू का काम करती है। वह लाखों कायरों के दिलों में जादू कासा मंत्र फूंक कर उन्हें भयंकर योद्धा बना देती है। सुनते हैं कि, उसी समय कवि-वर भूषण अपनी स्वाभाविक वीर-रस-प्रवाहिणी वाणी से महाराष्ट्र भर में उथल-पुथल मचा रहे थे। पर महाराणा के पास ऐसा कोई भी दिव्य कवि न था; जो जनता और सेना में राष्ट्रीय रंग में रंगे वीर भावों को बोता, सींचता, बढ़ाता और सफल बनाता। इन्हीं सब बातों से छत्रपति और शिवाजी का अन्तर समझ में आ जाता है। इन्हीं कारणों से महा-राणा की आदर्श प्रतिभा और वीरता का पता चलता है। हमने तो जहाँ तक वेद, पुराण और इतिहास पढ़े हैं, ऐसा वीर ऐसा आदर्श वीर नहीं पाया। इस आदर्श वीर पर केवल हिन्दू जाति को नहीं, किन्तु समस्त संसार को अभिमान करना चाहिये और वीर 'प्रताप' का यह आदर्श वाक्य सदा याद रखना चाहिए:—

"जिसको न निज गौरव तथा निज जाति का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है॥"

विकराल युद्धाग्नि

[लेखक—श्री० ब्रह्मचारी भद्रजित जी 'भद्र']

अत्याचार यवनों का देश में असह्य हुआ,
पीड़ित प्रजायें भयभीत हो रही हैं भाग।
राजपूती तेज में है ज्वाल उठती ही नहीं,
होके निस्तरंग सोया जन्म भूमि अनुराग ॥
पुण्य भूमि प्यारे चित्तौड़ के हृदय पर,
टेके घुटने हैं अकबर ने जलाई आग।
लुटता सुहाग राजपुत्रियों का देख के भी,
आज अभिमान क्यों न उठता हमारा जाग ॥१॥

आज कुलकान है कराहती, मुगल पति,
मूँछें ऐंठता है राजपूत-बेटी ब्याह कर।
निज अभिमान को दबाये राजपूत गण,
पग पग झुक पग चूमते सराह कर ॥
प्यारा अभिमान, प्यारी जन्म भूमि, प्यारी आन,
प्यारी ये स्वतन्त्रता खड़ी हैं आज राह पर।
गृह निर्वासिता निराश्रिता कहाँ ये जायँ,
कैसे ये जियेंगी इस भूमि पै निवाह कर ॥२॥

कोई भयभीत होके शरण गये हैं, और
होकर सहाय अपनों पै करते हैं वार।
कोई द्वेष वश एक दूसरे के नाश हित,
जाते हैं सहाय हित यवन पती के द्वार ॥
कोई दर्पवश बैठे अकड़ अकड़, और
लड़ते अकेले यवनों से हैं न पाते पार।
कोई हम जैसे एक आध संघशक्ति हित,
करते प्रयत्न, होते खिन्न ये दशा निहार ॥३॥

यदि कुछ दिन इस भाँति चुपचाप रहे,
और आर्य-जाति के रहे जो ऐसे ही ढब।
फूट, दम्भ, भीरुता ने पैर न उठाया यदि,
वीरता, कुलाभिमान डूबते रहे ज्यों अब ॥

जन्म भूमि पददलित यवन गणों से रही,
गौरव हमारा क्षीण क्षीण होता गया सब ।
उठने न पावेगी कभी अनन्त काल तक,
जायेगा अवश्य हिन्दू जाति का भविष्य दब ॥४॥

वही जन्म भूमि यह जिसमें बसा हुआ है,
पूर्व पुरुषों का पुण्य तेज कण कण में ।
जिसको प्रसन्न किया उन वीर पुरुषों ने,
शत्रु मुण्ड माल को चढ़ा के रण रण में ॥
सदियाँ रहेंगी अभिमानित सदैव जिसकी,
पुण्य-स्मृतियाँ ले अतीत क्षण क्षण में ।
आज पादाक्रान्त होके नीच यवनों से कैसे,
फूँकती न क्यों है ज्वाल माल शत्रु गण में ॥५॥

चिन्ता करो न मा! तुम्हारी इस धूल से ही,
विकट कराल ज्वाल ऐसी मैं उठाऊँगा ।
इस शान्त हुए वायु मण्डल में एक बार,
फिर से प्रचण्ड मैं तूफान ऐसा लाऊँगा ॥
सोती हुई भीरु आत्माओं को प्रयत्न कर,
तेरी पुण्य शक्ति से मैं सबल बनाऊँगा ।
ऐसी विकराल युद्धाग्नि दावानल तुल्य,
जाके अति शीघ्र हल्दी घाट में जलाऊँगा ॥६॥

जिसकी धधकती शिखाओं बीच पड़कर,
बचने न अधम यवन दल पायेंगे ।
जिस तूफान से तुम्हारे शत्रुओं के दिल,
विस्तृत दिगन्त, काँप जल थल जायेंगे ॥
जोकि अति साहस अतीव वीरता के साथ,
शत्रु दल में उथल पुथल मचायेंगे ।
जिस युद्धाग्नि में ही प्राणाहुति देंगे हम,
अथवा तुम्हारा दूध सफल बनायेंगे ॥७॥

हिन्दू-वीर महाराणा प्रतापसिंह

[लेखक—श्री० बाबा राघवदासजी]

कोई भी पदार्थ हो, उसका महत्व उसके मूल्य से मालूम पड़ता है। एक हीरा साधारणतः एक पत्थर के टुकड़े से अधिक योग्यता का नहीं पर उसके दाम जब पचास हजार या एक लाख आँके जाते हैं तब वह दूसरों की दृष्टि में साधारण पत्थर से अधिक महत्व का दिखाई देता है। इसी तरह 'हिन्दुत्व' की कीमत आज कुछ भी दिखाई न देती हो, पर जब हम राजपूताने की ओर दृष्टि उठाते हैं तब उसके वास्तविक मूल्य का पता चलता है। एक मात्र 'हिन्दुत्व' के लिए सैकड़ों वीरों ने वीर माताओं ने, वीर पत्नियों ने, वीर पुत्रों ने अपने जीवन को, धन को, वैभवको, सगे-साथियों को हँसते हँसते 'हिन्दुत्व' के नामपर मिटा दिया। कितना बड़ा यह 'हिन्दुत्व' का मूल्य ! कितनी बड़ी यह 'हिन्दुत्व' की महत्ता !! क्या कोई राष्ट्र अपने 'सत्व' के लिये इतना दाम अबतक दे चुका है ? सदियों से इसी 'हिन्दुत्व' ने अपना महत्व भिन्न भिन्न रूपों में मूल्य चुका कर संसार पर प्रकट किया है। सचमुच हिन्दुत्व कीमहिमा अगम है।

महाराणा प्रताप इस परम पवित्र 'हिन्दुत्व' का मूल्य, वास्तविक मूल्य चुकाने में लगे थे। एक पलड़े में हिन्दुत्व रक्खा गया और दूसरे पलड़े में महाराणा ने अपना राज्य-पाट बाल बच्चों का सुख, ऐश्वर्य और मान्यता सब कुछ रख दिया। फिर भी इस हिन्दुत्व का पलड़ा इतना भारी था कि वह नीचे था और राज्य पाट का ऊपर। हाँ एक समय वह नीचे होने जा रहा था और वह भी एक क्षण के लिए! रोटी का टुकड़ा—घास की रोटी का—बच्चे के मुँह से छीना गया था। बच्ची रो रही थी, इस रुदन का मूल्य हिन्दुत्व से भी अधिक होने जा रहा था, महाराणा के मन में आया था कि यह संसार के गुलाब के फूल का रोदन हिन्दुत्व से कम महत्व का नहीं है। पर दिल्ली से हिन्दुत्व का मूल्य बढ़ने का संदेश आता है और महाराणा को सावधान कर देता है। तत्काल हिन्दुत्व का पलड़ा भारी हो जाता है, और राज्य पाट, दया, वात्सल्य का हलका। जिस

'हिन्दुत्व' के चरणों पर दया, वात्सल्य, वीरता, पूज्य भाव आदि दैवी गुण लेटते हों उस हिन्दुत्व की बड़ाई कौन करे ?

महाराणा को इस प्रकार 'हिन्दुत्व' का मूल्य चुकाते हुए देख कर नीतिज्ञ अकबर भी सहम गया ! उसकी दृष्टि में भी हिन्दुत्व इस्लाम से भी मूल्यवान मालूम पड़ने लगा और उसने तिलक माला धारण करना स्वीकार कर लिया। एक दृष्टि से महाराणा ने अकबर की यह शुद्धि ही करदी। जो अकबर अपने वर्णशंकर फौज के द्वारा महाराणा को परास्त करने के निमित्त कोटि कोटि प्रयत्न कर रहा था, वही अकबर हिन्दुत्व के इस बड़े भारी मूल्य को देख कर विनम्र हो गया, उसको विश्वास हो गया कि 'हिन्दुत्व' का मूल्य रुपयों से, बेटियों से, नहीं चुकाया जाता। उसके लिए अपनी हड्डियाँ, अपना रक्त मांस और अपना सर्वस्व न्यौछावर करना पड़ता है। इस पर भी वह अमूल्य का अमूल्य ही रह जाता है।

महाराणा के इस महत्व पूर्ण कार्य को कौनसा मनुष्य भुला सकता है ! महाराणा ने शिवाजी महाराज के सदृश मुसलमान बादशाहों के धार्मिक महत्वाकांक्षा को चूर चूर कर दिया था ! मुसलमान बादशाह दूसरों को सता कर उनपर जोर जुल्म करके अपना धार्मिक महत्व देखना चाहते थे, पर महाराणा छत्रपतिजी ने उनकी आंखों में अञ्जन डाल कर उनको दिखा दिया कि मिथ्या धर्म्माभिमानियो धर्म सताने के लिए नहीं परन्तु रक्षा के लिये, स्वयं कष्ट सहने के लिये है।

महाराणा बन बन घूम कर अपना जीवन बिताते थे फिर भी उन्होंने दिल्ली सिंहासनाधीश्वर पर अपने त्याग के कारण विजय पा ली। अकबर यद्यपि बाहरी सुख उपभोग कर रहा था फिर भी वास्तविक जन-हृदय-साम्राज्य का स्वामित्व महाराणा भोग रहे थे। मुसलमान धर्म किसको महत्व देता है और हिन्दू धर्म किस को, इसके यह दो प्रत्यक्ष उदाहरण थे ज्वलन्त। व्याख्यान अथवा प्रवचन द्वारा अपने अपने धर्म का महत्व प्रमाणित करने की अपेक्षा आचरण द्वारा दिखाने का जो कार्य महाराणा ने किया, उसको हिन्दू जाति कभी भूल नहीं सकती।

वीर-सन्देश



नागपुर सशस्त्र सत्याग्रह के संचालक

श्री मन्चेरशा अवारी

राज विद्रोह में गिरफ्तार करके आप २५ मई को
जेल भेज दिए गए हैं और वहां निराहार
रह कर आप सत्याग्रह कर रहे हैं।

महावीर प्रेस, आगरा।

स्वतन्त्रता की तलवार

चीखते थे हाथी, हय हींसते थे बार बार,
बैरियों में, रहा सुन, हल्ला पड़ जाता था।
कट्ट कट्ट रुण्ड, मुण्ड-झुण्ड झड़ जाते थे,
झट्ट पट्ट वीरता का झण्डा गढ़ जाता था॥
हेकड़ों की हेकड़ी दबा के दुम भागती थी,
सैनिकों का सारा मद-मान झड़ जाता था।
लेकर स्वतन्त्रता की तेज तलवार जब
प्रणवीर प्रवल प्रताप अड़ जाता था॥ १॥

राणा रणवीर जो का मुगल महीपति से
घोर घमसान जब युद्ध ठन जाता था।
धम्म धम्म धौंसे-ढोल बाजते थे गोले,
तोप छोड़ती थी, तीरों का वितान तन जाता था॥
खट्ट खट्ट खाँड़े खड़के थे, तड़के थे हिय,
शत्रुओं के शोणित से माँदा सन जाता था।
वैरी कुल घातक, सुराजपूत बालक,
प्रताप के प्रताप में 'प्रताप' बन जाता था॥ २॥

आगरे में आग

घरतें निकसिबे को चाहत न चित्त नेक,
घोर घाम तप्त घाम सम सरसत है।
रोसनी को तेज तेज तीर सौ लगत आय,
यम की बहिन सी दुपहरी दरसत है॥
नारी-नर, पंछी-पसु पेड़न की कौन कहे,
खलक ही ठंडक के ताईं तरसत है।
छत्तन पै, पत्तन पै, हट्टन पै, अट्टन पै,
आजकल आगरे में आग बरसत है॥

—हरिशंकर जी शर्मा, (कविरत्न)

भारतीय नाहर

[लेखक—श्रीयुत पं० बुद्धिनाथ जी शास्त्री]

—१—

रात्रि के ग्यारह बजे हैं। दिल्ली में जोधपुर भवन के भीतर मारवाड़पति महाराज यशवन्तसिंह चिन्ता में निमग्न बैठे हैं:—"आज का हत्याकांड भी कैसा आश्चर्य्य जनक है! यदि शत्रु मेरा प्राण लेना चाहते थे तो विचारी अवलाओं से क्या लेना था! क्या यह बादशाही कुदृष्टि का ही परिणाम है? आश्चर्य्य नहीं कि इसमें औरंगजेब का हाथ हो। मैं उसकी आंखों में खटक रहा हूं। तब क्या होगा—क्या हम शाही चालों से अपनी आत्म रक्षा करते हुये उसे परास्त कर सकेंगे? ओफ, अभी तक लाशें यहाँ नहीं लाई गई। कम से कम इतना तो पता चलता कि मुझ पर धावा करने वाले कौन हैं?"

राजा इसी विचार में मग्न था कि सेनापति मुकुन्दसिंह वाटिका से लाशें लेकर आ पहुँचा और आदर से सिर झुका कर एक ओर खड़ा हो गया।

राजा ने उत्सुकता से कहा, सेनापति तुम इनको पहिचानते हो? यदि तुम न आ गये होते तो मैं इन यमदूतों की तलवार का शिकार हो चुका था।

मुकुन्दसिंह ने क्रोधावेश में कहा—मैं इनको पहिचानता हूँ। महाराज, यह औरंगजेब के पीठ रक्षक सिपाही हैं। बादशाह हमको संसार से मिटाना चाहता है। उसका अत्याचार अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका है। उसके प्रभाव से क्षत्रिय वीरों की कार्य्य प्रणाली प्रायः लुप्त सी होगई है, प्रत्येक आत्मा पर मुग़लिया मुहर ठोकी जा रही है। अतिरिक्त इसके अनेक मत मतान्तरों की कलह से देश कंपित हो रहा है। क्या इसके उद्धार का कोई उपाय नहीं।

राजा ने कहा—अवश्य है। इस पर फिर विचार होगा, अब रात्रि अधिक हो गई है। तुम थके हुये हो, जाकर विश्राम करो। किन्तु इन मुर्दों के

गड़वाने का बंदोवस्त कर जाओ। मुकुन्दसिंह अभिवादन कर उठा और राजाज्ञा का पालन कर निज शयनागार में विश्राम हेतु प्रविष्ट हुआ।

औरंगजेब बड़ा ही कूट नीतिज्ञ था। दूसरों पर विश्वास करना वह सीखा ही न था। यह बात इतिहास प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्य की ओर से इसे कुछ भी मनमुटाव होता उसे इस दुनियाँ से उठा देने में लेशमात्र भी संकोच न करता। उपरोक्त घटना भी इसी का परिणाम थी पर उस सर्व शक्तिमान को यह कब स्वीकार था कि वृद्ध महाराज यशवन्तसिंह की हत्या इस क्रूरता से की जाय। अतः जब शत्रुओं की तलवार इनके मस्तक पर पड़ने को थी, अचानक सेनापति मुकुन्दसिंह ने आकर दो मुगलों को धराशायी किया। शेष घातकों ने भागकर जान बचाई और बादशाह के समीप जाकर कहा—"श्रीमान् हम लोग अपने कार्य्य में सफलता प्राप्त कर चुके थे किन्तु मुकुन्दसिंह ने आकर बाधा डालदी।"

यह सुनते ही बादशाह जल उठा और मुकुन्दसिंह को बुला भेजा। एक दूत ने मुकुन्दसिंह के शयनागार में प्रवेश किया किन्तु प्रहरी ने रोक कर कहा—"ठहरो कहां जाते हो क्या चाहते हो?"

दूतने कहा—"सेनापति को जगाओ बादशाह सलामत ने याद किया है।" मुकुन्दसिंह ने (जो अभी तक जाग रहे थे) कहा—"दूत, बादशाह से कहो कि मैं मारवाड़ से अभी चला आ रहा हूं। हमारे महाराज से अभी एक झगड़ा हो गया है इसलिये तन और मन दोनों क्लान्त हैं। बस प्रातःकाल तक की क्षमा चाहता हूँ।

दूतने सरोष कहा—"सेनापति तुम बहुत घमंडी हो गये हो, नहीं जानते कि मैं किस का दूत हूं। हुजूर ने तुम को अभी याद किया है, यदि इन्कार करोगे तो याद रक्खो कि कैदी के रूप में ले जाये जाओगे।"

सेनापति ने गरज कर कहा—"ऐं, दूत की यह मजाल मैं! जानता हूं······जाओ बादशाह से कहो मैं उनका मोल लिया हुआ दास नहीं हूँ। जो करना हो वह कल करै, यदि तुम नहीं जाओगे (तलवार दिखा कर) तो यह कृपाण तुम्हारा मस्तक धड़ से जुदा कर देगी।"

दूत डर कर भाग गया और सब वृत्तांत बादशाह को कह सुनाया।

—२—

प्रातःकाल के नौ बजे हैं। लाल किले में खासी चहल पहल है। संतरी इधर उधर घूमकर बड़ी सतर्कता से पहिरा दे रहे हैं। मुगल दरबारी की शान से यथा योग्य आसनों पर बैठे हुये हैं। महाराज यशवन्तसिंह भी अपने सेनापति मुकुन्दसिंह सहित विराजमान हैं इसी समय औरंगजेब ने दरबार में प्रवेश किया और समस्त दरबारी शिष्टाचार से खड़े हो गये—बादशाह सिंहासनारूढ़ हुए और सब को बैठने का हुक्म दिया गया।

कुछ देर निस्तब्धता रही—फिर बादशाह ने इसे तोड़ते हुये महाराज यशवन्तसिंह को संबोधन कर कहा—"राजन, क्या यह सच है कि रात आपके साथ……। राजा ने—"कहा हां बादशाह सब सच है।"

बादशाह ने फिर पूछा—"क्या अभी तक यह नहीं मालूम हुआ कि वे कौन थे?" राजा ने कहा—"बादशाह वह आपही के पीठ रक्षक सैनिक थे।" यह सुन बादशाह ने मस्तक नवा लिया।

इसी समय एक बनरखा एक भयंकर सिंह को कटहरे में कैद किये दरबार में उपस्थित हुआ और शाही सिंहासन को नत मस्तक हो सिंह से बोला—"बादशाह सलामत को सलाम करो।" सिंह ने झुक कर सलाम किया और अदब से कटहरे के एक कौने में खड़ा हो गया।

यह देख कर बादशाह ने हँस कर कहा—"यशवन्तसिंह आज मैं इतना बड़ा बादशाह हूँ कि जंगल के बादशाह तक भी मेरे कैदी हैं।

यशवन्तसिंह ने उत्तर दिया-"आपके यहाँ तो कैदी हैं किन्तु हमारे यहां तो यह (मुकन्दसिंह की पीठ पर हाथ रख कर) पैदा होते हैं।"

औरंगजेब—"तो फिर मेरे और आपके सिंह की कुश्ती होगी।"

यशवन्तसिंह ने उत्तर दिया—"श्रीमान, यदि मेरे सिंह की कुश्ती देखना चाहते हैं तो मैदान में किसी शत्रु के सम्मुख देखिये। कैदी से लड़ना क्षत्रियों का धर्म नहीं।"

औरंगजेब—"राजन् यह कल्पना मात्र है, आप स्वीकार कीजिये मैं इसे स्वतंत्र करदूंगा।"

यशवन्तसिंह ने कहा—"स्वीकार है। मैदान में बाड़ा बंधवाइये और हुक्म दीजिये कि सारे नगर निवासी भी इस दंगल को देखने आवें।"

औरंगजेब बोला—"ठीक है किन्तु एक शर्त है और वह यह कि बिना हथियार लड़ना होगा।"

यशवन्तसिंह ने कहा—"बादशाह यह तो वीर की जान लेने का प्रबंध है, वीरता के जाँचने का नहीं।"

मुकुन्दसिंह ने गर्ज कर कहा—"राजन् आप स्वामी हैं, अब नहीं सहा जाता। धृष्टता की क्षमा चाहता हूँ। यदि आप राजपूत हैं तो कुछ न कहिये और बादशाह की बात स्वीकार कीजिये। मौत से डरना पाप है। आपका सिंह तैयार है। क्या मजाल कि मुसलमानी सिंह क्षत्रिय सिंह का सामना कर सके।"

औरंगजेब सहम गया किन्तु उसने धीरे से कहा—"मुकुन्दसिंह तुम बड़े उद्दंड हो, रात भी तुमने मेरा बड़ा निरादर किया था।"

मुकुन्दसिंह ने कहा—"बादशाह, राजपूत डरना पाप समझता है। आपका दूत ही आपके निरादर का कारण है। यदि ऐसा मूर्ख आदमी मेरे पास न जाता तो आपको इतना दुःख न होता। याद रखिये जो राजपूत है वह वीर है, उसके लिये पीछे हटना अधर्म है।"

—३—

दो पहर के १० बज चुके हैं। नगर की समस्त जनता शाही आज्ञानुसार मैदान में आगई है। बाड़े के भीतरी भाग में सिंह का कटहरा रक्खा हुआ है। महाराज यशवन्तसिंह के पास सेनापति मुकुन्दसिंह खड़ा हुआ है। आश्चर्य्य कारक वेष सिर से पैर तक काला लबादा, खुली हुई डाढ़ी जो नाभी तक लटकी हुई है, आँखें रक्तवर्ण और भयावनी हैं। इस अजीब मूर्ती को देखने से वीरों को साहस और कायरों को भय प्रतीत होता है।

औरंगजेब ने क्रोधावेष से कहा—"मुकन्दसिंह बाड़े के भीतर जाकर अपनी बात का पालन करो।"

मुकुन्दसिंह ने कहा—"बहुत अच्छा, राजपूत भागने वाला नहीं है।"

सेनापति ने सिंह का कटहरा खोला और कहा—"ओ मियाँ के शेर आ यशवन्तसिंह के शेर कम्पावत सरदार का सामना कर।" इस पर सिंह ने गरज कर मुकुंदसिंह पर धावा किया। सेनापति ने सम्मुख आकर शेर की दाहिनी कलाई बाएँ हाथ से और बांई दाहिने हाथ से पकड़ ली और एक ऐसा झटका दिया कि शेर के दोनों पंजे टूट गये। फिर लात और मुक्कों की मार से प्राण हरण कर बाहर निकल आया और महाराज यशवन्तसिंह को प्रणाम किया। महाराज ने पुलकित हो वीर को छाती से लगा लिया। किन्तु औरंगजेब डर गया था। उसने बनावटी प्रसन्नता से सेनापति की वीरता की प्रशंसा की और नाहर खाँ की उपाधी से उसे भूषित किया। तब से सदैव के लिए मुकुन्दसिंह का नाम नाहरसिंह पड़ गया।

राणा का रण-रूप

[लेखक—श्रीयुत 'दिव्य' कवि जी]

बजने लगी निठुर रण-भेरी, होने लगा युद्ध घमसान।
हल्दी घाटी के प्राङ्गण में, सुभटों का शोणित-स्नान॥
गिरने लगे धड़ाधड़ कट कर, प्रति-पक्षी के अगणित वीर।
भगने लगे क्रूर, कुल-द्रोही, कायर लख नंगी शमशीर॥
छिन्न-भिन्न होगई शत्रु की—सैन्य, छागया गहरा शोक।
उथल-पुथल मच गई भयानक, राणा का रण-रूप विलोक॥
हुआ यवन-सम्राट सशंकित, घटने लगा मान का मान।
हँस हँस कर जब लगे चढ़ाने, वीर बली अपना बलिदान॥

प्रतापी प्रताप की भीष्म प्रतिज्ञा

[लेखक—श्री० 'प्रताप']

—:※:—

जिस समय वीर-भूमि राजपूताने के सारे मुग़ल-सम्राट अकबर के वे पैसे के गुलाम बने हुए थे, वे उसकी कूटनीति के वशीभूत हो आत्म-गौरव को भूल बैठे थे, मेवाड़ के शासन की बागडोर प्रताप के हाथ में आई। वे मेवाड़ के राणा हुए। राणा होने पर उन्होंने अपने को अकेला और निस्सहाय पाया। उस समय जयपुर और जोधपुर के नरेशों ने तो अकबर से विशेष सम्बन्ध ही जोड़ लिया था। बूंदी के हाड़ा भी जिनसे कुछ कुछ सहायता की आशा थी, मुग़लों के दास बन चुके थे। सारे राजपूत वीरत्व हीन हो चुके थे, यहाँ तक कि भाई शक्तसिंह और सागर जो भी प्रताप को नीचा दिखाने के लिए वैरीसे जा मिले थे। परन्तु प्रतापी प्रताप ने ऐसे विकट और निराशा-जनक समय में भी हिम्मत न हारी। वे अकेले ही इस महायज्ञ को पूरा करने के लिए तत्पर हो गए। परिस्थिति उनके देशोद्धारक भावों को न दबा सकी क्योंकि जब वे बालक थे तभी चारण भाटों द्वारा वीर भट्ट पूर्वजों की वीरतापूर्ण कथायें सुन सुन कर उनके हृदय में माता जन्म भूमि को स्वतन्त्र करने के भाव भरे जा चुके थे, वे सदा चित्तौड़ से विधर्मियों को मार भगाने और मेवाड़ का उद्धार करने की चिन्ता में रहते थे।······अतः उन्होंने प्रतिज्ञा की कि "यदि हम वीर शिरोमणि बाप्पारावल की सन्तान हैं, मेवाड़ की गोद में पले हैं तो जब तक जन्म भूमि का उद्धार न कर लेंगे, सोने चाँदी के पात्रों में न खायेंगे, कोमल शय्या पर शयन न करेंगे। नगाड़े सेना के आगे न बज कर पीछे बजेंगे।"

देश की खातिर प्रताप ने केवल इतना ही त्याग नहीं किया, उन्होंने विशाल और सुसज्जित राजमहलों को छोड़ भयंकर और निर्जन पर्वतों पर जाकर वास किया; सारा राज्य वैभव और सुख छोड़ा, बड़ी बड़ी मुसीबतें

झेलीं। राजमहिषी लक्ष्मीबाई भी अपने सुकुमार छोटे छोटे बच्चों को लेकर प्रतिज्ञा पूर्ति में राणा के साथ थी। धन्य हो, भारत की पतिव्रता वीर नारी! तुम्हा जैसी देवियों के कारण आज भी भारत का मस्तक सभ्य संसार में ऊंचा हो रहा है!

धन्य हो देशभक्त शिरोमणि प्रताप! तुमने मेवाड़ की खातिर सब कुछ अर्पण कर दिया। अपने असीम सुख और आनन्द को तुच्छ से तुच्छ वस्तु की भांति ठुकरा दिया। आसमान से बात करने वाले विशाल और सुन्दर महलों को छोड़कर भयानक और अंधेरी पहाड़ों की कन्दराओं में रहे। कोमल शय्या को छोड़ कठोर पत्थरों पर सोये। न खाने की चिन्ता की न पीने की। उस दिन जब कि सब भूखे थे, कई बार बना बनाया भोजन बैरी के अकस्मात् धावों के कारण छोड़ना पड़ा था। तुम्हारे बड़े छोटे २ सुकुमार बच्चे-मेवाड़ के भावी राणा–मारे भूख के बिलबिला रहे थे। खाद्य सामग्री न रहने पर राजमहिषी ने अन्त में मल नामक घास की रोटियां बना कर बच्चों को दी थीं परन्तु एक जंगली बिल्ली आई और सबसे छोटी बालिका से उस रोटी को छीन ले गई। हा! यह सब तुमने पिता का हृदय रखते हुए भी देश की खातिर देखा और सहा। धन्य हो प्रताप और धन्य हो तुम्हारी देशभक्ति! इतना दारुण दुःख तुमने क्यों सहा? तुम भी औरों की भांति राज्य भोग सकते थे, महलों और वाटिकाओं में रह कर मौज उड़ा सकते थे। पर नहीं, देव! तुम्हें गुलाम और कायर बन के नहीं रहना था। पूर्वजों की मान मर्यादा विधर्मियों के हाथ नहीं बेच देनी थी। तुम पवित्र मातृ-भूमि को पददलित होते और गौ माता पर निर्दयता पूर्वक कुठार चलते हुए नहीं देख सकते थे। तुम्हारा हृदय एक सच्चा हृदय था। तुम्हें मातृभूमि को स्वतन्त्र कर देना ही अभीष्ट था। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' यही तुम्हारा मूल मंत्र था।

पाठक! देशभक्त और भी बहुत हुए हैं, परन्तु इतना भीषण त्याग, इतनी अपूर्व बलि किसी ने नहीं की। पुरुषोत्तम रामचन्द्र की भाँति वर्षों

जंगलों के दुःख इन्होंने झेले। वीर अभिमन्यु की भांति प्राणों का मोह छोड़ अकेले यवन चक्रव्यूह में जयद्रथी मान को मारने के लिए ये घुसे। संसार में भीष्म प्रतिज्ञा विख्यात है परन्तु इस त्याग और प्रतिज्ञा को उससे भी बढ़कर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। भीष्म ने तो त्याग किया था अपने एक विशेष सम्बन्धी–पिता के लिए। वह भी उनकी काम-बासना तृप्ति के लिए। परन्तु प्रताप ने सब कुछ त्यागा था—गौ, चोटी, धर्म और देश के लिए—एक उच्च और आदर्श कार्य के लिए–जिसकी ओर विरलों का ध्यान जाता है। भीष्म ने तो केवल राज्य और स्त्री सुख छोड़ा था परन्तु इस वीर ने, राजा होते हुए भी राज्य नहीं भोगा बल्कि एक देशोद्धारक सन्यासी की भांति सारा सुख छोड़ दिया और जंगल २ पैदल भटकता फिरा। स्त्री होते हुए भी प्रतिज्ञाबद्ध होने पर युवक प्रताप पूर्ण ब्रह्मचारी रहा। भीष्म को भयानक और निर्जन वनों में दारुण दुःख और असीम कष्ट नहीं सहने पड़े थे, उन्हें अपने हृदय के टुकड़े छोटे २ बच्चों को भूखे रोते और सोते नहीं देखना पड़ा था। उन्हें जेठ मास की कड़ी धूप में तप्त पर्वतों पर कोसों भूखे प्यासे नहीं चलना पड़ा था। कई कई रातें जागते नहीं बितानी पड़ी थीं। भला प्रताप से उनकी क्या निस्बत।

इस प्रतिज्ञा को लेकर उसने वह कार्य किया जो स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। जिसको पढ़ और सुन कर आज भी ऊसर हृदयों में वीरत्व का पौदा उग आता है। अकेले ने मानी मान का मान मर्दन किया और मुगलों के दांत खट्टे कर दिये। सम्राट अकबर को भी अन्त में उनसे सन्धि करनी पड़ी थी। प्रताप केवल चित्तौड़ का उद्धार न कर पाये थे इसका उन्हें अत्यन्त दुःख रहा। मृत्यु शय्या पर पड़े २ प्रताप चित्तौड़ के लिए रोते थे। उस समय उनके प्राणों को बड़ी कड़ी वेदना हुई थी। जब तक उन्हें भविष्य में प्रतिज्ञा-पालन और चित्तौड़ोद्धार का विश्वास न दिला दिया गया तब तक उनके प्राण अटके रहे थे। अहा, स्वदेश-प्रेम का कैसा अपूर्व उदाहरण है। क्या संसार के इतिहास में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण मिल सकता है? नहीं।

प्रताप-पंचक

[लेखक—श्री० जयनारायण जी झा 'विनीत', विशारद, विद्यालंकार]

वीर शिरोमणि हे प्रताप रवि वंश विभाकर !
आर्य वंश अवतंश धराधर धर्म-ध्वजाधर !!
शौर्य शुभ्र इतिहास कोष में अमित मनोहर-
प्रभा पुंज वरवीर वंश का दिव्य धरोहर !!
नमस्कार स्वीकार कर, आत्म तेज संचार से-
मन मंदिर तम तुमुल हर, सजो उसे सुविचार से ॥ १ ॥
हे पूर्वज ! हे पूज्यपाद ! मानव तन धारी-
परमात्मा का परम अंश, नर-हरि व्रतधारी !!
हमें जान सन्तान बद्ध दौर्बल्य जाल से।
करो युक्त उस तेज सक्ति वारिधि विशाल से ॥
जिसके तुंग तरंग में बैरि वंश बोहित प्रवल।
ले सामान, समाज, सब, डूबा था हो चल विचल ॥ २ ॥
यवन वंश मद राहु आर्य गौरव विधु को जब।
निगल रहा था, वीर ! हुए हरिचक्र तुम्हीं तब ॥
भारत नभ छवि विपुल तुम्हीं ने सजग बचा ली।
आर्य वंश बदनार विन्द की, रखली लाली ॥
राष्ट्र पोत था डूबता, कर्णधार तब तुम हुए।
जाति लता थी जल रही, तभी सुधार्णव तुम हुए ॥ ३ ॥
हे स्वातन्त्र्य बिशाल भाल के तिलक समुत्तम !
रामकृष्ण सा साधु जलज रवि खल-दल-बल यम ॥
जलता था जब यवन वह्नि से भारत सुर-बन।
तब तुमने ही उसे बचाया शौर्य सलिल घन ॥
पुनः वही विष रस भरा कनक कुम्भ दुर्नीति से।
हा ! भारत है मिट रहा, हम न बोलते भीति से ॥ ४ ॥

महाराणा प्रताप

[लेखक—श्री० पं० व्रजनाथ जी गोस्वामी, एम० आर० ए० एस०]

आज से ३८८ वर्ष पहिले इसी ज्येष्ठ मास की शुक्ला ३ को हिन्दू सूर्य महाराणा प्रतापसिंह का जन्म क्षत्रिय जाति के सीसौदिया कुल में हुआ था। इनके पिता उदयसिंह जी के २५ पुत्र थे। उन्होंने मरते समय अपने कुल की प्रथा के प्रतिकूल अपने छोटे बेटे जगमल को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। मेवाड़ के सरदारों को यह बात बहुत ही बुरी लगी। उन्होंने शीघ्र ही उसे उतार कर महाराणा प्रतापसिंह को गद्दी पर बैठाया। जिस समय महाराणा प्रताप गद्दी पर बैठे उस समय आपस की फूट के कारड़ मेवाण की राजलक्ष्मी भाग्यवान अकबर के हाथ में पहुँच चुकी थी। महाराणा प्रताप के पिता महाराणा उदयसिंह जी मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ को छोड़कर पिपली राज्य के जंगलों में गोहिल जाति की सहायता से रहने लगे थे। वहां से वे अरावली की घाटी में आगये थे जहाँ बाप्पारावल भी रहते थे। महाराणा उदयसिंह ने अपने राजत्व काल में इस स्थान पर एक झील बनवाई थी जिसका नाम उदयसागर है, वहीं एक छोटा सा महल बनवाया। फिर तो उसके आस पास और भी इमारतें बनगईं और वह एक छोटा सा नगर हो गया और वही उदयपुर कहलाया जो अब तक मेवाड़राज्य की राजधानी है।

हमें आत्म सन्तान जान वह शक्ति दान दो।
जो स्वातन्त्र्य निमित्त मृत्यु में स्वाभिमान हो॥
अचल अचला सा बना लक्ष पर बढ़ता जावे।
संकट, बाधा, विघ्न, शैल को फूँक उड़ावे॥
मुक्त, ललित, सम्पूज्य कर, फिर स्वदेश को हम खिलें।
फिर जिसका क्षुद्रांश हैं, उस अनन्त में जा मिलें॥ ५॥

प्रतापसिंह राज्याधिकारी तो हुए परन्तु न तो उनके पास कुछ विशेष राजसी ठाट और न कोई दृढ़ किला रहा था। परन्तु प्रतापसिंह वीर पुरुष थे, उत्साह से हृदय भरा हुआ था। भीतर ही भीतर चित्तौर मुसलमानों से छीन कर अपने कुल का गौरव पुनः स्थापन करने की अग्नि सुलग रही थी। उनकी इस आग को इन शब्दों ने और भी प्रज्वलित कर दिया था :—

"सिसौदिया कुल साख, जान चहत बिन तुव उठे।
राखि सकै तो राख, यह अवसर पैहै न फिर॥"

यद्यपि सरदार लोग लड़ाई में हारते हारते हिम्मत हार चुके थे। परन्तु इनकी धीरता, वीरता और उच्चाभिलाषा देख कर फिर सब कमर कस कर खड़े हुए। प्रतापसिंह ने इसकी तनिक भी परवाह न की कि अकबर ऐसे बादशाह से लड़ने के लिये कोई सामान ठीक नहीं है; परन्तु उनका हृदय स्वाधीनता के सुस्वादु फल चखने की उमंगों से भरा हुआ था अतएव उन्होंने अकबर की सैना और सामान को तुच्छ जाना।

इधर महाराणा प्रताप अकबर से लड़ने की तैयारी कर रहे थे, उधर अकबर महाराणा की शक्ति को कम करने के लिए महाराणा के जाति-भाइयों, सम्बन्धियों और साथियों को छलबल से अपने में मिला रहा था। मारवाड़, बीकानेर और आमेर के नरेश (जो पहिले महाराणा के साथी थे) अकबर के पक्षपाती हो गये, यहाँ तक कि महाराणा का सगा छोटा भाई सगरजी भी बादशाह से जा मिला और इसके बदले में उसको उसके पूर्वजों की राजधानी चित्तौर का किला दे दिया गया और महाराणा की पदवी भी उसको मिली।

ज्यों ज्यों अकबर उनके साथियों को अपने में मिलाता जा रहा था त्यों त्यों प्रताप का उत्साह बढ़ता जाता था। अन्त में उन्होंने अपनी जननी के दूध की सौगन्द खाकर इस बात की प्रतिज्ञा की कि जैसे भी होगा अपनी मातृ-भूमि का उद्धार करेंगे। अकेले निःसहाय प्रतापसिंह ऐसे प्रतापी शत्रु के साथ २५ वर्ष तक बड़े पराक्रम से लड़ते रहे और अन्त में अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके ही छोड़ी।

हम महाराणा के साहस, वीरता और धीरता का कहां तक वर्णन करें। उन्होंने निज कुल की मर्याद को सुरक्षित रखने में अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की। जिस समय महाराज मानसिंह गुजरात विजय करके लौटते हुए उदयपुर के रास्ते जा रहे थे, महाराणा ने उनका बड़ा आतिथ्य सत्कार किया, परन्तु वे उनके साथ खाने में सम्मिलित नहीं हुए। महाराज मानसिंह को यह बात बहुत खटकी। महाराज मानसिंह ने बहुत कुछ आग्रह किया, पर मन्त्री ने यह कहकर कि श्री हुजूर के माथे में दर्द है बात को टालना चाहा। महाराज मानसिंह कोई ना समझ तो थे ही नहीं, समझ गये। दर्प के साथ मोछों पर हाथ फेरते हुए महाराजा मानसिंह ने कहा—"माथे में जिस कारण से दर्द है हम खूब समझते हैं। राणा जी ने हमारा अपमान किया है। अतएव हम उनके इस दर्द की दवा लेकर बहुत जल्द फिर आवेंगे और तब दिखावेंगे कि मानसिंह का अपमान करना कैसा होता है।" महाराणा, जो छिपे हुए राजा मानसिंह के इन दर्प-पूर्ण शब्दों को सुन रहे थे, सहन न कर सके और सामने आकर बोले—"सुनो महाराज मानसिंह—

"जिन कुल की मरजाद लोभ वस दूर बहाई।
जीवन भय निज खोइ दई आपनी बड़ाई॥
जिन जग सुख हित करी जाति की जगत हँसाई।
लखि जिनको मुख वीर सबै सिर रहे नवाई॥
तिनके संग खानो कहा मुख देखन हू पाप है।
जाइ शीस वरु धर्म हित यह सिसोदिया थाप है॥"

"अच्छा अब आप सुख से पधारिए और अपने हिमायती के साथ शीघ्र ही फिर हमारी अतिथि सेवा रणक्षेत्र में स्वीकार कीजिये, यही प्रार्थना है।"

महाराजा मान इन शब्दों को सुनकर कुचले हुए सांप की भांति फुन फुनाते चले गये और अकबर के सामने पहुँच कर सारा जहर उगला। अकबर और महाराणा के युद्ध का श्रीगणेश यहां ही से होता है। अकबर ने महाराणा को परास्त करने के लिये किसी भी कूट नीति को

उठा न रक्खा। पर वहाँ क्या था, वहाँ तो "जो हठ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार" इसका पूर्ण अनुगमन था। महाराणा के बच्चों को जंगली घास की जड़ों की रोटियां तक खानी पड़ी पर उन्होंने अपनी टेक को नहीं छोड़ा।

अकबर ने राणा को परास्त करने में सब ही प्रकार के छल कपटों से काम लिया। यहाँ तक कि महाराणा की ओर से एक झूठा सुलहनामा बनाकर अपने दरबारियों के सामने पेश किया। दरबारियों में महाराजा पृथ्वीराज भी थे ही, उनको इस पर विश्वास न आया। उन्होंने वह पत्र पढ़कर अकबर से कहा कि:—

"भूखे प्राण तजें भले, केहरि खर नहिं खाय।
चातक प्यासो ही रहै, बिना स्वाति न अघाय॥
बिना स्वाति न अघाय, हंस मोती ही खावै।
सती नारि पति बिना, तनिक नहिं चित्त डिगावै॥
त्यौं परताप न डिगैं, होय सब ही किन रूखे।
अरि सनमुख नहिं नवै, फिरै किन बन बन भूखे॥

पृथ्वीराज के ये शब्द यद्यपि सर्वथा विश्वास पूर्ण थे किन्तु अकबर ने विश्वास न किया। अन्ततोगत्वा इसका निश्चय करने के लिये पृथ्वीराज ने महाराणा को पत्र लिखा। महाराणा ने उत्तर में स्पष्ट लिख दिया कि मैंने कभी सन्धि की प्रार्थना नहीं की। मेरी यदि कोई प्रार्थना है तो यही है कि अकबर स्वयं युद्धस्थल में आवे। एक हाथ में उनके तलवार हो और एक में हमारे। यह सुनते ही अकबर की गर्दन नीची हो गई। अन्त में हार कर अकबर को अपनी फौज वहां से हटा लेनी पड़ी। महाराणा की विजय हुई। धन्य प्रताप! धन्य!!

याचना

[लेखक—श्री० जगन्नाथ जी मिश्र गौड़ "कमल" कविरत्न]

आशीर्वाद देवि! दो मुझको, पाऊँगा रण-प्राँगण में।
समर-विजयिनी असि की लीला; दिखलाऊँ इस जीवन में॥
रण-कौतुक अवलोक चकित हो, विश्व, शत्रु-दल घबड़ाये।
विचलित हो न चपल मन, ऐसी शक्ति हृदय में छा जाये॥
मेरी सफल याचना हो, माँ! आज्ञा दो पद-रज लेलूँ।
नत मस्तक हो खड्ग उठाऊँ, बाधाओं के संग खेलूँ॥

कवि-कीर्तन

कविवर दौलतराम जी

[लेखक—एक विशारद]

जैन साहित्य सेवियों में अनेक ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने हिन्दी में अच्छी से अच्छी रचना की है किन्तु हिन्दी साहित्य में उनका नाम तक कोई नहीं जानता। इसमें किसका अपराध है, इस बात की चर्चा करना यहां अभीष्ट नहीं है। हां साहित्य सेवियों से यह निवेदन जरूर कर देना है कि इस प्रकार प्राचीन कवियों के नाम तक का स्मरण न करना भारी कृतघ्नता है। हिन्दी सेवियों को इससे बचना चाहिये।

कविवर दौलतराम जी के जीवन के सम्बन्ध में विशेष वृत्तान्त कुछ भी ज्ञात नहीं। उन्होंने इस सम्बन्ध में स्वयं कहीं भी कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं समझी और दूसरों ने भी इस पर कुछ प्रकाश नहीं डाला। संभव है खोज करने पर कुछ पता चले। अभी तो केवल इतना पता चलता है कि आप सासनी (अलीगढ़) निवासी पल्लीवाल थे। जन्मादि के विषय में भी कुछ ठीक ठीक पता नहीं है। 'छहढाला' के अंत में आपने यह दोहा दिया है:—

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज सुकल बैसाख।
कर्यो तत्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख॥

इससे विदित होता है कि संवत् १८९१ की बैसाख शुक्ला ३ को *छहढाला ग्रन्थ पूर्ण हुआ।* छहढाला इतना प्रौढ़ और ऊंचे दर्जे का ग्रन्थ है कि जिस समय यह बना होगा उस समय इसके लेखक की आयु ४०-५०

वर्ष से कम न होगी। यदि यह ठीक हो तो दौलतराम जी का जन्म १८५० के लगभग हुआ होगा। इसी दोहे से यह भी विदित होता है कि पंडित जी ने इस ग्रन्थ की रचना पं० बुधजन रचित किसी ग्रन्थ के आधार पर की है। पं० बुधजन जी आपके समकालीन थे। आपके चार ग्रन्थ— तत्वार्थ बोध, बुधजन सतसई, पंचास्तिकाय और बुधजन विलास क्रमशः संवत् १८७१-८१-९१ और ९२ के लिखे हुए हैं। कृतज्ञता ज्ञापन अथवा शिष्टाचार वश दौलतराम जी ने भले ही पं० बुधजन का नाम लिया हो, पर उनका उपरोक्त ग्रन्थ वास्तव में एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। इस (छहढाला) के अतिरिक्त आपने अनेक (लगभग १२५) पदों की रचना भी की थी जो जैन-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बंबई के द्वारा पहले 'दौलत विलास' और फिर 'जैन-पद संग्रह' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। अब तक इसके चार पांच संस्करण छप चुके हैं। इसके प्रायः सभी पद भक्ति रस से भरे हुए हैं और जैन समाज में उनका यथेष्ट प्रचार है। उदाहरणार्थ हम यहां आपका एकाध पद देते हैं:—

हे जिन मेरी, ऐसी बुधि कीजे।
रागद्वेष दावानल तैं बचि, समता रस में भीजे।
परमें त्याग अपनपो निज में लाग न कबहूँ छीजे॥
कर्म कर्मफल माहिं न राचै, ज्ञान सुधारस पीजे।
मुझ कारज के तुम कारन वर, अरज दौल की लीजे॥

\+ + +

अपनी सुधि भूलि आप, आप दुख उपायो।
ज्यों शुक नभचाल विसरि नलिनी लटकायो॥ अपनी०॥
चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश बोधमय विशुद्ध।
तजि जड़-रस-फरस-रूप, पुद्गल अपनायो॥ अपनी०॥
इन्द्रिय सुख दुखमें नित्त पाग राग रूख में चित्त।
दायक भव विपति वृन्द, बंधको बढ़ायो॥ अपनी०॥

कविवर दौलतराम जी की दूसरी मुख्य पुस्तक उपरोक्त 'छहढाला' है। यह पुस्तक बहुत छोटी है। पर है बड़ी मार्मिक। इस पुस्तक के

पढ़ने से लेखक की असाधारण योग्यता का ज्ञान भलीभांति हो जाता है। ऐसा मालूम होता है कि जैन साहित्य को मथकर यह रस निकाला गया हो। वास्तव में ऐसी छोटी पुस्तक में इतना अधिक वर्णन करना साधारण बात नहीं है। लेखक ने गागर में सागर भर दिया है। 'छहढाला' नाम रखने का कारण यह है कि इसके छः भाग हैं और छहों की रचना भिन्न भिन्न छन्दों में की गई है। अतएव छह ढाल होने से 'छहढाला' ग्रन्थ का नाम रक्खा गया है। पहली ढाल में संसार का स्वरूप दिखाते हुए देव, मनुष्य, नर्क और तिर्यंच गतियों के दुःखों का वर्णन किया गया है। दूसरी ढाल में मिथ्यात्व का वर्णन है। तीसरी ढाल में सम्यग्दर्शन का वर्णन करते हुए सात तत्वोंका स्वरूप दिखाया है और सम्यक्त के पचीस दोष बताए हैं। सम्यक्त के प्रभाव का भी दिग्दर्शन कराया गया है। चौथी ढाल में ज्ञान के भेद और उनका सम्यग् वर्णन किया गया है। साथ ही गृहस्थ के चरित्र का भी स्वरूप बताया है। गृहस्थ के लिए आवश्यक बारह व्रतों का वर्णन है। पांचवीं ढाल में उन बारह भावनाओं का वर्णन है जिनके विचार करने से मनुष्य बहुत कुछ लाभ उठा सकता है। छठी ढाल में मुनियों के चरित्र का वर्णन किया गया है।

कितने संक्षेप में कितना सुन्दर वर्णन है इसके एक दो उदाहरण यहां देना उचित होगा। गृहस्थ के लिए पांच पापों का त्याग बताया गया है। इन पांच पापोंके आंशिक त्यागको पांच अणुव्रत कहते हैं, देखिए:—

त्रस हिंसा को त्याग, वृथा थावर न संघारै।
परवध कार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै॥
जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज बनिता बिन सकल नारिसा रहै विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै।

त्रस जीवों की सर्वथा और स्थावर जीवों की वृथा हिंसा न करना अहिंसा, दूसरे का दुःख देने वाले, कठोर और निंदनीय झूठ बचन न बोलना सत्य, जल और मिट्टी को छोड़ कर अन्य किसी की बिना दी हुई चीज न लेना अचौर्य, अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्री मात्र से विरक्त रहना

ब्रह्मचर्य, और यथाशक्ति कम परिग्रह रखना परिग्रह प्रमाण अणुव्रत है। यही पांच व्रत मुनियों के लिए भी बताए गए हैं पर उनका रूप इस प्रकार है:—

षट्काय जीव न हनन तैं सब विध दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारि तैं, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल तृण हूं बिना दियौ गहैं।
अठदश सहस बिधि शीलधर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं॥
अँतर चतुर्दश भेद बाहर, संग दशधा तैं टलैं।

उन्हीं पांचों पापों का पूर्णतः त्याग ही पांच महाव्रत है जिनका पालन करना मुनियों का धर्म है।

पुस्तक में अनेक ऐसी बातें हैं जिनका पर्य्यालोकन करना पाठकों को बहुत लाभप्रद होता, पर स्थानाभाव से हम यहीं लेखनी को विश्राम देते हैं और पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे एक बार इस पुस्तक को अवश्य देख जायँ।

प्रणवीर प्रताप

[लेखक—श्री० कविवर 'मिलिन्द' जी]

घास-फूस की रोटी का टुकड़ा भी पेट न पाय!
चिन्ता नहीं, भयानक वन में प्राण भले ही जाय!!
चाहे विचलित हो हिमगिरि, सागर होजाय अधीर!
पश्चिम में सूर्य्योदय हो, ज्वाला बरसाय समीर!!
भंग न होने दूंगा प्रण, मेरा बल है बलिदान!
नहीं स्यार के सम्मुख नत हो सकता सिंह महान!!
कह दो जाकर अकबर से मैं क्षत्राणी का जाया हूं!
तीक्ष्ण खड्ग औ' उन्नत मस्तक लेकर जगमें आया हूं!!
स्वतन्त्रता का भक्त नृशंसों को यदि शीश झुकाय!
मिले धूल में धर्म, शीघ्र ही, महाप्रलय मच जाय!!

विविध विषय

१—महाराणा प्रताप जयन्ती—

भारतीय इतिहास में महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी का क्या स्थान है, यह किसी से छिपा नहीं है। पिछले मास शिवाजी की त्रिशत वर्षीय जयन्ती जिस धूमधाम से देश के कोने कोने में मनाई गई थी, वह वास्तव में जाग्रति की परिचायक थी। इस मास में ज्येष्ठ शुक्ल ३ महाराणा प्रताप का जयन्ति दिवस है। अनेक स्थानों से इस बात की आवाज आ रही है कि उस दिन महाराणा प्रताप की स्मृति में जगह जगह उत्सव मनाया जावे। उदयपुर में इसके लिए एक प्रताप सभा की स्थापना भी हुई है। यह सब शुभ लक्षण हैं। वास्तव में जब तक हम अपने वीरों और महान पुरुषों की स्मृति स्थायी न रक्खेंगे तब तक देश का उद्धार होना कठिन है। वीरों की पूजा में ही स्वतंत्रता देवी की आराधना होती है।

इस सम्बन्ध में हमें एक बात लिखते हुए बड़ा खेद होता है। अ० भा० क्षत्रिय महासभा का उत्सव देहली में हाल में हुआ था। उसमें महाराणा प्रताप की जयन्ती मनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया किन्तु वह प्रस्ताव वहां पास न हो सका। पोच दलीलें देकर प्रस्ताव हटा दिया गया। क्षत्रिय महासभा और क्षत्रिय समाज की इस प्रवृत्ति का जितना भी विरोध किया जाय थोड़ा होगा। हमारी समझ में नहीं आता कि जिन लोगों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया था वे किस प्रकृति के थे। महाराणा प्रताप क्षत्रिय जाति, राजपूत वंश और राजपूताने के ही नहीं भारतवर्ष के भूषण थे। उनका त्याग, उनकी देशभक्ति, उनकी भीष्म प्रतिज्ञा, उनकी

कष्ट सहिष्णुता आदि गुण ऐसे हैं जिनकी पूजा मनुष्य मात्र को करनी चाहिए, किन्तु क्षत्रियों द्वारा ही उसका विरोध होना मूर्खता की हद है !

२--मल्हाराव बाजीराव जयन्ती—

उक्त दोनों महा पुरुषों की स्मृति रक्षार्थ इन्दौर आदि मराठा राज्यों में प्रति वर्ष इनकी जयन्तियां मनाई जाती हैं। इन्दौर में एक सभा इसी के लिए खुली हुई है। इस वर्ष भी चौदह और बारह मई को यह उत्सव अनेक स्थानों में मनाया गया था। हम चाहते हैं कि प्रत्येक भारतीय वीर की स्मृति के लिए ऐसा ही उद्योग किया जाय और देश में वीरोचित भावनाएँ पैदा करने के लिए सभी वीरों का आदर हो। हमें यह सुनकर प्रसन्नता हुई है कि उक्त सभा ने सौ रुपए वार्षिक उन लेखों पर पुरस्कार स्वरूप देने की घोषणा की है जो उक्त महा पुरुषों के जीवन पर प्रामाणिक और खोज पूर्ण नवीन प्रकाश डालेंगे।

३—राजस्थान केसरी बन्धन मुक्त—

वीरवर श्री विजयसिंहजी पथिक (राष्ट्रीय पथिक) जेल से मुक्त हो गए। इसके लिए हम आपको बधाई देते हैं। आपने राजस्थान सेवा संघ तथा 'तरुण राजस्थान' आदि के द्वारा जिस तत्परता से राजपूताने में शिक्षा, स्वतंत्रता और निर्भयता एवं राजनैतिक जाग्रति के भाव पैदा किए हैं, वह किसी से छिपे नहीं है। राजस्थान की भीलादि अशिक्षित जातियों में संगठन और शिक्षा का जो भाव आज उदित हुआ है उसके उत्पादक आप ही हैं। आपही के उद्योग से राजपूताने की अनेक रियासतों में आज बेगार की प्रथा बन्द हो गई है। जेल से निकलते ही आपने पुनः अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। परमात्मा आपको बल दे जिससे आप पिछड़े हुए प्रदेश राजस्थान को जाग्रत करने में सफलता प्राप्त कर सकें।

४- सुभाष बाबू की मुक्ति—

छोड़ दिया, अन्त में उस वीर को, अस्थि कंकाल दशा में पहुँचा कर छोड़ दिया। ढाई वर्ष पहले जिस वीर को अचानक जेल में भेजा

था, जिस के अपराध की जाँच आज तक न्यायालय में नहीं हुई, जिस को राजयक्ष्मा जैसे भयंकर रोगों ने घेर रक्खा है, उसी वीर को छोड़ दिया। और तब छोड़ा जब उसके जीवन के लाले पड़ गए। इसके लिए उस जड़ नौकरशाही की प्रशंसा की जाय या बुराई, यह समझ में नहीं आता। सुभाषचन्द्र बोस सुशिक्षित, उन्नतमना और वीर युवा हैं। राजनैतिक आन्दोलन में उन्होंने बहुत भाग लिया है। बंगाल आर्डिनेंस के अनुसार आप गिरफ्तार हुए थे। तब आप कलकत्ता कारपोरेशन के चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर थे। जेल में आपने बड़े २ कष्ट सहे। जब आप बहुत रुग्ण हो गए और आपकी मुक्ति के लिए घोर आन्दोलन हुआ तो सरकार ने आपको मुक्त करके विलायत भेजने का प्रस्ताव किया, पर देशभक्त सुभाष बाबू ने इस प्रस्ताव को पैरों से ठुकरा दिया। इस प्रकार निर्वासित होकर विदेश जाना स्वीकार न करके जिस त्याग, सहन शीलता और आत्म सम्मान का भाव आपने प्रकट किया है, वह देश के लिए गौरव की वस्तु है। भगवान् देश के आशा-स्थल सुभाष बाबू जेल से मुक्त हो गए हैं, अब उन्हें रोग से मुक्ति और मिल जाय, यही प्रार्थना है।

५--नागपुर का सशस्त्र सत्याग्रह—

बंगाल आर्डिनेंस के अनुसार गिरफ्तार किए हुए अनेक नौजवान बिना मुकद्दमा हुए ही जेलों में सड़ रहे हैं। मरण तुल्य हो जाने के कारण उनमें से श्री सुभाषचन्द्र बोस को अभी छोड़ दिया गया है पर अभी अनेक युवक कैद हैं। इस अन्याय का विरोध करने के लिए नागपुर में एक सत्याग्रह प्रारंभ हुआ है जिसमें कुछ लोग अस्त्र कानून के विरुद्ध अस्त्रादि ले कर बाजार में निकलते हैं और पुलिस उन्हें गिरफ्तार कर लेती है। इस प्रकार अनेक युवक गिरफ्तार हो चुके हैं। इस सत्याग्रह के संचालक श्री मन्चेरशा अवारी नागपुर कांग्रेस कमेटी के सभापति हैं। सरकार ने राज-विद्रोह का अभियोग लगा कर आपको भी गिरफ्तार कर लिया है। पचीस मई से आप नागपुर जेल में हैं और वहीं सत्याग्रह कर रहे हैं। जेल में आप भोजन नहीं करते, केवल जल पीते हैं। आपके इस साहस

और कष्ट-सहिष्णुता के लिए हम आपको हार्दिक बधाई देते हैं। आपके बाद इस सत्याग्रह का संचालन, सुनते हैं, श्री भगवानदीन जी कर रहे हैं। सिद्धान्ततः इस सत्याग्रह के विरुद्ध होते हुए भी हम चाहते हैं कि जब यह सत्याग्रह प्रारंभ हो गया है तो अब बन्द न हो। आशा है कि देश वासी जन धन से इसके लिए भरपूर सहायता देंगे।

६--कायरता की हद्द--

मई के प्रथम सप्ताह में उदयपुर राज्यान्तर्गत केशरिया (ऋषभदेव) के मंदिर में एक ऐसा कांड हुआ जिसे पढ़ कर शोक, घृणा और क्रोध के भाव एक साथ पैदा होते हैं। यह मंदिर दिगंबर जैनियों का है। यहां दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनियों में ध्वजारोपण के सम्बन्ध में बहुत दिन से झगड़ा हो रहा था। उस दिन श्वेताम्बरियों ने बिना महाराणा की आज्ञा प्राप्त किए राज्य के पुलिस अधिकारियों की सहायता से ध्वजारोपण कर दिया। इसका विरोध करने के लिए कुछ दिगम्बरी भाई मंदिर में इकट्ठे थे, पुलिस के नृशंस सिपाहियों ने इन दिगम्बरियों को अपनी लाठियों और बन्दूक की नौकों का शिकार बनाया और मंदिर ही में चार दिगम्बरियों का काम तमाम कर दिया। और भी अनेक लोग जख्मी हुए यह सब हुआ धर्म और ईमान के नाम पर! यहीं तक नहीं, अब वे ही श्वेताम्बरी लोग कहते हैं कि मंदिर में न तो कोई झगड़ा हुआ और न किसी को मारा गया। जो कुछ हुआ वह आपस के धक्कों से दम घुटने के कारण। वे इस कांड में न अपना अपराध स्वीकार करते हैं न पुलिस का। हम उनकी इस कृति को कायरता की हद्द कहते हैं। यद्यपि जब तक स्वतंत्र रूप से इस घटना की जांच न हो जाय तब तक उसपर कुछ भी लिखना उचित नहीं, तब भी यह स्पष्ट है कि श्वेताम्बरियों की उक्त बातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हम उदयपुर के महाराणा से यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि वे इस घटना की जांच एक निष्पक्ष कमेटी द्वारा कराएं और अपराधियों को उचित दंड दे कर अपनी न्यायशीलता का परिचय दें।

साहित्य परिचय

श्री ब्रह्माक्षर प्रकाश—लेखक व प्रकाशक—श्री राधेलाल त्रिवेदी, पता—पं० शिवप्रताप त्रिवेदी, ३८९ कर्नलगंज इलाहाबाद, पृष्ठ १००, मू० २॥)

हिन्दी शार्टहैंड पर बहुत कम पुस्तकें लिखी गई हैं, यही कारण है कि अभी तक इसका प्रचार हिन्दी में नहीं हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक इस अभाव को बहुत कुछ दूर करती है। इसके द्वारा अङ्गरेजी शार्टहैंड जानने वाला आसानी से हिन्दी में शार्टहैंड लिख पढ़ सकता है। नौसिखिया भी बहुत कुछ सीख सकता है। परिश्रम को देखते हुए मूल्य अधिक नहीं है। आशा है इसका प्रचार होगा।

अयोध्याकाण्ड—टीकाकार—पं० रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक—हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, पृष्ठ ३३८, मूल्य ।।।) सजिल्द के १)

गोस्वामी तुलसीदास कृत राम चरित मानस के अयोध्याकाण्ड की यह सटीक आवृति है। छपाई सफाई सुन्दर और पाठ शुद्ध है। त्रिपाठी जी ने सरल किन्तु सुन्दर भाषा में अर्थ किया है। इसी प्रकार आप और काण्डों के भी ऐसे ही संस्करण निकालना चाहते हैं। आपके इस उद्योग का हम सहर्ष स्वागत करते हैं।

निबन्धादर्श—लेखक—पं० गोकुलचन्द्र शर्म्मा बी०ए०, प्रकाशक—साहित्य सदन, अलीगढ़, पृष्ठ १६८, मूल्य ।।=)

शर्मा जी ने इस पुस्तक में निबंध-रचना संबंधी अनेक प्रारंभिक बातों का वर्णन करके विविध विषयों पर स्वरचित अनेक निबंध दिए हैं। इनसे विद्यार्थी यह जान सकेगा कि किस विषय के निबंध किस ढंग पर लिखे





VEER SANDESH Regd. No. A 1630

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

विषय-सूची

नवीन सम्मतियाँ

काव्यालङ्कार श्री गिरिधर शर्मा जी नवरत्न

वीर-सन्देश दिनों दिन उन्नति करता जाता है जानकर मुझे बड़ी खुशी होती है। शिवाजी अङ्क और तुरन्त प्रताप अङ्क निकाल कर आपने खूब काम किया है।

श्री केदारनाथ जी मिश्र गौड़ 'प्रभात', साहित्य-भूषण

'वीर-सन्देश' का महाराणा प्रताप अङ्क मिला। कृतज्ञ हूँ। अङ्क सर्वाङ्ग सुन्दर निकला है जिसके लिये मैं आपको गिन-गिन कर धन्यवाद देता हूँ। मैं 'वीर-सन्देश' को आद्योपान्त पढ़ गया। लेख और कवितायें सभी उपादेय एवं पठनीय हैं।

श्री भुवनेश्वरसिंह जी 'भुवन'

'शिवाजी अङ्क' मिला। यह सुन्दर और सुपाठ्य है आशा है। आपके सम्पादकत्व में 'वीर सन्देश' नाम पा जायगा। प्रकाशक का प्रयत्न स्तुत्य है।

वीर-संदेश के नियम

१—वीर-सन्देश प्रति मास की शुक्ला २ को प्रकाशित हो जाता है।

२—नए पुराने कवियों, वीरों और महान् पुरुषों की कीर्ति जाग्रत करना, वीर-साहित्य का प्रचार करना और देश तथा जाति को समुन्नत करना ही वीर-सन्देश का मुख्य उद्देश्य है।

३—वार्षिक मूल्य २ है। एक अंक का ।)—नमूना मुफ्त नहीं मिलता।

४—लेखकों से प्रार्थना है कि लेख कागज के एक ही ओर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजने की कृपा करें। लेखों के छापने न छापने अथवा घटा बढ़ा कर छापने का अधिकार सम्पादक के आधीन है।

५—अस्वीकृत लेख पोस्टेज प्राप्त होने पर वापिस कर दिए जाते हैं।

६—उत्तम लेखों पर यदि लेखक स्वीकार करें तो पुरस्कार भी दिया जाता है।

७—ग्राहकों को पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखनी चाहिए अन्यथा पत्रोत्तर में विलम्ब होने की संभावना रहेगी।

विज्ञापन छपाई के नियम

१–विज्ञापन बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जाती।

२–कोई विज्ञापन बिना कुछ पेशगी मिले नहीं छापा जाता।

३–अश्लील और भ्रमोत्पादक विज्ञापन नहीं छापे जाते।

४–विशेष स्थान और छोटे बड़े विज्ञापनों के लिए मैनेजर से लिखा पढ़ी करनी चाहिए।

५–विज्ञापन छपाई की दर निम्न भांति है:—

साधारण	पृष्ठ	प्रति मास	४)	प्रति वर्ष	३५)
टायटियल का दूसरा	,,	,,	६)	,,	५५)
,, तीसरा	,,	,,	५)	,,	४५)
,, चौथा	,,	,,	७)	,,	६५)

६–विज्ञापन बटाई १।) प्रति सैकड़ा ली जावेगी। भारी विज्ञापनों के लिए अलग लिखा पढ़ी करनी चाहिए।

७–उपरोक्त दर सस्ती से सस्ती रक्खी गई है। अब इस दर में किसी तरह की भी कमी नहीं हो सकती। इसके लिए लिखा पढ़ी करना व्यर्थ होगा। छठे अङ्क से यह दर न रहेगी, बढ़ जायगी।

मैनेजर—"वीर-संदेश" कार्यालय, आगरा।

विवाह का उद्देश्य ।

यह पुस्तक है तो बहुत छोटी पर उपयोग बहुत ज्यादा है। हिन्दू समाज में विवाह बड़ा जरूरी काम है। किन्तु विवाह क्यों किया जाता है, इसे बहुत थोड़े लोग जानते हैं। इस पुस्तक में बड़े ही अच्छे ढंग से यही बात दिखाई गई है। मूल्य =) विवाह के अवसर पर भेट कीजिए १०० प्रति का ६।) रुपया।

महिला सुधार ।

हिन्दी संसार में ऐसा कौन होगा जिसने ला० कन्नोमल जी एम० ए० का नाम न सुना हो। आप ही के लेखों का इस पुस्तक में संग्रह है। स्त्रियों के सुधार करने और उन्हें उन्नत बनाने के जितने भी साधन हो सकते हैं लाला जी ने उन सब पर प्रकाश डाला है। अतएव प्रत्येक सुधार प्रेमी स्त्री पुरुष को यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़ जानी चाहिए। मोटा कागज, सुन्दर छपाई, १०० पृष्ठ की पुस्तक का मू० ।=) मुफ्त बांटने के लिए १०० प्रति का २५)

विधवा कर्त्तव्य ।

विधवाओं के कर्त्तव्य बताने वाली और उनको सुमार्ग पर लाने वाली अद्वितीय पुस्तक। मू० ॥)

कायापलट ।

यह उपन्यास बड़ा ही उपयोगी है। इस में समाज की वर्तमान दशा का वर्णन बड़े अच्छे ढंग से किया गया है। मू० १।)

मिलने का पता—

महावीर ग्रन्थ कार्य्यालय, आगरा।



वीर तपस्वी सरदार खड्गसिंह

अकाली आन्दोलन में प्रमुख भाग लेने के कारण आप जेल भेजे गये थे। वहाँ से छूट कर आप पुनः देश सेवा में प्रवृत्त हो गए हैं।

महावीर प्रेस आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश" ॥

भाग १ { आगरा—आषाढ़ शुक्ला २ सं० १९८४—वीर सं० २४५३ } अङ्क ५

अनुरोध

[लेखक—श्री० जगन्नाथप्रसाद जी वर्मा 'मिलिन्द']

अब न उठे इस अन्तस्तल में शीतल निर्झर की झनकार !
बस, अब, फूट निकलने दे अन्तर के ज्वालामय उद्गार !!
मेरी सुमनों-सी तानों के कोमल रस का कर अवसान !
सुख-संगीत बिखर जाने दे, मिलने दे पीड़ा में प्राण !!
थिरक उठे, स्वप्नों में, पलकों पर, तम में ही, भैरव-गान !
सुख की स्नेहमयी आशा के दीपक का करदे निर्वाण !!
एक-एक स्वर से, झंकृत हो, तानों में मिल कर " बलिदान " !
जीवन की उन्मत्त तरङ्गों में भर दे प्रलयङ्कर गान !!

धर्म्म-युद्ध

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी वाजपेयी, शास्त्री]

धर्म्म-युद्ध करना ही वीरों का काम है—जो महापुरुष धर्म्म के लिये तलवार उठा कर अधर्म्मियों का नाश कर उसकी रक्षा करे, वही सच्चा वीर है, यह बात आर्य्य-जाति में चिरप्रसिद्ध है। आततायियों से निरीह जनता की रक्षा करने ही में बहादुरी है। अबलाओं पर अत्याचार करने वाले राक्षसों के खून से पृथ्वी को भिगोना ही वीर-देव की तर्पण-क्रिया है। हमारे इस कथन की पुष्टि रामायण और महाभारत करते हैं। दोनों महायुद्ध अबलाओं के सतीत्व की रक्षा के लिये ही हुए थे। ध्यान देने की बात है कि इस प्रकार का अत्याचार करने वाला पापी कभी भी क्षन्तव्य नहीं, चाहे फिर अपना भाई ही क्यों न हो। अथवा पूज्य-जाति ब्राह्मण ही क्या न हो। दुर्योधन अर्जुन का भाई ही तो था। वे सब अर्जुन के रिश्तेदार और भाई-बन्धु ही तो थे, जिनके विरुद्ध अर्जुन को, धर्म्म की खातिर, मोर्चा लेना पड़ा था और फिर सामने मुमूर्षु-दशा में जिन्हें देखकर एक बार उस वीर अर्जुन का भी जी भर आया था, उस ने शस्त्र डाल दिये थे। पर, धर्म्म के रक्षक भगवान श्रीकृष्ण साथ थे। उन्होंने धर्म्म का तत्त्व समझा कर फिर अर्जुन को खड़ा कर दिया, और वे नीच पर-स्त्री-गामी पापी बीन-बीन कर मारे गये। साथ ही वे धर्म्मात्मा वीर भी उस युद्ध में धराशायी किये गये, जिन्होंने उस पापी का साथ दिया था। पापी का साथ देने वाला भी तो पापी ही हो जाता है। ऐसी दशा में उसे छोड़ना न्याय नहीं। देखिए, वीर पाण्डवों ने सब दुःख सह कर भी भाई दुर्योधन के विरुद्ध युद्ध नहीं ठाना, जब तक कि उसने सती-अपमान नहीं किया। द्रौपदी के क्रोध में फिर उसका पता न चला।

इधर भगवान राम को देखिए। धर्म्म-युद्ध किया। पापी पर-नारी-विहारी रावण का किस प्रकार नाश हुआ उस रावण का, जो ब्राह्मण

था, वेदपाठी था, उच्च-वंश का था और महर्षि पुलस्त्य का नाती था। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि जो भी ऐसा पापी हो, उसे फ़ौरन नेस्तनाबूद कर दो, फिर वह कोई क्यों न हो। परन्तु, सभ्यता का ऐसा ऊँचा आदर्श एक मात्र आपकी आर्य्य-जाति ही में पाया जाता है।

और भी लीजिए। ब्राह्मणों की तरह स्त्री को भी अवध्य कहा है। पर, जब कोई स्त्री वैसी अधर्म्म-परायण हो जाय और दूसरों के धर्म्म में भी दख़ल देने लग जाय, तो शीघ्र ही उसका शासन करना उचित है। भगवान् राम ने ताड़का से ही तो अपने कार्य्य का श्रीगणेश किया था। बाद में लक्ष्मण ने भी पहले शूर्पणखा की ही नाक काटी। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी तो पूतना ही पर पहले हाथ साफ़ किया था। पापियों से अधिक पापी उनके दूत और दूतियाँ होती हैं, अतः उनकी शिक्षा का पाठ भी वहीं से चलना ठीक ही था। कहने का मतलब यह कि धर्म्म के लिये सब से युद्ध करना धर्म्म है, चाहे वह कोई क्यों न हो। इस व्यापक नियम का कोई अपवाद है ही नहीं। इसी धर्म्म-तत्त्व को समझाकर तो भगवान् कृष्ण ने बन्धु-स्नेह-कातर अर्जुन के मुख से फिर भी कहला दिया था कि—

'करिष्ये वचनं तव'

अर्थात्, आपकी बात मानूंगा—इन अधर्म्मियों को यहीं भून कर धर्म्म की रक्षा करूंगा। फिर वैसा ही हुआ।

इसी धर्म्म-युद्ध की शास्त्रों में महिमा है। इसी में प्राण-विसर्जन होने पर स्वर्ग-प्राप्ति होती है और विजय मिलने पर यशः शुभ्र सुन्दर धर्म्म-राज्य।

हमारे देश में, अज्ञानावस्था में, कई बातों में, लोग उलट-फेर कर बैठे। अँधेरे में वस्तु और की और ही दीखने लगी। धर्म्म-युद्ध का भी उलटा अर्थ लगाया गया और भोले भाले भाई अभी तक उसी उलटे फेर में उलटे टँगे हैं। इस अज्ञान-कुहू में धर्म्म-युद्ध का यह अर्थ समझा

जाने लगा कि—जो युद्ध इस प्रकार हो कि उसमें किसी तर्क या कौशल से काम न लिया जाय, उसे धर्म्म-युद्ध कहते हैं, फिर चाहे वह किसी कन्या को छीन कर उससे राक्षसी विवाह करके अपनी कामवासना तृप्त करने के लिये ही क्यों न हो। बस, इसी को धर्म्म-युद्ध समझने लगे और अपना तथा दूसरे का नाश करने लगे। इतिहास में इसके उदाहरणों की कमी नहीं है। पर, उन बेचारों को यह पता नहीं कि यह धर्म्म-युद्ध नहीं, भैंसा-युद्ध है। जैसे दो पशु काम-मोहित हो आपस में भिड़न्त करते हैं, पर बिलकुल सीधे-साधे ढँग से; आखिर पशु ही हुए, उनमें युद्ध-कौशल या तर्क आवे कहाँ से? इसी पशु-युद्ध को भोले भाइयों ने या मूर्ख कामियों ने 'धर्म्म-युद्ध' का नाम दे दिया और ऐसे ही युद्धों में असंख्य प्राणियों के प्राण और अन्त में भारत का सर्वस्व खोगया।

वस्तुतः यह मूर्खता है और अधर्म्म है। ऐसे युद्धों में प्राण देने से स्वर्ग मिलेगा, यह ऐसी आशा है, जैसे धधकती आग में अपना कोमल अंग इसलिये डाल कर भूना जाय कि मुझे स्वर्गीय शीतलता मिलेगी।

धर्म्म के लिये युद्ध करना धर्म्म-युद्ध है। उस युद्ध में शारीरिक और मानसिक, सब तरह का, पूरा बल लगा देना चाहिए। बिना मानसिक बल लगाये, केवल शारीरिक बल से, लड़ना निरा पशु-युद्ध है। इस में विजय होने की नहीं। धर्म्म-युद्ध में कला-कौशल, छल-बल, और प्रत्येक युद्ध-चातुरी से काम लेना चाहिए। धर्म्म की कौन कहे, उस धर्म्म-युद्ध में अगर अधर्म्म से भी कुछ काम निकलता हो, तो उसका भी प्रयोग करने में कभी न चूके। ऐसे समय में यह भी धर्म्म ही है। अधर्मियों का नाश होने से बड़े भारी धर्म्म की प्रतिष्ठा होती है। उस धर्म्म-प्रतिष्ठा के लिये, इस धर्म्म-युद्ध में, यदि किसी ऐसे उपाय से भी मौके पर काम लिया जाय, जिस में अधर्म्म का संसर्ग हो तो भी कोई बात नहीं। यह अधर्म्म भी इस अवसर पर धर्म्म ही तो है। गंगा जी की धारा में दस बोतल शराब डाल देने से वह शराब भी तो गंगाजल ही बन जाती है। पर, शर्त यह है कि वह युद्ध 'धर्म्म-युद्ध' हो। धर्म्म की खातिर वह रण-

रंग मचा हो। यदि यह बात हो, तो फिर आप दुश्मन के नाश करने में किसी भी उपाय को उठा न रक्खें, कोई कोर-कसर बाकी न रक्खें। उस पापी शत्रु के नाश करने में कौशल के साथ, अधर्म्म का प्रयोग करना पड़े, करें। इससे धर्म्म-हानि नहीं, धर्म्म-लाभ ही है। यदि इससे पाप के कुछ अंश की कल्पना कर भी ली जाय, तो वह उस धर्म्म के सामने नाचीज है, जो आप को धर्म्म के लिये युद्ध करने से मिलेगा। यह पापाग्नि की कणिका उस धर्म्म-मन्दाकिनी की धारा में पड़कर छिन्न हो जायगी। आप देखते हैं कि एक किसान अपना मन भर अन्न लेकर धरती पर फेंक आता है—वह इस नुकसान को खुशी से अपने ऊपर लेता है, पर नुकसान जानकर नहीं, लाभ जानकर। यह है भी लाभ ही। वह एक मन अनाज इस लिये पृथ्वी पर फेंक आया है कि, उसे मालूम है कि इसी एक मन से उसे पचास मन अनाज मिलना है। उस पचास मन से एक मन यह घाटे का निकाल कर उनचास मन अन्न मेरे घर में रहेगा। सो, वह एक मन अन्न का घाटा, घाटा नहीं, मुनाफा ही है। जरा समझने का फ़र्क है।

अच्छा, आप यह तो मानते ही हैं कि रामायण और महाभारत का युद्ध 'धर्म्म-युद्ध' है। वह अवश्य धर्म्म-युद्ध है। उसकी रचना धर्म्म के लिये, केवल धर्म्म के लिये, हुई थी। पर, इन दोनों धर्म्म-युद्धों में कौशल या चातुरी से कितना काम लिया गया? और यह धर्म्म तथा न्याय ही था। बिना नीति के, बिना चातुरी के, युद्ध सफल नहीं होता। अब आप रामायण और महाभारत के युद्धों को देखें। रामायण में हम देखते हैं, राम के पास फौज नहीं है, सिर्फ आत्म-बल है। उन्हें फौज की जरूरत है। उस के लिये वे बन्धु-भीत सुग्रीव से मित्रता करते हैं, और बालि को मारकर सुग्रीव को निष्कण्टक करने का बचन देते हैं। सुग्रीव भी सीतान्वेषण और उनकी प्राप्ति में दत्त-चित्त होता है। अब देखिए कि, राम जी बालि को मारने में किस कौशल से काम लेते हैं। वे वृक्ष की

ओट में होकर उसे मारते है। मरने पर बालि झुंझला कर कहता भी है—

" धर्म्म हेतु अवतरेउ गुसाईं। मारेहु मोहिं व्याध की नाईं॥"

फिर भी:—

" मैं वैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहिं मारा॥"

इधर से मर्य्यादा-पुरुषोत्तम धर्म्म-वीर उत्तर देते हैं:—

" अनुज-वधू भगिनी सुत नारी। सुनु शठ ये कन्या सम चारी॥"

" इन्हें कुदृष्टि विलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥"

क्यों ऐसे दुष्टों के मारने से पाप नहीं होता? क्योंकि वे धर्म्म नाशक हैं। उनके नष्ट हो जाने से ही धर्म स्थापित होगा। भले ही किसी भी उपाय का अवलम्बन उनके मारने में किया जाय, धर्म्म है! धर्म्म के लिये किया गया अधर्म्म भी धर्म्म ही है। अग्नि-पुञ्ज में पड़कर अपावन वस्तु भी पावक बन जाती है। अस्तु! फिर राम जी सुग्रीव की सहायता से आगे बढ़े और शत्रु के भाई को फोड़ा। तब फिर 'घर का भिदिया लंका दाह' हुआ।

इसी प्रकार महाभारत का युद्ध विविध युद्ध-चातुरियों से भरा है। शत्रुओं के नाश के लिये कौन-कौन उपाय नहीं किये गये? अधर्म्म-युक्त उपायों से भी काम लिया गया। धर्म्म-राज युधिष्ठिर तक से तो झूँठ बुलवाया गया और वे बोले कि 'अश्वत्थामा मर गया'। इनसे अधिक धर्म्मात्मा और कौन होगा? किन्तु यह झूठ बोलना भी धर्म्म ही था। हाँ, बाद में जब धर्म्म-युद्ध का अर्थ ही लोग भूल गये, तो फिर एत-न्मूलक अनेक कथाओं की कल्पना हो गयी, जो अभी तक प्रचलित हैं।

सो, धर्म्म-युद्ध तो यह है। इसमें सब छल-बल उपादेय हैं और यहाँ वे भी धर्म्म हैं। इसी धर्म्म-युद्ध से स्वर्ग तो क्या मोक्ष भी सहज मिलता है। यही गीता का उपदेश है। और इसके विरुद्ध जो युद्ध मूर्खों में प्रसिद्ध है, उसे ही यदि वह 'धर्म्म-युद्ध' मान लिया जाय, तो जितने पशु आपस में लड़ते मरते हैं, उनके वे युद्ध 'धर्म्म-युद्ध' ही हैं। पर, वहाँ जब मनुष्यता ही नहीं, तब 'धर्म्म-युद्ध' हो, यह आश्चर्य है!

स्वातन्त्र्य-कथा

[लेखक—श्री० जगन्नाथ शुक्ल]

विस्तृत-वन के बीच एक दुर्गम पर्वत था।
तुंग-शृंग-गंभीर-गुहा-निर्झर शोभित था॥
उसके रम्य-निकुञ्ज अधिक लगते थे प्यारे।
निर्मल-सलिल-प्रवाह दूर करता दुख सारे॥
पक्षि-गणों का मृदुल-रव मत्त बनाता चित्त था।
शीतल, मन्द, सुगन्धि-युत, वयु वहां का वित्त था॥१॥

ऐसे रम्य-प्रदेश-मध्य थी एक कन्दरा।
रहता उसमें सिंह एक था पूर्ण मद भरा॥
वह था निश्चय अनभिषिक्त राजा उस वनका।
हां बिलकुल स्वच्छन्द कार्य करता था मनका॥
खाना, पीना, घूमना, आदि सभी स्वच्छन्द था।
उसके मुक्त-विचार से सूर्य-चन्द्र भी मन्द था॥२॥

बदला सुखमय समय दुःख की बारी आई।
बीता दिवस-प्रकाश रात्रि अँधियारी आई॥
मानो, भास्कर-चन्द्र युगल ने ईर्षित होकर।
डाली अपनी क्रूर-दृष्टि उस मुक्त-सिंह पर॥
व्याध-वृन्द ने क्रूर हो, बाँधा उसको एक दिन।
निष्फल मोक्ष-प्रयास था, बन्धन होने से कठिन॥३॥

था चमकीला एक काष्ठ-गृह अति ही सुन्दर।
भूषित था वह स्वर्ण आदि से बाहर-भीतर॥
बन्दी था स्वच्छन्द-सिंह वह उसके अन्दर।
खाना, पीना, आदि सभी था पर-पर निर्भर॥
एक सुनहली शृंखला, उसके पैरों थी पड़ी।
कड़ी कड़ी उसकी उसे, दुख देती थी हर घड़ी॥४॥

वन के वृक्ष विशाल कहां वे प्यारे प्यारे ?
पय-पूरित नद-नदी-सरोवर न्यारे न्यारे ?
कहाँ हरी वह घास मृदुल आँखों को प्यारी ?
जिस पर करते केलि सिंह-शावक नित भारी ॥
कहाँ गई वह दुख-हरा मन की प्यारी कन्दरा ?
सघन कुंज के ओट की जन्म-भूमि वह सुखकरा ॥५॥

कहाँ गया स्वच्छन्द विचरना, खाना, पीना ?
कहाँ गई वह प्रिया सिंहनी दीना, हीना ?
कहाँ गया स्वच्छन्द वायु वह रोग-विनाशक ?
कहाँ गया वह तरुण-तरणि का तेज-विकाशक ?
किस खोटे दुर्भाग्य से मातृ-भूमि प्यारी छुटी ।
विष-कुटी ऊपर सजी, चमकीली यह है कुटी ॥६॥

दिन बीते; अब सिंह हुआ पूरा परिवर्तित ।
भूषित-कुटी-निवास, प्रतीत हुआ उसको हित ॥
वन्दी-गृह को लगा समझने रक्षित घेरा ।
पारतन्त्र्य ने उसके मन पर डाला डेरा ॥
पैर-पड़ी जंजीर को भूषण वह कहने लगा ।
बन्धक को रक्षक समझ अति प्रसन्न रहने लगा ॥७॥

पारतन्त्र्य को जन्म-सिद्ध था उसने माना ।
निर्बल, दीन, अशक्त, हीन, अपने को जाना ॥
उसको था यह ध्यान बिना वह पर के पाले ।
रह सकता है नहीं, पड़ें जानों के लाले ॥
उसकी पैनी दृष्टि में, उसके पञ्जे व्यर्थ थे ।
पैरों की श्री-वृद्धि बस, उनके सीधे अर्थ थे ॥८॥

हो कर हिंसक सिंह बना था कायर गीदड़ ।
हो कर विजयी वीर बना था पामर लीदड़ ॥

वीर-बालक हक़ीक़तराय

[लेखक—श्रीयुत पं० हरिशङ्करजी शर्मा, कविरत्न, सम्पादक—आर्यमित्र]

मुसलमानी शासन काल में हिन्दुओं पर अनेकों अत्याचार होते थे। धर्म कर्म की स्वतन्त्रता का अपहरण किया जाता था। इसलाम से विमुख काफ़िरों को काज़ियों की व्यवस्थानुसार दण्ड दिया जाता था। उन्हीं दिनों पंजाब के स्यालकोट नगर में एक खत्री के घर में हक़ीक़तराय बालक ने संवत् १७९१ ई० को बसन्तपंचमी को जन्म लिया। इनके पिता का नाम बाग़मल और माता का कौरा था। बाग़मल बड़े कर्मनिष्ठ

खो कर शुभ-स्वातन्त्र्य बना था पराधीन जड़।
भूल गया था स्वावलम्ब-सुख बन्धन में पड़॥
एक समय जो पूर्व में, शासक था मृगराज था।
वही समय के फेर से, शासित हो मुहताज था॥९॥
टली अँधेरी रात, टली अब दुख की वेला।
कली हृदय की खिली, समय आया अलबेला॥
हुआ सिंह को बोध हटा अब मनका पर्दा॥
पारतन्त्र्य-तम नसा गिरा अब बनका पर्दा॥
निर्बलता का भ्रम भगा, ज्ञान हुआ सिंहत्व का।
आत्म-सत्व मनमें जगा, ध्यान हुआ तब स्वत्व का॥१०॥
तोड़ तड़ातड़ कड़ी कड़ी जंजीर कड़ी की।
और परिष्कृत कुटिल वही कुटिया लकड़ी की॥
निकल पड़ा वह सिंह सिंह-सम गर्जन करता।
क्रूर-हृदय घालक-पालक को तर्जन करता॥
इस प्रकार स्वाधीन हो जन्म-भूमि पाई सुखद।
मिले वही स्वाधीन जल-वायु-वृक्ष-गिरि-कुंज-नद॥११॥

और धर्मात्मा थे। ये स्यालकोट के हाकिम अदीनाबेग के यहाँ मुहर्रिर थे। नित्य-प्रति भागवत् का पाठ किया करते और अपने पुत्र हक़ीक़त को बाल्यकाल से ही धर्म की शिक्षा देते रहते थे। सातवें वर्ष की आयु में हक़ीक़तराय ने अपने पिता से हिन्दी भाषा पढ़कर उसकी अच्छी योग्यता करली थी। रामायण और भागवत तथा नीति के बहुत से श्लोक और दोहे कण्ठ कर लिये थे।

आठवें वर्ष माता पिता ने बालक को फ़ारसी अरबी पढ़ने के लिये मुसलमानी 'मकतब' में बिठा दिया। हक़ीक़तराय मुसलमान विद्यार्थियों के साथ अरबी फ़ारसी पढ़ने लगे तथा सब सहपाठियों से अपने को अधिक योग्य सिद्ध किया।

इन दिनों भारतवर्ष में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी, अतएव मा बाप ने आठ ही वर्ष की आयु में हक़ीक़तराय का विवाह बिटाले ग्राम की एक सुन्दर कन्या के साथ कर दिया। चारों ओर आनन्द छा गया। जहाँ एक ओर हक़ीक़तराय के पिता धर्मनिष्ठ पुरुष थे वहाँ दूसरी ओर हक़ीक़तराय के श्वशुर की भी हिन्दू-धर्म में महान् श्रद्धा थी, ये हक़ीक़तराय को गुरु गोविन्दसिंह की जीवनी सुनाते थे। गुरु गोविन्द का धर्म रक्षार्थ अनेक कष्ट सहना और उनका तथा उनके शिष्यों का धर्म हित सिर कटाना यह सभी बातें बालक हक़ीक़त को इनके श्वशुर ने सुनाईं। हक़ीक़तराय को अपने धर्म की महत्ता और श्रेष्ठता का पूरा पता लग गया।

हक़ीक़तराय यवन विद्यार्थियों के साथ पढ़ते हुये १२ वर्ष के हुए तो एक दिन पढ़ाने वाला क़ाज़ी मकतब से कहीं बाहर चला गया। हक़ीक़तराय के यवन सहपाठी उसकी योग्यता के कारण पहिले ही उससे द्वेष रखते थे। उन्होंने ऐसे समय को अपने लिये अच्छा समझकर, हक़ीक़तराय को तंग करना और गाली देना शुरू किया। वे सब मिल कर हक़ीक़तराय को मारने लगे। हक़ीक़तराय ने कहा कि तुम सब मिल कर मुझे मारते हो मैं मुल्लाजी से शिकायत कर दूँगा। यह सुनकर लड़कों ने हिन्दू देवी देवताओं को गाली देकर हक़ीक़तराय के हृदय को चोट पहुँचाई। यह

धार्मिक अपमान इस धर्म-वीर बालक के लिये असह्य था, उसने भी बदले में गालियाँ दीं। जिस पर सब लड़के हक़ीक़तराय को मारने लगे। तब तो हक़ीक़तराय उठ पड़ा और एक एक करके लड़कों को ललकार कर मारने लगा।

इसी समय मौलवी साहब आ गये। यवन लड़कों ने मौलवी साहब से हक़ीक़तराय की शिकायत की और कहा कि इसने हमें गालियाँ दी हैं और बीबी फ़ातिमा के प्रति अपशब्द प्रयुक्त किये हैं। लड़कों की बात सुनकर मौलवी साहब क्रोध में आ गये और हक़ीक़तराय की कोई सफ़ाई न सुनी। झट उसे हथकड़ी पहनाकर कचहरी में ले गये।

इस घटना से समस्त नगर में कुहराम मच गया अनेक नर-नारी कचहरी की ओर चल दिये। बालक हक़ीक़त के पिता श्री बागमल जी मौलवी साहब के पास पहुँचे और पूछा कि हक़ीक़तराय ने क्या अपराध किया है? मौलवी ने जिसका श्री बागमल जी से पूर्ण परिचय था और जिसे उन्होंने अपने पुत्र को पढ़ाने के कारण अनेक बार बहुत कुछ देकर सत्कृत किया था, बात का बतंगड़ बना दिया तथा कहा कि हक़ीक़तराय ने इसलाम का बड़ा अपमान किया है। जबतक यह इसलाम स्वीकार न करेगा यह सज़ा से मुक्त नहीं हो सकता।

हाकिम अदीनाबेग के इजलास में हक़ीक़तराय पेश है, बड़े बड़े क़ाज़ी इकट्ठे हुए। मुक़द्दमा शुरू हुआ और हाकिम ने हक़ीक़तराय से कहा—"ऐ बदकार लड़के! तूने रसूलजादी को गालियाँ दी हैं।" हक़ीक़तराय ने साहस के साथ समस्त समाचार सत्य सत्य सुना दिये। इस पर हाकिम ने कहा कि तुझे ऐसा करना उचित नहीं था। हक़ीक़तराय ने कहा कि "मेरा कोई अपराध नहीं, *मौलवी साहब मुझे फँसाना चाहते हैं।"* यह बात सुनकर हाकिम चुप रह गया। थोड़ी देर सोचने के पश्चात् बोला कि "मैं जानता हूं कि तूने बड़ा अपराध किया है परन्तु बालक जानकर तुझे क्षमा कर देना चाहता हूँ।"

हाकिम की यह बात सुनकर सारे क़ाज़ी क्रुद्ध होकर बोले—"आप का क्षमा कर देना अन्याय है। भला काफ़िरों पर दया दिखाने से क्या लाभ है? क़ुरआन शरीफ़ का हुक्म है कि काफ़िरों पर सख़्ती करनी चाहिये और ऐसे लोगों को दण्ड देने की शरीअत में आज्ञा है।" हाकिम ने मिसल को फिर उलटा और सोच कर यह न्याय निश्चय किया कि बालक को छोड़ देना चाहिये। इस पर काज़ियों ने खूब हुल्लड़ मचाया और मज़हबी जोश दिलाकर हाकिम से कहला दिया कि यह अपराध दण्डनीय है। इसने इस्लाम का अपमान किया है, इसको मृत्यु का दण्ड मिलना चाहिये। अन्त में काज़ियों की व्यवस्थायें लेकर हाकिम ने हक़ीक़तराय को लाहौर के हाकिम की कचहरी में भेज दिया।

हक़ीक़तराय के माता पिता और सम्बन्धी वहाँ उपस्थित थे। माता रुदन कर रही थी। उसने मकतब के क़ाज़ी को बुलाकर सर्वस्व भेंट कर देने की विनती की; परन्तु क़ाज़ी ने कुछ भी ध्यान न दिया। अन्त में चौथे दिन लाहौर सूबा के इजलास में हक़ीक़तराय की पेशी हुई। सारा इजलास भीड़ से भर गया। हाकिम सूबा ने मिसल देखी और उसके यह शब्द पढ़ कर कि "इसको छोड़ना मत, सज़ा अवश्य करना" हाकिम का हृदय दया से द्रवीभूत हो गया। सोच कर बोला कि "हक़ीक़त अभी बालक है, इसे भले बुरे का क्या ज्ञान?"

इन बातों को सुनकर क्रूर क़ाज़ी ने तुरन्त उत्तर दिया—"आप काफ़िरों की हिमायत करके इस्लाम ग़ारत करना चाहते हैं। इससे काफ़िरों का साहस बढ़ जायगा।" इस पर हाकिम ने काज़ी के हुक्म को बहाल रक्खा और कहा—"हक़ीक़तराय, या तो तुम इस्लाम पर ईमान लाओ, वरना तुम्हें क़त्ल की सज़ा दी जाती है।" यह सुनकर हक़ीक़तराय ने वीरता-पूर्वक उत्तर दिया—"मैं धर्म कदापि नहीं छोड़ सकता, मैं ऐसा कायर नहीं कि मरने से डर कर धर्म छोड़ दूँ।"

हक़ीक़तराय की माता बिलख बिलख कर रोने लगी। उसने पुत्र को समझाया कि "मेरी आँखों के तारे! तू यवन हो जा, जिससे तू जीवित

रहे और मैं तेरा मुँह देख सकूं। देख, माता की आज्ञा मान!" हक़ीक़त-राय ने माता से निवेदन किया-"पूज्य माताजी! मैं धर्म कदापि नहीं छोड़ सकता। तुम ऐसा उपदेश आज क्यों देती हो, मोह त्याग दो और अपना वैसा ही उपदेश दो जैसा कि सदा से देती रही हो। मैं धर्म को छोड़कर अपयश का भागी बनने को कदापि तय्यार नहीं हूँ, धर्म पर मरने से किंचित मात्र भय नहीं। धर्म पर दृढ़ रहते हुए शिर कटाना मेरे लिए बड़े आनन्द की बात है।"

भारतवर्ष में ऐसे बहुत से वीर हो गये हैं जिन्होंने अपने यश, कीर्ति और धर्म की रक्षा में प्रसन्नता से प्राण दे दिये हैं, अपने गुरू वशिष्ट की गौ की रक्षा करने के लिये राजा दिलीप ने परम प्रसन्नता पूर्वक अपने आपको सिंह के सामने डाल दिया था। जीमृत वाहन ने सर्पों की रक्षा करने के लिये गरुण को अपना शरीर दे दिया था। मृच्छकटिक नाटक में चारुदत्त ने एक स्थल पर कितना साहस पूर्ण वाक्य कहा है—

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।
विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्र जन्मसमः किल॥

मैं मरने से नहीं डरता मुझे केवल यश के नाश का भय है। धर्म-रक्षा की कीर्ति उपलब्ध करते हुये मरने में मुझे पुत्र-उत्पत्ति के समान आनन्द मिलेगा।

हक़ीक़तराय को हाकिम ने भी बहुतेरा समझाया कि तू मुसलमान हो जा परन्तु हक़ीक़तराय ने निर्भयतापूर्वक कहा कि "मैं स्वप्न में भी मुसल्मान नहीं हो सकता। यदि ईश्वर मुझे मुसल्मान बनाना चाहता तो मुसल्मानके यहाँ पैदा करता। मैं हिन्दू हूँ और अपने धर्म पर मर मिटने को तय्यार हूं।"

हक़ीक़तराय की ऐसी बातें सुन कर बाप का भी हृदय भर आया और उसने हक़ीक़त को मुसल्मान हो जाने के लिए कहा परन्तु पुत्र ने अति विनीत भाव से निवेदन किया कि "पिताजी सांसारिक सम्बन्ध दो दिन का है, मैं क्षणिक जीवन के लिये अपने धर्म पर कालिख नहीं

लगाऊँगा। मैं धर्म-रहित हो कर जीवित रहने की अपेक्षा मरना लाख गुना अच्छा समझता हूँ।"

जब हक़ीक़तराय किसी प्रकार भी इस्लाम स्वीकार करने पर रज़ामन्द न हुआ तो हाकिम ने उसे क़त्ल कर देने की आज्ञा दी, जल्लाद आ-गया। हक़ीक़तराय को क़त्ल कर देने के लिए जल्लाद को हुक्म हुआ।

हक़ीक़तराय ने गर्दन झुका ली और कहा कि "यदि मेरे क़त्ल से इस्लाम का भला होता है तो यह सिर हाजिर है। ऐ जल्लाद! मुझे शीघ्र क़त्ल कर के मेरे खून से अपनी तलवार की प्यास बुझा।"

यह कहते ही जल्लाद ने तलवार के एक ही बार से हक़ीक़तराय का सिर काटकर भूमि पर गिरा दिया। इस प्रकार हक़ीक़तराय ने हर्षित हो धर्म पर अपनी जान कुर्बान कर दी और शहीदों की श्रेणी में अपना नाम लिखा कर अमर पद प्राप्त किया।

मेरा परिचय

[लेखक—श्री० 'दिव्यकवि']

वीरों की हुंकार जहाँ हो,
और कृपाणों की झनकार।
रण चण्डी का नृत्य जहाँ हो,
बहती हो शोणित की धार॥
बरसें जहाँ अनल अङ्गार।
है वह मेरा शयनागार॥१॥

प्रबल प्रलय का दृश्य जहाँ हो,
खड़े हुये हों भीषण व्याल।
नर-द्रोही निश्चर रहते हों,
या हो क्रूर काल विकराल॥
जहाँ अनय का हो आतङ्क।
रहता हूँ मैं वहाँ निशङ्क॥२॥

सोने को शूलों की शय्या,
खाने को हो सूखी घास।
विघ्न और बाधा वाहन हों,
हो न जिसे जीवन की आस॥
कर दे दम्भ शत्रु का दूर।
हूँ मैं उस सेना का शूर॥३॥

स्वप्न वाटिका

[लेखक—श्री० रामेश्वरप्रसाद जी पाटोदिया]

प्रभात हो चुका था। स्वामी की वाटिका विविध प्रकार के प्रफुल्लित पादपों से सुशोभित थी। पक्षियों का मधुर कलरव उस शोभा को सजीव कर रहा था। पर स्वामी ने मुझे उस वाटिका की शोभा का आनन्द अनुभव करने के लिए नहीं भेजा था किन्तु भेजा था सुमन चयन के लिए।

❀　　❀　　❀

उनकी आज्ञा थी नन्हे नन्हे सुगन्धित सुमनों को लाने की। उन्होंने यह भी कहा था कि शीघ्र लौटना। पर उन्मादिनी सुगन्ध वाले चित्र-विचित्र प्रसूनों एवं अति मनोहर रंग-विरंगे फलों से आच्छादित उस वाटिका के पादपों ने मेरा चित्त चंचल कर दिया। मैं अपने कर्त्तव्य को भूल गया।

❀　　❀　　❀

फल बड़े स्वादिष्ट थे। एक को खा कर दूसरे की इच्छा होती थी उदर के पूर्ण होने पर भी मन नहीं भरता था। मैं भी नहीं माना, जी भर के फल खाए। पर फल बुरा हुआ। फलों की मादकता ने अपना प्रभाव दिखाया, जी मिचलाया और मैं लड़खड़ा कर पृथ्वी में गिर पड़ा।

❀　　❀　　❀

उदर में शूल था और शिर में चक्कर। शरीर की सन्धि सन्धि में पीड़ा हो रही थी। पिपासा से प्राण व्याकुल थे। हृदय के स्पन्दन और श्वासोच्छ्वास में होड़ लगी थी। तरुण-तरणि की तनु-तापिनी तीक्ष्ण किरणों ने जीवन-नाटक को और भी दुःखमय बना दिया था। दशा दयनीय थी।

❀　　❀　　❀

"अयँ, यह क्या ? तुम्हारी यह दशा कैसी ? तुमको तो स्वामी ने सुमन-चयन के लिए भेजा था ! न मालूम वे कब से तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं ! बताओ तो बात क्या हुई ?"

मैंने आँखें खोलीं तो देखा कि स्वामी का दूसरा सेवक खड़ा हुआ है। उसके प्रश्नों का उत्तर देते हुए मैंने लज्जा और दुःख से कहा:-पानी !

❀ ❀ ❀

जैसे तैसे उठ कर पानी की दो चार छींटें लगाईं और हाथ-मुंह धोकर जल पिया। पीड़ा कुछ शान्त होती दिखाई दी। इतने में स्वामी के सेवक ने कुछ जड़ी-बूटी लाकर मुझे दीं। मैं उसे खाकर और लगा कर चङ्गा होगया। अब मुझे अपनी कर्त्तव्य-भ्रष्टता पर पश्चात्ताप हुआ। मैं उस सेवक को बिदाकर अपने कर्त्तव्य-कार्य में—सुमन-चयन में—प्रवृत्त हुआ।

❀ ❀ ❀

स्वामी के अभीष्ट सुमन नन्हे नन्हे थे। इनकी सुगन्ध में न प्रसूनों की सी मादकता ही थी और न तीक्ष्णता ही। इनका रङ्ग रूप भी वैसा विचित्र और भड़कीला न था। साधारण-दृष्टि-क्षेप में प्रायः न दिखने वाले फल-हीन नन्हे नन्हे पौधों में नन्हे और सादे पर स्वच्छ और भीनी सुगन्ध वाले विरल कुसुम खिले हुये थे। मैंने उनको बड़ी प्रसन्नता और तत्परता से चुना और स्वामी के गृह की ओर बढ़ा। गृह द्वार बन्द था। मैंने जोर से पुकारा—"स्वामिन" !

❀ ❀ ❀

अयँ ! यह क्या ? मैं अपने ही स्वर से जग पड़ा। मैंने देखा कि यह सारा का सारा झूठा स्वप्न था, जिसमें मैं स्वयम् स्वामी होकर भी सेवक बना हुआ था।

❀ ❀ ❀

सिख समुदाय में महाराणा रणजीतसिंह का स्थान

[लेखक—श्रीयुत गौरीशंकर जी त्रिवेदी]

आज से केवल एक शताब्दी पूर्व भारत-वसुन्धरा पर एक ऐसा हिन्दू साम्राज्य स्थापित था, जिसके भय से काबुल का नवाब चैन से सोने को तरसता था, सीमान्त प्रदेश के शासक अपनी अखण्ड सेना लिये भटकते फिरते थे, और ब्रिटिश साम्राज्य ने जिससे सन्धि करने में ही अपना हित समझा था। ऐसे प्रबल साम्राज्य के अधिष्ठाता, प्रतापी महाराज रणजीतसिंह का जीवन वृत्तान्त सुनने की किस भारतीय के मन में इच्छा न होगी। वास्तव में पंजाब-केशरी ने अपना नाम सार्थक कर दिया। किस प्रकार एक साधारण जागीरदार के बेटे ने, ब्रिटिश-शासन के बगल में एक वैसा ही प्रबल प्रतापी हिन्दू साम्राज्य स्थापित कर लिया, यह बात अवश्यमेव पठनीय है।

तत्कालीन भारतवर्ष की अवस्था और वर्त्तमान भारत में बहुत सादृश्य देख पड़ता है। भारत का आकाश विपत्ति के बादलों से आच्छादित था, देश में आजकल की भांति एक संगठनिक कानून का अभाव था, ब्रीटिश, मरहठा तथा सिख समुदाय में पारस्परिक फूट का बीज वपन हो गया था, और एक राष्ट्र पर-राष्ट्र की सम्पत्ति हरण करने के लिये मुँह फैलाये बैठा था। देश में डाकुओं का व्यापार था। इस स्थिति में किसी प्रकार एक निरक्षर भट्टाचार्य ने ब्रिटिश साम्राज्य से मैत्री रखते हुये यह दिखा दिया कि इन गये गुजरे दिनों में भी भारतीय नरेशों में राष्ट्र परिचालन की क्षमता किस परिमाण तक है।

कहना न होगा कि मुगल राज्य के पतन से ही सिख-राष्ट्र का उत्थान हुआ। निर्बल राजाओं के अव्यवस्थित शासन से सिख लोगों को लूट मार करने एवं पञ्जाब तथा दिल्ली के निकटवर्त्ती स्थानों में अपना प्रभुत्व स्थापित करने का शुभ अवसर मिला। अभी कुछ ही काल पूर्व

सिख समुदाय में गुरू नानक देव तथा गुरू गोविन्दसिंह प्रभृति नर रत्न उत्पन्न हो चुके थे, और उनकी प्रभावोत्पादनी आभा के प्रकाश से सिखों में यवनों के विरुद्ध अपना खड्ग प्रयुक्त करने का जोश क़ायम था। वास्तव में महाराणा रणजीतसिंह गुरू नानक के ही अविरल परिश्रम-सेवित वृक्ष के एक परिपक्व फल थे।

गुरू गोविन्दसिंह की मृत्यु के पश्चात् सिख जाति बारह भागों में विभक्त हो गई, जो कि बारह मिसलों के नाम से प्रसिद्ध हैं:—

१ फुलकिया मिसल, २ सुकरचकिया मिसल, ३ सिंहपुरिया मिसल ४ भंगी मिसल, ५ अहलूवालिया मिसल, ६ रामगढ़िया मिसल, ७ कन्हैया-मिसल, ८ कारोरासिंहिया मिसल, ९ निशानिया मिसल, १० दुलेल वालिया मिसल, ११ नक्को मिसल, १२ शहीदा मिसल।

हमारे चरितनायक महाराज रणजीतसिंह इनमें सुकरचकिया मिसल वंशोद्भव हैं। सुकरचकिया मिसल की नींव डालने वाले झंडासिंह तथा नवधासिंह नामक दो युवक थे। जब इन दोनों भ्राताओं ने दिल्ली के समीप लूट मार आरम्भ की तो दिल्लीपति ने इनका दमन करने के हेतु जाट लोगों से सहायता मांगी। जाट लोग बहु संख्या में सिख लोगों को पकड़ २ कर दिल्लीपति के हवाले करने लगे। तब विवश होकर झंडासिंह तथा नवधासिंह ने जाट लोगों के उपद्रव से त्राण पाने के हेतु पंजाब प्रान्तार्गत सुकरचकी नामक ग्राम में निवास करना निश्चित किया। अतः इनके कुलोद्भव सुकरचकी ग्राम निवासी होने के कारण सुकरचकिया कहलाये। कालान्तर में सुकरचकिया मिसल वाले अधिक बलशाली होने के कारण अन्य मिसल वालों की सम्पत्ति दबाने पर उद्यत हो गये! और इसी कारण ये श्रेष्ठ समझे जाने लगे। महाराणा रणजीतसिंह के काल में तो यह मिसल उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गई। इसी मिसल के सरदार माहासिंह ने एक बार अहमद नगर के सुल्तान अहमद खाँ पर चढ़ाई करके उसे परास्त किया था, और एक प्रसिद्ध तोप भी उसके यहाँ से ले आये थे।

इन्हीं माहासिंह के पुत्र रणजीतसिंह ने इस मिसल के वैभव सूर्य को अपनी उज्वल कीर्त्ति से प्रकाशित किया।

महाराणा रणजीतसिंह का जन्म संवत् १८३७ में हुआ था। पिता माहासिंह को पुत्र-जन्म का सुसंवाद उस समय पहुँचाया गया था, जब कि वे रसूलनगर में पीर मुहम्मदखाँ से युद्ध कर रहे थे। पुत्र-जन्म का सुसंवाद सुनकर योद्धागण दूने उत्साह से समराङ्गण में उतर पड़े। बात की बात में खाँ साहब को मार भगाया और इसी कारण नव-प्रसूत पुत्र का नाम रणजीतसिंह रक्खा गया। जब महाराणा चार वर्ष के थे, इनके पिता सरदार माहासिंह ने कन्हैया मिसल वालों की शक्ति नष्ट कर दी। माहासिंह का सेनाधिपति जयसिंह कन्हैया मिसल वालों का सरदार था। माहासिंहजी इसका अत्यधिक सम्मान करते थे, यहाँ तक कि कभी कभी जयसिंह लूट के माल में से अपना अधिकृत भाग ले लेता था। एक बार माहासिंहजी ने रियासत जम्मू पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक को परास्त कर दिया। इस बार यद्यपि सरदार जयसिंह माहासिंहजी के साथ युद्ध में सम्मिलित न था तबभी उसने अपना लूट का हिस्सा मांगा किन्तु माहासिंह ने एक पाई भी देना स्वीकार नहीं किया। फिर क्या था, तलवारें निकल आईं, खूब युद्ध हुआ। सरदार माहासिंह की विजय हुई, और जयसिंह भाग कर काँगड़े के राजा संसारचन्द की शरणागत हुए। परिणामतः माहासिंह ने इनसे भी युद्ध मोल लिया परन्तु अन्त में सन्धि हो गई। इसी समय एक बार पुनः जम्मू पर माहासिंह का आक्रमण हुआ और लूट में उन्हें प्रचुर मात्रा में धन की प्राप्ति हुई। दुर्भाग्य से इस विजय के कुछ ही काल बाद रणजीतसिंह पर शीतला (चेचक) का प्रकोप हुआ और इस बीमारी से उन्हें वर्णनातीत कष्ट हुआ। यहाँ तक कि सम्बन्धियों को महाराणा के जीवन से निराशा सी होने लगी। माहासिंहजी ने कई सौ पण्डितों से शान्ति-स्वतन कराया, अन्त में रणजीतसिंहजी स्वस्थ होगए, किन्तु उनकी एक आँख जाती रही।

कन्हैया सरदार जयसिंह ने अपनी पुत्री का विवाह महाराज रणजीतसिंह से करके एक बार पुनः सन्धि का बीजारोपण किया। किंतु इसी समय महाराज माहासिंह ने जस्सासिंह रामगढ़िया से शत्रुता ठान ली। यहाँ तक कि जब एक बार सर्दार माहासिंह बीमार पड़े तो जस्सासिंह इनकी अधीनस्थ भूमि पर चढ़ आया। जब यह समाचार हमारे चरित नायक के उत्साही बाल्य-हृदय तक पहुँचा तो उन्होंने मार्ग में ही जस्सासिंह का सामना किया और उसे वहीं रोक दिया।

महाराज के दिगन्त व्यापी-भविष्य-कीर्त्ति-कालानिधि का यह रण-कुशलता प्रथम ज्योत्सना थी। १२ वर्ष की अवस्था में बालक रणजीतसिंह ने जिस अखण्ड साहस तथा प्रचण्ड वीरता का परिचय दिया, उस से शत्रु दल आश्चर्यस्तम्भित हो गया और सुकरचकिया मिसल वालों ने दूने उत्साह से जीवन उत्सर्ग करना आरम्भ कर दिया। कुछ ही समय में सरदार जस्सासिंह को द्वादश वर्षीय रणजीत के सम्मुख से पराङ्मुख होना पड़ा और रणजीत की रण में जीत हुई। गगनाङ्गन भेदी तुमुलनाद से रणजीतसिंह की वीरता का यशोगान होने लगा किन्तु दैव से यह आनन्द न अनुभव हुआ और सरदार माहासिंह की अचानक मृत्यु हो गई।

पिता की मृत्यु के पश्चात् शासनभार महाराज रणजीतसिंह की माता के कन्धों पर आ पड़ा। कहना न होगा कि वे बड़ी कार्यशीला तथा प्रभावशालिनी रमणी थीं। किंतु किसी अंश तक उनमें अधिकार लोलुपता का भी अतिरेक था। यही कारण था कि उन्होंने बालक रणजीतसिंह को सांसारिक सुख-रत होने की अनेक कुचेष्टायें भी कीं। कुछ काल तक महाराज मदिरा, वेश्या एवं अन्य दुर्व्यसनों के शिकार रहे। वास्तव में महाराणा का बाल्यकाल उनके जीवन में महान क्रान्ति-जनक एवं महत्त्व का था। एक ओर महाराज की अनुभव शून्य अवस्था, उस पर भी पिता मरण, और माता की शासन डोर हस्तगत करने की कुचेष्टायें। दरबार के मुसाहिब भी उनकी मा का पक्ष ग्रहण कर रहे थे। कुछ काल तक महाराज की माता लखपतराय नामक एक कर्मचारी के हाथ की

कठपुतली बनी रहीं। लखपत का प्रजा पर बड़ा आतंक था। अन्त में महाराज तथा इनकी सास से लखपत का यह व्यवहार सहन न हो सका। कालान्तर में इन दोनों ने शासन की बागडोर अपने हाथ में लेनी निश्चय की।

महाराज के शासन की इस अव्यवस्थित स्थिति में काबुल के अमीर ने पञ्जाब पर चढ़ाई कर दी। किन्तु रणजीतसिंह ने बड़े कौशल से पठानों को मार भगाया। अन्त में पठानों ने पञ्जाब-प्रदेशीय हिम्मत-सिंह नामक एक सरदार के नेतृत्व में पुनः महाराज की अधिस्थित भूमि पर आक्रमण किया। हिम्मतसिंह ने धोखे से महाराणा का प्राण लेना चाहा, किन्तु वह कृतकार्य न हो सका। उनका अभीष्ट भी सिद्ध न हुआ और तत्क्षण वध कर दिया गया। "मियाँ गये थे गाजी होने, वहीं जा कर शहीद हो गये"। पठानों ने भी अपने घर की राह पकड़ी. हिम्मत-सिंह की भी हिम्मत का ह्रास करके रणजीतसिंह ने अपनी सास सदा-कुँवर के परामर्श को कार्यान्वित करना चाहा. शीघ्र ही सदाकुँवर ने राणा के साथ सर्व प्रथम अपने प्रबल शत्रु जस्सासिंह रामगढ़िया के किले पर आक्रमण कर दिया। उक्त सर्दार ने कुछ दिनों तक किले के अन्दर रह कर अपनी रक्षा की, अन्त में रसद चुक जाने पर सदाकुँवर से सन्धि की प्रार्थना की, किन्तु उसने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। जस्सा-सिंह ने पुनः अपने धर्म-गुरु बाबा साहबसिंह बेदी के द्वारा सदाकुँवर के सम्मुख सन्धि-पत्र उपस्थित किया। इस बार भी संयुक्त सेना नायकों द्वारा सन्धि-पत्र लौटा दिया गया। इस पर बाबाजी का भी चित्त इनके प्रति कुछ खिन्न हो गया। उन्होंने धार्मिक रीत्यानुसार इस आकस्मिक विपत्ति के निवारणार्थ हवन पूजन इत्यादि की व्यवस्था की। दैवात् व्यास नदी में ऐसी भीषण बाढ़ आई कि सारी संयुक्त सेना जलमग्न देख पड़ने लगी और राणा को महान क्षति सहनी पड़ी। इस घटना ने महाराणा का चित्त अपनी सास के कथन से हटा दिया और फिर उनमें वह पूर्ववत् सम्बन्ध न रह सका।

इस समय हमारे महाराज अपने दैनिक तथा राजकीय कार्यों में स्वतन्त्र हो गए। माता की ओर से भी अधिक आशायें न थीं और सास से भी आकस्मिक मनोमालिन्य हो गया। फलतः इस समय उन्हें दीवान लखपत से त्राण पाने को विवश होना पड़ा, और उसे कैथाल की ओर भेज कर एक घातक द्वारा उसका प्राणान्त करा दिया। इस प्रकार दीवान लखपत से स्वतन्त्र हो कर महाराणा ने अपनी वृद्ध माता को हरिद्वार प्रभृति धर्म-क्षेत्रों में तीर्थाटन हेतु भेज दिया और वहीं उनकी भी मृत्यु हो गई। इस घटना के विषय में कुछ व्यक्तियों का कथन है कि उनकी माता हरिद्वार न भेजी जाकर एक निकटस्थ दुर्ग में निर्वासित कर दी गई थीं, जहाँ स्वभावतः उनका स्वर्गारोहण हो गया। किंतु हम उक्त कथन से सहमत नहीं। कारण प्रथम तो ऐसी कल्पना करना ही प्राचीन भारत की उन्नतम नैतिक अवस्था को आघात पहुँचाना है, दूसरे महाराणा ऐसे मातृभक्त निष्कलंक चरित्र पर ऐसे लाञ्छन लगाना हमारे नैतिक पतन का परिचायक है। कुछ भी हो, हमें इस विषय में विशेष सामग्री उपलब्ध न होने के कारण अधिक नहीं कहना है। (अभी और है)

रण बाँकुरे

[लेखक—श्री० जगमोहनसिंहजी 'मोहन']

युद्ध मेदिनी में वर बाँकुर सुभट नर-
दिल दहलात नाँहि दल के अपार से।
रोम रोम लागै तेग उड़े धज्जी धज्जी तौहु-
'मोहन' निशङ्क नहिं हटत हजार से।
कर ले कृपान काल टूट शत्रु सैन पर-
पल में भगा के ताहि मार ललकार से।
कन्दुक बनाके रिपु शीश की लड़ाई बीच-
गगन के लाल टोल मारें असिधार से।

सिनफीन क्रान्ति १९ वीं शताब्दी में

[लेखक—श्रीयुत सद्गुरुशरण जी अवस्थी बी० ए०]

कभी कभी हम अपने आशावादी बन्धुओं से यह सुना करते हैं कि अब भारतीय स्वाधीनता का प्रश्न हल होने में देर नहीं। ऐसी आशानुरूप बात सुनकर हमारी आत्मा आह्लादित हो उठती है और विवेक हमारे दृष्टि पट से हट सा जाता है। परन्तु जब हम बड़े मनोयोग से इतर राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्रामों पर ध्यान देते हैं तो हमारा भ्रम दूर हो जाता है। हमें मालूम हो जाता है कि अन्य देशों ने स्वाधीनता की प्राप्ति में जितना संगठन-पूर्वक त्याग और बलिदान किया है भारत में अभी उसका आंशिक रूप ही है। आयरलैंड जो आज दो शताब्दियों से स्वाधीनता का प्रश्न हल करने में तल्लीन रहा है अभी तक पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त कर पाया। पर उसका स्वाधीनता प्राप्ति का यह प्रयत्न साधारण कोटि का नहीं। हमारी धारणा है कि आयरलैंड की स्वाधीनता का इतिहास विशालता में अद्वितीय है। संसार में स्वाधीनता की इससे अधिक लंबी लड़ाई नहीं मिलेगी। इसीलिए हम समझते हैं, आयरलैंड का यह त्याग और बलिदान असाधारण और परतंत्र राष्ट्रों के लिए अनुकरणीय है। आयरलैंड को जो कुछ भी सफलता मिली है वह सिनफीन आन्दोलन के के कारण। वास्तव में सिनफीन आन्दोलन का इतिहास ही आयरलैंड की राष्ट्रीय स्वाधीनता का इतिहास है। मि० राबर्ट माइकेल हेनरी ने अपनी (The Evolution of Sinnfein) 'दी इवोल्यूशन आफ सिनफीन' नामक पुस्तक में इस विषय पर पूर्ण प्रकाश डाला है। इसी ग्रन्थ के आधार पर इस आन्दोलन के इतिहास का निदर्शन किया जाता है।

प्रत्येक राजनीतिज्ञ इस बात को स्वीकार करता है कि जब जब इँगलैंड ने आयरलैंड के नर्म दल वालों को शांत करने के लिए उसकी विधेयात्मक माँगों के देने में देरी की है, तब तब प्रायः आयरलैंड के गरम दल वालों में एक बड़ी भीषण अग्नि भड़क उठी है। इसलिए प्रत्येक विचारशील व्यक्ति इस

निश्चय पर पहुँचता है कि अँगरेजों को ऐसी अवस्था में आयरलैंड की विधेयात्मक माँगों को पूर्ण रूप में दे देना चाहिए था। किन्तु बात एक दूसरी है। आयरलैंड के इतिहास का पूर्णतया अध्ययन करने पर इस बात का तुरन्त पता चल जाता है कि माँगों को दे देने से उसमें क्षणिक शान्ति चाहे भले ही हो जाय, किन्तु आयरिश लोग शीघ्र से शीघ्र एक दूसरी माँग पेश करके फिर क्रान्ति करने लग जायँगे। बात यह है कि वे पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं और छोटी छोटी माँगों के मिल जाने से पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग को नहीं छोड़ सकते हैं और न उसमें किसी प्रकार कमी ही कर सकते हैं। आयरिश राष्ट्र ने किसी भी युग में कभी भी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उद्योग को नहीं छोड़ा। लिमरिक के विजय काल से लेकर उसके पराजय-काल तक स्वतन्त्रता के प्रश्न का आयरलैंड में कोई अर्थ न था। उस युग में इंगलिश और आयरिश जातियाँ इस टापू को पूर्णतया जीतने के लिये आपस में युद्ध किया करती थीं। दोनों राष्ट्रों में से किसी को भी यह भय न था कि यदि दूसरा राष्ट्र अपना आधिपत्य इस टापू पर जमा लेगा तो इसका क्या परिणाम होगा। इंगलिश सरकार अपने पशु-बल, कूटनीति अथवा भेद-भाव से इस बात का उद्योग करती थी कि आयरिश जाति पर उसकी नैतिक, भौतिक और राजनीतिक विजय प्राप्त हो जाय। आयरिश-राष्ट्र चाहे अँगरेजों से खुल्लम-खुल्ला मैदान में लड़ें, अथवा यूरोपियन राष्ट्रों द्वारा अपना काम पूरा करने का उद्योग करें, चाहे इँगलैंड के तत्कालीन शत्रु फ्रांस और स्पेन से मिल कर अपना उल्लू सीधा करने का उद्योग करें, उसका तो केवल एक उद्देश रहा है—और वह यह कि आयरिश राष्ट्र को स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाय। इँगलैंड और आयरलैंड की लड़ाई केवल इन दो राष्ट्रों की लड़ाई न होकर भी विभिन्न सभ्यताओं की लड़ाई है। अँगरेजों की वह सन्तान जो आयरलैंड में बस गयी और जिसने आयरिश सभ्यता को स्वीकार कर लिया है, आयरलैंड की स्वतन्त्रता के लिए वैसी ही सरगर्मी और वीरता के साथ लड़ती है, जैसी वीरता के साथ कोई भी आयरिश

लड़ सकता है। ऐसे अँगरेजों की एक ही पीढ़ी से इंगलैंड को वैसा ही भय हो जाता है, जैसा आयरिश कुटुम्ब से। संसार के इतिहास में स्वतन्त्रता के लिये इतने लंबे युद्ध का दूसरा उदाहरण नहीं है। अन्तिम युग की तीन पीढ़ी पश्चात् ही आयरलैंड में स्वतन्त्रता प्राप्त करने की धुन सवार हो गई है। संख्या, सभ्यता, संगठन और कूटनीति में अपने अधिक बलशाली राष्ट्र से उसे निरन्तर लड़ना पड़ रहा है।

जिस समय अङ्गरेजों ने लिमरिक जीत लिया, उन्हें एक प्रकार से यह विश्वास हो गया कि उन्होंने सम्पूर्ण आयरिश राष्ट्र को पूर्णतया जीत लिया है। सचमुच आयरिश राष्ट्र बिल्कुल तहस-नहस कर दिया गया था और अङ्गरेजों ने उसको सदैव के लिए दास बनाये रखने के उद्योग में कोई बात नहीं उठा रक्खी थी। मालूम होता था कि आयरलैंड पर इस समय से एक बंदी की भाँति शासन किया जायगा। आयरलैंड के कैथलिक सम्प्रदाय वालों के लिए साधारण नागरिकता के अधिकार भी प्राप्त नहीं थे, अतएव समस्त आयरलैंड के दो तिहाई भाग को राष्ट्रीय व्यवस्था का आश्रय अलभ्य था। राष्ट्रीय व्यवस्था से लाभ तो केवल प्रोटेस्टेंट समुदाय के वे अङ्गरेज ही उठाते थे, जो आयरलैंड में जा कर बसे थे और इनके अतिरिक्त प्रोटेस्टेंट समुदाय के कतिपय आयरिश लोग अठारहवीं शताब्दी तक प्रत्येक आयरलैंड निवासी के हृदय में इस राष्ट्रीय व्यवस्था के अस्तित्व का कोई मूल्य न था। उनके अन्तःकरण में तो यह बात पूरी तरह जम गयी थी कि जब तक हम आयरलैंड के निवासी रहेंगे, तब तक हमें दुख भोगना ही बदा है। कारण, यदि राष्ट्रीय व्यवस्था हमारे लिए लागू भी हो जाय तो भी उस से हमारा कोई लाभ न होगा क्योंकि वह हमारे अनुकूल नहीं। आयरलैंड के व्यवसाय और उद्योग-धन्धों को भी बड़ी ही निर्दयता के साथ नष्ट किया गया। जो इंगलैंड निवासी आयरलैंड में आ कर बसते थे, उनको आयरलैंड निवासियों पर अत्याचार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती थी। ऐसे आयरलैंड निवासियों पर भी उनकी कुछ कम क्रूर दृष्टि नहीं रहती

थी, जो इंगलिशमैन होते हुए आयरलैंड में आ कर बसे थे। आयरलैंड एक ऐसा कारागृह सा समझा जाता था जिसमें आकर कहीं का भी उत्पन्न हुआ मनुष्य मनुष्य नहीं रहता। निदान, सब आयरिश मिल गये और उन्होंने स्वतंत्रता की आवाज़ उठाई। आयरलैंड में होने वाले अङ्गरेज़ों के अत्याचारों का विरोध किया गया और समयानुसार धमकियाँ भी दी गईं, किन्तु कोई परिणाम न हुआ। उद्योग किया गया कि आयरिश पार्लमेन्ट इङ्गलिश पार्लमेन्ट से पृथक कर दी जाय। परन्तु इस प्रकार की माँग क्रान्ति समझी गयी और लिमरिक के पतन के एक शताब्दी के पश्चात्, सन् १७८३ ई० में, वृटिश पार्लमेन्ट ने रिनन्सियेशन Renunciation एक्ट द्वारा यह घोषित किया गया कि सारा आयरिश राष्ट्र इँगलैंड की पार्लमेंट द्वारा पास किये गये नियमों से पूर्ण रूप से अनुशासित किया जायगा। किन्तु उस समय आयरिश लोग मोलीनो स्विफ्ट और ग्रेटन की परिभाषा के अनुसार स्वतन्त्रता की माँग रख रहे थे। ह्यूजनील की स्वतन्त्रता की परिभाषा से उस स्वतन्त्रता की परिभाषा में बड़ा अन्तर है। अमेरिका में आयरिश लोगों ने अपना जो उपनिवेश बना लिया था, उसके निवासियों ने भी आयरिश स्वतन्त्रता के लिए पर्याप्त सहानुभूति दिखलाई। आयरलैंड की जन संख्या बढ़ने लगी, व्यवसाय और उद्योग धंधों की उन्नति हुई और आयरिश झंडा एक बार फिर समुद्रों पर दिखलाई देने लगा। परन्तु पुरानी जाति को अभी तक आयरिश भूमि पर वैसे ही कष्ट थे। स्वयंसेवकों ने सरकारी नियमों के विरुद्ध अपना स्वर ऊँचा किया और पार्लमेन्ट ने भी आयरिश कैथलिक लोगों पर ज्यादती करना कम कर दिया। सन् १७९३ ई० में इन लोगों को नागरिकता के स्वत्व प्राप्त हो गये। यदि कहीं उस समय आयरिश पार्लमेंट ब्रिटिश पार्लमेंट से पृथक् हो जाती तो ऐसे कड़े क़ानून किसी प्रकार आयरिश जनता पर न लगाये जाते। नागरिकता के स्वत्व दे देने पर भी इँगलिश मंत्रियों की दृष्टि आयरलैंड पर वैसी ही कड़ी बनी रही। बात बात में ये लोग आयरलैंड के कामों में हस्तक्षेप करते और उसे क्षति

पहुँचाते थे। आयरिश पार्लमेंन्ट के अधिकार सदैव खतरे में रहते थे। क्योंकि ब्रिटिश मंत्री सम्राट् और वायसराय की कार्य-कारिणी समिति द्वारा आयरिश शासन नीति का संचालन करते थे। आयरलैंड के कैथलिक पार्लमेंट में घुस नहीं पाते थे। जनता जिन सुधारों को पार्लमेंट में पेश करना चाहती थी, वे सदैव अस्वीकृत हो जाते थे। आयरिश लोगों का ध्येय यह था कि प्रत्येक समुदाय के आयरिश को स्वतंत्र और समान प्रतिनिधित्व के अधिकार मिलें किन्तु इसके लिए उन्होंने जो आन्दोलन किया, उसमें वे असफल हुए। इसके बदले में उन पर कड़े कड़े कानून लगाये गये। अतएव बाध्य होकर आयरिश लोग वर्तमान सरकार को जड़ से उखाड़ देने के लिए, आयरलैंड के स्वत्वों की रक्षा की दृष्टि से, गुप्त रीति से अपना काम करने लगे। छिपी हुई संस्थाओं का पुनः उद्घाटन हुआ। आयरलैंड की प्रजातन्त्र-पार्टी का यह प्रथम स्वरूप है। इस पार्टी ने सहायता देने के लिए फ्रांस से अपील की, परन्तु स्वतंत्रता के लिए इस पार्टी के लोग इतने आतुर थे कि उन्होंने फ्राँसीसी सरकार से कहा कि आयरलैंड में फ्रांस की जो सेना सहायतार्थ आवे वह इतनी अधिक न हो कि आयरलैंड पर अपना अधिकार स्थापित करले। अँगरेजों को इस षड़यंत्र का पता लग गया और उन्होंने बड़ी निर्दयता के साथ इस प्रयत्न को कुचल दिया। स्थान २ पर सरकार ने अपने एजेन्ट भेजे और आयरिश संघ स्थापित किये। अँगरेजी सेनाएँ इस बात की दुहाई देती हुई आयरिश भूमि पर बड़ी संख्या में डट गयीं कि आयरिश सरकार को सहायता की जा रही है और क्रान्ति का आमंत्रण करके उन्होंने आयरिश आन्दोलन कारियों को बड़ी ही निर्दयता पूर्वक दबा दिया।

क्रान्ति की इस नीति को अच्छी तरह से समझने के लिए हम लोगों को अठारवीं शताब्दी की पिछली घटनाओं पर दृष्टि पात करना होगा। लिमरिक की विजय के समय से ऐसा ज्ञात होता था कि आयरलैंड में संग्राम का अन्त हो जायगा। क्योंकि उस समय आयरलैंड पूर्ण रूप से अँगरेजों के हाथों में आ गया था। इस विजय से उनको व्यापारिक

विजय भी प्राप्त हुई। जो उद्योग धन्धे इङ्गलैंड के व्यापार के प्रतिद्वंद्वी समझे गये, उनका नाश कर दिया गया। आयरलैंड, व्यापारिक क्षेत्र में जिस जिस अंश में अंगरेजी व्यापार का सामना करने का साहस कर सकता था, उसी-उसी अंश में उसका नाश कर दिया गया। कहीं फिर उससे युद्ध न करना पड़े, इस भय से और व्यापारिक परतन्त्रता पूर्ण रूप से स्थिर रखने की दृष्टि से, अंगरेजों ने एक विशेष नीति का उद्घाटन किया। आर्क बिशप बोल्टर इन सुन्दर शब्दों में—Filling the great places with natives of England अर्थात्, इंगलैंड के निवासियों को आयरलैंड के उच्च-पदों में भर देना ही इस नीति का मुख्य उद्देश्य था। रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंट लोगों में भी वैमनस्यता उत्पन्न कराने का उद्योग किया गया। इस बात की पूर्ण चेष्टा की गयी कि इस प्रकार एक राष्ट्र को खंडों में विभक्त कर दिया जाय। उन लोगों को आपस के झगड़ों में डाल कर इंगलैंड अपनी लूट का कार्य जारी रक्खे और शासन भी शान्ति से हो जाय। आयरिश जाति सदैव विदेशियों को अपने में मिला लिया करती थी। जब जब किसी राष्ट्र के लोग वहां आकर बसे, तब-तब वे आयरिश जाति में इतने मिल गये कि उनका पता लगना कठिन हो गया। परन्तु इस बार जातीय वैमनस्यता को उभाड़ कर विदेशी आगन्तुकों और आयरिशों में एक बड़ा झगड़ा उत्पन्न कर देने का उद्योग किया गया। किन्तु दैवयोग से, आर्कबिशप बटलर के कथनानुसार, इस नीति का परिणाम नितान्त विपरीत हुआ। बटलर साहब का कथन है कि इस नीति द्वारा जिस समय प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथलिक लोग मिल जायँगे उस समय आयरलैंड में अङ्गरेजों के लाभों को सदैव के लिए विदा होना पड़ेगा। बात भी यही थी। उत्तम नीति के संचालकों से काम भी ठीक न करते बना। आयरिश प्रोटेस्टेंट लोग प्रोटेस्टेंट होने से उतना लाभ नहीं उठा सकते थे, जितनी हानि उन्हें आयरिश-निवासी होने से उठानी पड़ती थी। प्रोटेस्टेंट और कैथलिक मतावलम्बी आपस में मिलकर अङ्गरेजों की नीति का घोर-विरोध करने लगे और उनके आपसी झगड़े शान्त हो गये। यही कारण था कि डीम स्विफ्ट ने जब अङ्गरेजों की नीति के विरुद्ध विज्ञापन छपवा कर बटवाए, तो कैथलिक और प्रोटेस्टेंट मतावलम्बी आयरिश निवासियों ने उनका हृदय से स्वागत किया। अठारहवीं शताब्दी के इसी समय से स्वातन्त्र्य संग्राम का श्रीगणेश समझना चाहिए।

श्री खड्गबहादुर की खड्गबहादुरी

[लेखक—श्री० किशोरीदासजी वाजपेयी, शास्त्री]

हीरा-वध या हीरा-बेध

घोर अत्याचार जब देखे होत माया[1] पर,
त्यों ही फिरि वज्र[2] तू ही माखन पिघलिगो ।
उठ्यो पुनि उही सत-साहस उछाह पग्यो,
करनी करन यौं जो देखि जग जगिगो ॥
हीरा[3] डाख्यो फोरि तोरि हियरो हू बेधि डाख्यो,
कियो सारहीन अन्तरात्मा[4] निकरिगो ।
निलज निगोड़े कामी हियरे पै राखैं ताहि,
खड्ग बहादुर ! जौ तेरे बल नसिगो ॥१॥

निरुक्त

सुनो हो नैपाली[5] वीर निकस्यो नै-पाली[6] सही,
चोखी पाली वीर-नीति लाली[7] कीर्ति सेत है ।
राजनीति-धारी तूने धर्म-नीति धारी नीके,
फीको परो पापी पुनि कामी भयो प्रेत है ॥
खड्ग बहादुर की देखी खड्गैती धन्य,
तेरो नाम आज भयो साँचो जग जेत है ।
माया माहिं माया कर लीन्हीं जू उबारि तूने,
माया-धेनु राखि भयो गौ-रखा सहेत है ॥२॥

---

(१) राजकुमारी माया और सम्पत्ति (२) इन्द्र का आयुध और हीरा बेधने का हथियार (३) पापी हीरालाल और हीरा नाम का पत्थर (४) जीव और हीरे का भीतरी भाग (५) नेपाल का निवासी (६) नीति-नय-नै का पालन करने वाला (७) लाल (विरोधार्थ) लालित की (मुख्यार्थ) ।

कवि-कीर्तन

भवानी चरित्र

[लेखक—श्रीयुत मधुसूदनजी चतुर्वेदी, विशारद]

आजकल सभी साहित्य-सेवी इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि प्राचीन कवियों की कोई भी कृति किसी प्रकार से हस्तगत हो जाने पर नष्ट न हो जाय। सभी सज्जन इसमें ऐसी पुस्तकों को खोज खोज कर उसके विषय में अपने विचार पूर्ण रूप से प्रकट करते हैं और तभी अन्य लोगों का ध्यान उस पर आकर्षित होता है। इस तरह से बहुत से अमूल्य रत्न दीमक देवी की क्षुधा पूर्त्ति न करके साहित्य-मर्मज्ञों के ज्ञान पिपासा की पूर्त्ति करते हैं।

आज मैं ऐसे ही एक रत्न की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं जो कि शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। यह पुस्तक सं० १८६८ वि० की लिखी हुई है और इसका नाम भवानी-चरित्र है। कदाचित् ही किसी सज्जन ने इसके रचयिता का नाम सुना होगा पर अब शीघ्र ही लोग इस नाम को भी गौरव के साथ लेने लगेंगे। आपका नाम अच्छिर-अत्रिन है। आप के वंश के विषय में, तथा काल के विषय में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। इनकी वर्णन शैली, छन्द चुनाव तथा भाषा देखकर यह सूदन-श्रेणी के कवि प्रतीत होते हैं और उन्हीं के समकालीन भी प्रकट होते हैं। जिस तरह से सूदन सुजान-चरित्र में कई छन्द काम में लाए हैं, जिस तरह उन्होंने शब्दों को तोड़ा मरोड़ा है, और जिस तरह से उन्होंने युद्ध का वर्णन किया है, सब उसी प्रकार अच्छिर अत्रिन के भी वर्णन हैं।

पुस्तक में मुख्य विषय भवानी और राक्षसों का युद्ध वर्णन है जिसको कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से कहा है, पुस्तक यद्यपि वीर-रस से ओत-पोत है पर स्थान स्थान पर अन्य रसों का भी समावेश किया गया है। देखिए युद्ध में कोप कैसा होता है:—

लहि आयसु पाइ रिसाइ सुरी, गल गाजि परी झक रुंडनि में।
जितहीं जित दैयत आनि अरैं, तितहीं तित मारतो मुंडनि में॥
कहि 'अच्छर' बाहु महारिपु भेरत, पैरत श्रोणित कुंडनि में।
बल केहरि ज्यों बलि केलि करैं, अरि कुंजर पुंज प्रमुंडनि में॥ १॥

देखिए पाठक-गण युद्ध की कैसी बहार है, दृष्टान्त-अलंकार के साथ साथ छेक तथा वृत्ति अनुप्रास अपनी अनोखी छटा छिटका रहा है। आइए दूसरे दृश्य का अवलोकन कीजिए महिषासुर भवानी के युद्ध का चित्र भी देखिए कैसी सरलता से आँखों के सामने आता है:—

कबहूँ महिषु ह्वै कें श्रंगनि चलावै गिरि,
कबहूँ वृषभु ह्वै कें डाफ निकरतु है।
कबहूं गयन्द ह्वै कें घोर गल गाजतु है,
कबहूं कि सिंघ ह्वै कें सिंघ सों लरतु है॥
कबहूँ बिलारु ह्वै कें लुकतु झुकतु फिरै,
'अच्छिर' अछिन वेष केतिक धरतु है।
जोई पासु करै देवि, सोई पलटतु रूप,
क्यों हू न महिषासुर पासु में परतु है॥ २॥

रूप परिवर्त्तन के बायस्कोप को देखकर युद्ध के अन्त में भवानी के अन्तर्ध्यान होने का वर्णन भी देखिए कैसा रोचक है:—

मारि महा महिषासुर कों, रन में गरजी रन-गंजनि रानी।
विष्णु, विरंचि, महेषु सुरेस, करी बहु अस्तुति वेद प्रमानी॥
दै सब को बरदान विसेष, भई तब आपुन अन्तरध्यानी।
फूलि सबै सुर राजु करैं, सु जपैं भय भंजनि आदि भवानी॥ ३॥

देवताओं की भवानी से प्रार्थना की रोचकता के विषय देखिए:—

जाति रूप, जोति रूप, गुन रूप, ज्ञान रूप,
सोभा रूप, सम रूप, सुधा रूप तुही है।
इच्छा रूप, दया रूप, माया रूप, बुद्धि रूप,
पला रूप, बल रूप, बानी रूप तुही है॥
श्वास रूप, प्यास रूप, निद्रा रूप, क्षुधा रूप,
चिन्ता रूप, चित्र रूप, चैतन्यतासु जुही है।
नाना रूप व्यापक प्रसक्ति-रूप, सक्ति में,
सुजक्त में अधार एक जक्त मातु तुही है॥ ४॥

तुही जगत् आधार जगत् माता भय भंजनि।
निराधार सुर सकल विकल तुव सरनि निरंजनि॥
दीन्हें असुर निकारि हेरि कोऊ बात न बूझहि।
तुव आसर लीय आइ माइ अरि ठौर न सूझहि॥
अब जब तब आसा तुही, आदि मध्य अन्तहु मननि।
अब तच्छि न रच्छस हतन-सुर, रच्छि-रच्छि संग्रथ जननि॥ ५॥

ज्यों मधु कैटभ कौं बधि कै, विधि राखि लियो अपने कर कंजनि।
ज्यों महिषासुर को हति कें, सुर पालि सबै सुख दै दुख भंजनि॥
त्योंही पुकारत आरत हैं, हमें मारत सुंभ निसुंभ निरंजनि।
दीन विचारि दया करिकैं, अब रच्छि हमें सरनें भव भंजनि॥ ६॥

सुम्भ निसुम्भ का समराम्भ में प्रयत्न देखने योग्य है:—

गर्जि दुष्ट बल पुष्ट अस्त्र सस्त्रन बहु छंडित।
जिमि घेरत घन घोर मेघ मंडल झर मंडित॥
पुरीयवान असमान बान बिन ठवर न सुम्भहि।
उलटि २ लगे अस्त्र शस्त्र आधे अपु जुम्भहि॥
कहि अच्छर भखत अकूत भव, भवन भूत अद्भुत समर।
हरि हर विरंचि जंपहि कुशल, सु त्राहि त्राहि जंपहिं अमर॥ ७॥

भवानी का प्रकोप भी देखिए:—

देखि शत्रु जूह अत्र जूह कूह लोकनि में,
हूह कै फतूहनि सम्हारी रिपु गंजिनी।
साधें धनुबान घोर त्रान अरि प्रान लैने,
भ्रकुटी कमान सो चढ़ाई श्री निरंजिनी॥
अच्छिर 'अछिन' कोप अग्नि तें प्रचण्ड अंग,
प्रज्वलित ज्वाल ज्वाला माला तन कंजिनी।
कै कै सिंह नाद सिंह पेलति रिसानी रोस,
गाजी घोर बानी श्री भवानी भय-भंजिनी॥ ८॥

भवानी के रोष का कैसा रोचक वर्णन है। पढ़ते ही पढ़ते मन उत्साहित हो उठता है, चित्त फड़क उठता है। एक उदाहरण हम भवानी की कृपा का और देते हैं। एक राजा के भवानी का ध्यान करने पर भवानी स्वयं प्रकट हुई हैं.—

नदी तीर तेहि बरन थापि प्रन में श्री मूरति।
फूलि रुचिर फल फूलि चित्त धरि सुन्दर सूरति॥
इक टक दृष्टि लगाइ इष्ट चरननि चित चरचत।
श्रीभवानि रत मानि जपत नित प्रतिदिन अरचत॥
तब भूख न प्यास न नींद भय, सिंह बाघ गुंजर निकट।
इमि तीन बरस बृतु देखि कें हुव प्रसन्न अम्बा प्रकट॥

पाठकगण, इस समय इतने ही काव्यामृत से अपनी पिपासा तृप्त करनी होगी। विशेष परिचय के लिये धैर्य धारण कीजिए।

सन्तोष

[लेखक—कविवर श्री० केदारनाथ जी मिश्र गौड़, 'प्रभात']

हाँ, है याद प्रतिज्ञा की थी तुमने कभी अहो सुन्दर!
और आज बैठे हो इन मुस्काते फूलों में छिपकर!!
मधु की चाह नहीं किंचित् फिर भी मधुकर बन आया हूँ;
रोने!—व्यथा हृदय की रोने तेरे पंकज-चरणों पर!
न बोलते! तो यही सही सन्तोष इसी से करलूँगा!
प्यारे! तेरी नीरवता से अपनी वीणा भर लूँगा!!

साहित्य परिचय

भारतवर्ष का इतिहास—लेखक-श्री० बी०, एन० मेहता बी० ए०, प्रकाशक-यूनिवर्सिटी बुक डिपो, आगरा, पृष्ठ ५६८, मूल्य २॥)

भारतवर्ष के इतिहास पर अनेकों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और लिखी जा रही हैं। शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो जाने से अब विशेष रूप से हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। प्रस्तुत पुस्तक स्कूलों की शिक्षा के लिये ही तैयार की गई हैं। प्रान्तीय शिक्षा विभाग ने हाई स्कूल परीक्षा के लिए इतिहास का जो पाठ्यक्रम रक्खा है, उसी के अनुसार यह पुस्तक तैयार की गई है। सन्तोष का विषय है कि लेखक को पुस्तक रचना में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है और प्रसन्नता की बात है कि उन्होंने इसे भारतीय दृष्टि-कोण से लिखा है। हमारी सम्मति में यह इतिहास जिस कक्षा के विद्यार्थियों के लिए बनाया गया है, उसके सर्वथा उपयुक्त है। तीस चित्रों और पच्चीस मानचित्रों ने पुस्तक की शोभा और उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है।

कम्यूनिज्म क्या है?—लेखक और प्रकाशक-श्री० राधा-मोहन गोकुलजी, मिलने का पता-सोशलिस्ट बुक शॉप, कानपुर, पृष्ठ १५९, मूल्य ॥=)

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है। हमारे देश में यद्यपि अभी कम्यूनिज्य का प्रचार नहीं है, फलतः लोगों को उसका ज्ञान भी नहीं है, परन्तु यूरोपीय देशों में इसका खूब जोर है। प्रस्तुत पुस्तक से इस विषय का प्रारम्भिक साधारण ज्ञान भली भाँति हो जाता है।

ग़दर की कहानियां—लेखक-श्री० सत्यभक्त, प्रकाशक-सोशलिस्ट बुक-शॉप, कानपुर, पृष्ठ १५५, मूल्य ॥=)

पिछले दिनों आयरलैंड में राज्य क्रान्ति हुई थी, उसी समय की कुछ कहानियाँ एक अँगरेजी पुस्तक के आधार पर इसमें लिखी गई हैं। पराधीन देश स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए क्या करते हैं और उनपर कैसी बीतती है, इसका किंचित अनुभव इन कहानियों के पढ़ने से हो सकेगा।

महारथी (शक्ति अङ्क)—लगभग डेढ़ वर्ष से 'महारथी' हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा कर रहा है। 'वीर-सन्देश' की भाँति 'महारथी' भी वीर-रस का रसिक है, उसका यह अङ्क विशेषाङ्क है। भिन्न भिन्न विषयों पर सैंतालीस लेख तथा कविताएँ और सत्रह चित्र इसमें दिए हुए हैं। लेख प्रायः सभी विचार पूर्ण और उच्च-भावों से ओत प्रोत हैं। शक्ति के पूजक 'महारथी' ने यह 'शक्ति अङ्क' निकाल कर सचमुच शक्तिशाली होने का परिचय दिया है। हम इसका सादर स्वागत करते हैं। इस अङ्क का मूल्य ।।।) वार्षिक मूल्य ५।।) रु० मिलने का पता—महारथी कार्यालय, चाँदनी चौक, देहली।

निम्न लिखित पुस्तकें भी मिल गई हैं, प्रेषकों को धन्यवाद !

१—कमला की सास—चाँद कार्यालय, प्रयाग।

२—सरस्वती सदन छिप्रा, स्टेट देवास का त्रैमासिक वृत्तान्त।

३—हिन्दुओ उठो—डाक्टर रामशंकर मिश्र।

४—गहोई वैश्य महा सभा के मुख्य प्रस्ताव।

५—कला-वैभव (उद्योग कला विषयक त्रमासिक) वा० मू० १।)

६—वीणा वादिनी (मासिक पत्रिका)—सम्पादक पं० अनूपलाल झा विदुषी, वा० मू० १)

७—विदेशी घी का प्रचार और उसे रोकने के उपाय—प्रेमार्णव पुस्तक मन्दिर, देवबंद।

सामयिक विषय

१—सिंह गर्जना—

चार वर्ष का कठिन कारावास मिला, है, उस वीर-श्रेष्ठ अवारी को जिसने नागपुर में सशस्त्र सत्याग्रह शुरू करके सारे देश में क्रान्ति के भाव पैदा कर दिए हैं। अदालत में दिए हुए अपने वक्तव्य में इस वीर ने जितने स्पष्ट विचार प्रकट किए हैं, जिस निर्भीकता का परिचय दिया है और जैसी बातें कही हैं, वे सब अपूर्वता लिए हुए हैं। वक्तव्य का कुछ अंश पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ दे देना उचित समझा जाता है:—

"भाई मजिस्ट्रेट, यह मैं नहीं स्वीकार करता कि इस अदालत को मेरे मामले पर विचार करने का अधिकार है। कारण यह है कि अँग्रेज़ शासक अनेक भीषण अपराधों के अपराधी हैं।

"उलटे मैं ब्रिटिश साम्राज्यवादियों पर यह जुर्म लगाता हूँ कि तुम लोग हत्यारों, अत्याचारियों, राक्षसों, डाकुओं, शराबखोरों और लम्पटों के दल वाले हो और संसार तुम्हें भ्रष्टों और कायरों का राष्ट्र जानता है।"

"ऐसे ही विख्यात बदमाशों की अदालत में मैं आज १२४ ए० या ऐसी ही किसी दफ़ा के मुताबिक़ लाया गया हूं। ऐसी स्थिति में मैं वहाँ पर बैठे मजिस्ट्रेट और पुलिस वालों से यही कहूंगा कि इस राष्ट्रीय संकट के समय आप जीविका के झूठे लोभ से देश के घोर शत्रुओं की मदद कर रहे हैं। मैं आप लोगों से अनुरोध करता हूँ कि आप ये नौकरियाँ छोड़ कर हमारे प्रजातन्त्र दल में शामिल हो जायँ। आपको भी काफी अन्न-वस्त्र मिलेगा और आपके बाल-बच्चों के पालन-पोषण का भी प्रबन्ध होगा।"

"मैं लड़कपन से ही लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्धी का अनुयायी हूं। मैं ईश्वर की शपथ कर सकता हूं कि केवल भाषण करने का क्या कहना, जलियानवाला बाग़ के हत्याकाण्ड के बाद से मैं सदा भारत से ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ उखाड़ने की पूर्ण चेष्टा में हूँ। केवल राजद्रोह पूर्ण भाषण करने का क्या पूछना?

मैं तो यह कहता हूँ कि हम लोग तब तक सन्तुष्ट न होंगे जब तक कायर डायर के भीषण अत्याचारों के समर्थन करने वाले इस ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ भारत से न उखड़ जाय, और जब तक जलियानवाला बाग़ में अमानुषिक अत्याचार करने वाले सभी दुष्ट उन १२०० शहीदों की कलपती हुई बेवाओं और बच्चों के सामने लाकर हाज़िर नहीं किए जाएँ जो जलियानवाला बाग़ में बम के शिकार हुए थे और जब तक प्रत्येक दुष्ट को भारत में बारह बारह वर्ष की कड़ी कैद की सज़ा नहीं मिलती।"

"गिरफ्तारी कर सेना का संघटन कर मैं टकसाल का काम शुरू करने वाला ही था कि प्रान्तीय सरकार ने हमारे सेना विभाग में हस्तक्षेप किया, हमारे सैनिकों को गिरफ्तार कर लिया, उनके हथियार ज़ब्त कर लिए और एक एक करके उन्हें जेल में भरना शुरू कर दिया। हमारी सेना ने सत्याग्रह किया और दण्ड को वीरता पूर्वक स्वीकार किया। इस समय हमारे इसी विभाग की लड़ाई चल रही है। हमारी सारी शक्ति हथियारों और विस्फोटक द्रव्यों के क़ानून तोड़ने, अर्थात् बंगाली देश-भक्तों को क़ैद रखने के, जिसकी सभी राजनीतिक मत के भारतियों ने निन्दा की है, विरोध में सविनय अवज्ञा करने की ओर लगी हुई है।"

"हम वीर और साहसी पुरुष की अहिंसा का पालन करना चाहते हैं।"

"अतः मेरे प्रिय देशवासियो, आओ, हम वीर पुरुषों की भाँति नङ्गी तलवारों, भाले और बन्दूकों से अपने को सुसज्जित करें। हममें से प्रत्येक जिसकी उम्र १८ वर्ष से अधिक हो, गोला, बारूद और बन्दूक तमंचे बनाने और उनसे काम लेने की कला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे, जैसा कि (भारत के अतिरिक्त) सब राष्ट्र करते हैं, और तब हम दुनियाँ को दिखा दें कि हम सचमुच शूर-शिरोमणि हैं।"

"मैं जन्म से सैनिक हूँ और महात्माजी के अहिंसा सिद्धान्त में दृढ़ता के साथ विश्वास रखता हूं। मेरे बाप-दादा शिवाजी शासन काल में शरीर रक्षक रह चुके हैं। बड़ौदा राज्य में मेरे बाबा काम कर चुके हैं। नागपुर भी शिवाजी की महाराष्ट्र-भूमि में है। इसलिये यहाँ के निवासियों की स्वतन्त्रता के लिये शत्रुओं से लड़ना मेरा कर्तव्य है।"

"जब तक मैं जेल में हूँ उस समय तक मैं अनशन व्रत रक्खूँगा। मैं अपना यह व्रत उस समय तक कायम रक्खूँगा जब तक बंगाल के नज़रबन्द छोड़ नहीं दिये जाते और मुझे अपना खड्ग दे नहीं दिया जाता। मेरे हाथ में अनशन व्रत रखना ही एक मात्र अस्त्र रह गया है। मेरी मृत्यु हो सकती है। मुझ जैसे सैकड़ों देश-सेवक इस देश में जन्म लेंगे और संसार छोड़ देंगे, लेकिन भारतीय राष्ट्र अपना गौरव पुनः प्राप्त करेगा।"

२—श्री सुभाषचन्द्र बोस—

दुनिया जानती है कि एक सुभाष बाबू ही क्या बंगाल आर्डिनैंस के किसी भी कैदी का विचार खुली अदालत में नहीं हुआ। फिर भी अले विन्टरटन जैसे जिम्मेदार व्यक्ति पार्लमेंट में सर्वथा झूठी और बे-बुनियाद बात कहने में न शरमाए, इस से अधिक दुःख और शोक की क्या बात हो सकती है। सुभाष बाबू ने उन सब बात का मुँह-तोड़ उत्तर देकर ब्रिटिश कूट-नीति का भंडा-फोड़ किया है। प्रसन्नता की बात है कि अब आपका स्वास्थ्य अच्छा हो रहा है। परमात्मा करे आप शीघ्र ही स्वस्थ होकर देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन उठावें।



श्री० सुभाषचन्द्र जी बोस।

३-दूसरे खड्गबहादुर शशिमोहन दे—

एक मुसलमान जमींदार के दुराचरण से दुखी हो कर, एक अबला के सतीत्व की रक्षा के लिए, श्री शशिमोहन दे नामक एक बंगाली युवक ने अपने जीवन की चिन्ता छोड़ कर दुराचारी को दोजख का रास्ता दिखा दिया। दे महोदय के इस महान कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी होगी। वास्तव में हिन्दू समाज में आज ऐसे ही कर्म-वीर निर्भीक और सच्चे वीरों की आवश्यकता है। हर्ष है कि सैशन जज ने भी आपके कार्य की सराहना करते हुए आपको साफ छोड़ दिया। अतएव हम आपको 'डबल' बधाई देते हैं।

४-हिन्दी पत्रों की दशा—

हिन्दी में समाचार-पत्र निकालना बड़ा कठिन काम है। करोड़ों हिन्दी-भाषा-भाषी होते हुए भी हिन्दी पत्रों को सैकड़ों हज़ारों ग्राहकों का भी न मिलना कितने परिताप का विषय है—यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं। ग्राहक न मिलने का कारण पत्रों का उपयोगी न होना हो, सो बात नहीं है। 'स्वार्थ', 'मर्यादा', 'प्रभा' और 'श्री शारदा' में किस बात की कमी थी? वैसे पत्र तो अभी तक दूसरे कोई निकले नहीं, फिर भी वे दीर्घ-जीवी न हुए। हमारी समझ में इसका एक मुख्य कारण हिन्दी प्रेमियों की उदासीनता और उपेक्षा ही है। इसी कारण से हाल में तीन अच्छे पत्र बन्द हुए हैं:—'हिन्दी मनोरञ्जन' (मासिक), 'सेनापति' (साप्ताहिक) और 'अभ्युदय' (दैनिक)। निस्संदेह 'हि० मनो०' अपने ढंग का एक ही पत्र था। पर जैसा उसने अपने अन्तिम वक्तव्य में लिखा है, यह बात सत्य है कि, अभी विषय विशेष के पत्रों का आदर करने की क्षमता हिन्दी भाषियों में नहीं आई है। उनके लिए तो 'भानमती के पिटारे' की तरह 'विविध विषय विभूषित' एक ही पत्र होना चाहिए। 'सेनापति' नया पत्र था, पर था अच्छा, वह भी न चल सका। रहा 'दैनिक' अभ्युदय सो कोट्याधीसों की संरक्षता में रह कर भी बन्द होगया तो औरों की कौन कहे। हमें अपने इन सहयोगियों के इस प्रकार विलीन हो जाने का हार्दिक खेद है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वे दूने उत्साह से फिर शीघ्र ही अवतीर्ण हो कर हिन्दी संसार की सेवा कर सकें।

इसी संबन्ध में हम सहयोगी 'श्रीकृष्ण सन्देश' का उल्लेख करना भी आवश्यक समझते हैं। बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि एक वर्ष पश्चात् 'सन्देश' फिर प्रकाशित होने लगा। 'सन्देश' के सम्पादक, प्रकाशक, रंग ढंग सब कुछ पूर्ववत् है। पहले थोड़े ही समय में इस सहयोगी ने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी, विश्वास है कि गर्देजी के कुशल-करों में अब यह और भी उन्नति प्राप्त करेगा और इस से हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि होगी।



मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग १ — श्रावण शुक्ला २ संवत् १९८४ — अङ्क १०
ता० ३० जुलाई १९२७

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क का ।)

विषय-सूची

वीर-सन्देश के पुरस्कार

कार्तिक में जाँच हो कर पुरस्कार बटेंगे

परीक्षक हिन्दी के धुरन्धर विद्वान होंगे

वीर-सन्देश ने अपने प्रथम वर्ष में प्रकाशित सर्वोत्तम तीन कहानियों पर ५०), कविता पर २५) और लेखों पर रजत पदक देने की घोषणा की थी। यह सब पुरस्कार कार्तिक में दिए जायँगे।

अभी समय है

जो सज्जन चाहें अपने कविता, लेख या कहानी भेज कर इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं।

सभी रचनाएँ वीररस पूर्ण होनी चाहिए।

वीर-सन्देश



लोकमान्य तिलक

परम-स्वाधीनता-प्रेमी अभागे देश की गति थे।
अगर थे वीरता में भीष्म, विद्या में बृहस्पति थे॥
रहे शर शय्या पर लेकिन नहीं हिम्मत में खामी की।
यही हसरत रही जञ्जीर तोड़ूँ मैं गुलामी की॥

—त्रिशूल

हावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग १ { आगरा—श्रावण शुक्ला २ सं० १९८४—वीर सं० २४५३ अगस्त १९२७ } अङ्क १०

वीर-सन्देश

[लेखक—श्रीयुत पं० हरिशङ्कर जी शर्मा, कविरत्न]

यही है वीरों का सन्देश !
भारत माता बिलख रही है, काटो कष्ट-कलेश।
कर्मसिंह की भाँति कटक में कूदो बन वीरेश॥
यही है वीरों का सन्देश !
दुर्बलता का दुर्ग विदारो, सजो साहसी वेश।
अत्याचारी, दुराचारियों का न रहे लव-लेश॥
यही है वीरों का सन्देश !
बल हीनों में बल संचारो करो नीति निर्देश।
दीन अनाथों को अपनाओ, चले जहाँ तक पेश॥
यही है वीरों का सन्देश !
स्वाभिमान सम्पन्न रहो, है जब तक जीवन शेष।
प्राणों से भी बढ़ कर प्यारा, समझो अपना देश॥
यही है वीरों का सन्देश !

वीरवर क्रोपाटकिन

[लेखक—श्रीयुत पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी]

संसार में कभी कभी ऐसी आत्माएँ आती हैं जो भोग विलास पूर्ण जीवन को छोड़ कर जगत् के दीन-हीन आदमियों के उद्धार के लिए तप करना अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लेती हैं। यद्यपि इन महात्माओं का जीवन कष्ट पूर्ण होता है, पर संसार को छोड़ते समय उन्हें यह हार्दिक आनन्द होता है कि उन्होंने सहस्रों प्राणियों के अन्धकारमय हृदय-स्तल तक आशा की ज्योति पहुँचाई। ऐसे नर रत्न शताब्दियों बाद जन्म लिया करते हैं। प्रिंस क्रोपाटकिन जिनका कि संक्षिप्त जीवन चरित्र 'वीर-सन्देश' के पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है, ऐसे ही नर-रत्नों में से थे।

क्रोपाटकिन का जन्म रूस के मास्को नगर में सन् १८४२ ई० में एक राज घराने में हुआ था और यहीं उनके जीवन के प्रारम्भिक १५ वर्ष व्यतीत हुए। आपके पिता प्रिंस एलैक्ज़े पैट्रोविच क्रोपाटकिन एक पुराने राज-कुटुम्ब के थे और आपकी माता एक रूसी सेनापति की पुत्री थीं। पिताजी अनुदार विचारों के थे, पर माताजी के विचार बड़े उदार थे और वे साहित्य-प्रेमी भी थीं। जब क्रोपाटकिन ३॥ वर्ष के थे, आपकी माता का देहान्त हो गया। पिताजी ने दूसरा विवाह कर लिया। सन् १८५७ ई० में १५ वर्ष की आयु में आप सैण्टपीटर्स बर्ग के सैनिक विद्यालय में भरती हुए। यह विद्यालय केवल राजकुमारों के ही लिए खोला गया था और इसमें रूस के प्रभावशाली धनाढ्य आदमियों के १५० लड़के पढ़ते थे। सन् १८६२ तक वे इस विद्यालय में रहे और यहाँ उन्होंने फ्रैंच विश्वकोष का बहुत सा भाग पढ़ डाला और फ़रासीसी इतिहास का भी अध्ययन किया।

बाल्यावस्था में क्रोपाटकिन ने रूसी दासों की दुर्दशा अपनी आँखों देखी थी और इसका आपके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था।

दासों को जिस प्रकार बिना किसी अपराध के दण्ड दिया जाता था और उनके साथ जैसी पशुता का वर्ताव किया जाता था यह सब देखकर उनका हृदय बीसियों बार द्रवित हो चुका था। क्रोपाटकिन को कई वर्ष तक रूस के ज़ार के अनुचरों में रहने का सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त हुआ था और इस प्रकार वे ज़ार के तथा उस समय के धनी समाज के दुराचार-मय जीवन से काफ़ी परिचित हो गए थे। सन् १८६२ में आपने सैना विभाग में प्रवेश किया। फिर आपने ट्रान्स बेकालिया के गवर्नर के सेक्रेटरी बन कर कुछ दिन काम किया और फिर पूर्वी साइबेरिया के गवर्नर जनरल के साथ भी रहे। क्रोपाटकिन के हृदय की अभिलाषा थी कि उन्हें शासन करने के अवसर मिलें और वे अपने उदार विचारों का शासन क्षेत्र में उपयोग कर सकें, पर अनुभव से उन्हें ज्ञात हो गया कि इस ढङ्ग से शासन में सुधार नहीं किए जा सकते थे। सन् १८६४ ई० में आपने भौगोलिक अनुसन्धान का काम अपने हाथ में लिया और दो बार इसके लिए बड़ी लम्बी यात्रा की। इन यात्राओं के कारण भौगोलिक संसार में आपकी बड़ी ख्याति हुई क्योंकि आपने अनेक नयी बातोंका पता लगाया था। सन १८६७ में फौज का काम छोड़ कर आप सैण्टपीटर्स वर्ग को चले आये और वहाँ के विश्व विद्यालय में पढ़ने लगे। साथ ही साथ रूसी भौगोलिक परिषद् के एक विभाग के सैक्रेटरी का काम भी आप करते थे। अनुसन्धान करके आपने एशिया के मानचित्र में एक भयंकर भूल निकाली जो भौगोलिक जगत में एक महत्वपूर्ण घटना थी। सन् १८७१ ई० में आप फिनलैण्ड में बर्फ की नदियों के अनुसन्धान का काम करने के लिए भेजे गए। यहीं पर आपके जीवन में एक महान परिवर्तन हुआ। आपने कहा—

"विज्ञान की जितनी उन्नति हो चुकी है वह बहुत काफ़ी है निस्सन्देह अनुसन्धान करने में अलौकिक आनन्द आता है। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ, पर जब कि मेरे चारों ओर किसान भूखे मर रहे हैं दिन रात परिश्रम करने पर भी उन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता

तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं अनुसन्धान के आनन्द का उपभोग करूँ ? मेरे अकेले के ज्ञान प्राप्त करने से क्या होगा ? जो ज्ञान मैं प्राप्त कर चुका हूँ उसको सर्व साधारण तक पहुँचा देना मेरा प्रथम कर्तव्य है। और यह ज्ञान ये तब प्राप्त कर सकेंगे जब इन्हें पेट भर भोजन मिले और अपने कष्टमय जीवन से कुछ अवकाश मिले"। बस इसके बाद आपने विज्ञान क्षेत्र को तिलाञ्जलि देकर अपने दीन-हीन भाइयों की सेवा करने का व्रत ग्रहण किया। सन १८७२ में आप अराजक वादियों के दल में सम्मिलित हो गए और यहाँ से आपके जीवन की वह रामकहानी प्रारम्भ होती है जो किसी भी उपन्यास से अधिक विचित्र और किसी भी धर्म ग्रन्थ से अधिक पठनीय है। अराजक वाद के प्रचार करने के कारण सन १८७४ में आप पकड़े गए और एक भयङ्कर जेल में ठेल दिये गए, पर दो वर्ष बाद बड़ी वीरता पूर्वक आप वहाँ से निकल भागे और इङ्गलैंड में आ पहुंचे। वहाँ से स्विटजरलैण्ड पहुंच कर आपने साम्यवाद का प्रचार किया। सन् १८७७ में आपने पेरिस पहुंच कर वहाँ साम्यवाद का प्रचार किया और फिर १८७८ में स्विटजरलैण्ड को लौट आये। १८८१ में स्विटजरलैण्ड की सरकार ने आपको देश निकाले का दण्ड दिया। १८८२ में फ्रेञ्च सरकार ने आप पर अभियोग लगा कर ५ वर्ष के लिए जेल में भेज दिया। बहुत कुछ आन्दोलन होने के बाद आप १८८६ में छोड़ दिये गए और लन्दन के निकट रहने लगे। जून सन १९१७ ई० में ४१ वर्ष के बाद आप अपनी मातृभूमि रूस को फिर वापिस आए। रूस अब स्वाधीन हो चुका था, पर इस स्वाधीनता का श्रेय मुख्यतया क्रोपाटकिन तथा उनके साथियों को ही था। राजघराने के सुखों को छोड़ कर किस तरह किसानों का सा जीवन व्यतीत करते हुए और अनेकों संकटों का सामना करते हुए क्रोपाटकिन को अपने दिन काटने पड़े, कैसे कई बार उनके प्राण जाते जाते बचे, कैसे जान को हथेली पर रख कर उनको काम करना पड़ा। इनकी कथा बड़ी लम्बी है और उसे हम यहाँ स्थानाभाव से नहीं दे सकते।

क्रोपाटकिन अराजकवादी होते हुए भी खून के प्यासे नहीं थे। उनका हृदय अत्यन्त कोमल था। 'अराजकता' के सिद्धान्त पर जितना अध्ययन और मनन उन्होंने किया था उतना संसार के शायद ही किसी दूसरे सज्जन ने किया हो, इसीलिये वे इस विषय के सर्व श्रेष्ठ आचार्य माने जाते थे। वे ऐसे संसार की कल्पना करते थे जिसमें राज्य तथा शासन का अभाव हो और जहाँ व्यक्तियों तथा जन समुदाय को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता हो। ८ फरवरी सन् १९२१ को मास्को नगर में आप स्वर्गवासी हुए।

क्रोपाटकिन की तरह की आत्माएँ संसार में कभी-कभी आती हैं, दुनयवी आदमी 'स्वप्न देखने वाला आदर्शवादी' कह कर उनका मज़ाक उड़ाते हैं, पर वे दुनिया के हृदयस्तल पर अपने विचारों की छाप छोड़ जाते हैं और यदि संसार में कभी साम्यवाद के सिद्धान्तों का भरपूर प्रचार होगा और निर्धन आदमी भी अपने मानवोचित अधिकार पावेंगे तो वह उस तपस्या के ही कारण होगा जो वीर क्रोपाटकिन की तरह की आत्माओं ने की है।

:*:

गोस्वामी तुलसीदास

[लेखक—श्री० पं० रामप्रसादजी सारस्वत बी० ए०, एल० टी०]

प्रीति प्रतीत जगी जग में भ्रम भीति भगी सब व्याकुलसी।
रीति सनेह की सीखि अहो मन ही मन मानवता हुलसी॥
ज्ञानिन ज्ञान सनेहिन नेह लह्यो ममता मन माहिं लसी।
या वसुधा तल पै चहुँ ओर सुधा बरसाय गयो तुलसी॥

*　　*　　*

सहकारिन त्याग उजारन में कित कोकिल डोलत व्याकुलसी।
कत मीन अरी मतहीन फिरै तज सिंधु मरुस्थल में झुलसी॥
मति मन्द मलिन्द कहाँ बिहरैं न लखैं कहुं मालति मंजुलसी।
कहाँ धावत हो मतवारे मराल जि मान सरोवर है तुलसी॥

:*:

क्षुद्रं हृदय दौर्बल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप

[लेखक—श्रीयुत ब्रह्मचारी भद्रजित "भद्र"]

महाभारत के समराङ्गण में जब कि दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध करने को उद्यत खड़ी हैं अर्जुन मोहाभिभूत होकर श्री कृष्ण से निराशा व्यञ्जक वचनों से कहते हैं—हे कृष्ण मेरे अंग प्रत्यंग शिथिल हो रहे हैं, मुख सूखा जाता है, शरीर में कँपकँपी और रोमांच हो रहा है, मेरे हाथ से गाण्डीव धनुष गिरा पड़ता है, मेरी त्वचा जल रही है, मैं खड़ा होने में भी असमर्थ हूं, मेरा मन चक्कर सा खा रहा है, मैं विजय, राज्य, सुख कुछ नहीं चाहता, मैं युद्ध न करूंगा। अर्जुन की इस दीनता को देख कर भगवान श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं, अर्जुन सचेत होता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं—

"क्लैव्यं मास्मगमः पार्थ ! नैतत्वय्युपपद्यते"

अर्जुन के शरीर में एक बिजली सी दौड़ जाती है।

श्रीकृष्ण फिर कहते हैं:—

"क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप"

अर्जुन तेजस्विता में उठ खड़ा होता है।

आज भारत की भी वही अवस्था है। परतन्त्रता की जंजीर से बँधे हुए अपने दोनों हाथों को उठा कर, फटे पुराने चीथड़ों से सजा हुआ, उस रास्ते पर—जिस पर संसार की सब जातियाँ उन्नति की उषा की ओर एकटक दृष्टि से देखतीं हुई सरपट दौड़ी चली जा रही है—खड़ा हुआ कह रहा है "हम गुलाम हैं" "गुलामों का भी कोई धर्म होता है ?" आह ! कितना करुण दृश्य है ! आज कोई उसे यह बताने वाला नहीं है कि तुम गुलाम नहीं हो। तुम्हारी आत्मा स्वतन्त्र है। तुम में वह शक्ति है जो संसार को हिलादे। तुम्हारी आत्मा में वह तेज है जो अत्याचारी को भस्म करदे।

हिन्दू, जो गीता के भक्त हैं, कृष्ण के उपासक हैं, जिनके राम इष्ट देव हैं। शूलपाणि शंकर शक्ति के केन्द्र हैं, हनुमान बल के उपास्य हैं, इन्द्र ऐश्वर्य के अधिष्ठाता हैं, वे आज क्यों इस प्रकार दीन और परतन्त्र हो रहे हैं। बहुतेरे हिन्दू ऐसे हैं जो नित्यप्रति प्रातःकाल गीता का पाठ करते हैं क्यों नहीं उनमें वह अर्जुन सा आत्म सम्मान वह तेजस्विता वह दृढ़ता का भाव जागृत हो जाता। मैं कहूँगा कि यह हृदय का दौर्बल्य है। महात्मा गान्धी का यह विश्वास कि एक आत्मबल संसार के पशु-बल को नीचा दिखा सकता है यदि वह सच्चे अर्थों में आत्मबल हो, बिलकुल सत्य है। वह कभी विजयी नहीं हो सकता जिसका आत्म विश्वास उसके साथ नहीं है। प्रत्येक उठनेवाली जाति को देखो, संसार की प्रत्येक पवित्र क्रान्ति को देखो और देखो संसार के स्वतन्त्रता के इतिहास को। क्या दिखाई पड़ता है? राम के आदर्श का मनन करो। श्रीकृष्ण के उपदेशों और नीति के बीच में खड़े होकर देखो। हरिश्चन्द्र की विषम परीक्षा और अटल धैर्य को छूकर देखो कैसा स्पर्श है? दूर नहीं, राणा प्रताप के आत्माभिमान को देखो, शिवाजी के अदम्य उत्साह को देखो और देखो उस सजीव हँसी को जो गुरु गोविन्द के तीन नन्हें बच्चों के मुख पर थी जब वे दीवार में चुने जा रहे थे। क्या अनुभव होता है? यही आत्म विश्वास है! साहस और दृढ़ता यही है! आत्मबल यही है! और यही है शक्ति मान हृदय! तुम्हें और क्या चाहिये?

आत्मबल?

बलवान हृदय?

तो देखो वे अतीत में खड़े हुए श्रीकृष्ण उपदेश दे रहे हैं:—

"क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप!"

जागो!!!

तुलसी की महिमा

दरसी द्युति देश विदेशन में चहुँ ओर मयूखन मंजुलसी ।
लखि कौमुदी कान्ति-कला निधिकी दरसी जनता कैरव कुलसी ॥
हरि भक्तन पुँज हुलास हिये सुख सागर बीच लता हुलसी ।
सरिता कलि तारन कों तरनी रघुनाथ कथा बरनी तुलसी ॥

❀ ❀ ❀

भय रोग अनेकन लोग फँसे मति दारुन दोष त्रिताप ग्रसी ।
मदमान कलेवर मोह भरे हित हानि कुज्ञान हिये प्रबसी ॥
नहिं जानत जोग-अजोग प्रथा अपवाद व्यथा हियमाँहि धसी ।
रस 'पुँज' रसायन राम कथा तिनके सुख हेतु रची तुलसी ॥

—पन्नालाल जी "प्रेमपुञ्ज"

❀ ❀ ❀

मन हरसावे रस, रस बरसावे घनें, भूषण दिखावै निज आप हू सफाई में ।
दोषन को हो शहू न आवै गुण देख देख, भावै उपदेश देश वेश की भलाई में ॥
भाषत "गणेश" शेष पावेंगे अशेषपार, मैंने हार मानी कह कहके बड़ाई में ।
कैधौं तुलसीकी पतिभक्तिको प्रभाव कैधौं, रामको प्रताप तुलसीकी कविताई में ॥

—गणेशीलाल जी सारस्वत, साहित्योपाध्याय

❀ ❀ ❀

एक वीर पुरुष के जीवन का आदर्श सामने धरा हुआ ।
हिन्दू समाज की रक्षा का सारा रहस्य है भरा हुआ ॥
भाषा से भूषित भाव खरे बिखरे अति उत्तम सोह रहे ।
मोती बहु रंगिल शीशे में झिलमिला विश्व मन मोह रहे ॥
ऋषियों का सारा सार निसार हुआ है मंजुनिकाई में ।
कवि, गायक, पण्डित, मुग्ध सभी हैं तुलसीकी कविताई में ॥

—वासुदेव सहायजी शर्म्मा

न्यायवीरा महारानी अहिल्याबाई

[लेखक—श्री० बाबा राघवदासजी]

उत्तर हिन्दुस्थान में देवी अहिल्याबाई जी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। कोई विरला ही प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान मिलेगा जहाँ से श्री देवीजी की उदारता का परिचय न प्राप्त होता हो। कहीं धर्मशाला तो कहीं घाट, कहीं देवालय तो कहीं सदावर्त, कहीं विद्वान् ब्राह्मण की वृत्ति तो कहीं गरीबों की सहायता। इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं, बीसों ढंग से इस महामना रानी ने अपनी दानवीरता से हिन्दू जाति को उपकृत कर रक्खा है। जब हम इन्हीं बातों को उस समय होते हुए देखते हैं, जब न रेलगाड़ी थी, न डाक और तार विभाग ही कायम हुआ था, उस समय जिस सती साध्वी ने इतनी खोज कर हिन्दू जाति के रक्षार्थ इतने प्रयत्न किये कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। श्रीमती अहिल्यादेवी जी ने जो धार्मिक कार्य किये वे तो प्रशंसनीय हैं ही, हम यहां उनकी राजनीतिक चतुरता के दो एक उदाहरण लिखते हैं।

श्रीमती अहिल्याबाईजी के दरबार में विद्वान् तथा साधू महात्मा अतिथि आदि का बड़ा सत्कार होता था। इसलिये बड़े बड़े विद्वान् जब कभी इन्दौर पधारते तो श्रीमतीजी उन्हें अपने यहाँ अवश्य बुलाया करती थीं। प्रतिदिन राजगृह में विद्वानों की भीड़ लगी रहती थी। सभास्थल में प्रवेश करने के पूर्व विद्वान द्वार के बाहर अपने जूते उतार दिया करते थे। और जब सभास्थल से लौटते थे तब यह देखा जाता कि कई विद्वानों को बिच्छुओं ने डङ्क मारा है। प्रतिदिन बीसों विद्वान् बिच्छुओं के काटने से दुखी होते और रोते पीटते चले जाते थे। बहुत दिनों तक यह बात श्रीमतीजी से छिपी रही, पर अन्त में श्रीमती अहिल्याबाईजी को इसका पता लग ही गया। पता लगने पर उन्होंने जाँच करने के निमित्त अपने खास आदमी तैयार किये और उनको सख्त हुक्म दिया कि जो कोई भी अपराधी हो उसको हमारे सामने ले आना। आज्ञा पाते ही चार सज्जन

नियुक्त हुये और वे द्वार पर छिप कर बैठे। इतने में उन्होंने देखा कि विद्वानों के भीतर चले जाने पर श्रीमतीजी का खास पुत्र १०, ५ नटखट लड़कों को लेकर एक हंड़िया सहित आया, और हंड़िया खोल कर उसमें से एक एक बिच्छू निकाल कर एक एक जूते में रख दिया। इसी प्रकार जूतों में बिच्छू रख सब लड़के चल दिये। विद्वान् मण्डली बाहर आई, जूतों में पैर डाला और डङ्क से पीड़ित हो कर हैरान हुये। यह सब हाल छिपे हुये नौकरों ने श्रीमती से जाकर कह दिया। तत्काल ही लड़का बुलाया गया। श्रीमतीजी ने उससे कई प्रश्न किए और हंड़िया मँगवाई। हंड़िया खोल कर देखा गया तो उसमें बीसों बिच्छू मिले। श्रीमतीजी को विश्वास हो गया कि उनका ही पुत्र इस महान् अपराध का अपराधी है, तदुपरान्त उन्होंने और लड़कों को तो निरपराधी कह कर छोड़ दिया और अपने लड़के को—अपने गोद के लाल को—देहान्त प्रायश्चित की आज्ञा दी।

यह वार्त्ता सारे शहर में फैल गई। श्रीमती अहिल्या-बाईजी के दरबारियों ने समझाया कि बालक छोटा है। अतएव उसको छोड़ दिया जाय। इसपर उस न्याय-प्रिया देवी ने कहा, "चूँकि यह मेरा बालक है, अतएव आप उसे छोड़ देने को कहते हैं। पर यदि यही किसी दूसरे का बालक होता तो आप लोग क्या सजा देते। न्याय देवता के सम्मुख मैं अन्याय करना नहीं चाहती। शासक का यह धर्म है कि वह अपराध का निश्चय करके दण्ड दे, न कि अपराधी का। इस अपराधी ने आज तक सैकड़ों विद्वान् निरपराधी पुरुषों को सताया है, अतएव उस को दण्ड देना आवश्यक है। और वह ऐसा हो जिससे सारी प्रजा को यह ज्ञान हो जाय कि निरपराधों को सताना महान् दण्डनीय कार्य है। इस शिक्षा को मैं स्वयं न दूंगी तो सारे राज्य में अत्याचारियों का आतंक छा जायगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप लोग मुझे मेरे कर्तव्य पालन में पूर्ण सहायता देंगे। शासक और प्रजा का इस समय जो सम्बन्ध मुझमें और मेरे इकलौते पुत्र में उत्पन्न हो गया है उसको पूर्ण रूप से

निभाने में आप मेरा हाथ बटावेंगे"। श्री देवीजी की यह निष्पक्ष और न्याय-पूर्ण बातें सुनकर दरबारी लोग अवाक् रह गए।

दूसरे दिन एक मदोन्मत्त हाथी मँगवाया गया और उस समय के प्राण-दण्ड की प्रणाली के अनुसार उस बालक को पैर में बाँध दिया गया। मदमाता हाथी बड़े जोर से दौड़ाया गया और अपराधी ने अपना दण्ड पा लिया। यह है न्याय-प्रियता! यह है शासक धर्म-पालन!! यह है न्याय के लिये बलिदान!!!

श्रीमती अहिल्याबाईजी जैसी रानी साध्वी और न्याय-परायण नारी-रत्नों से यह हिन्दू-जाति सुशोभित थी, इसीलिये वह अब तक जीवित रह कर कुटिल विधर्मियों का मुकाबला कर सकी। ईश्वर करे और वह दिन दूर न हो जब हम ऐसी अनेक नारी-रत्नों को अपने समाज में पुनः पाकर सौभाग्यशाली बनें।

आह्वान

[लेखक—श्रीयुत कविवर "मिलिन्द" जी]

आजा, आजा, ऐ अग्नि-गान, अब आजा!
इस शुष्क हृदय में, आकर, आग लगा जा!!
"धू-धू" स्वर मेरी बीणा में सुलगा जा!
ज्वालामय, केवल एक बार ही आजा!!
उस लाली से मुझको भी लाल बनाजा!
उस ज्वाला में मेरा भी हृदय मिलाजा!!
प्राणों को कोई पागल झलक दिखाजा!
उन्मत्तगान, इस अन्तःपुर में आजा!!
अपने स्वर में तू मेरा स्वर भर लेजा!
मुझको अपना मतवालापन ही देजा!!

सिख समुदाय में महाराणा रणजीतसिंह

[लेखक—श्रीयुत गौरीशंकर जी त्रिवेदी]

(शेषांश)

महारानी सदाकुँवर राजनैतिक हथकण्डों से खूब अभ्यस्थ थीं। महाराणा में राजनीति-कौशल एवम् राष्ट्र-परिचालन की बुद्धि प्रसव करने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। यह बात निर्विवाद है कि महाराणा ने स्वयम् किसी पुस्तक का अध्ययन नहीं किया था किन्तु उन्होंने परिश्रम और अनुभव के विद्यालय में वास्तविक शिक्षा प्राप्त की थी।

इसी समय लाहौर निवासियों की ओर से एक गुप्त सम्वाद महाराणा के पास पहुंचा। इस सम्वाद द्वारा लाहौर की प्रजा ने भंगी सर्दारों के शासन से पीड़ित होकर महाराज को लाहौर पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया था। महाराज ने अपनी सास के सत्परामर्श तथा अन्य कई विजातीय सर्दारों की सहायता से लाहौर पर धावा बोल दिया। बात की बात में दुर्ग घेर लिया गया। तोपों द्वारा घमासान युद्धारम्भ हो गया। किला घिरा होने के कारण सर्दार चेतसिंह (भंगी सर्दार) को रसद मिलने में बड़ा कष्ट हुआ और निराश हो कर उसे महाराज की सेवा में सन्धिपत्र प्रेषित करना पड़ा। महाराणा ने जीविका निर्वाह के लिये उसे दो ग्राम दान में दे दिये, और क़िले पर अपना अधिकार कर के उसे क़िले से बाहर कर दिया। इस प्रकार लाहौर पर महाराणा का आधिपत्य होते देख कर अन्य मिसल वालों के मन में मत्सरता उत्पन्न हुई। उन लोगों ने सब मिसलों की एक संयुक्त सेना द्वारा रणजीतसिंह का अन्त कर देने का निश्चय किया। इसमें सन्देह नहीं कि विरोधी सेना में बल तथा उत्साह की कमी नहीं थी, किन्तु फिर भी वे लोग महाराणा की वीरता और कार्य-नैपुण्य के सम्मुख सफलीभूत न हुये।

इसके अनन्तर बड़ी धूमधाम से महाराणा का लाहौर के सिंहासन पर राज्याभिषेक हुआ। इसी अवसर पर संवत् १८५७ की फाल्गुन

शुक्ला सप्तमी के दिन राजमहिषी के गर्भ से महाराज के पुत्रोत्पन्न हुआ। पुत्र-जन्म के उपलक्ष में सहस्रों रुपये निर्धन प्रजा में वितरण किये गये। धार्मिक-उत्सव खूब धूमधाम से मनाये गये। भंगी सर्दार ने पुनः महाराणा के विरुद्ध मस्तक उठाने की धृष्टता की और एक बार फिर वह परास्त किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि स्थिति और काल की विषमता से महाराज के अधीनस्थ राजाओं की शासन नीति में नियन्त्रण की डोर ढीली हो जाती थी, किन्तु परिणाम राजा के अनुकूल ही होता था।

महाराज ने अंग्रेजों की बढ़ती हुई अधिकार लोलुपता का जिस प्रकार स्वागत किया इसे पाठक और पढ़ लें। महाराणा और अंग्रेजों में उस काल से सम्बन्ध की संस्थापना होती है, जब कि यशवंतराव होलकर लार्ड लेक द्वारा परास्त हुआ परित्राण का मार्ग स्थिर कर रहा था। स्थिति प्रतिकूल तो थी हो किसी ने भी होलकर का साथ न दिया। अन्त में मर- हठा सर्दार को महाराणा की साहाय्य याचनार्थ अमृतसर आना पड़ा। अंग्रेज निरन्तर होलकर का पीछा करते हुये सतलज तक पहुँच गये थे। अंग्रेजों के विरुद्ध किसी को खड़े होने का साहस न होता था। महाराणा ने बड़ी बुद्धिमता से परिस्थिति का अनुशीलन किया, और मरहठों तथा अंग्रेजों में सन्धि स्थिर कराना निश्चित किया। उन्होंने दोनों में सन्धि करा दी और होलकर को बहुत सा विजित इलाक़ा मिल गया। किन्तु इसके अनन्तर सन्धि रूप में महाराज को भी होलकर के विषय में तटस्थ रहने का वचन देना पड़ा।

होलकर का झगड़ा तय करने के बाद महाराज ने पुनः राज्य- विस्तार की ओर ध्यान आकृष्ट किया। कुछ ही काल में पटियाला प्रभृति अनेक रियासतें अपने अधीन करलीं। सतलज के समीप और भी अनेक रियासतें महाराणा ने विजय करके अपने सर्दारों में बाँट दीं। किन्तु विजित रियासतों के सर्दार लोग शान्त न हुये, उन्हें भी अंग्रेजों की सहायता की भिक्षा लेने की सूझी। अंग्रेजों को महाराणा की अक्षय शूरता का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने आतुरता से महाराणा का युद्ध क्षेत्र में

साक्षात करना श्रेयस्कर न समझ, पटियाला नरेश के समीप लार्ड मेटकाफ को भेजा। इस अवसर पर पटियालाधिपति ने जिस अधीनता का परिचय दिया वह दयनीय है। वे स्पर्धा की ज्वाला से भस्मीभूत हो रहे थे। सिख-रक्त का अनादर करते हुये उन्होंने अपने काष की कुञ्जियाँ उन्हें अर्पण करदीं। महाराज रणजीतसिंह ने क्रोध के आवेश में मेटकाफ की उपस्थिति में ही पटियाला पर आक्रमण किया, और उसे अपने अधीन कर लिया। लार्ड साहब ने सन्धि के लिये अनेक उपाय किये, किन्तु न तो महाराज ने उनके सन्धि पत्र को ठुकराया ही और न युद्ध अस्थिर रखा। प्रत्युत वे अपनी पूर्ववत् नीति द्वारा राज्यों का धीरे धीरे अपहरण करते रहे। महाराणा ने जमुना तक अपना राज्य स्थापित करना स्थिर कर लिया था। किन्तु इतने में मेटकाफ द्वारा बुलाई हुई सर आक्टरलोनी के सेनापतित्त्व में अंग्रेजों की एक विशाल सेना सतलज तक आ गई। और उसने विजित रियासतों को पुनः पूर्ववत् सर्दार लोगों को लौटाना आरम्भ कर दिया। भला महाराज को यह कब सह्य था। उन्होंने भी यथाविधि अपनी सेना संगठित की। इसी अवसर पर मुसल्मानों का मुहर्रमी त्यौहार आ गया। मेटकाफ की सेना के मुसल्मान जब अपना ताजिया लेकर सिखों के धर्म स्थान श्री हरिमन्दिर के समीप हो कर निकले, तो धर्मान्ध सिखों ने उनकी खूब पूजा की। फलतः दोनों ओर से अकारण ही लड़ाई आरम्भ हो गई। बड़ा भीषण युद्ध हुआ, किन्तु अंग्रेजों की सुव्यवस्थित और नियन्त्रित सेना के सम्मुख सिखों को परास्त होना पड़ा। इस समय महाराणा ने अंग्रेजों से सन्धि करके अपनी अतुल परिस्थित-ज्ञान का परिचय दिया। सन्धि की शर्त्तों में सम्भवतः कोई भी शर्त्त महाराज के प्रतिकूल न थी।

महाराणा से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातें उनकी कार्य-दक्षता तथा स्थिति ज्ञान का दर्पण हैं। महाराणा के काल में शासकों के कार्य नियन्त्रित नहीं होते थे। जिसकी लाठी उसकी भैंस का जमाना था। कृषकों की अवस्था में वर्त्तमान काल से

साम्य करने में बहुत न्यून अन्तर दृष्टिगत होता है। भेद केवल इतना ही है कि तत्कालीन कृषकों से तलवार चमका कर खजाना हस्तगत किया जाता था, और आज कृषकों पर न्याय की दुहाई देकर शासक वर्ग अपना खड्ग प्रयुक्त करते हैं। सेना के सिपाही अपने को राजा से कम नहीं समझते थे। महाराजा रणजीतसिंह ने इस परिस्थिति का सामना बड़ी युक्ति से किया। सेना तथा दर्बार के कर्मचारियों का वेतन नियमित कर दिया गया। इस प्रथा का कृषकों की हीनावस्था पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अत्याचार घटा, और कृषकों का आर्त्तनाद महाराज के कर्णों तक पहुँच गया। फलतः कृषकों की दशा सुधरी।

महाराजा की कूटनीति युक्त मिलनसारी उनके विकास में बड़ी सहायक हुई। प्रथम मिलन पर एक बार शत्रु भी उनकी ओर खिंच आते थे। महाराणा के सत्कार में अपूर्व असर था। अफ़सर अकड़ते हुए उनके सम्मुख आते थे, किन्तु तत्काल ही उनके मित्र बन जाते थे। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही उनसे सन्तुष्ट थे।

महाराणा ने जब अँग्रेजी क़वायद के महत्व को समझा तो उन्होंने कई फ्रान्सीसी सेनापतियों को जो किसी समय नेपोलियन के आधीन रह चुके थे, अपनी सेना में प्रविष्ट किया। इनकी अधीनता में महाराज के पास एक लाख सेना तैयार रहती थी। सेना में ३२ हजार अश्वारोही और ९२ हजार पैदल सैनिक थे। इसके अतिरिक्त लगभग ७५५ तोपें हर समय सज्जित रहती थीं। महाराज की अकाली सेना भी बड़ी बलशाली थी। जब किसी बड़े दुश्मन का सामना करना होता था तो वही सेना आगे जाती थी। इन लोगों को न जीने का खटका था और न मरने का ग़म।

सन् १८३४ की २७ जून को महाराणा यह लोक लीला संवरण कर स्वर्ग सिधार गए।

—:*:—

हिन्दू वीर

[लेखक—श्रीयुत सीताराम जी पांडे]

पत्थर से मारो बाँस लट्ठ फटकारो किन्तु,
हिंदू, हिंदू, हिंदू, यही मुख से बताऊँगा।
आग में जलाओ चाहे तेल खौलाओ डाल,
खाल खिंचवाओ तो न आह मुख लाऊँगा॥
आरों से चीर छेद भालों से नृशंस वीर,
गोली और गोले बिना बोले सह जाऊँगा।
धर्म की कसौटी कसो, हेठी न दिखाऊँगा मैं,
बोटी बोटी काटो तो न चोटी कटवाऊँगा॥

सिनफीन क्रान्ति १९वीं शताब्दी में

[लेखक—श्रीयुत सद्गुरुशरणजी अवस्थी बी० ए०]

(२)

आयरलैंड में स्वातन्त्र्य संग्राम का श्रीगणेश होने के पूर्व प्रोटेस्टेन्ट समुदाय ने रोमन कैथलिक समुदाय के लोगों पर पर्याप्त अत्याचार किये थे। जब उन्होंने देखा कि वे अपने कार्य में सफलीभूत नहीं होते, तब उन्होंने अन्त में मेल कर लिया। सन् १७८२ ई० में आयरिश पार्लियामेन्ट ने आयरलैंड की व्यापारिक नीति में किंचित् परिवर्तन पूर्ण प्रस्ताव पास किया। इङ्गलैंड के मन्त्रिमण्डल ने इस प्रस्ताव को पसन्द नहीं किया। वह तो इस खोज में थे कि किसी न किसी प्रकार से वह पुनः अपने पूर्व अधिकार प्राप्त कर लें। इसका एक मात्र उपाय यह था कि प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथलिक समुदायों में विद्रोह करा दिया जाय। किन्तु यह बात भी अब अँगरेजों के हाथों में न थी। इन समुदायों के मिल जाने से उनके समक्ष तो एक दूसरा ही भय उपस्थित हो गया। आयरिश पार्लिया-

मेंट पग-पग पर ब्रिटिश पार्लमेंट का विरोध करने लगी। इंगलिश नीति का घोर विरोध किया जाने लगा। अतएव इङ्गलिश-मन्त्रि-मण्डल ने शासन की बागडोर और कड़ी करदी। परिणाम यह हुआ कि समस्त आयरलैंड को इङ्गलैंड से घृणा हो गयी। नये-नये आन्दोलन उठ खड़े हुए। अँगरेज़ लोगों ने यह सुझाने की कोशिश की कि इन आन्दोलनों को नष्ट कर देने से ही इंगलिश और आयरिश सरकार का कल्याण है। बहु संख्यक सेना आयरलैंड में आकर डट गई। दमन किया गया। आन्दोलनों के अन्त के साथ-साथ आयरिश पार्लियामेंट की भी इति-श्री हो गई। मि० पिट ने निश्चय किया कि आयरिश कार्य-कारिणी-सभा द्वारा शासन करने की अपेक्षा आयरलैंड का शासन सीधे तौर से (Directly) अपने हाथ में ले लिया जाय। व्यवस्था-संघ स्थापित करने की आयोजना की गई। आयरलैंड को इंगलिश-शासन से बिलकुल स्वतंत्र होने से बचाने के लिए, इसके अतिरिक्त कोई अन्य स्थायी मार्ग उपलब्ध न हुआ। इसके लिए बड़ा उद्योग किया गया। बड़े बड़े लम्बे चौड़े भाषण दिये गये कि आयरिश पार्लियामेंट के सदस्यों का बहुमत यूनियन ऐक्ट के पक्ष में हो जाय। उन सदस्यों को रिशवतें दी गईं, धमकाया गया, बड़े बड़े सरकारी पद और पेंशनें दी गयीं। कुछ लोगों ने तो इस प्रकार बहुत धन पैदा कर लिया। मि० पिट और मि० कासरले दोनों ही इस बेईमानी को अच्छी तरह समझते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी में आयरलैंड की राजनीति काफ़ी जटिल थी। किन्तु यूनियन ऐक्ट के पास हो जाने से परिस्थिति और भी जटिलतर हो गयी। यूनियन ऐक्ट का यह अभिप्राय था कि आयरिश व्यवस्था और शासन को इंगलैंड के शासन यंत्र में मिलाकर आयरलैंड का राष्ट्रीय अस्तित्व नष्ट कर दिया जाय। जन-संख्या के अनुसार आयरलैंड जितने सदस्य बड़ी पार्लियामेंट में भेज सकता था, उसके केवल आधे ही सदस्य भेजने का उसे अधिकार प्राप्त था। दिखलाया यह जाता था कि यूनियन ऐक्ट दोनों राष्ट्रों की उन्नति के लिए पास कराया गया है। प्रोटेस्टेन्ट

लोगों से गुप्त रीति से यह कहा गया कि उनके मत को पुष्ट करने के लिए इस ऐक्ट का पास होना आवश्यक था। रामन कैथलिक लोगों से यह कहा गया कि आयरलैंड का शासन बृटिश पार्लियामेंट के हाथ में चला जायगा तो आजकल आयरिश पार्लमेंट में, प्रोटेस्टेन्ट मतावलंबियों का बहुमत होने के कारण उन्हें जिन धार्मिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है वे बहुत कुछ कम हो जायँगी। कारण, इङ्गलिश पार्लियामेंट बहुत कुछ उदार है। इसमें सन्देह नहीं कि इसी कारण आयरिश समाज के उच्च श्रेणी के बहुत से आयरिश व्यक्तियों ने जिनमें पादरी लोग भी सम्मिलित थे, यूनियन ऐक्ट के प्रस्ताव के विरोध को गिराने का प्रयत्न किया। धीरे धीरे आयरिश संघ की ओर उनकी शत्रुता बढ़ गयी। उनकी यह धारणा थी कि क्रांति को नष्ट-भ्रष्ट कर देने के पश्चात् उनका सामना करने के लिए कोई खड़ा न हो सकेगा और वे जो चाहेंगे, मनमानी कर सकेंगे। किन्तु मि० आरंजमेन से अधिक उदार दल वाले प्रोटेस्टेन्ट भी इस विचार के विरुद्ध थे। उन्होंने पहले से ही घोषित कर रखा था कि यदि यूनियन ऐक्ट पास हो गया तो इसका परिणाम यह होगा कि आयरलैंड का व्यापार नष्ट हो जायगा, उस पर अधिक कर लगाया जायगा और उसकी सब प्रकार की स्वतन्त्रता का नाश हो जायगा। परन्तु इन विचार-शील व्यक्तियों से किसी प्रकार का परामर्श न लिया गया और फ़ौज के बल से, यह ऐक्ट कुछ वक्तृताओं के पश्चात् पार्लियामेंट द्वारा पास करा लिया गया।

इस ऐक्ट के पास हो जाने के बाद आयरलैंड के साधारण जीवन में एक बड़ा उथल-पुथल हो गया। वहाँ की राजनीतिक पार्टियों में भी एक प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न हो गई। बहुत से ऐसे सज्जनों ने जिन्होंने इस ऐक्ट का विरोध किया था, यह निश्चय किया कि चूंकि यह ऐक्ट अब पास ही हो गया है, अतएव इससे जो कुछ लाभ उठाया जा सकता है, उठाया जाय। आयरलैंड के प्रसिद्ध देशभक्त वक्ता इँगलिश पार्लमेंट में चुन लिए गये और अँगरेजों के कन्धे से कन्धा मिलाकर इस प्रकार

कार्य करने लगे कि आयरलैंड को उनसे हाथ धोना पड़ा। आयरलैंड के वे पूँजीपति, जो कि आयरिश पार्लियमेंट में निर्वाचित होते और उसके कार्यों में योग देते थे, आयरिश पार्लियामेंट के टूट जाने के कारण इँगलिश पार्लमेन्ट की ओर अधिक आकर्षित हो गये। वे अपनी सन्तानों को इङ्गलैंड में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजने लगे और केवल दूसरी ही पीढ़ी में उनको अपने आप को आयरिश कहते और मानते हुए संकोच होने लगा। यहाँ तक कि वे अपने को खुल्लम-खुल्ला इँगलिशमैन कहने लगे। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों (पूँजीपति और वक्ता) में क्रमशः यह विश्वास उत्पन्न हो गया कि आयरलैंड का कल्याण केवल यूनियन के स्थिर रखने में है। आयरलैंड में उनका जो कुछ प्रभाव था, यूनियन के स्थिर रखने में उन्होंने उसका भरसक उपयोग किया। इस प्रकार की नयी यूनियनिस्ट पार्टी आयरलैंड के प्रजातन्त्रवादियों के लिए उनके मार्ग का कंटक हुई। मि० आरंजमेन की पुरानी प्रोटेस्टेन्ट पार्टी पहले ही से प्रजा-तन्त्रवादियों के प्रतिकूल थी, अतएव वह भी यूनियनिस्ट पार्टी से मिल गयी। यद्यपि ये लोग आरम्भ में यूनियन के विरोधी थे, तथापि उन्हें इस यूनियन का पक्षपाती इसलिये हो जाना पड़ा कि अपने देशवासी कैथलिक मतावलम्बियों के समक्ष, राजनीतिक क्षेत्र में समानाधिकार प्राप्त करने के लिए उन्हें दूसरों की सहायता की आवश्यकता थी। अत-एव वे यूनियनिस्ट लोगों के साथ हो गये। उनकी धारणा थी कि यूनि-यन द्वारा प्रोटेस्टेन्ट लोगों को लाभ होगा। अतएव वे इसी विचार पर दृढ़ रहे, और एक शताब्दी के अन्तर्गत आयरलैंड के अधिकांश प्रोटेस्टेन्ट लोग उनसे मिल गये। वही अलस्टर प्रान्त जो एक समय आयरिश संघ का केन्द्र समझा जाता था, इस यूनियन की सहायता करने का मुख्य केन्द्र हो गया। प्रोटेस्टेन्ट लोगों के लाभ की दुहाई देकर आयरिश माँगों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया गया। प्रोटेस्टेंट पादरी भी अपनी कायरता के कारण आयरलैंड के राष्ट्रीय भावों के प्रति शत्रु हो गये और बहुत से प्रान्त इनके विचारों से दूषित हो गये। इङ्गलैंड और

आयरलैंड के मिल जाने से आयरलैंड में जो आर्थिक सङ्कट पड़ा, उसका प्रभाव अलस्टर प्रान्त में बहुत कम था। यद्यपि अलस्टर प्रान्त की जन संख्या इसी कारण घट कर लगभग आधी हो गयी। तथापि अलस्टर के कुछ विशेष नियमों के कारण वहाँ के किसान अन्य प्रान्तों के किसानों की भांति दुखी न थे। दूसरी बात अलस्टर के पक्ष में यह थी कि वहां सन का व्यौपार अधिकता से होता था और अँगरेजों के व्यापार के कारण भी इस व्यापार में किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती थी। यहाँ के लोग अधिक धनी थे, इसलिये उनपर चाहे जितना कर लगाया जाय, वे उसका अनुभव नहीं करते थे। इस प्रकार अपने लाभालाभ के सम्बन्ध में भ्रमात्मक होने और शेष आयरलैंड के ध्येय को यथेष्ट रूप से न समझने के कारण प्रोटेस्टेंट निवासी अलस्टर प्रान्त का शेष आयरलैंड से शत्रु-भाव हो गया। बहुत लोगों की धारणा है कि जातीय विभिन्नता होने के कारण अलस्टर शेष आयरलैंड के विरुद्ध हैं, किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। अलस्टर में अब भी ऐसे प्रोटेस्टेन्ट आयरिशमैन उपस्थित हैं जो आयरिश संघ के उद्घाटन काल को सतयुग समझते हैं। स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व और समता के भाव उनमें अब भी आंशिक रूप में विद्यमान हैं और उस समय का स्मरण दिलाते हैं, जब अलस्टर और और आयरलैंड का घनिष्ट सम्बन्ध था।

एक ओर की स्थिति यह थी और दूसरी ओर के रोमन कैथलिक नेता इंगलैण्ड और आयरलैण्ड के यूनियन को बड़े ही शत्रु-भाव से देखते थे। उनकी धारणा थी आयरिश पार्लियामेन्ट से किसी प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रता और समता की आशा नहीं। क्रान्ति के असफल हो जाने के कारण उनका यह भी विश्वास था कि अब निकट भविष्य में किसी प्रकार की क्रान्ति सफल न होगी। देशभर में अंगरेजों की सेनाएँ पड़ी हुई थीं। जो कुछ वे सोचते थे, वह भी अपने ही मन में; दूसरे से कह भी नहीं सकते थे। वह यह भी समझते थे कि उन्हें यह विश्वास दिलाया जा रहा है कि इंगलिश पार्लियामेन्ट कैथलिक लोगों की रक्षा

करेगी और कैथलिक पादरियों को उसी प्रकार सरकारी शुल्क दिया जायगा, जैसा प्रेस बेटीरियन पादरियों को मिलता है। किन्तु आयरिश जनता इस बात को खूब समझती थी कि जिस प्रकार आयरिश पार्लियामेन्ट से रोमन-कैथलिक लोगों को कोई आशा नथी, उस प्रकार इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट से भी रोमन कैथलिक लोगों को कोई आशा नहीं है। कुछ दिनों तक आयरलैण्ड बिल्कुल चुप सा रहा। वह वास्तव में कर भी कुछ न सकता था। आयरिश सदस्यों को वोट देने का अधिकार तो था, परन्तु पार्लियामेन्ट में उपस्थित होने का अधिकार न था। वे दासता में इतने जकड़े हुए थे कि उनके हाथों में कोई ऐसा नियम न था जिसके द्वारा वैध रूप से कुछ भी विरोध कर सकते। अतएव उनको विवशतः चुप रहना पड़ता था। यदि वे कहीं अपना स्वर भी ऊँचा करते थे तो उन्हें अशान्ति उत्पादक बतलाया जाता था। शासन और धर्म, दोनों ही शृंखलाओं से वे खूब जकड़े हुए थे। क्रमशः राष्ट्रीयता का भाव रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के साथ साथ बढ़ने लगा। समस्त राष्ट्र में यह भाव उत्पन्न हो गया कि वह अल्प-संख्यक प्रोटेस्टंट सम्प्रदाय की सत्ता कदापि स्वीकार न करेगा।

निदान उन्नीसवीं शताब्दी में मुख्यतः दो बड़ी पार्टियाँ कायम हो गयीं। पहली यूनियनिस्ट, दूसरी राष्ट्रीय। प्रथम इंगलैण्ड और आयरलैण्ड के यूनियन के पक्ष में थी, दूसरी उस यूनियन ऐक्ट को उठा लेने के पक्ष में, जिसके द्वारा आयरलैण्ड की स्वतन्त्र-व्यवस्था नष्ट हो गई थी। आयरलैण्ड के तत्कालीन इतिहास से पता चलता है कि उसके राष्ट्रीय नेताओं ने अस्पष्ट शब्दों में पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए कई बार घोषणा की किन्तु यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि यदि यूनियन ऐक्ट उठा लिया जाय तो अंगरेजों की विजय नष्ट प्रायः हो जायगी।

सिनफीन राजनीतिक दल का यह नाम क्यों पड़ा इस विषय में रोचक कथा है। जब लोगों में यह विश्वास दृढ़ हो गया कि स्वतंत्र व्यक्ति का एकमात्र सहायक आत्म-विश्वास है और इसी आधार पर राष्ट्रीय

आन्दोलन संचालन करने का उद्योग किया, उस समय उनको सब से पहले यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि इस आन्दोलन का नाम क्या रक्खा जाय। इसी नाम-करण संस्कार के विषय में उन्होंने एक तत्कालीन विद्वान से परामर्श लिया। उसने उनको एक कथा सुनाई। इस कथा में मनस्टर के एक नौकर की चर्चा है। यह नौकर अपने स्वामी का घोड़ा बेचने के लिए गया। घोड़ा बेच कर वह कुछ दिनों में, अपने स्वामी के यहाँ लौट आया। और बड़ी प्रसन्नता के साथ आँगन में बैठ गया। पड़ोसियों में उससे प्रश्न करना आरम्भ कर दिया कि वह अब तक कहाँ रहा और क्या करता रहा। उनके प्रश्नों का वह केवल एक उत्तर देता था। वह था--"सिनफ़ीन"। उसने क्रमशः पड़ोसियों के हृदय में यह अंकित कर दिया कि "परिवार के कार्य से केवल कुटुम्बियों को ही सम्बन्ध है।" यह केवल उत्तर ही नहीं है वरन यह संसार का एक सत्य सिद्धान्त है। समाज छोटे बड़े अनेक समुदायों में विभक्त है। सब के विचार भिन्न भिन्न हैं और अपना स्वत्व समझने और अनुभव करने के लिए सब से अधिक वही उपयुक्त हैं। इस विषय में दूसरों का हस्तक्षेप करना सर्वथा अनियमित और अप्राकृतिक है। दूसरे लोगों की उन पर अपने विचार बनाने और आलोचना करने के लिए कोई मना नहीं करता किन्तु उनमें हस्तक्षेप करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। समाज का प्रत्येक अंग जो परस्पर स्पर्द्धा से स्वतंत्रता के अधिकारों को प्राप्त करने की चेष्टा किया करता है, वही मानव-समाज का इतिहास है। प्रत्येक राष्ट्र को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने का अधिकार है। एक राष्ट्र जब दूसरे राष्ट्र के अधिकारों को बलात् छीन लेता है और इस बात का उद्योग करता है कि वह फिर उनको प्राप्त करने योग्य न हो सके तब विजयी राष्ट्र को यह समझाने का प्रयत्न करना चाहिए कि उसका कार्य निंदनीय है। अधिकारों का नाश बल-प्रयोग से नहीं किया जा सकता और न वास्तव में शक्ति बल से उनको कोई राष्ट्र ले ही सकता है। यद्यपि इन सिद्धांतों को प्रत्यक्ष रूप में लोग स्वीकार करते हैं तथापि व्यवहारिक रूप में उनका प्रयोग किया

जाना कठिन है। स्थिति और भी जटिल हो जाती है जब कि अधिकृत राष्ट्र विजयी राष्ट्र की अपेक्षा अत्यन्त निर्बल होता है, आदर्शवाद की दृष्टि से छोटे राष्ट्र को पूर्ण स्वतंत्रता मिलने का उतना ही अधिकार प्राप्त है जितना किसी भी बड़े राष्ट्र को। लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से उसे जो कुछ भी अधिकार मिल जाय उसे उसी में सन्तोष करके पूर्ण अधिकारों के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये। स्वतन्त्रता प्राप्ति की कार्य-प्रणाली भिन्न भिन्न हैं। उनमें पग-पग में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं और घोर निराशावाद सामने आता है। ऐसा भी सम्भव है कि जब देश की राजनीतिक और भौतिक स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है, तब भी वह अपनी नैतिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता स्थिर रख सकता है। परन्तु ऐसे राष्ट्र को अधिक मूल्यवान स्वतन्त्रता बाकी रहती है। किन्तु जिस राष्ट्र की भौतिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता नष्ट होती है उसके लिये यह अत्यन्त कठिन हो जाता है कि नैतिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता भी चिरकाल तक स्थिर रख सके। आध्यात्मिकता और नैतिकता नष्ट हो जाना ही किसी राष्ट्र के नष्ट हो जाने का अन्तिम चिन्ह है।

सिनफीन आन्दोलन के नेताओं ने अपने यहां के राष्ट्रीय जीवन का अध्ययन किया था और वे इस निष्कर्ष पर पहुँच गये थे कि आयरलैण्ड की राष्ट्रीयता के लिए केवल वही औषधि कारगर है जो उन्होंने सोचली है।

वीरोद्बोधन

[लेखक—श्रीयुत कर्ण कवि जी]

दोहा—वीर विहीन मही न हो, धारण कर कोदण्ड।
"कर्ण" दुष्ट दल दलन हित, फड़काओ भुजदण्ड॥
रोला—वीरो! भय का काम नहीं, आगे बढ़ जाओ।
कर्णार्जुन की भाँति, घोर घमसान मचाओ॥
अवसर पर चूको न, धर्म्म हित कष्ट उठाओ।
शत्रु जनों का मान मार, रण में जय पाओ॥

कर्तव्य पथ पर

[लेखक—श्रीयुत सत्येन्द्र जी विशारद]

(१)

सरला देवताल पहुँची ! परन्तु वहाँ कोई न था। ताल में से निकलती हुई मन्द कलकल ध्वनि पार्श्ववर्ती लताओं की सन सन गूंज में मिल कर उस एकान्त स्थली की शान्त-प्रकृति में गम्भीरता का समावेश कर रही थी। सरला ने उछलते हृदय को दवाते हुए पत्र पुनः पढ़ा। चन्द्र की स्फटिकोज्वल चाँदनी में उसने पढ़ा—"सरले ! कल देवताल पर रात के ८ बजे मुझ से मिलना; कई कारण-वश मैं घर में तुम से नहीं मिल सक्ता—तुम्हारा,—शेखर"। पति की लिखावट को वह पहिचानती थी, उसमें कोई धोखा न था। 'पत्र उन्हीं का लिखा है किन्तु अभी तक आए क्यों नहीं'—जलाशय की ओर उसने अपने नेत्र फेरे-ताल का लहर-व्यापार उसके हृदय-गत-विचार तारतम्य की होड़ कर रहा था। उसने ठंडी सांस ली, पत्तों की खड़ खड़ सुन पीछे देखा—किन्तु शून्य ! एक वर्ष के पश्चात् आज वह इस ताल के किनारे, चमकीली चन्द्रिका में अपने जीवन आराध्य से मिलेगी उसका मन चञ्चल हो उठा, उसे ढाढ़स देने के लिए उसने गुन गुनाया—

"मेरे मानस-भ्रमर के, तुम मृदु मंजुल फूल।
लेन चहत मृदुरस अहो ! किन्तु वाम विधि शूल ॥"

पीठ पीछे पद-चाप हुई, उसने चहुँक कर देखा। देख कर वह सहम गई। उसके युवति-हृदय निहित सुखाशाओं को निठुर आशंकाओं ने आकर पद दलित कर डाला। उसने देखा-एक मुसलमान युवक उसकी ओर बढ़ रहा है। वह भयभीत हो भागना ही चाहती थी कि परिचित-स्वर में किसी ने पुकारा "सरले" ! वह ठिठकी। उत्सुक नेत्रों से युवक की ओर देखा-वह शेखर ही था, आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह पूछ बैठी, "क्यों एक अबला को डराने के लिए यह बहुरूपिया पन···" आगे बढ़ कर सरला का

हाथ पकड़ते हुए शेखर ने कहा "सरला, मैं आज तुम्हें एक बात बताने आया हूँ। तुम्हें दुःख तो होगा ही, किन्तु बिना कहे भी नहीं बनता। मैं मुसलमान हो गया हूँ" कुछ क्षण रुक कर उसने सरला के असमंजस पूर्ण मुख की ओर देखा, सरला आँखें बन्द किए मौन थी। उसने कहना प्रारम्भ किया—"तुम पूछोगी, क्यों ? यह एक लम्बी कहानी है। मैंने देखा, हिन्दुओं में फूट है। उनमें रहकर मैं तुम्हारी भी रक्षा नहीं कर सकता, तुम्हारी इज्जत पर अगर बन आती तो मैं देखता ही रहता। यही नहीं और भी अनेकों कारण हैं जो मैं तुम्हें बतलाऊँगा, पर फिर कभी। इस समय मैं तुम्हें लिवाने आया हूँ, तुम भी मुसलमान हो जाओ। तुम कहोगी 'पति होते हुए तुमने इस विषय में मुझसे परामर्श क्यों नहीं लिया' मैं इसके लिये अपराधी अवश्य हूँ किन्तु मुझे भय था कि तुम···।" रोकते हुए सरला ने कहा "बस नाथ ! जो आपने किया वही ठीक है" किन्तु मेरे आराध्य देव की यह मूर्ति नहीं है, मेरी चिर संचित अभिलाषाओं पर पाला पड़ गया, मेरा भविष्य अन्धकार मय हो गया। फिर भी मैं मुसलमान होकर क्या आदर्श स्त्रीत्व को रख सकूंगी ? नहीं-नहीं मैं मुसलमान नहीं होऊँगी। मैंने अपना कुछ और ही कर्तव्य स्थिर कर लिया, आज मैं समझ गई कि मेरा मार्ग किधर है।" शेखर के हाथ से अपना हाथ छुड़ा कर वह दो पग पीछे हट गई। "आपको भी निराश होना पड़ेगा" कहते-कहते सरला वहां से चली गई।

शेखउद्दीन किं कर्तव्य विमूढ़ वहीं खड़ा रहा। प्रकृति का व्यापार पूर्ववत् था। शेख को उस हिन्दू रमणी के हृदय का परिचय मिला। जिस को क्षुद्र समझ कर उसने अब तक अवहेलना की थी, उसने चन्द्र की ओर देखा, उसकी भव्य ज्योत्सना में उस देवताल के तट पर खड़े हो कर हृदय में एक निष्कलंक मूर्ति को स्थापित कर उसने अपना कर्तव्य निश्चित किया। एक बार 'सरला' का नाम उसके मुख से निकला और वायु में विलीन हो गया। वह चला और लता गुल्मों में अदृश्य हो गया।

❃ ❃ ❃

उसी दिन से किसी ने भी सरला को उस गाँव में न देखा।

(२)

रात्रि के १० बज चुके होंगे, सारे मुहल्ले में निस्तब्धता थी। शेखुद्दीन अपने कमरे में किसी गहरे विचार में मग्न बैठा था। एकाएक पड़ोस से आई हुई चीत्कार ध्वनि ने उसे चौंका दिया, पड़ोसी बुड्ढे रामदीन की आवाज़ उसने सुनी। वह कह रहा था "बदमाश! अरे कोई बचाओ मेरी लड़की को, मेरी इज़्ज़त को! अरे म्लेच्छो, मुझे मार डालो"— शेख की समझ में सब बात आगई। वह लपक कर बाहर आया। पड़ौसी के घर में अकेले जाना ठीक न समझ, मुहल्ले के हिन्दुओं को जगा कर बुड्ढे की सहायता के लिए जाने की चेष्टा की। किन्तु कोई न उठा। हिन्दुओं के इस नैतिक पतन पर उसके दो आंसू निकल आए। देर हो जाने से भारी अनिष्ट की आशंका से वह घबरा गया— वह अकेला था। पुनः मर्म-स्पर्शी शब्द उसने सुने—"हाय! आज क्या सारा मोहल्ला मर गया, अरे पोचो'''मुझे अन्धा करदो—मेरी लड़'''।" शेख से और न रुका गया। उसके शरीर में खून खौलने लगा। वह दौड़ कर बुड्ढे के मकान में घुस पड़ा। जाकर देखा कि क्षणभर की देर में सोना मिट्टी हो जाता—झपट कर उसने 'रमा' को मुसलमानों के हाथ से छीन कर अलग कर दिया और स्वतः उसके स्थान में खड़ा होगया। बुड्ढे रामदीन की आंखों में जल भर आया।

* * *

अत्याचारी पहले तो कुछ सकपका गए, किन्तु शेख को देख कर और उसे पहिचान कर एक ने कहा "क्यों शेख! दुश्मने इस्लाम—काफ़िरों की मदद करने तुम आए हो—छोड़ो, हट जाओ हमें अपना काम करने दो। मुसलमान हो कर मुसलमानों के काम में दखल मत दो। अली लड़की की ओर बढ़ा किन्तु वीर शेख ने उसे रोका और कड़क कर कहा "अली—ऐसे काम मुसलमानियत के नाम से करके उसे क्यों बदनाम करते हो - जाओ अपना काम देखो।" चुन्दू यह न सह सका उसकी आंखें

लाल हो गई फिर भी अपने को रोकते हुए कहा "देखो हम तुम्हें मुसलमान समझ कर ही कह रहे हैं कि काफ़िरों की मदद करने से कुछ फ़ायदा नहीं। तुम क्या हिन्दू हो? हमारी मदद करो और अगर तुम न मानोगे तो फिर भुगतोगे।" अली फिर आगे बढ़ा। शेख को देवताल की घटना का स्मरण हो आया, उसकी भुजाएँ फड़क उठीं। गर्ज कर कहा "मियां! हिन्दू, मुसलमान क्या? मैं मनुष्य हूँ, आदमी हूँ। मनुष्य जाति पर अत्याचार नहीं देख सकता। कायर हिन्दू, डरपोक, स्वार्थी हिन्दू अगर अबलाओं पर अत्याचार होते देख कर भी कानों में तेल और आँखों पर पर्दा डाले रहेंगे तो डाले रहें—मेरे रहते तुम मनुष्यता, आदमियत की हत्या नहीं कर सकते"। मकान में शब्द गूंज उठे—बुन्दू ने और भी तेज़ आवाज़ से कहा "शेख फिर सोचलो, क्या तुम मुसलमान नहीं—" गम्भीर, दृढ़ स्वर में शेख ने कहा मैं क्या हूँ नहीं जानता—पर मनुष्य हूँ—मेरा कर्त्तव्य मुझे मालूम है।" क्षण भर को स्तब्धता छा गई। बुन्दू ने कहा "अच्छा! पहले तुम्हें ही देखते हैं" उन्होंने लाठी सम्हाली और छोड़ने ही को थे कि एक सुन्दर हिन्दू युवक ने बीच में आ कर वीर दर्प से कहा "ठहरो। कम्बख़तो! भले आदमियों पर अत्याचार, शेख से पीछे बोलना, पहिले मुझसे भुगतो।" सबके सब आश्चर्य में आ गए। एक हिन्दू युवक को अपने सामने काम में बाधा देते देख, वे अपने गाज़ी होने की महत्वाकांक्षा को न रोक सके और लाठी का हाथ छोड़ दिया।...... शेख ने विस्मय के साथ निहत्थे युवक के मुख की ओर देखा। उसका साहस उसे विचित्र ज्ञात हुआ। अली और बुन्दू की लाठी उठ चुकी थी, शेख ने अपनी लाठी फेंक दी और लपक कर युवक के गले में बाँह डाल कर अलग हटा देना चाहा किन्तु लाठी गिरी। युवक के साथ शेख भी भूतलशायी हुआ। सुन्दर युवक के सिर का साफा अलग जा पड़ा और लम्बे-लम्बे बाल बिखर कर शेख और युवक दोनों के मुख पर आ पड़े। बाहर कुछ हल्लासा हुआ, मुसलमान अधिक न ठहर सके और भाग

गए। + + + शेखर ने मन्द स्वर में कहा "सरले! यहाँ कहाँ"? अस्फुट स्वर में उत्तर मिला, "नाथ! कर्तव्य पथ पर"। रमा ने कौतूहल से इस जोड़े को देखा।

❀ ❀ ❀

एक रमता जोगी इस कहानी को कहता फिरता था। इसके अन्तिम शब्द होते थे, "मैं वीर-वेषिनी सरला को जानता हूं, उसका चित्र मेरे हृदय-पटल पर अङ्कित है"।

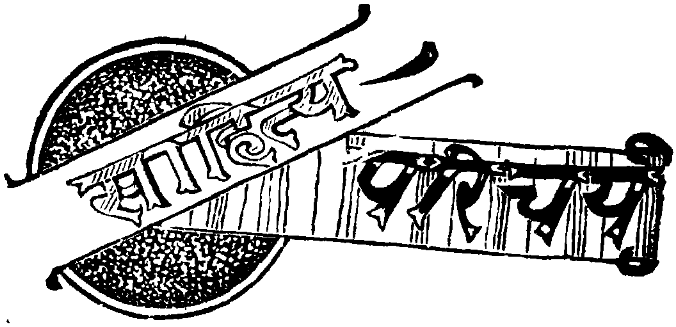
—— :❀:——

रण-बरसात में दुर्दिन की रात

[लेखक—श्रीयुत किशोरीदास जी बाजपेयी, शास्त्री]

—:❀:—

बड़ो अँधियारो बढ़्यो दिन की हू कुहू–निसि–
भई रन-पावस, न नेकहु लखात हैं।
चमू चतुरंग चोपि चाव भरि चली चपि–
प्रलय के कारे मेघ मानौं मंडरात हैं॥
सिंह ज्यों दहारैं वीर, त्योंहीं मत्त गजराज,
भभरि चिघारैं जनु महा-विज्जु-पात हैं।
रकत नदीन बिच नाग उतरात जात,
होत अति सोर निज पर न सुनात हैं॥१॥
चमकति लपकति चलै तरवारि मानौं
तड़ित-प्रवाह कारे मेघ लपटात हैं।
बूँद-झरी सम बान बरखत बेप्रमान,
भजत पुकार करि कायर दिखात हैं॥
ऐसे दुरदिन की हू राति में बिपति फंसि,
सत्रु-कोक-दम्पती बियोग बिललात हैं।
दया आवै मन सुनि दीन हीन करुन जु,
नेरे प्रतिद्वंद्विन के मुखनि में बात हैं॥२॥



श्रावकाचार—(प्रथम भाग) मूल लेखक-श्री गुणभूषण स्वामी, अनुवादक-पं० नन्दनलाल जी जैन वैद्य, प्रकाशक-दिगंबर जैन पुस्तकालय. सूरत, पृष्ठ १५५ मूल्य ।।।)

प्रस्तुत पुस्तक जैन धर्म-सम्बन्धी है। इसमें गृहस्थों के आचार शास्त्र विशेष कर सम्यक्त का वर्णन है। मूल ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लगभग चौदहवीं शताब्दी में लिखा गया था। अनुवाद साधारणतः अच्छा हुआ है। जैनियों के पढ़ने योग्य पुस्तक है। सहयोगी 'दिगम्बर जैन' ने इसे उपहार स्वरूप अपने ग्राहकों में मुफ्त बांटा है।

जैन-धर्म प्रकाश—लेखक—ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, प्रकाशक-मंत्री भा० दि० जैन परिषद्, बिजनौर, पृष्ठ संख्या ३०० से ऊपर, मूल्य ।।) मात्र।

जैन-धर्म का परिचय देने के लिए ब्रह्मचारी जी ने इस पुस्तक की रचना करके सचमुच बड़ा उपकार किया है। संक्षेप में इसमें मोटी मोटी सभी बातें आ गई हैं, जिनसे जैन-धर्म का वास्तविक स्वरूप जाना जा सकता है। ८९ विषयों का समावेश पुस्तक में किया गया है और वे सब आवश्यक है। प्रसन्नता की बात है कि प्रकाशकों ने पुस्तक की उपयोगिता को देख कर उसका लागत मूल्य रक्खा है। आशा है कि अजैनों में इस उपयोगी पुस्तक का प्रचार विशेष रूप से किया जायगा।

सनातन जैन मत—लेखक-ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, प्रकाशक-प्रमचन्द जैन देहलवी पृष्ठ ७४, मूल्य ।)

इस पुस्तक में भी, उपरोक्त पुस्तक की भांति जैन-धर्म का संक्षिप्त

वृत्तान्त है। हमारी सम्मति में ऐसी पुस्तकें लाखों की संख्या में छपनी और विना मूल्य या नाम मात्र मूल्य पर मिलनी चाहिए।

गीताञ्जलि—हिन्दीकार-श्री गिरिधर शर्मा जी नवरत्न, प्रकाशक-नवरत्न सरस्वती भवन, झालरापाटन, पृष्ठ ६७, मूल्य १)

महाकवि रवीन्द्रनाथ टगोर की गीताञ्जलि का नाम कौन नहीं जानता। एक लाख बीसहजार का पुरस्कार पा कर इस पुस्तक ने अपना और महाकवि का नाम अमर कर दिया है। उसी विश्व-विख्यात पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। ऐसी प्रसिद्ध पुस्तक के नवरत्न जी कृत हिन्दी अनुवाद के विषय में हमें कुछ कहने का अधिकार नहीं।

स्टाक-एक्सचैंज—लेखक और प्रकाशक-पं० गौरीशङ्कर शुक्ल 'पथिक', पृष्ठ २१४, मूल्य १॥)

शुक्ल जी व्यापार-शास्त्र के एक विज्ञ युवा हैं। इस विषय पर उन्होंने कई पुस्तकें और अनेक लेख लिखे हैं। हमारा विश्वास है कि भविष्य में आपके द्वारा इस शास्त्र की बहुत कुछ सेवा होगी। अस्तु, प्रस्तुत पुस्तक में स्टाक और एक्सचैंज जैसे जटिल विषय का पूर्ण विवेचन करते हुए लेखक ने लन्दन, अमेरिका, पेरिस, बम्बई, कलकत्ता आदि स्थानों के स्टाक-एक्सचैंज का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध के और भी कई विषयों की चर्चा है। हिन्दी में अपने विषय की पहली पुस्तक है।

निम्न लिखित पुस्तकें भी मिल गई हैं, प्रेषकों को धन्यवाद !

१—सन्ध्या के महत्त्व—ले० हीरालाल गुप्त रुड़की मू०)॥

२—पंच बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकरों की पूजा—बा० भोलानाथ मुख्तार मू० -)

३—जैन अनाथालय आगरे के विचारास्पद नियम।

४—धी मर्चेण्ट्स एसोसियेशन के सभापति का भाषण।

५— ,, ,, ,, स्वागत सभापति ,,

६—लेखमाला—श्री भुवनेश्वरसिंह 'भुवन' द्वारा संपादित और लक्ष्मी पुस्तकालय, शान्ति कुटीर मुजफ्फरपुर से प्रकाशित।

विविध विषय

१—साहस-वीर लिण्डबर्ग—

आज अमेरिका के बच्चे बच्चे की जिह्वा पर लिण्डबर्ग का नाम है। आबाल वृद्ध सभी उसके यशोगान में मुदित हो रहे हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो लिण्डबर्ग की गगनचुम्बी ख्याति को देख कर मन में ईर्षा कर रहे हैं, पर ऐसे कम हैं। हाँ, उस से भी अधिक अपना नाम करने के इच्छुक बहुत हैं,। अस्तु लिण्डबर्ग पचीस वर्ष का साधारण युवक है, पर उसने अपने एक साहसपूर्ण कार्य से संसार में अपना नाम अमर कर लिया है। पाठक जानते हैं कि यूरोप और अमेरिकावासी हवाई जहाजों में आशातीत उन्नत्ति कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि हवाई जहाजों के द्वारा वे जहाँ चाहें वहाँ चले जाया करें। उनकी इस इच्छा की पूर्ति में एटलांटिक महासागर बड़ी अड़चन अटका रहा था। यह महासागर भूतल का सब से बड़ा सागर है। करीब चार हजार मील की इसकी चौड़ाई है। अर्थात अमेरिका वासी यदि एटलांटिक महासागर पार करके यूरोप जाना चाहें तो उन्हें कम से कम चार हजार मील का सफ़र करना पड़े। इधर आठ दस वर्ष से अमेरिकावासी इस धुन में थे कि इस सागर को हवाई जहाज द्वारा पार किया जाय। इसके लिए उन्होंने एक लाख रुपये का परितोषिक भी घोषित किया था। जो आदमी हवाई जहाज के द्वारा अमेरिका से फ्रांस पहुंच जाय और रास्ते में कहीं न ठहरे वह इस इनाम को ले। लोगों ने प्रयत्न किए, कई कई आदमी उड़े और अपनी जान से हाथ धो बैठे। चार हजार मील पानी के ऊपर उड़ना क्या कोई खेल था? पर धुन के पक्के आदमियों ने पीछा न छोड़ा।

फलतः हाल ही में लिण्डबर्ग ने यह असम्भव काम भी सम्भव कर दिखाया। वह अकेला एक मोटर का जहाज ले कर रवाना हुआ और साढ़े तेतीस घंटे लगातार उड़ कर अन्त में फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहुंच गया। फ्रांस में और फिर अमेरिका में जिस धूम से लिण्डबर्ग का स्वागत हुआ, वह सम्राटों को भी ईर्षा पैदा करा सकता है। सचमुच इतनी बड़ी साहसपूर्ण विजय संभवतः इतिहास में यह पहली ही घटना थी। लिण्डबर्ग ने इस यात्रा से अमर-ख्याति ही नहीं प्राप्ति की, उसने वह मार्ग खोल दिया जिसके लिए यूरोप और अमेरिकावासी लालायित हो रहे थे। लिण्डबर्ग के पश्चात् तो तीसरे ही दिन दो और अमेरिकावासी उड़ कर जर्मनी पहुँचे। और एक वर्ष पश्चात्, यह आशा की जाती है, कि अमेरिका और यूरोप के बीच ऐसे जहाज चला करेंगे जो निरन्तर पचासों आदमियों और सैकड़ों मन माल को इधर से उधर पहुंचा दिया करेंगे। लिण्डबर्ग के इस साहस-पूर्ण कार्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'एटलांटिक' 'महासागर' नहीं प्रत्युत एक 'तलैया' है जिसे जो चाहे छलांग मार कर पार कर सकता है। सच है मनुष्य की बुद्धि और बल के सामने एटलांटिक तलैया ही है।

२—मनोरञ्जन-मूर्ति पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा—

जिसकी आशा न थी, वह हो गया। कराल काल का एक और प्रबल प्रहार हो गया। हिन्दी-संसार पर सहसा बज्रपात हो गया। कौन जानता था कि यह 'मनोरञ्जन मूर्ति' सहसा विलीन हो जायगी। रात के दो बजे तक जिसने लेख लिखे हों, वह सुबह होते न होते चल बसेगा यह कौन सोच सकता था! पर कुटिल काल के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। उसके पंजे में जब भी जो कोई आ जायगा, बच न पायगा।

पं० ईश्वरीप्रसाद जी हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक, सुविज्ञ सम्पादक और कुशल कवि थे। आगरे में जब वे 'धर्माभ्युदय' का सम्पादन करते थे, तब प्रायः हमारी उनसे भेट हुआ करती थी। वे हम से स्नेह मानते थे और "जैसवाल जैन" के लिए उन्होंने हमें कई अच्छे

लेख दिए थे। हमें उनकी हँसमुख मूर्ति का विस्मरण कभी नहीं होता। वे हास्य-रस के सिद्ध हस्त लेखक थे। प्रारम्भ में 'मनोरञ्जन' का सम्पादन करके ही वे यशस्वी हुए थे। हिन्दी सम्पादकों की दयनीय दशा का अनुभव भी वे काफी कर चुके थे। अन्य कई पत्रों में काम करने के पश्चात् इधर कई वर्षों से वे कलकत्ते में थे और श्री बा० रामलाल जी वर्मा के सहयोग से 'हिन्दू पंच' निकाला था। निस्सन्देह शर्मा जी ने 'हिन्दू पंच' के सम्पादन में आशातीत सफलता प्राप्त की थी। हाल ही में हाईकोर्ट ने 'पंच' के फैसले में शर्मा जी को निर्दोष प्रमाणित किया था। इस सम्बन्ध में हम उन्हें बधाई भी न दे पाए कि वे महाप्रयाण कर गए। आपके निधन से हिन्दी संसार की जो क्षति हुई है उसके विषय में हम क्या कहें? हम तो उनके दुखी परिवार को सान्त्वना देने में भी अपने को असमर्थ पाते हैं। परमात्मा उसे सहाय्य और शर्मा जी की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

३—साहित्य सेवियों का स्वर्गवास—

समाचार पत्रों के पाठकों को विदित होगा कि पिछले महीने हिन्दी के कई लब्ध प्रतिष्ठ लेखकों का स्वर्गवास होगया। पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्म्मा के विषय में तो ऊपर हम लिखही चुके हैं। श्री चण्डीप्रसादजी 'हृदयेश', श्री पं० शिवनाथ जी शर्म्मा और मुं० रामस्वरूपजी माथुर का निधन भी इसी मास में हुआ है।

'हृदयेश' जो हिन्दी के होनहार लेखक थे। अपनी अल्प अवस्था ही में उन्होंने जो पुस्तकें और लेख लिखे हैं वे उनकी ख्याति के लिए अल्प नहीं हैं। आप कवि भी थे और अच्छी कविता करते थे।

पं० शिवनाथजी वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध महापुरुष थे। आप हिन्दी में हास्यरस के सिद्ध-हस्त लेखक थे। लखनऊ से आप 'आनन्द' का सम्पादन करते थे, हास्य रस में आपने अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं।

मुं० रामस्वरूपजी माथुर इधर कई वर्षसे सहयोगी 'जयाजी प्रताप' के सम्पादक थे। इसमें सन्देह नहीं कि आपके सम्पादकत्व में 'ज० प्र०'

राज्य का पत्र ही नहीं रहा था, उसमें कुछ कुछ स्वतन्त्रता भी आगई थी।

उक्त तीनों महानुभावों के निधन का हमें अत्यन्त खेद है। उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करते हुए हम उनकी आत्माओं को शान्तिलाभ की प्रार्थना करते हैं।

४–दानवीर सर गंगाराम—

छिहत्तर वर्ष की पूर्णायु में यह महापुरुष हाल ही में स्वर्ग सिधारे हैं। ऐसी आयु में आपके ऐसे सत्कर्म किये हुए पुरुष के लिए शोक करना तो आवश्यक न था, पर यह नहीं समझ पड़ता कि आपके रिक्त स्थान की पूर्ति शीघ्र ही होगी। अतएव स्वभावतः आपकी याद आती है और रंज होता है। हम आप भूल जायँगे, किन्तु वे सैकड़ों अनाथ विधवाएँ जिनके रक्षक और पालक सर गंगारामजी ही थे, उन्हें नहीं भूल सकतीं। आपने विधवाओं के लिए जो कुछ किया है, वह अविस्मरणीय है। विधवा ही क्यों अनाथों की रक्षा के लिए भी आपने क्या नहीं किया। आपके विद्यालय आदि संस्थाएँ आपके सद्दान की कीर्ति स्तम्भ हैं। आपका स्वर्गवास इङ्गलैंड में हुआ। आप वहां कृषि कमीशन के सदस्य होकर गए थे। इस विषय के आप विशेषज्ञ थे। एञ्जीनियरी के तो आप अद्वितीय विद्वान थे। अपने अध्यवसाय और बुद्धिबल से ही आपने आशातीत उन्नति की और अमित धन उपार्जन किया। प्रसन्नता की बात है कि आपने मुक्तहस्त होकर उसे सत्कार्यों में व्यय भी किया। आपके दान की हुई रकम का अनुमान तीस लाख किया जाता है। आपके ऐसे अनेक गंगाराम भारत में पैदा हों, यही परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है।

५–श्री० बा० जुगमन्दरलाल जी का सद्दान—

इन्दौर के चीफ जस्टिस और लेजिस्लैटिव कौंसिल के सभापति श्री० बा० जुगमन्दरलाल जी बैरिस्टर जैन-धर्म के प्रसिद्ध ज्ञाता विद्वान थे। आपने जैन-धर्म के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें अँगरेजी में लिखी हैं— जिनमें से कुछ प्रकाशित हो गई हैं, कुछ अप्रकाशित रक्खी हैं। विगत

१२ जौलाई को आप इह लोकलीला संवरण कर परलोक की यात्रा कर गए। आपके कुटुम्ब में विधवा स्त्री के अतिरिक्त शायद और कोई नहीं है। मरने से पूर्व आपने अपनी स्थावर जंगम सारी सम्पत्ति धर्मार्थ अर्पण कर दी। अनुमानतः इस सम्पत्ति का मूल्य एक लाख से अधिक होगा। इसके प्रबन्ध के लिए तीन ट्रस्टी हैं:—श्री० सेठ लालचन्दजी सेठी, श्री० ब्र० शीतलप्रसादजी और बा० विमलप्रसादजी। हमें आशा है कि आप लोग जैनी जी की इस निधि का उचित उपयोग करेंगे। विल में जैनी जी ने इस रुपये को जैन साहित्य प्रकाशित करने में खर्च करने की इच्छा प्रकट की है। वास्तव में इस बात की ज़रूरत भी है। बाहर तो क्या भारत ही में जैन-धर्म के स्वरूप को जानने वाले इने गिने हैं। ज़रूरत है कि लोग इस धर्म के असली तत्व और स्वरूप को समझें और इसके साहित्य की ओर आकर्षित हों। जैनीजी ने अपनी तमाम सम्पत्ति इस कार्य के लिए अर्पण करदी, इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी होगी। आपकी ऐसी उदारता से अन्य धनी भाइयों को सबक़ सीखना चाहिए।

६—मुसलमानों का दिमाग़ आसमान पर—

समाचार पत्र के पाठकों को 'रंगीला रसूल' काण्ड की बातें फिर दुहराने की ज़रूरत नहीं है। इस न कुछ मामले को लेकर मुसल्मानों ने जैसा तूफ़ान उठा रक्खा है, उसे देख कर दुःख होता है। एक पुस्तक छपी, उस पर मुकद्दमा चला। पुस्तक प्रकाशक को सज़ा दे दी गई। अपील हुई, हाई कोर्ट ने पुस्तक को देश और समाज के लिए हानिकारक बताया। किन्तु जिस कानून से प्रकाशक को सज़ा दी गई थी, उस कानून को इस मामले में असमर्थ बता कर प्रकाशक को रिहा कर दिया। मुसल्मानों का डेपूटेशन गवर्नर के पास पहुँचा। गवर्नर ने अनुचित प्रोत्साहन दे कर उन्हें उत्तेजित कर दिया। अब मुसलमानों का दिमाग़ आसमान पर जा पहुँचा। लगे सभाएँ करने और अएट सएट बकने। पंजाब ही नहीं सारे भारत में, नहीं नहीं भारत से बाहर भी मुसलमानों

ने हजारों की तादाद में इकट्ठे हो हो कर प्रस्ताव पास किए कि नया कानून बनाया जाय, हाई कोर्ट के उस जज को निकाल दिया जाय और हिन्दुओं का बायकाट किया जाय। यहीं तक मामला न रहा। सीमा-प्रान्त के मुसल्मानों ने हिन्दुओं को लूट लूट कर भगाना शुरू कर दिया। यह हालत है मुसल्मानों के दिमाग़ की। और हमारी आलिया सरकार यह सब तमाशा चुपचाप देख रही है। खुल्लम खुल्ला मुसल्मान विद्रोहात्मक व्याख्यान दे रहे हैं, आपत्ति-जनक प्रस्ताव पास कर रहे हैं और क़ानून को हाथ में लेने की धमकी दे रहे हैं, फिर भी सरकार के कानों पर जूं नहीं रेंगती। उसे तो शायद इस बात का हर्ष होगा कि खूब खटक रही है। यदि ऐसा नहीं है तो क्यों नहीं सरकार इस तूफाने-बदतमीजी का दमन करती ? क्या असहयोग आन्दोलन को दबा देने वाली सरकार में इतना भी बल नहीं है कि मुसलमानों के इस ग़ैरक़ानूनी आन्दोलन और बेजा कार्रवाईयों को दबा सके ? हम यह स्पष्ट कह सकते हैं कि मुसलमानों की उच्छृंखलता को बढ़ने देना अच्छा नहीं है। यह विषबेलि है जो बहुत हानि पहुँचावेगी। अतएव इसे अभी से मिटा देना श्रेयस्कर है। हिन्दुओं को भी अब ज़रा संभल जाना चाहिए। यदि उन्हें जीना है तो वे अपने आपसी झगड़ों में आग लगा कर संगठन करें और कायरता छोड़ कर अपने स्वत्वों के लिए मरना सीखें।

७—पत्रों का दमन—

वर्तमान बढ़ते हुए जाति गत विद्रोह का दोष समय समय पर समाचार पत्रों पर मढ़ा जाता है। बात कुछ अंश में ठीक भी है। पंजाब के कुछ पत्र विशेष कर उर्दू पत्र ऐसे उत्तेजक समाचार छापते हैं कि जिनसे सरासर विद्रोह को उत्तेजना मिलती है। उस दिन पंजाब कौंसिल में इस विषय पर चर्चा हुई थी तो सरकार की ओर से झगड़ों का सारा अपराध पत्रों के ऊपर डाला गया था। महात्मा गांधी जी ने भी अपने एक लेख में पत्रों की बुराई की थी। पर इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि सभी पत्र दोषी हैं। लक्षण ऐसे दीखते हैं कि प्रेस एक्ट से भी तेज कोई

नया क़ानून पत्रों के दमन करने के लिए प्रसव होने वाला है। हम इस क़ानून का अभी से तीव्र विरोध करते हैं। कुछ पत्रों के अपराध पर सब पत्रों के दमन योग्य क़ानून गढ़ना न्याय-संगत नहीं। हमारी समझ में जो पत्र अब इतने उच्छृङ्खल हो गए हैं, उन्हें प्रारम्भ ही में दमन नहीं किया गया था अब भी यदि सरकार अपने वर्तमान क़ानूनों का ही उपयोग करे तो वह उनका दमन कर सकती है। हमें विश्वास है कि नया क़ानून बनने पर 'चलते फिरते प्लेग के कीड़ों' का उतना दमन न होगा जितना राष्ट्रीय-पत्रों का।

८—हिन्दुस्तानी एकाडेमी—

संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने जिस एकाडेमी की स्थापना गतवर्ष की थी, उसका कार्य प्रारम्भ हो गया। प्रथम वर्ष का जो कार्य-क्रम प्रकाशित हुआ है उससे पता चलता है कि एकाडेमी से हिन्दी उर्दू साहित्य को यथेष्ट लाभ पहुँचेगा। किन्तु हम इस स्थान पर एक निवेदन करना चाहते हैं। संयुक्त-प्रान्त विशेष कर हिन्दी भाषी प्रान्त है। यहाँ के अधिकांश निवासी हिन्दी लिखते और बोलते हैं। शिक्षालयों में भी हिन्दी के पढ़ने वाले अधिक और उर्दू के कम हैं। उर्दू की अपेक्षा हिन्दी की लिपि, भाषा और साहित्य भी विशेष गुणयुक्त हैं। तथा प्रचार भी हिन्दी-साहित्य का ही विशेष है। ऐसी दशा में हमारी तुच्छ सम्मति में हिन्दी और उर्दू को समतल पर रखना उचित नहीं। हिन्दी का अधिकार विशेष है और वह उसे प्राप्त होना चाहिए। एकाडेमी ने एक हज़ार रुपया हिन्दी और एक हज़ार रुपया उर्दू पुस्तकों पर पुरस्कार रूप देना निर्णय किया है। यह उचित नहीं है। हिन्दी की पुस्तकें उर्दू से कई गुनी अधिक प्रकाशित होती हैं तब उन पर पुरस्कार की मात्रा भी अधिक होनी चाहिए। पर यह संभव तभी है जब एकाडेमी में हिन्दी प्रेमियों का बहुमत हो। अभी तो वहाँ उर्दू रसिकों का ही बहुमत है। सभापति सर सप्रू साहब भी उर्दू के ही पक्षपाती हैं। ऐसी दशा में हिन्दी के लिए कोई विशेष काम नहीं हो सकता। हिन्दी प्रेमियों, हिन्दी

पत्रों और हिन्दी संस्थाओं को इसके विरुद्ध आन्दोलन करना चाहिए, और अपना बहुमत करने की चेष्टा करनी चाहिए। भरतपुर सम्मेलन में इस विषय पर एक प्रस्ताव पास हुआ था। उस पर क्या हुआ कुछ पता नहीं लगा। वैसे ही प्रस्ताव सब जगह से पास होने चाहिए। आशा है कि इस विषय पर उचित ध्यान दिया जायगा।

६-स्थानीय साप्ताहिक—

आगरा अच्छे पत्रों के लिए एक प्रकार से मरुभूमि रहा है। अच्छे पत्र यहाँ से निकलते हैं, पर अधिक नहीं। आज कल यहां से तीन चार साप्ताहिक पत्र हिन्दी में निकलते हैं। इनमें सहयोगी 'आर्यमित्र' सबसे पुराना है। यह आर्यसमाज का मुख पत्र है। पिछले कई वर्ष से इसका सम्पादन हिन्दी के यशस्वी लेखक और कवि श्री० पं० हरिशङ्करजी शर्मा कविरत्न करते हैं। आपके सम्पादन की विशेषता यह है कि पत्र में साहित्य चर्चा विशेष रहती है, विचारों का प्रदर्शन बहुत ही शिष्टता पूर्वक होता है और साम्प्रदायिक पत्र होते हुए भी उसे सर्व साधारण पढ़ सकते हैं। १ जुलाई से स्वनाम धन्य श्री० पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी आपके सहकारी हो गए हैं। हमें लिखते हुए हर्ष होता है कि आपके सहयोग से सहयोगी 'आर्यमित्र' में कई विशेषताएँ आ गई हैं। वे हैं उसके 'देशदर्शन' 'महिलामण्डल' 'साहित्यसौरभ' और 'वह कौन थे' शीर्षक। इन स्तम्भों में चतुर्वेदीजी के विचार प्रति सप्ताह पढ़ने को मिल सकते हैं। हमें विश्वास है कि श्री हरिजी और चतुर्वेदीजी के इस युगल सम्पादकत्व में 'आर्यमित्र' की और भी उन्नति होगी और इसका प्रभाव उसकी ग्राहक श्रेणी पर बहुत अच्छा पड़ेगा। दूसरा पत्र है 'राजपूत'। यह भी बहुत पुराना पत्र है, पर साप्ताहिक हाल ही में हुआ है। हिन्दी के अनन्य सेवक श्री कुँवर हनुमन्तसिंहजी ने इस पत्र का सम्पादन लगभग २८ वर्ष किया और इसके द्वारा हिन्दी साहित्य का अपरिमित लाभ हुआ। कुँवर साहब के बाद अब उसका सम्पादन आपके सुपुत्र कुँ० गजेन्द्रसिंह और शक्तिसिंह जी कर रहे हैं। आशा है कि जैसे जैसे आपका अनुभव

बढ़ता जायगा वैसे ही वैसे 'राजपूत' के सम्पादन में भी विशेषता आती जायगी। तीसरा पत्र है 'जैनपथ प्रदर्शक'। यह साम्प्रदायिक पत्र है। चौथा पत्र 'सैनिक' राष्ट्रीय पत्रों में प्रख्यात है। इसके सम्पादक श्री पं० श्रीकृष्णदत्त जी पालीवाल एम० ए० 'प्रभा' और 'प्रताप' का सम्पादन करके अपना नाम विख्यात कर चुके हैं। 'सैनिक' का सम्पादन आप अकेले करते हैं, किन्तु करते बड़ा सुन्दर हैं। हमारी सम्मति में राष्ट्रीय पत्रों में 'प्रताप' के पश्चात् 'सैनिक' का ही नम्बर आता है। 'सैनिक' में कई विशेषताएँ हैं। इसके हिन्दू मुस्लिम और राष्ट्रीय हलचल स्तम्भों में सप्ताह भर की मुख्य मुख्य सभी बातों का सार आ जाता है। इसके अग्र लेख और टिप्पणियां बड़ी उग्र सैनिक योग्य ही होती हैं। किसानों के मतलब की बातें सैनिक प्रायः छापता है। सर्व साधारण की शिकायतें और सवालों के जवाब छापना भी सैनिक की विशेषता है। एक और बात है, जो सबसे महत्व पूर्ण है। 'सैनिक' में प्रति सप्ताह संसार की वर्तमान हलचल या समस्याओं पर कोई न कोई नवीन लेख अवश्य रहता है जो अन्य हिन्दी पत्रों में देखने में नहीं आता। हमें विश्वास है कि अभी सैनिक और भी उन्नति करेगा।

१०—लालाजी का विवाह—

हिन्दी के दार्शनिक विद्वान और प्रौढ़ लेखक श्री लाला कन्नोमल जी की शादी के सम्बन्ध में इधर बड़ी चर्चा है। हमारे पूछने पर लाला जी ने लिखा था कि नारायणदास नामक एक व्यक्ति ने उन्हें बदनाम करने के लिए उनके विरुद्ध लेख छापे हैं। इसी तरह का एक प्रतिवाद भी आपने 'आज' में छपाया है। पर इस से यह स्पष्ट नहीं होता कि लाला जी ने शादी नहीं की। यहाँ पूछताछ करने से हमें पता चला है कि लाला जी की शादी हुए तीन मास व्यतीत हो गए। कन्या की आयु कुछ लोग ११ वर्ष कुछ १४–१५ वर्ष और कुछ १७–१८ वर्ष बताते हैं। यथार्थ में आयु क्या है—यह ठीक पता नहीं। किन्तु यह मान लेने पर भी कि कन्या की आयु १७ वर्ष की है, लाला जी का यह कार्य अनुमोदनीय

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग १ | भाद्रपद शुक्ला २ संवत् १९८४ सितम्बर १९२७ | अङ्क ११

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   एक अङ्क का ।)

विषय-सूची

नव वर्ष

वीर-सन्देश का प्रथम वर्ष अगले मास समाप्त हो जायगा। प्रथम वर्ष में जो जो बातें हम करना चाहते थे वे पूर्ण रूप से न कर सके—इसका हमें खेद है। परन्तु साहित्य संसार ने सन्देश का समुचित रूप से स्वागत किया और उसे यथेष्ट प्रोत्साहन दिया, इसका हमें गर्व है। हम नए वर्ष से पत्र में कुछ नवीनता लाना चाहते हैं। आशा है कि उसे पाठक बहुत पसन्द करेंगे। हमारा विश्वास है कि हमारे ग्राहक अनुग्राहक लेखक और सहयोगी हमें इस कार्य में यथेष्ट सहायता देने की कृपा करेंगे।

पुरस्कार निर्णायक

'वीर-सन्देश' के प्रथम वर्ष में प्रकाशित गल्प, लेख और कविताओं की जाँच के लिए निम्न पांच सज्जन निर्णायक चुने गए हैं। १ श्री पं० श्रीकृष्णदत्त जी पालीवाल एम० ए०, सम्पादक 'सैनिक', २ श्री पं० हरिशंकरजी शर्मा, सम्पादक 'आर्य-मित्र', ३ श्री पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी, ४ श्री चतु० विश्वेश्वरदयालु जी विशारद, और ५ सम्पादक।

—मैनेजर।



भारतीय लेजिस्लेटिव एसेम्बली के सभापति

माननीय श्री विट्ठलभाई पटेल

आपने अपनी एसेम्बली की आय से बचा हुआ सम्पूर्ण धन
(दस हज़ार रुपए) गुजरात बाढ़ पीड़ितों की
सहायतार्थ दे दिया है।

महावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग १ { आगरा-भाद्रपद शुक्ला २ सं० १९८४-वीर सं० २४५३ सितम्बर १९२७ } अङ्क ११

अनुरोध !

[लेखक—श्री० कविवर 'प्रभात' जी]

मां ! यद्यपि हम सब बालक हैं कुसुम-सुकोमल और अबोध !
फिरभी, तेरे चरणों में बस, यही हमारा है अनुरोध !—
निस्संकोच हमें देदे अपने हाथों की तीक्ष्ण-कुठार !
होने दे—यदि दृश्य देख यह जग में होगा हाहाकार !!
चरणों की ही धूल, मिले, है चाह नहीं पहने हम ताज !
कर विश्वास, न किसी तरह पद-मर्दित होने देंगे लाज !!
हमें न विचलित कर सकते हैं विघ्नों के विक्षिप्त-प्रहार !
बड़वानल के दाह, उदधि-गर्जन, तूफ़ान प्रलय-हुंकार !!
कहदे—"जा, हो सफल ध्येय में, ले देती हूं स्वीय कुठार !
आज हमारे बच्चों की भी साहस-शक्ति देख संसार !!"

आह्वान !

[लेखक—श्री० प्रो० मुंशीराम जी शर्मा 'सोम', एम० ए०]

मां के सुकुमार कुमारो ! आओ, आज, प्रेम-पूर्वक, इस मातृ-मन्दिर में मैं तुम्हारा आह्वान करता हूं। आओ, हृदय की मथी हुई भावनाओं की हवि लेकर, स्नेह के सारभूत सर्पिः के साथ और कोमल कमनीय कामनाओं के सुमन सञ्चय कर। आओ, इस पवित्र प्राङ्गण में प्रवेश करो। देखो, मां, माभैः माभैः कहकर तुम्हें उत्साह-वर्धक आशीर्वाद दे रही है। आओ, इस अलभ्य अवसर में मातृ-पद अर्चना करो। देखो, तुम्हारे कुछ साथी पहिले से ही आ जुटे हैं और मातृ आराधना में अपनी सारी चित्तवृत्तियों को लगाये हुए हैं। आओ, तुम भी इस पवित्र कार्य में उनका सहयोग दो—अपना कर्तव्य पालन करो।

मां के सपूतो ! मां तुम्हारी बाट देख रही है। वह तुम से बड़ी बड़ी आशायें रखती है। देखो, कहीं उसे निराश न करना। तुम उसकी प्रातिस्पर्द्धिनी की कैसी तन्मनस्कता से सेवा करते हो—और सेवा भी कैसी जो व्यर्थ और निष्फल—पर—अच्छा—यह भी करो लौकिक उपचार के लिये, सांसारिक मृग-तृष्णा के लिये, (जब सभी उधर देख रहे हैं तो तुम क्यों न देखोगे !) परन्तु ऐसा करते हुए भी तुम अपनी आराध्य देवी की उपासना कर सकते हो। आज वर्षों के बाद यह पुण्य अवसर तुम्हें प्राप्त हुआ है, इसे मत चूको। देखो, मां तुम्हारी ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रही है। आओ ! शीघ्र आओ !! मातृ-मन्दिर के पुजारियों में-अनुचरों और सेवकों में-अपना नाम लिखाओ !!!

मां के दुलारो ! आओ ! हृदय की पवित्रता के साथ इस पुण्य धाम में प्रवेश करो। यहां तो तुम्हें मातृ-मूर्ति के सम्मुख वीरासन लगा कर, सादर, साञ्जलि, विनम्र शिरसा आराधना करनी है—किसी लौकिक लाभ के लिये नहीं—स्वकर्तव्य पालन के लिये। क्या अनुत्तीर्णता का भय है ? ओह ! आराधना और अनुत्तीर्णता का क्या सम्बन्ध ! क्या

देर हो गई है ? ओह ! अभी विलम्ब नहीं—ब्राह्म-याम है। मन्दिर के कपाट अभी खुले हैं—अर्ती जन सामग्री लेकर इकट्ठे ही हो रहे हैं। क्या अशक्त हो ? ओह ! तो और भी आओ ! यहां शक्ति की राशि है, पराक्रम का पुञ्ज है, और सागर सामर्थ्य का है—निकट आते ही तुम सशक्त, समर्थ और पराक्रमी हो जाओगे। आओ ! वात्सल्य हुंकार करते हुए सिंह के सुवनों के समान, वां वां करते हुए गाय के बछड़े की तरह और मां मां करते हुए मां के लाड़लों की भांति। आओ ! शीघ्र आओ ! आज प्रेम-पूर्वक इस मातृ-मन्दिर में मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ।

दो कवित्त

[लेखक—श्री० व्रजकिशोर जी शर्मा "पंकज"]

सुन सुन करुण कहानी आर्य नारियों की,
　　भर भर जाय जोश आर्य नर नर में।
वीर-जोश वाली, भद्र काली के समान वीर,
　　जन्म लें अनेक महिलायें घर घर में॥
जागी देख आर्य जाति घोर-अति नींद में से,
　　हल चल जाय मच सारे विश्व भर में
कामी क्रूर मानवों को रौरव में भेजने को,
　　चमकें अनेकों करवाल कर कर में॥

२

निद्रित दशा में हो अचेत पड़े सोते तुम्हें,
　　समय गया है पर अब मत जाने दो।
मूढ़ औ असभ्य तुम्हें यूरुप निवासियों ने,
　　बहुत बताया पर अब न बताने दो॥
भारतीय जन जन बीच वीर जोश फिर,
　　कायरता मेटने को भर भर जाने दो।
एक बार भारत का गौरव प्रदीप फिर,
　　विश्व-तम काटने को वीर जग जाने दो॥

प्राचीन काल में अस्त्र शस्त्र

[लेखक—श्री० पं० भागीरथप्रसाद जी दीक्षित, विशारद]

भारतीय सभ्यता का विस्तार अति प्राचीन काल से पाया जाता है। जिस समय मिश्रियन, बेबोलोनियन, पार्थियन, आदि प्राचीन जातियों ने सभ्यता के क्षेत्र में पदार्पण तक न किया था उस समय भारतीय सभ्यता पूर्णता को प्राप्त हो चुकी थी और आज उन देशों की सभ्यता केवल पुरातत्व विभाग की रिपोर्टों के पृष्ठों पर शेष रह गयी है। परंतु आर्य-जातीय सभ्यता आज भी जीर्ण शीर्ण दशा में ही सही उन्हीं चरण चिह्नों पर चलती जा रही है जिसे हमारे पूर्वजों ने विकसित किया था।

आजकल वैज्ञानिक युग है; विज्ञान अपनी चरम सीमा को पहुँचा हुआ है। युद्धकला ने तो उन्नति की पराकाष्ठा ही कर दी है। गत यूरोपीय महायुद्ध में इन अस्त्र शस्त्रों का भली प्रकार प्रयोग हुआ था। यही नहीं, उसके पश्चात् भी युद्ध सम्बन्धी उपकरणों में लगातार उन्नति होती जा रही है। इसकी इयत्ता कहाँ तक होगी, नहीं कहा जा सकता। हम आज इस लेख द्वारा यही दरशाने का प्रयत्न करेंगे कि प्राचीन काल में भारतीय युद्ध-कला वर्त्तमान रण-विद्या से कहीं अधिक उन्नति पर थी।

आर्ष ग्रन्थों में ६४ दिव्यास्त्रों का उल्लेख आया है:—

ब्रह्म शिरो ब्रह्मास्त्रं पाशुपतं वैष्णवं च वरुणास्त्रम्।
नारायणास्त्रमैन्द्रं प्राजापत्यास्त्रमाग्नेयम् ॥ ३१७ ॥
वायव्यं कौवेरं पार्जन्य त्वाष्ट्र-काल याम्यानि!
दानव मथ च स्कान्दं प्रमथं वैनायकं च कूष्माण्डम् ॥३१८॥
गण गान्धर्वे—राक्षस—पैशाचे—भौत—वैताले।
शारभ—मार्क्ष्य—शावर—फैक—मातङ्ग—नाग—मकरास्त्रम्॥३१९॥
सौपर्ण—मारुण्ड—चौलूकं—गावर्ण—चेति।
पाषाण—कालकूटे—चाक्रैषीके—बलातिबले॥ ३२० ॥

औदुम्वरं च राजस हैमन गुह्यानि शौर युम्यादः ।
स्तम्भन-कम्पन-जृम्भण-जम्भक-मूर्छा निर्मीलनोत्पाताः॥३२१॥
प्रस्वापनं च मोहनमचेतनं भ्रामकं ज्वरास्त्रं च ।
वैद्युत तैमिर तामस भेदा दासन् चतुः पार्णः ॥३२२॥
(इन्द्र विजयः हस्त लिखित प्रति पृष्ठ ४४ श्लोक ३१७–३२२)

ये ६४ अस्त्र चार भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—

(१) दैवास्त्राणि, (२) यौनास्त्राणि, (३) भौतास्त्राणि, (४) कार्मास्त्राणि ।

निम्न लिखित तालिका से यह विभाग भली प्रकार ज्ञात हो सकते हैं:—

१६ दैवास्त्राणिः—

१ ब्रह्मशिरोऽस्त्रम्, २ ब्रह्मास्त्रम्, ३ पाशुपतास्त्रम्, ४ वैष्णवास्त्रम्, ५ वारुणास्त्रम्, ६ नारायणास्त्रम्, ७ ऐन्द्रास्त्रम्, ८ प्राजापत्यास्त्रम्, ९ आग्नेयास्त्रम्, १० वायव्यास्त्रम्, ११ कौबेरास्त्रम्, १२ पार्जन्यास्त्रम्, १३ त्वाष्ट्रास्त्रम्, १४ कालास्त्रम्, १५ याम्यास्त्रम्, १६ दानवास्त्रम्,

१६ यौनास्त्राणिः—

१७ स्कान्दास्त्रम्, १८ प्रमथास्त्रम, १९ वैनायकास्त्रम्, २० कूष्माण्डास्त्रम, २१ गणास्त्रम, २२ गान्धर्वास्त्रम, २३ राक्षसास्त्रम, २४ पैशाचास्त्रम, २५ भौतास्त्रम, २६ वैतालास्त्रम, २७ शरमास्त्रम, २८ आर्क्ष्यास्त्रम, २९ शावरास्त्रम, ३० फैरवास्त्रम, ३१ मातङ्गास्त्रम, ३२ नागास्त्रम्,

१६ भौतास्त्राणिः—

३३ मकारास्त्रम, ३४ सौपर्णास्त्रम, ३५ भारुण्डास्त्रम, ३६ उलूकास्त्रम, ३७ गालणास्त्रम, ३८ पाषाणास्त्रम्, ३९ कालकूटास्त्रम, ४० चाक्रास्त्रम, ४१ ऐबीकास्त्रम, ४२ बलास्त्रम, ४३ अलिबलास्त्रम, ४४ औदुम्बरास्त्रम्, ४५ राजसास्त्रम्, ४६ हैयनास्त्रम्, ४७ गुह्यास्त्रम, ४८ शौरास्त्रम्,

१६ कर्मास्त्राणिः—

४९ उन्मादास्त्रम्, ५० स्तम्भनास्त्रम, ५१ कम्पनास्त्रम, ५२ जृम्भणास्त्रम्,

५३ जृम्भकास्त्रम्, ५४ मूर्छनास्त्रम्, ५५ निर्भोलतास्त्रम्, ५६ उत्पातास्त्रम्, ५७ प्रस्वापनास्त्रम्, ५८ ज्वरास्त्रम्, ५९ भ्रायकास्त्रम्, ६० अचेतनास्त्रम्, ६१ मोहनास्त्रम्, ६२ वैद्युतास्त्रम्, ६३ तैमिरास्त्रम्, ६४ तामसास्त्रम्।

यही नहीं, बाल्मीकीय रामायण में ५० दिव्यास्त्रों का वर्णन आया है। विश्वामित्र ऋषि ने भगवान रामचन्द्र जी को इन अस्त्रों का संचालन और संहार सिखलाया था:—

चक्राणि पञ्च पाशात्रय मशवी द्वे गदे च द्वे।
शक्ती द्वे च महास्त्रं षोढा षोढैव तीव्रास्त्रम् ॥
साधारणास्त्र भेदाः सन्ति चतुर्विंशतिस्तत्र ।
मन्त्राहि तानि सर्वाशयमोघ वीर्याणि सिध्यन्ति ॥

उक्त ५० दिव्यास्त्र ८ भागों में विभक्त किये गये हैं:—

५ चक्र, ३ पाश, २ अशनि, २ गदा, २ शक्ति, ६ महास्त्र, ६ तीव्रास्त्र और २४ साधारण अस्त्र हैं, जिनकी तालिका नीचे दी जाती है:—

(१) ५ चक्रः—१ दंड, २ धर्म, ३ काल, ४ विष्णु, ५ ऐन्द्र।

(२) ३ पाशः—१ धर्म, २ काल, ३ करुण।

(३) २ अशनिः—१ शुष्का, २ आर्द्रा।

(४) २ गदाः—१ मोदकी, २ शिखरी।

(५) २ शक्तिः—१ कंकाल मुशल, २ कापाल किंकिणी।

(६) ६ महास्त्रः—१ बज्र, २ शैव, ३ शूल वल, ४ ब्रह्म शिरः, ५ ऐषीक ६ ब्रह्म।

(७) ६ तीव्रास्त्रः—१ पिनाक, २ नारायण, ३ आग्नेय, ४ वायव्य, ५ हयग्रीव, ६ क्रौञ्च।

(८) २४ साधारणास्त्रः—१ विद्याधर (नन्दन मतिरत्नम्), २ गन्धर्व (मोहनम्), ३ प्रस्वापनम्, ४ प्रशमनम्, ५ सौम्यम्, ६ वर्षणम्, ७ शोषणम्, ८ संतापनम्, ९ विलापनम्, १० मादनम्, ११

कन्दर्पास्त्रम्[1], १२ गन्धर्वास्त्रम्[2], १३ पिशाचास्त्रम्[3], १४ तायसम्, १५ सौयनम्, १६ संवर्तम्, १७ मौसलम्, १८ सत्यास्त्रम्, १९ मायास्त्रम्, २० सौरास्त्रम्[4], २१ सौपास्त्रम्[5], २२ त्वाष्ट्रास्त्रम्[6] २३ भगास्त्रम्[7], २४ शीतेपु[8]।

उपर्युक्त ५० दिव्यास्त्रों के संहार भी विश्वामित्र ऋषि ने भगवान रामचन्द्र को सिखलाये थे। संहार का आशय वापिस आना है। जिनके प्रयोग से छोड़े अस्त्रों का समाधान हो जाता था या वापिस आ जाते थे, उनकी सूची निम्न लिखित है—

१ सत्यवान	१८ स्वनाम	३५ पित्रयः
२ सत्यकीर्ति	१९ ज्योतिषम्	३६ सौयनसः
३ धृष्ट	२० शकुनम	३७ विधूतः
४ रभसः-प्रतिहारतरः	२१ नैरास्यः	३८ मकरः
५ अपराङ्ग मुखम	२२ विमलः	३९ परवीरः
६ अवांग मुखम्	२३ योगधरः	४० रतिः
७ लक्ष्यः	२४ विनिद्र	४१ धनम
८ अलक्ष्यः	२५ दैत्यः	४२ धान्यम्
९ दृढ़ नाम	२६ प्रथमतः	४३ कामरूपः
१० सुनामः	२७ शुचिबाहु	४४ कामरूपिः
११ दृशाक्षः	२८ महाबाहु	४५ मोह
१२ शतवक्र	२९ निष्कलि	४६ आवरणम्
१३ दशशीर्ष	३० विरुचः	४७ जृम्भकः
१४ शतोदरः	३१ सार्चिमाली	४८ सर्पनाथ
१५ पद्मनामः	३२ धृतिमाली	४९ पन्थानः
१६ महानामः	३३ वृत्तियान	५० वरुणः
१७ दुदनामः	३४ रुचिरः	

१ कन्दर्प दयित अर्थात कामदेव को प्यारा, २ गन्धर्व दयित अर्थात गन्धर्वों को प्यारा, ३ पिशाच दयित अर्थात पिशाचों को प्यारा, ४ तेजप्रभ अर्थात तेजयुक्त क्रांति वाला तथा दूसरे के तेज का हरण करने वाला, ५ शिशिर ६ दारुण, ७ दारुण, ८ मान का खंडन करने वाला।

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से अस्त्र शस्त्र संस्कृत ग्रन्थों में प्रयुक्त हुए हैं और उन्हीं के आधार पर कुछ नाम भाषा ग्रन्थों में भी प्रयोग में आये हैं। अतः उनकी एक सूची संस्कृत अन्य पर्यायवाची शब्दों सहित दी जाती है:—

आर्ष कालीन नाम	संस्कृत नाम	भाषा नाम
१ खड्ग सचर्या	कृपाण ऋषिः असि, करवाल	तरवार, खाँडा
२ धनुः सशरम्	चाप, धन्वः	धनुष, कमान बाणसहित
३ परिघः, कालदण्ड	परिघातिनः	लाठी (लोहबद्ध हस्त-प्रमाण लकुट)
४ पदिशम्	...	शेल
५ तोमर	सर्वला	गुरु गुज
६ कुन्तः	प्रास	भाला, बल्लम
७ खेटः	ईली, करबाली	कटारी, गुप्ती
८ गदा	...	गुर्ज
९ परशुः	परश्वधः,स्वधितिः कुठारः	फरसा, कुठार, कुल्हाड़ी
१० चक्रम्	...	चक्र
११ शूलम्	...	शूल
१२ शक्ति	कासूः	बर्छी
१३ मुग्दर, कूट मुग्दर	घनः, द्रुघणः	मुग्दर
१४ पाशः	...	फांस
१५ हलमूसल	...	हल मूसल
१६ भिन्दिपालः	सृग	गोफनी, ढेल बांस (पत्थर फेंकने का यन्त्र)
१७ छुरिका	शस्त्री, असि पुत्री	छुरी, छुरा
१८ शतघ्नी, भुशुण्डी	...	तोप, बन्दूक

ऊपर लिखे विवरण से पाठक समझ गये होंगे कि आर्य जाति युद्ध-कला से कितनी अधिक परिचित थी। अस्त्रों शस्त्रों को चला कर पुनः वापिस कर लेने की विधि अभी तक पाश्चात्य सभ्यताभिमानिनी जाति को भी विदित नहीं है। आर्य जाति के लिए यह बड़े गौरव की बात है। इन्हीं शस्त्रों के सहारे भारतीय विजय-वैजयन्ती अखिल विश्व में फहरा रही थी और इसी के प्रताप से आजतक अनेक स्थानों में आर्यों के उपनिवेश पाये जाते हैं। परन्तु जब से हिन्दू (आर्य) जाति ने अकर्मण्यता धारण कर ली और उक्त शस्त्रास्त्रों का उपयोग करना तो दूर रहा, नाम तक भुला दिया तब से पद-पद पर ठोकरें खाती हुई दासता के पास में आबद्ध हो गयी है। उसे चाहिये कि अपने खोये हुये गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रत्येक हिन्दू को उपर्युक्त अस्त्र शस्त्र संचालन सिखाना चाहिये। कुछ उपकरणों को सामायिक रूप देकर अनुकूल बनाया जा सकता है तथा कुछ अन्य स्थानीय उपकरणों का प्रयोग सीख कर अन्य देशों के समान स्थान व गौरव पाने का प्रयत्न करना चाहिये। बिना कर्मण्य बने हम कदापि पूर्व मर्यादा को प्राप्त नहीं हो सकते। हमें अखाड़ों में इनका उपयोग सीखना चाहिये और स्कूलों में इनकी अनिवार्य शिक्षा कराने का प्रयत्न करना चाहिये। नहीं तो पिट पिट कर दिन प्रति दिन हम आर्य जातीय मर्यादा को नष्ट करते जावेंगे। इनके बिना हमारा कल्याण कदापि नहीं।

नोटः—इस लेख में श्रीमान् श्रद्धेय विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन झा महोदय राज पण्डित रचित जयपुर इन्द्रविजय नाम के संस्कृत ग्रन्थ से अधिक सहायता मिली है अतः उक्त महानुभावों के हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं। यह पुस्तक अभी तक अप्रकाशित है। झा महोदय संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित हैं, वैदिक विषय का इतना बड़ा विद्वान् शायद ही ढूँढने से मिले। आप आधुनिक अन्वेषण विधि से भी भली भांति परिचित हैं। आपने संस्कृत में खोज सम्बन्धी बीसियों ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें कुछ छप भी चुके हैं। यह इन्द्र विजय ग्रन्थ भी बहुत ही महत्व पूर्ण है।

सुभट सङ्कल्प

[लेखक—श्री० कर्णकवि जी]

भारत पै बलि जायँगे !
जीवित जो हम रहे तो न क्यों, विजय लक्ष्मी पायँगे ?
भारत पै बलि जायँगे !
पार्थ समान धनुर्धारी हो, यदुनन्दन से सहकारी हो।
प्रतियोगिनी शक्तियों से फिर, तुमुल युद्ध ठहरायँगे ॥
भारत पै बलि जायँगे !
भीम गदा ले ललकारेंगे, बैरी दल को संहारेंगे।
काढ़ दमन-दुर्य्योधन का दम, निर्भय न्याय चुकायँगे ॥
भारत पै बलि जायँगे !
अनय यवन का नाश करेंगे, निर्मल भाव प्रकाश करेंगे।
दुर्विचार दुःशासन का सिर, धड़ से काट गिरायँगे ॥
भारत पै बलि जायँगे !
परवश क्यों दुख शोक सहेंगे, कर में कठिन कृपाण गहेंगे।
बदला बिना लिये न रहेंगे, बिजली उर दौड़ायँगे ॥
भारत पै बलि जायँगे !
धर्म्म-क्षेत्र में पग बढ़ायँगे, जीव मात्र के काम आयँगे।
पकड़ उबारेंगे निबलों को, दीनों को अपनायँगे ॥
भारत पै बलि जायँगे !
अत्याचार न होने देंगे, विष के बीज न बोने देंगे।
महारथी हो 'कर्ण' अड़ेंगे, राजपूत कहलायँगे ॥
भारत पै बलि जायँगे !

वह आया था

[लेखक—श्री० कविरत्न पं० जगदीशचन्द्र जी, आयुर्वेदाचार्य]

लोग कहते हैं, "वह आया था।"

वह वीर-शिरोमणि कट्टर धर्म-द्रोही आततायियों को दण्ड देने स्वार्थी-नृप नीति-त्रस्त प्रजाजनों की रक्षा करने इसी भारतभूमि में आया था—और विश्व विस्तृत भूखण्डों में भारतीय सभ्यता का प्रभुत्व स्थापित कर चला गया।

सुनते हैं, जब कभी मानव-जाति पर घोर विपत्ति आई तब ही वह किसी न किसी रूप में यहां आया था।

सत्ययुग में हिरण्यकश्यपु के अत्याचारों से जब प्रजा-जन व्याकुल हो गया तब अपने एक बालक की प्रेम पुकार पर निर्जीव स्तूप में ही दानव-दलन करने को नृसिंह रूप में आया था।

इसी प्रकार त्रेता में जब दशमुख ने बनवासी वृद्ध तापसों की शान्त कुटीरों में भी पिशाचता का अभिनय आरम्भ कर दिया। तब अधीर होकर दशरथगृह में राम रूप रख अवतीर्ण हुआ था।

द्वापर में भी दुर्दान्त कंस का दमन करने अभिमानी जरासन्ध का मान-मर्दन करने, महाभारत का प्रपंच रच अर्जुन को कर्म-योग (वीरत्व) का आदेश देने नटखट श्यामरूप में प्रादुर्भूत हुआ था।

सुनते हैं कलिकाल में भी वह कितनी ही बार भगवान् महावीर के रूप में अहिंसा का प्रचार करने, शंकर-स्वरूप से वैदिक ज्ञान का आलोक फैलाने, प्रताप-रूप में मेवाड़ की गौरव-रक्षा करने और वीर शिवा के रूप में धर्मान्ध हिन्दू-द्रोही औरंगजेब का दमन करने, भगवान् तिलक के रूप में भूले भारतियों को स्वराज्य का सन्देश देने इस वीर-भूमि पर आया था।

भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न रूप से वह आया था।

पर क्या—इस भूली हिन्दू-जाति को सन्मार्ग पर लाने, सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित मानव-कुल-कलङ्क, लम्पटों से सताई, स्वार्थी, नृशंस मानवों की कठोर नियम-श्रृंखला में आबद्ध भोली भाली अवलाओं की मानरक्षा करने तथा साम्राज्य-लोलुप, रक्त पिपासु, श्वेत पूंजीपतियों की विकराल ढङ्ग से इस अभागे भारत को छुड़ाने के लिये वह फिर आयेगा?

वही जाने, पर सुनते हैं वह बड़ा दयालु है। भक्त की प्रेम पुकार पर अधीर हो जाता है—तभी तो, गोपियों के हाथ बिका, प्रेम में मतवाला हुआ, बन बन भटकता फिरा था, और एक अछूत भिलनी के झूठे बेर बड़े चाव से गिन गिनकर खा गया था—पर था वीर हृदय—कायर न था। कपटी जनों से उसे चिढ़ थी। तभी तो दुर्योधन को विनष्ट होते देख उसका हृदय नहीं पसीजा, महाभारत के आरम्भ काल में भी तो इसीलिये अभिन्न हृदय पार्थ पर बिगड़ उठा था।

फिर क्या—जो हम अपनी मां बहिनों की पुरुष होते हुये भी रक्षा नहीं कर पाते, रात्रि दिन विधर्मी गुण्डों के अत्याचार होते देख प्रतीकार नहीं कर सकते और जो हम मातृ-भूमि के सेवक बन बड़ी बड़ी नौकरी उपाधि तथा अन्य प्रलोभनों में आ उलटे उसका अहित करने में सन्नद्ध हो जाते हैं,—ऐसे कपटी तथा कायरों की पुकार पर भी—वह अधीर होकर दौड़ आयेगा।

कर्त्तव्य-पथ

[लेखक—श्री० श्रीरामबचन जी द्विवेदी "अरविन्द"]

कबतक नहीं ये देशवासी पूर्व गौरव पायँगे?
कबतक नहीं सब कुम्भकर्णी नींद से जग जायँगे?
भटके रहेंगे कबतलक, कबतक न पथ पर आयँगे?
दीन हीन अछूत कबतक अश्रुधार बहायँगे?
सुख शान्ति सरलाचार के तबतक न दिन दिखलायँगे।
कर्त्तव्य-पथ को दौड़कर जबतक न सब अपनायँगे॥

वीरवर फत्ता जी !

[लेखक—श्री० पं० श्रीगोविन्द जी पाठक "छात्र"]

पहिली चढ़ाई में विफल मनोरथ हो लौट जाने पर अकबर ने चित्तौड़ पर बड़ी भारी सेना के साथ दूसरी बार पुनः चढ़ाई की, और चारों ओर से चित्तौड़ को घेर लिया। महाराणा उदयसिंह गढ़ की रक्षा का भार अपने शूरवीर सरदारों पर छोड़कर आप बाहर चले गये। वैसे तो आठ सहस्र वीर राजपूत गढ़ की रक्षा के निमित्त अपने प्राण त्यागने के लिये तैयार थे, परन्तु जिनकी प्रशंसा विधर्मी इतिहास लेखकों ने भी मुक्त-कण्ठ से की है वह केलवा के स्वनाम धन्य वीरवर फत्ता जी हैं। भारत का जब तक एक बच्चा भी जीवित रहेगा, तब तक फत्ता जी का नाम सदैव आदरणीय रहेगा।

जब सूरज द्वार के पास सलूंबर के राव मारे गये तब सारी सेना के अधिनायकत्व का भार युवकवर्य्य फत्ता जी को सौंपा गया। फत्ता जी के पिता पहिली लड़ाई ही में मातृ-भूमि की रक्षार्थ अपने प्राणों की भेंट चढ़ा चुके थे; उनकी मां भी एक अद्वितीय वीराङ्गना थीं। जब उन्होंने जाना, कि मेरा पुत्र चित्तौड़ की सेना का सेनापति चुना गया है, तो उनके हर्ष का वारापार न रहा। उन्होंने पुत्र को केसरिया वस्त्र पहनाये और सम्बोधित करके कहा:—

"बेटा ! संसार में स्वजाति तथा स्वदेश की रक्षा से बढ़कर कोई पुण्य-कार्य नहीं है। मैं आज्ञा देती हूँ कि तुम जाकर युद्ध करो और अपने प्राणों की बाजी लगा दो। तुम्हारे पिता स्वर्ग से जननी-जन्म-भूमि के लिये तुम्हारे बलिदान को आंखें फाड़ कर देख रहे हैं। कहीं ऐसा न हो तुम संग्राम में जा कायरता दिखा कर उनकी आत्मा को दुखित कर, मेरी कोख को कलङ्क-कालिमा लगाओ। मैं गर्व करती हूँ कि देश की रक्षा के लिये तुम पिता के अनुगामी बनोगे। तात ! जाओ ! शीघ्र जाओ ! मातृ-भूमि कातर दृष्टि से तुम्हारी ओर निहार रही है।"

पुत्र को युद्ध के लिये बिदा कर वीर माता ने विचारा कि मेरा पुत्र युवा है, यदि उसका मन नवीन पत्नी की ओर चलायमान रहा तो वह युद्ध करने में हिचकिचायेगा; जिससे केलवा के दिग-दिगान्तरों के व्याप्त यश में बट्टा लग जायगा। यह विचार कर उसने अपनी नव-वधू से कहा:—

"बेटी ! यह समय आमोद, प्रमोद, शृङ्गार और पति-प्रेम-चिन्तन का नहीं है, यह समय सुख से घर बैठने और गुदगुदे मखमली गद्दों पर शयन करने का नहीं है। क्योंकि प्यारी मातृ-भूमि अब बचती हुई नहीं दिखाई देती। आओ ! हम तुम स्वदेश की रक्षा के लिये वीर माता और वीर भार्या की भांति प्राण विसर्जन करें।"

दोनों वीराङ्गनायें अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो युद्ध के लिये गईं और सैकड़ों यवनों को धराशायी करके, अपने असीम पराक्रम और असाधारण वीरता के साथ शत्रु-दल का मान-मर्दन करती हुईं सदा के लिये माता की पवित्र गोद में समाधिस्थ हो गईं।

वीरवर फत्ता जी ने गढ़ की रक्षा इस असाधारण योग्यता से की कि जिसे देखकर विपक्षी भी दङ्ग रह गये। फत्ता जी उस अथाह दल के सामने भीम पराक्रम प्रदर्शित करते हुए कई दिन तक गढ़ की रक्षा करते रहे। अन्त में सैकड़ों यवनों का सिर धड़ से प्रथक करके सदा के लिये मातृ-भूमि की आनन्दमयी गोद में सो गये।

प्यारे युवको ! आज भारत अभूत पूर्व रूप से पराधीन है। देश के सात लाख भावों में एक नशा सा छाया हुआ है। सब जगह अकर्मण्यता और कायरता ने अपना साम्राज्य जमा लिया है। चारों ओर फूट की हरी हरी बेलें लहलहा रही हैं। प्यारे बन्धुओ ! प्रत्येक देश का उत्थान-पतन उस देश के नवयुवकों के ऊपर निर्भर है। जिस देश के नवयुवकों में जीवन, देश-प्रेम, साहस और कार्य करने की क्षमता नहीं उस देश का नाश निश्चित समझिये। क्या युवक-गण भारत को अन्य देशों द्वारा इसी तरह पद-दलित होने देंगे ? क्या सदैव गुलाम ही कहाते रहेंगे ? क्या

तनिक सी बातों के लिये दूसरों ही का मुंह ताकते रहेंगे ? वीर प्रवरो ! आओ अपने पूर्वज फत्ता जी के चरित्र से स्वदेश-प्रेम तथा आदर्श बलिदान की शिक्षा ग्रहण कर 'जननी-जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के त्राण के लिये कटिबद्ध हो जावें और मातृ-भक्ति के विशाल यज्ञ में अपनी आहुति दें।

महा पुरुषों का कथन है कि 'वह वंश लता अमर है जो अपने सब फूलों को देवताओं पर चढ़ाकर निर्वंश हो जाती है।' वीरवर फत्ता जी भी ऐसी ही अमर वंश लता के एक अमूल्य पुष्प-रत्न हैं। आपके पिता-माता तथा पत्नी सब ही स्वदेश के लिये बलिदान हो गये। धन्य हैं यह वंश लतायें ! परमात्मा भारत में वह दिन पुनः लाये जब एक दो नहीं वरञ्च ऐसी ही असंख्य 'अमर वंश लतायें' लहलहाती हुई दृष्टिगोचर हों, तभी भारत के उद्धार की आशा है।

बाँके वीर युवराज अङ्गद

[ले०—साहित्योपाध्याय आ० प्रो० ब्रह्मदत्तजी शास्त्री, काव्यतीर्थ एम० ए०...]

बार बार प्रेम-युत, करते महेन्द्र जी थे,
　　बाल हठ लिखने को लेख वीर के लिये।
आज तक सारे पत्र, हमने सदैव मौन,
　　मान के पियूष-घूंट, प्रेम से सभी पिये॥
किन्तु अवकाश पाके, हुलसा हृदय बीच,
　　वाचकों के 'वीर' के विलोक जागते हिये।
करली प्रतिज्ञा दल डालेंगे दिवाला अब,
　　लिखते रहेंगे लेख दीवाली के से दिये॥ १॥
सूर्य के समान माने, कौन गुणिजन इन्हें,
　　लेख लघु रखते न उतना प्रकाश हैं।

चन्द्र की समानता भी इनके न बस की है,
रस-पूर उसके से इनके न पास हैं ॥
तारे भी बड़े हैं लघु लेखों से हमारे मित्र,
इन्हें गिने ये हैं वे तो अगणित भास हैं ।
इसी हेतु उपमा दिवाली के दियों से दी है,
लेख लघु लेखक भी एक लघु दास है ॥ २ ॥
आज है विचार चारु, निज प्रेमी पाठकों को,
किसी वीर युवक के चरित सुनाने का ।
नीरव, प्रसुप्त, स्तब्ध-हृदयों की वीणाओं को,
एक बार भावों के प्रभात में जगाने का ॥
भारत के युवक तृषातुर पड़े हैं उन्हें,
सरस मधुर वीर-रस के पिलाने का ।
इसी हेतु सहृदय ! हमने चुना है आज,
चरित सुचारु बालिसुत मर्दाने का ॥ ३ ॥
लेके जन्म जगती को उज्वलता-दान दिया,
बाली के कहा के बाल, नाम जो कमा गये ।
तार दिया कोखको जिन्होंने तारा जननी की,
जिन्हें देख चाचा मोद-सिन्धु में समा गये ॥
जाके भय हीनता से, रावण की राज-सभा,
रोप पद लाखों सुभटों को सहमा गये ।
सेवक-शिरोमणि की, पदवी अनूप पाई,
अपने में योगियों के राम को रमा गये ॥ ४ ॥
ऐसा है प्रसङ्ग प्रिय-पाठक महानुभाव !
जब कि लगा के पता जानकी का आगये ।
महावीर हनुमान रावण को हिला गये,
लङ्का को लगा के आग पूंछ में जला गये ॥
पहिचान हेतु मात जानकी का शिरोमणि,

जब रघुवंश मणि रामचन्द्र पा गये।
अब क्या उपाय करें, ऐसा सोच राजसभा,
बुलवाई, सुनते ही सचिव सभा गये॥ ५॥
जाम्बवन्त जी अनन्त-गुणवान सचिव थे,
बोले कर जोर नाथ! सुनिये विनय को।
मतिमान वे ही भूप भू पर कहाते सदा,
करते जो कार्य आर्य! देखके समय को॥
शक्ति-शाली गुणवान सभी भांति होते हुए,
बांध नहीं सकता है, कोई भी विजय को।
इसी हेतु यथाशक्ति बचते समर से जो,
पाते हैं नृपति वे ही प्रचुर प्रचय को॥ ६॥
अतएव देव! दूत भेजिये अवश्यमेव,
सेवक शिरोमणि जो आपकी सभा में हो।
परखा हो बार बार, पूरा हो भरोसे का जो,
रखता न समता जो बल में, प्रभा में हो॥
रूपवान, मतिमान, राजनीति में प्रधान,
वाचक विरल अति चतुर कथा में हो।
भुजबल में प्रचण्ड, अण्ड बण्ड बके नहीं,
परम-प्रवीण पूत दूत की प्रथा में हो॥ ७॥
सुनके सरस सार भरे ये सचिव वाक्य,
रघुनाथ परितृप्त होके मुसक्या गये।
बन्द कुन्द-कानन पै, क्षण भर कलाधर,
मानों कर-निकर से सुधा बरसा गये॥
दधि-दुग्ध-सरसी से, सरस विलोचनों से,
हेरने सभासदों को लगे, हुलसा गये।
जिन जिन भाग्यवान, भावुकों की ओर देखा,
चारों पुरुषार्थ विना श्रम ही वे पा गये॥ ८॥

किन्तु उस सभा-मध्य, छोड़के अनेक वीर,
राघव की दिव्य दृष्टि-अङ्गद पै जा पड़ी।
जोड़ी एक विकसित-पुण्डरीक की ही मानों,
दूसरी के सामने हो भिड़ने को आ अड़ी॥
समझ के भाव भगवान के हृदय गत,
जोड़ कर-युग धर चरणों में पागड़ी।
विनय के सार सने अङ्गद वचन बोले,
जान अपने पै भगवान की दया बड़ी॥ ९॥
पल में प्रलय कर सकती है कोपदृष्टि,
श्रीयुत की, क्या न हरे! विश्व के प्रसार का।
चिन्तनीय नहीं लेश भर भी है श्रीपति को,
अपने, उपाय, शत्रुओं के प्रतिकार का॥
करन का दया किन्तु, इस दीन जन पर,
दूत बना किये गये, देव! उपकार का।
निपट असम्भव है विनिमय दयामय,
कठिन उठाना बड़ा हिम-शल-भार का॥ १०॥
अङ्गीकार कर इस भांति भव्य सेवा यह,
लङ्का म विराज जाके बालिसुत पल में।
रावण के सुत से हुई जो भेट बाट-बीच,
मचा रणरङ्ग अति-भीषण युगल में॥
यावन के मद-मत्त दोनों ही युवक वीर,
लड़ते थे, न्यून न था कोई भी तो बल में।
शाभा उस काल हुई, मानों कि कलभ-युग,
करते थे केलियां कलिन्दजा के जलमें॥ ११॥
(अपूर्ण)

विचार-तरङ्ग

[लेखक—श्री० पं० सुरेन्द्र जी शर्मा]

सेनापति से—

जिस समय तुमने अपनी सात्विकी सेना के आगे खड़े होकर महा संग्राम के लिये रण-भेरी बजाई थी, उस समय रिपु-दल के छक्के छूट गये थे। पशु-बल से मद-माते शासकों के हाथ-पैर फूल गये थे। उनके साम्राज्यवाद के विशाल भवन की नींव हिल उठी थी, और होश-हवास गुम थे। उस राज-सत्ता के, जिस को जलियाँवाला ऐसे भीषण हत्याकाण्ड में निरीह प्राणियों के रक्त में हाथ रंगने का कलङ्क लगा था।

तुम्हारी सात्विकी सेना निहत्थी थी। उसे तोप और बम के गोलों का सहारा न था। केवल उसे अतीत के एक महान आदर्श के लिए हंसते २ मर मिटने की ज्वलन्त भावना का आश्रय था। अचानक स्वर्ण अवसर की वह घड़ी आगई जिस पर ३३ करोड़ आदमियों के भाग्य का फैसला निर्भर था। न जाने सदियों के बाद राष्ट्रों के जीवन में कब ऐसी घड़ी आया करती है, जिस में अचानक ऐसी उथल-पुथल मच उठती है जिस से एक दम उनकी काया पलट जाती है। ठीक ऐसी ही घड़ी उस समय इस अभागे देश के जीवन में भी आई थी। उस समय करोड़ों दिमाग़ एक ही दिशा में, एक ही केन्द्र बिन्दु पर काम कर रहे थे। यकायक एक अजीब हवा चली। उससे तुम्हें एक भयङ्कर तूफान आने की आशङ्का हुई। बस, फिर क्या था, तुमने तुरन्त लड़ाई की गति-विधि बदल दी। रण-भेरी बजा देने के बाद तुम एक क़दम भी आगे न बढ़े। एक दम जहाँ के तहाँ रुक गये। तुम्हारे इस परिवर्तन से सारी सेना में ही नहीं बल्कि समस्त देश में हलचल मच गई। संग्राम के लिए लालायित खड़े हुए तुम्हारे वीर लड़ाकों की उत्साह-भरी लहलही आशा-लता पर पाला पड़ गया, और वह ऐसी मुरझा गई कि आज तक हरी न हुई। युद्ध की इस प्रकार

गति-विधि बदल कर तुम ने एक सेनापति की जिम्मेदारी कहाँ तक निभाई, सो तो तुम्हीं जानों, परन्तु, संसार के अनेक युद्ध-कला विशारदों के मतानुसार उस स्वर्ण अवसर का सदुपयोग नहीं किया गया जिसमें इस अभागे देश का इतिहास बदल देने की सामर्थ्य थी। यदि उस घड़ी तुम अपनी सेना आगे बढ़ाते, तो अधिक सम्भव था कि दुश्मनों के क्रोध का दरिया उमड़ उठता और सत्याग्रहियों के रूप में तुम्हारे हजारों सैनिक बम के गोलों से भून डाले जाते, और मदमाते शासकों की कठोर कृतियों के फलस्वरूप देश में जलियांवाला हत्याकाण्ड की पुनरावृत्तियां हो जातीं। क्यों ? इसलिए कि, जो शासन-सत्ता पशु-बल पर ही अपनी जड़ें पाताल में टिकी हुई समझती हो, और अपने स्वार्थ के आगे करोड़ों आदमियों के हित और उनकी आकांक्षाओं की जरा भी पर्वाह न करती हो, वह करोड़ों दुर्बल प्राणियों पर अपना रौब और शान जमाये रखने के लिए जो कुछ भी कर गुजरे, वह थोड़ा है। सच कहना सेनापति ! उस क्षण अगणित बेगुनाहों के खून की कल्पना कर कहीं तुम्हारा हृदय तो नहीं काँप गया था ? जो कुछ हो, हम तो तुम्हारे हृदय को, रोम के एक उस सेनापति के समान महान होने की कल्पना किये बैठे थे, जिसने विशाल काय नगर (रोम) में आग लगवा देने के बाद निर्द्वन्द हो शाम को एक टीले पर बैठकर वंशी बजाई थी !

योद्धा और युद्ध-साधना—

तुम युद्ध का साज सजा कर एक योद्धा के वेष में विश्व के रङ्ग-मञ्च पर आये हो। यह वेष देखकर तो, मालूम होता है कि तुम किसी महान आदर्श के उपासक हो। बात के सच्चे और लंगोटी के पक्के होगे। चिकनी मिट्टी पर फिसल न पड़ोगे। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में—

"जिनके लहहिं न रिपु-रण पीठी,
नहिं लावहिं पर तिय मन दीठी।"

की परीक्षा की कसौटी पर खरे सिद्ध होंगे शिवाजी और प्रताप की तरह मातृ-भूमि का मुख उज्वल करोगे। पता नहीं, हमारी इस

धारणा में कहां तक सचाई है। तुम्हारी आदर्श-प्रियता और तुम्हारे युद्ध-कला में विशारद होने का परिचय तो रण-क्षेत्र में मिलेगा। अभी तो, हम केवल एक योद्धा के वेष में तुम्हें रण-भूमि की ओर जाता हुआ देख रहे हैं। इस युग में जब कि, हाथ-पैर पराधीनता की जञ्जीर में कसे हैं, युद्ध का नाम सुनते ज्वर आता है, गोली की आवाज़ सुन कर दिल दहल उठता है, तुम्हें इस वेष में देख कर आश्चर्य होता है, और मन एक दम कल्पना-सागर में डूब कर उतराने लगता है। क्यों? इसलिये कि, सदियों से हम गुलामी का तौक़ गले में लटकाये हुए बैठे हैं, और हमें योद्धा के दर्शन नहीं हुए। हाँ, आदर्श प्रिय योद्धाओं की चर्चा सुनी है, और पोथियों में पढ़ी भी है। वीर बालक अभिमन्यु, धनुर्धर अर्जुन, प्रताप, शिवाजी, तांत्याटोपी, नेपोलियन, वाशिंगटन आदि योद्धाओं का नाम सुन रक्खा है। उनकी ज्वलन्त और अमर कृतियों से इतिहास के पन्ने धन्य हुए हैं। वे इतिहास के निर्माता थे, लेखक नहीं। परन्तु, आज करोड़ों गुलामों के लिए योद्धाओं की बातें स्वप्न हैं। वे, जो अनेक प्रकार की यन्त्रणाओं और अपमानों के बीच पशु से भी बदतर ज़िन्दगी बसर करते हैं, युद्ध और योद्धाओं के महत्व को क्या समझें? सच कहो, क्या तुम ऐसे ही योद्धाओं में से हो, जो अपने महान बलिदान की अमर कृतियों से किसी देश में युगान्तर उत्पन्न कर देते हैं?

\+　　　　+　　　　+　　　　+

योद्धा का युद्ध में प्रवृत्त होना एक महान साधना है। एक साधक किसी अतीत के आदर्श के लिए आत्म-विस्मृति के साथ साधना-यज्ञ में आत्माहुति देता है। ठीक इसी तरह एक योद्धा भी अपने परम लक्ष्य को दृष्टि-पथ में रख कर संग्राम में प्रवृत्त होता है। युद्ध करते समय—शत्रुओं को गाजर मूली की तरह काटते समय—भी उसका हृदय राग-द्वेष और मोह-माया से परे होता है। उस क्षण में वह जय-पराजय, लाभा-लाभ तथा पाप-पुण्य के चक्कर से उसी तरह दूर है, जिस तरह जल से कमल। उस समय उसका मन नव स्फूर्ति और नई नई उमङ्गों से तरङ्गित

रहता है। अपनी उन उमङ्गों की तरंगों पर एक मतवाला योद्धा विश्व की समस्त समृद्धियों को निछावर कर दे, तो कोई बड़ी बात नहीं। तभी तो भगवान कृष्ण ने अर्जुन को सैनिक धर्म का आदेश करते हुए कहा था—

"हतोवा प्राप्यसि स्वर्गं: जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।"

अर्थात् रणभूमि में काम आने पर स्वर्ग मिलेगा, और यदि, विजय मिली तो राज्य करोगे। जो कुछ हो, योद्धा के धर्म का पालन करना तलवार की धार पर चलना है। यह काम असिधारा-व्रत से कम कठिन नहीं है।

सच्चे शूरवीर

[लेखक—श्री० कुँवर गजेन्द्रसिंह जी]

मन पै मलिनता न आती जिनके है कभी,
सहस विपत्तियों को यूँही टाल जाते हैं।
कहते हैं जो कुछ करते हैं सदैव वही,
रण रंग में न कभी पीठ को दिखाते हैं॥
सदाचारी मितभाषी दीनों पै दयालु सदा,
लख के अनीति निज पग न हटाते हैं।
ध्येय जिनका है यही जन्म भूमि सेवक हों,
वे ही सच्चे शूरवीर जग में कहाते हैं॥

विचित्र बदला

[लेखक—श्री० 'प्रताप' महोदय]

—१—

भोर होते ही विजयगढ़ के ठाकुर केसरीसिंह का युवा पुत्र रणधीरसिंह अपने कुछ साथियों के साथ वनोपवनों का प्राकृतिक सौन्दर्य देखने के लिए निकला। बड़ा ही मनोहर समय था। जिधर देखो उधर हरा ही हरा दीख पड़ता था। सामने गम्भीर पर्वतमाला की शोभा देखते ही बनती थी। घूमते घूमते वे लोग एक मैदान में जा पहुंचे। मैदान पा उन्होंने अपने अपने घोड़े दौड़ाये। इस दौड़ में रणधीरसिंह बहुत आगे निकल गया। घोड़ा थामे न थमता था। भागते भागते वह एक ऐसे स्थान में जा पहुंचा जो जंगली जानवरों का निवास स्थान था। पास ही कल कल शब्द करती हुई एक नदी बह रही थी। युवा उस नदी के तट पर उतर कर बैठ गया और हवा के झोकों से उछलती कूदती लहरों को देखने लगा।

युवक रणधीरसिंह लहरों का खेल देख ही रहा था कि उसे किसी का चीत्कार सुनाई दिया। वह उठ कर उधर ही दौड़ा। कुछ दूर जा कर उसने एक आदमी पर जंगली भालू को झपटते देखा। उसने एक तीर से भालू को मार उस आदमी की रक्षा की। वह भय से बेहोश हो गया था। युवक को उसके पास पड़ा हुआ एक पत्र मिला। पढ़ने से मालूम हुआ कि एक डाकुओं का दल उसके गढ़ पर अगली रात को ही छापा मारने वाला है। इस पत्र द्वारा उस दल ने सहायतार्थ एक और दल को निमन्त्रित किया था। इस पत्र ने उसे एक चिन्ता में डाल दिया।

वह इसी चिन्ता में था कि यकायक दो तीन जंगली सूअरों ने झाड़ियों में से निकल कर उस पर धावा किया। वह भी मुकाबले के लिए तय्यार था। इस लड़ाई में उसके कई घाव हो गए और मृत्यु को सिर पर जान वह नदी में कूद पड़ा। बहता बहता एक पर्वत की तराई

में झाड़ियों में जा अटका और कराहने लगा। उस समय सन्ध्या हो चली थी। वह सोचने लगा—"मैंने युद्ध-क्षेत्र में से भाग कर बड़ी कायरता का काम किया है। दुनिया क्या कहेगी? परन्तु नहीं, मुझे गढ़ की रक्षार्थ यही उचित था क्योंकि इस युद्ध में मृत्यु संभव थी और मुझे इस भावी भयंकर आपत्ति से गढ़ को बचाना था।"

इसी समय पहाड़ी प्रदेश से उतर कर एक षोड़श वर्षीय सुन्दर बाला घूमती घामती नदी तट पर आ पहुँची। वह कराहने का शब्द सुन उधर ही चली और थकित रणधीरसिंह के पास जा पहुंची। युवक की यह दशा देख उसे दया आई। वह उसे सहारा दे अपनी पर्णकुटी में ले गई। वहां उसे जल पान कराया। इससे दिनभर के भूखे प्यासे युवक को बड़ी शान्ति मिली। तदुपरान्त उसे कुश की शय्या पर सुला दिया। थके रणधीरसिंह को उस पत्तों के बिछोने पर मखमल के गद्देलों से कहीं अधिक आराम मिला।

—२—

अभी प्राची में सूर्योदय भी नहीं हुआ था कि रणधीरसिंह की आनन्द निद्रा टूटी। उसने देखा कि उसकी प्राण रक्षिका उससे भी पहले उठकर कुटी में झाड़ू दे रही है। उसने कृतज्ञतापूर्ण शब्दों में पूछा, "सुन्दरी, मैं इस कृपा के लिये अत्यन्ताभारी हूँ। आपने मुझे प्राणदान दिया है। क्या मैं आपका परिचय पा सकता हूँ?"

युवती—मैं एक हतभाग्या हूँ। मेरा परिचय पाकर क्या करोगे?

रणधीर—तब तो मैं आपका परिचय अवश्य प्राप्त करूंगा क्योंकि *मैं भी एक हतभाग्य हूँ।*

युवती—मेरा नाम वीरबाला है। मैं विजयगढ़ के प्रधान कारिन्दे नारायणसिंह की पुत्री हूँ।

रणधीर—(चकित भाव से) क्या आप सर्दार नारायणसिंह की पुत्री हैं?

युवती—हां!

रणधीर—तो आप इस अवस्था में यहां कैसे रह रही हैं ?

वीरबाला—लोगों की झूंठी २ शिकायतों को मान कर विजयगढ़ के ठाकुर साहब ने पिता जी की सारी जागीर छीन ली थी और उन्हें नगर से निकाल दिया था। वे मुझे लेकर यहां आ बसे थे। इस घटना से उनको इतना दुःख हुआ था कि उनकी मृत्यु हो गई। तब से मैं यहीं रह रही हूँ।

रणधीर—ठाकुर साहब तो बहुत ही सज्जन आदमी हैं।

वीरबाला (आवेश में)—होंगे ! परन्तु हमारे साथ तो उन्होंने अन्याय ही किया है। यदि मैं एक राजपूत की कन्या हूँ तो ठाकुर साहब से अवश्य इसका बदला लूंगी। अच्छा आप भी तो अपना परिचय दीजिये।

रणधीर—(छिपाकर) मैं ठाकुर साहब का एक सेवक, रामसिंह हूँ। ...... यह कहते कहते कुमार को भावी आपत्ति की याद हो आई। वीरबाला इस भाव को समझ गई और बोली, "आप कहते कहते रुक क्यों गये ?"

रणधीर—मुझे मालूम हुआ है कि विजयगढ़ पर एक भारी डाका पड़ने वाला है। ठाकुर साहब इससे बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। क्या करूं। ठाकुर साहब को खबर दूं, या बिछुड़े हुए सर्दारों को ढूंढूं।

वीरबाला—यह तो बड़ा बुरा समाचार है। विजयगढ़ का सर्वनाश समीप है। मेरे योग्य जो सेवा हो बताइये।

रणधीर—अभी तो आप ठाकुर साहब की बुराई कर रही थीं।

वीरबाला—ठाकुर साहब और विजयगढ़ में बहुत अन्तर है। मेरा बैर ठाकुर साहब से है, विजयगढ़ से नहीं। यह मातृ-भूमि की रक्षा का प्रश्न है।

रणधीर—धन्य हो बाला ! लो, यह पत्र ठाकुर साहब के पास ले जाओ और मैं दूसरे कार्य के लिये जाता हूँ।

—३—

वीरबाला वेश बदल कुछ ही दूर जा पाई थी कि डाकुओं के एक गिरोह ने उसे पकड़ लिया। इससे उसे बड़ी चिन्ता हुई और विजयगढ़ पर आने वाली विपत्ति को सोचने लगी। अधिक देर तक उसकी यह चिन्ता नहीं रही, बातों से वीरबाला को मालूम हो गया कि ये वही डाकू हैं जो विजयगढ़ पर छापा मारने जा रहे हैं। वह अकेली थी इसलिये उसका बल प्रयोग व्यर्थ था। कुछ सोच कर उसने आत्म-समर्पण कर दिया। डाकुओं के सर्दार ने उसके साथ दुर्व्यवहार करना चाहा तो वह बोली, "आप इतने आतुर क्यों होते हैं। अब तो मैं आपकी ही हूँ। आप मुझे भी अपने गिरोह में मिला लें। छापा मारने के बाद आप मेरे साथ विवाह कर सकते हैं।" इससे सर्दार बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने वीरबाला को अपने गिरोह में मिला लिया।

इधर जब रणधीरसिंह अपने साथियों को न पा विजयगढ़ पहुँचा तो उसने देखा कि सारा नगर बड़ा चिन्तित है और आत्म-रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। उसको वीरबाला पर सन्देह होने लगा। नगर की इस चिन्ता का कारण यह था कि उसके साथियों ने नगर में पहुँच कर उसके बिछुड़ जाने का समाचार दे दिया था।

अपने भावी ठाकुर को सकुशल पा सारा नगर आनन्दित हो खुशियां मनाने लगा। रणधीरसिंह ने वहां पहुँच कर आनेवाली आपत्ति का सब हाल सुनाया तो ठाकुर साहब घबरा उठे। जो मदिरा पान कर जनानखाने में चारपाइयां तोड़ने वाले ठाकुर हैं उनसे और हो भी क्या सकता था। वे धन-दौलत को गाड़ने व नगर छोड़ने का विचार करने लगे, परन्तु कुमार रणजीतसिंह ने अपने वीर हृदय के भावों से ठाकुर साहब को मुकाबले के लिए तय्यार किया और सब वीरों को एकत्रित कर यथोचित प्रबन्ध कर लिया।

—४—

रात के बारह बजे होंगे कि डाकू दल गाता बजाता आ पहुँचा।

कायर लोग इधर उधर भाग कर छिपने लगे, डाकू-दल ने गढ़ पर छापा मारा, ठाकुर साहब अपने साथियों के साथ गढ़ पर से पत्थर बरसा कर अपनी रक्षा करने लगे, वीर देवियां पत्थर ला ला कर इकट्ठे करती थीं। स्वयं रणधीरसिंह कुछ वीरों को साथ लेकर मैदान में जा डटा और लगा मार मार कर डाकुओं को धराशायी करने। इतने में मौका पाकर डाकुओं का सर्दार पीछे से गढ़ पर चढ़ गया और उसने ठाकुर साहब को जा दबोचा। वह तलवार से ठाकुर साहब का काम तमाम करने वाला ही था कि पीछे से किसी ने बिजली की तरह लपक कर एक ऐसा हाथ मारा कि सर्दार का सर धड़ से अलग हो ज़मीन पर लुढ़कने लगा। ठाकुर साहब बहुत डर गये थे। जब उन्हें होश आया तो उन्होंने देखा कि उन के सामने एक षोडश वर्षीया सुन्दर कन्या साक्षात् रण-चण्डी के रूप में खून से भीगी हुई तलवार लिए खड़ी है और उन की ओर मुसकराती हुई देख रही है। इस हास्य में कुछ विचित्रता थी। ठाकुर साहब की इतनी भी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि अपनी प्राण रक्षिका का परिचय भी पूछें, एक अबला की इस अलौकिक वीरता को देख कर वे स्तम्भित से हो गये थे।

इतने में कुमार रणधीरसिंह भी डाकुओं को दूर तक खदेड़ कर आ पहुचे। वहां वीरबाला को इस रूप में देख वे भी चकित से खड़े हो गये। कुछ देर तक सन्नाटा रहा, कोई कुछ न बोला। आख़िर निस्तब्धता भंग कर कुमार दर्द से कराहते हुए ठाकुर साहब की तरफ मुड़े और कुशल समाचार पूछने लगे। ठाकुर साहब ने वीरबाला की तरफ इशारा करते हुए कहा, "बेटा, यदि यह अलौकिक बाला न आई होती तो आज तुम मुझे जीवित न पाते। इस डाकू सर्दार को मौत के घाट उतार कर इन्होंने मेरे प्राण बचाये हैं। मैं इनका बड़ा कृतज्ञ हूँ।"

कुमार वीरबाला की ओर देख कुछ कहना ही चाहते थे कि वह बीच में ही बोल उठी, "रामसिंह जी, यह सब बातें फिर होंगी। पहले ठाकुर साहब को ले चल कर सुलाना चाहिये। इनको इस समय बड़ा

कष्ट है।" दोनों सहारा दे कर उन्हें महल में ले गये। वहां उन्हें शय्या पर सुला कर कुमार ने उस युवती से कहा, "वीरबाला मैं तुम्हारा बड़ा कृतज्ञ हूं। क्षमा करना मैं तुम्हारी जैसी सच्ची आत्मा के लिए मन में सन्देह लाया था।"

यह सुन ठाकुर साहब जिन्हें कुछ शान्ति मिल चुकी थी बोले, "बेटा, क्या तुम इनसे परिचित हो? ये कौन हैं?"

कुमार—"पिता जी, ये उस वीर और राज्यभक्त सर्दार नारायणसिंह की पुत्री हैं जिन्हें आपने झूठी शिकायतों पर निकाल दिया था।"

यह सुनते ही ठाकुर साहब को सारी पुरानी बातें याद हो आईं। वे अपने किये पर धाड़ मार मार कर रोने लगे। उनका गला रुंध गया। वे रुंधे गले से दोनों हाथ जोड़ कर वीरबाला से बोले, "बेटी, यह कार्य वीर सर्दार नारायणसिंह की पुत्री के ही योग्य है। तुमने अपने परम बैरी की, जिसने तुम्हें मिट्टी में मिला देने में कोई कसर न रक्खी थी, प्राण रक्षा कर संसार के सामने एक आदर्श उदाहरण रक्खा है। क्षमा करो, बेटी क्षमा करो। मैं बहुत लज्जित हूं। मैंने भारी पाप किया है। मुझे उस से उबारो।"

वीरबाला—भगवन, आप इस प्रकार मुझे क्यों लज्जित करते हैं। मैंने तो केवल अपना कर्तव्य पालन किया है!

जाग्रत

हे देश के नवयुवको—"उठो, निद्रा में कब तक पड़े रहोगे? कब तक आलस्य और ख्याति के स्वप्नांधकार में सड़ते रहोगे? यह समय है भगवान् की कर्म से पूजा करने का। पूर्व के ऋषियों की सन्तानो, जागो! एक एक पाषाण जमा कर स्वतंत्रता देवी का मन्दिर तैयार कर दो। प्राचीन आदर्श को सामने रख कर उस पवित्र मन्दिर की रचना करने को अग्रसर हो जाओ। उसका प्रत्येक पाषाण बलिदान तथा त्याग का संगीत सुनावे।" —टी० एल० वास्वानी।

वीर बन्दी

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी वाजपेयी]

दूरि तेई नीके दूध केसे धोये जानि परैं,
नीरे भूरि काँटे उतपति पंक-जाल में।
तेई नीच पंकजनि निरदोष अगनित,
मधुकर बाँधि राखे कहे कछु साँच में॥
दया पगि भासकर कर कौं बढ़ायो, बढ़ी—
रुचि तिन मुख फोरि बन्दी-छुटकार में।
तौलौं राहु झुकि ताको मंडल गरसि लीन्हों,
मानौं सेर पींजरे भो सिवा जौन-जाल में॥ १॥

असहजोग सूख्यो औ स्वराज-माँग सूखी आः!
जोंक सम नेता भोग लगे आँखि मूँदे हैं।
जित देखौ तित एक गुण्ड साही दीठि परैं,
खाहिं एक एकनि सुभाय देत हूदे हैं॥
बड़ तपधारी वीर गांधा लों सहमि गये,
ह्वै कै गुम बुद्धि दोऊ नैन बैन मूंदे हैं।
सिगरी सैतानी को जू कारनु निठल्ल पनु,
जानि कै 'अवारी' वीर रनभूमि कूदे हैं॥ २॥

नागनि में सिंह कीधौं नागनि में पच्छिराज,
नगनि में पच्छहारी कीधौं वज्रधारी है।
जाहि पाइ नागपुर-जनता चमकि उठा,
सोने की अँगूठी अनमोल नग-धारी है॥
नंगी तरवारि कौं सुभाय चमकावत औ,
पूरो उतसाह कोऊ साह दुतिधारी है।
एहो श्री अवारी वीर! बार बार वारी जाइ,
तेरी तरवारि पर दुनी वीर-वारी है॥ ३॥

साहित्य परिचय

विद्यार्थियों का सच्चा मित्र—अनुवादक-पं० रामेश्वर-प्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक-हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। पृष्ठ १५२, मूल्य पन्द्रह आने।

प्रस्तुत पुस्तक गुजराती के यशस्वी लेखक और सम्पादक स्व० छोटेलाल जीवनलाल शाह की लिखी पुस्तक का अनुवाद है। श्री नाथूरामजी प्रेमी ने इसका सम्पादन किया है। इसका दूसरा नाम 'सरल आरोग्य शिक्षा' भी है। वास्तव में इसमें वर्णित तीस विभिन्न विषयों द्वारा आरोग्यता की शिक्षा सहज ही मिलती है। पाचन क्रिया, रोगों का कारण, तमाखू की हानियाँ, स्नान, वीर्य रक्षा आदि विषयों पर बड़े उपयोगी विचार प्रकट किए गए हैं। पुस्तक वास्तव में विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है और यदि वे इससे लाभ उठाना चाहें तो एक सच्चे मित्र का काम देगी। ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय वास्तव में हिन्दी में रत्न ग्रन्थ ही प्रकाशित करता है।

संजीवन संदेश—मूलकर्त्ता-श्री टी० एल० वास्वानी, अनुवादक—बाबू वेणीमाधव अग्रवाल एम० ए०, प्रकाशक-उपरोक्त। पृष्ठ ११६, मूल्य दस आने।

साधु श्रेष्ठ वास्वानी का नाम आधुनिक साहित्य संसार में सुप्रसिद्ध है। इस पुस्तक में आपकी तीन अंग्रेजी पुस्तकों—युवक और राष्ट्र, प्राचीन दिग्दर्शन और पुरातन मुरली—का अनुवाद है। विचारों की

प्रौढ़ता, मार्मिकता और पवित्रता, भाषा का ओज और शैली एवं छपाई की विशुद्धता—सभी दृष्टियोंसे यह पुस्तक प्रत्येक भारतीय को संजीवन संदेश देती है। हम चाहते हैं कि साधुश्रेष्ठ वास्वानी का यह संदेश भारत के घर घर में सुना और अनुकरण किया जाय। संदेश का एक सूक्ष्म अंश अन्यत्र उद्धत किया जाता है।

वृहत षोडश कारण विधान—यह जैनियों के प्रसिद्ध सोलह कारण व्रत की पूजा है। श्रीयुत कविवर रैधू ने इसकी रचना संवत् १५७० से पूर्व की थी। विशेषता यह है कि इसकी प्राकृत जयमाला का हिन्दी भाषा में अर्थ दिया गया है। श्रीमती सवाई सिंघैन राजरानी (जबलपुर) की ओर से यह पुस्तक 'परवार बन्धु' के ग्राहकों को उपहार स्वरूप दी गई है। इनका सचित्र परिचय भी है। सर्व साधारण को ११६ पृष्ठ की यह पुस्तक नौ आने में जैन साहित्य-मन्दिर, सागर (म० प्रा०) को लिखने से मिल सकती है।

दास पुष्पाञ्जली—ले०—अयोध्याप्रसाद गोयलीय 'दास', प्रकाशक-हीरालाल पन्नालाल जैनी, बड़ा दरीबा, देहली। पृष्ठ ६४, मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तक में मोटे टायप में ४८ भजनों का संग्रह है। भजन साधारणतया अच्छे हैं। जैनियों को मंगा कर पढ़ना चाहिए।

हिन्दू-पंच—'श्रीकृष्णांक'—स्व० पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा के स्मृति-स्तम्भ 'हिन्दू-पंच' के इस विशेषांक का सम्पादन श्री रामलाल वर्मा ने किया है। इसमें ६४ लेख व कविताएं एवं अनेक चित्र दिए गए हैं। कई लेख प्रसिद्ध लेखकों के हैं और पठनीय हैं। 'कंस की जय हो' शीर्षक लेख ऐसा है जिसे पढ़ कर स्वभावतः पाठकों का चित्त क्षुब्ध होगा। समझ नहीं पड़ता क्या सोच कर यह लेख सम्पादक जी ने छापा है। लेखों के संचय के साथ ही ऐसे विशेषाङ्कों में विविध टिप्पणियाँ भी रहनी चाहिए। इसकी कमी है। तब भी अङ्क बहुत सुन्दर और दर्शनीय निकला है। वा० मू० ३) और इस अङ्क का ।।) है।

विविध विषय

१—सर गंगाराम की दानवीरता—

दानवीर सर गंगाराम के निधन के विषय में गताङ्क में हम कुछ लिख चुके हैं। उसके पश्चात् १६ अगस्त को आपका वसीयतनामा खोला गया था। पाठक सुन कर आश्चर्य करेंगे कि इस दानवीर ने मृत्यु समय भी अपार धन पुण्य कार्यों के लिए दे डाला है। सर गंगाराम ट्रस्ट फंड में तीस लाख रुपया तो पहले से ही था। अब मृत्यु समय आपने चौदह लाख रुपये की सम्पत्ति इस ट्रस्ट फंड को और दी है। इस विशाल दान से सहज ही आपके हृदय की विशालता जानी जा सकती है। भारतवर्ष में सर गंगाराम जैसे धनपतियों की कमी नहीं है, कमी है तो उनके जैसे उदार भावों की। जिस दिन इसकी पूर्ति हो जायगी उस दिन देश के दुर्भाग्य के दिन दूर हो जायँगे।

२—हिन्दी सेवक फंड—

हिन्दी साहित्य क्षेत्र में काम करने वालों की जैसी संकटापन्न अवस्था रहती है, वह किसी भुक्तभोगी से अविदित नहीं है। निरन्तर हिन्दी की सेवा करने वालों के ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जो अपनी जीवितावस्था में कभी कभी रोटियों तक के मोहताज रहे और अपने पश्चात् अपने असहाय कुटुम्ब-पालन का कोई समुचित साधन न बना सके। अब भी ऐसे अनेक हिन्दी सेवक हैं जो केवल साहित्य सेवा करने में दत्त चित्त रहने और उसी की सेवा का व्रत रखने के कारण बहुत दरिद्रावस्था में अपना जीवन यापन कर रहे हैं। हम हिन्दी संसार से

पूछते हैं कि ऐसे सहृदय साहित्य सेवियों की सेवा का मूल्य क्या वह कुछ नहीं करता ? क्या उनके लिए वह अपने हृदय में जरा भी कृतज्ञता का भाव नहीं लाना चाहता ? हमें विश्वास नहीं है कि ऐसा हो। किन्तु है ऐसा ही। हमें तो बड़ी प्रसन्नता हुई जब हमने सुना कि स्वर्गवासी मनोरञ्जन मूर्ति पं० ईश्वरी प्रसाद जी शर्मा के परिवार और उनकी स्मृति रक्षा के लिए कलकत्ते के कुछ साहित्य सेवी दस हजार रुपए इकट्ठा करना चाहते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि वे अपने इस सत्संकल्प को शीघ्र ही पूरा कर दें। उससे भी अच्छा हो यदि इस निधि को बढ़ा कर एक लाख कर दिया जाय और उक्त पंडित जी के स्मारक में इस निधि से समग्र हिन्दी परिवार के दुःखित प्राणियों की रक्षा का प्रबन्ध किया जाय। हम समझते हैं कि यदि कलकत्ता निवासी चाहें तो वे यह सब काम कर और करा सकते हैं और हमारा यह विश्वास है भारत के कोने कोने से इस काम के लिए हजारों रुपया मिल सकता है। यह एक ऐसा काम है जिससे हिन्दी सेवकों को अमित उत्साह मिलेगा और वे भविष्य की चिन्ता छोड़ कर साहित्य सेवा में संलग्न हो सकेंगे। सहयोगी सम्पादकों और साहित्य सेवियों से सविनय एवं सानुरोध प्रार्थना है कि इस विषय पर अपने विचार प्रकाशित करें एवं इस आवश्यक विषय की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करें।

३—हिन्दुओं पर अन्याय—

पंजाब हाईकोर्ट में 'रंगीला रसूल' के प्रकाशक पर १५३ ए धारा के अनुसार अभियोग चला। उसी धारा के अनुसार 'रिसाला वर्तमान' पर भी उसी हाईकोर्ट में मुकदमा हुआ। दोनों मामले एक से थे किन्तु पहले में अभियुक्त उक्त धारा के अनुसार निर्दोष छूट गए और दूसरे में अभियुक्तों को बड़ा कठोर दंड दिया गया। यह तो हुई ब्रिटिश न्यायशीलता की बात। अब देखिए, 'रंगीला रसूल' आन्दोलन उठा कर मुसल्मानों ने आसमान सर पर उठाया और सरहद्दी मुसल्मानों को भड़का कर उनके

द्वारा वहां रहने वाले हिन्दुओं को अपार कष्ट दिए—उनका कुछ न बिगड़ा। सीमान्त के हिन्दुओं को घरबार छोड़ कर भगाया गया, उनके माल असबाब को लूटा गया, उन्हें अपमानित किया गया और जो न होना चाहिये थे वह सब कुछ हुआ; पर न तो सरकार ने अपना एक सिपाही वहाँ हिन्दुओं की रक्षा के लिए भेजा न एक भी मुसल्मान ने इस अन्याय का प्रतिवाद किया। यदि कहीं हिन्दुओं के स्थान पर वहां एक भी गोरा अंग्रेज या कट्टर मुसलमान होता तो सरकार की फौजें सीमान्त पर पहुंच जातीं और मुसलमान आग बबूला हो जाते। यह सब बातें देख सुन कर हृदय को बड़ा दुःख होता है और जी चाहता है कि इस अन्याय और जुल्म को गर्दन दवा कर उसे समुद्र में फैंक दिया जाय।

४—मिस्र के महापुरुष की मृत्यु—

वर्तमान संसार के पांच महापुरुषों में दो महापुरुषों का निर्वाण पहले हो ही चुका था, गत २४ अगस्त को एक और महापुरुष का जीवन दीपक भी बुझ गया। यह थे मिस्र को जाग्रत करने वाले जागलूल पाशा। १८५० में इनका जन्म हुआ था और ३२ वर्ष की अवस्था से इन्होंने राजनीति में भाग लिया था। मिस्र को स्वाधीन बनाने के लिए आपने जो कार्य किए हैं उन्हें मिस्रवासी कभी नहीं भूल सकते। आज मिस्र को जो झूठे सच्चे सुधार मिले हुए हैं उन्हें प्राप्त करने का यश यदि किसी को है तो जागलूल पाशा को। देश को स्वतन्त्र करने के लिए जागलूल पाशा ने जो कष्ट सहे—उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। अंग्रेज सरकार ने उन्हें कई बार वर्षों जेल में रक्खा, पर उससे इस स्वतन्त्र चेता पुरुष पर कोई असर न पड़ा। जागलूल पाशा ने अपने जीवन दीप से जो ज्योति प्रदीप्त की है, दीपक बुझ जाने पर भी वह ज्योति नष्ट नहीं हो सकती और संसार देखेगा कि बहुत शीघ्र मिस्र स्वाधीनता की ज्योति से जगमगा उठेगा। जागलूल पाशा का मिस्र में वही स्थान था जो चीन में सनयात सेन का, टर्की में कमालपाशा का, रूस में लेनिन का और

भारत में महात्मा गांधी का है। ऐसे महान वीर पुरुष की मृत्यु से किस स्वतन्त्रता प्रेमी को दुःख न होगा ?

५—बाढ़ का आतङ्क—

गुजरात, सिन्ध, बड़ौदा और उड़ीसा में भयंकर वर्षा और बाढ़ से जो आतङ्क फैला हुआ है उसकी सूचना समाचार पत्र पाठकों को अवश्य होगी। गुजरात में एक सप्ताह में पचास पचास इंच पानी बरस गया। भड़ोंच ज़िले में तो वर्षा का अनुमान सौ इंच है। उड़ीसा में एक महीने के भीतर अब तीसरी बार बाढ़ आई है। इस बाढ़ के फल स्वरूप इन स्थानों पर सैकड़ों गांव बह गए, हजारों घर गिर गए, लाखों की संख्या में जानवर मरे और करोड़ों रुपयों की हानि हुई है। इसी बाढ़ से सैकड़ों मनुष्य मर गए, हजारों बर्बाद हो गए और लाखों गृह विहीन। फसल की बर्बादी, और व्यापार धंधे का नाश हुआ सो अलग। इन बाढ़ पीड़ित प्रदेशों में दुर्दशा ग्रस्त प्राणियों की सहायतार्थ सरकार, सेवा-समितियाँ, हिन्दू सभाएं और रिलीफ सोसायटियां जो कुछ कर सकती हैं कर रही हैं। सबसे अधिक मनोयोग से गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का काम श्री बल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में हो रहा है। ऐसे विपत्ति के समय प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है कि जितना धन वह इस सत्कार्य में दे सकता हो, देकर अपनी लक्ष्मी को सफल बनावे।

६—माननीय पटेल की महानता—

एसेम्बली के चेयरमैन माननीय पटेल से कौन अपरिचित होगा? आप स्वराज्य पार्टी के लीडर थे। परन्तु जब आप एसेम्बली के सभापति बना दिए गए तो वहाँ जिस निष्पक्षता से आपने कार्य संचालन किया, उसकी प्रशंसा शतमुख से की गई। हाल ही में आप विलायत से लौट कर आए हैं। वहाँ आपने भारतवर्ष के सम्बन्ध में अनेक अधिकारियों से वार्तालाप किया। स्वयं सम्राट पंचमजार्ज से भी आपकी भेंट हुई। सरकारी अफसरों के डर से हमारे अनेक भाई खद्दर और गांधी टोपी से

डरते और भड़कते हैं। देशी राज्यों में सुना जाता है कि गांधी टोपी पहनना गुनाह है, किन्तु माननीय पटेल जिस समय सम्राट से मिलने गए थे, उनके शरीर पर सब वस्त्र शुद्ध खद्दर के थे और सिर पर गांधी टोपी का ही मुकुट था। श्री पटेल जब विलायत से लौट कर आए तो गुजरात को बाढ़ से पीड़ित पाया। आपने अपनी सहज उदारता से एसेम्बली के सभापतित्व से मिली हुई, वेतन से बचे हुए दस हज़ार रुपए की सारी सम्पत्ति बाढ़ पीड़ितों की सहायतार्थ दे डाली। श्री पटेल को इस पद का जो वेतन मिलता है उसका आधा तो आप उपयोगी कार्यों में खर्च करने के लिए महात्मा गांधी जी को दान में दे देते हैं। शेष आधे मे अपना काम चलाते हैं। इस में से भी आप दस हज़ार रुपया बचा सके थे, यह सब आपने एक मुश्त दे दिया। एक घटना और सुनिए। आज भारतवर्ष में चारों ओर शाही कमीशन की धूम है। ब्रिटिश पार्लियामेंट एक कमीशन नियत करने वाली है जो भारतवर्ष की स्थिति की जांच करके शासन सम्बन्धी भावी सुधारों की शिफारिस करेगा। माननीय पटेल से इस कमीशन का सदस्य होने की प्रार्थना की गई। आपने इसके उत्तर में कहा कि चूंकि कमीशन का सभापति कोई हिन्दुस्तानी नहीं बनाया जा रहा है, अतएव मैं सदस्य नहीं बन सकता। उपरोक्त चारों बातों से पाठक माननीय पटेल की महत्ता को स्वयं समझ सकेंगे। हमें पटेल महोदय पर उचित गर्व है और हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि ऐसी महान आत्माएं देश के संकट काटने के लिए और अधिक अवतीर्ण हों।

७–स्वाभिमानी नवयुवक—

मदरास में माउन्ट रोड पर ग़दर में हिन्दुस्तानियों का दमन करने वाले कर्नल नील का एक पुतला खड़ा है। गत सप्ताह दो नवयुवकों ने उसे तोड़ने का प्रयत्न किया कुछ तोड़ भी दिया। पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और उसी दिन मुकद्दमा हो कर उन्हें कड़ी सजाएं दे दी गई। अभियुक्तों ने पैरवी नहीं की, गवाहों से जिरह भी नहीं की।

हां, अपने बयान में कहा कि इस काम को करने से पूर्व ही वे जानते थे कि इसका कैसा दंड उन्हें मिलेगा। पर वे मरने तक को तैयार थे। उन्होंने इतिहास में पढ़ा था कि कर्नल नील ने देश को बड़ी हानि पहुंचाई थी। अतएव उन्होंने सोचा कि यह मूर्ति यहाँ नहीं रहनी चाहिए। जब वे उस स्थान पर आए और मूर्ति को देखा तो उन्हें इतिहास की याद आ गई और वे इसे तोड़ने लगे। पुलिस सार्जेन्ट ने उन्हें पकड़ लिया। उन्होंने कहा कि इस अपराध के लिए वे सख्त से सख्त सजा पाने को तैयार हैं, किन्तु उनका विश्वास है कि वे अपराधी नहीं हैं।

नवयुवकों के उक्त बयान से वीरता और स्वदेशाभिमान टपका पड़ता है। उनके इस भाव की प्रशंसा उनका शत्रु भी करे बिना न रहेगा। महात्मा गांधी जी ने इस सम्बन्ध में लिखा है:—"जिस उद्देश्य से यह कार्य किया गया है और जिस दृढ़ता से मुक़दमे में उन्होंने अपना बयान दिया है, उसे देख कर यह असम्भव है कि इन वीर नवयुवकों के साथ सहानुभूति न प्रकट की जाय।" इतना लिख जाने के पश्चात् हमें विदित हुआ कि दूसरी बार तीन और तीसरी बार दो और नवयुवक उस मूर्ति को तोड़ने आए और वे भी गिरफ्तार करके दो दो वर्ष को जेल भेज दिए गए।

८—हिन्दी का मासिक साहित्य—

पिछले पांच छः वर्ष में जहां हिन्दी के और अङ्गों की पुष्टि हुई है वहां उसका मासिक साहित्य भी बहुत उन्नत हो चला है। निस्संदेह इस उन्नति का बहुत कुछ श्रेय 'माधुरी' को प्राप्त है। हिन्दी की सर्व प्रथम और सर्वोत्कृष्ट पत्रिका 'सरस्वती' को जब से आचार्य द्विवेदी जी ने छोड़ा है तब से कुछ लोगों की दृष्टि में वह वैसी नहीं रही है। किन्तु हम तो देखते हैं कि वह अब बहुत उन्नत हो गई है। उसमें गम्भीर विचारपूर्ण लेख रहते हैं और विविध विषयों पर मार्मिक टिप्पणियाँ। आचार्य द्विवेदी जी के जो लेख भिन्न भिन्न नामों से 'सरस्वती' में छपते

हैं, वह उसकी विशेषता है। उसके चित्र निस्संदेह अच्छे होते हैं। सुनते थे, श्री दुलारेलालजी और पं० रूपनारायणजी पांडेय के न रहने से 'माधुरी' कुछ गिर जायगी—पर वैसा नहीं हुआ। प्रत्युत उसकी सम्पादकीय टिप्पणियों में विशेष गम्भीरता आ गई। हां, आत्म-विज्ञापन और व्यापारिकता का जो भाव पहले बहुधा 'माधुरी' से प्रकट होता था—वह न रहा। नए वर्ष से नए सम्पादक क्या और विशेषता करेंगे—यह देखना अभी शेष है। भार्गव जी ने अब 'सुधा' का प्रकाशन किया है। आप उच्च कोटि के प्रकाशक और सुदक्ष व्यवस्थापक हैं, अतएव यह मान लेना पड़ता है कि 'सुधा' चमकेगी और खूब चमकेगी। अभी उसका केवल प्रथमांक ही प्रकट हुआ है—अतएव उसके सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता। हां—यह अङ्क बहुत अच्छा निकला है। 'मनोरमा' की बात न पूछिए। सम्मेलनाङ्क और महिलाङ्क निकाल कर उसने अपने बूते से ऊपर काम किया है। बालकों और स्त्रियों के लिए इसमें काफ़ी मसाला रहता है और मनोरञ्जन की सामिग्री भी यथेष्ट रहती है। 'चांद' सामाजिक पत्र है और यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि सामाजिक पत्रों में 'चांद' ही सर्वोत्कृष्ट है। जब से 'चांद' का निजी प्रेस हुआ है तब से उसकी छपाई सफ़ाई भी सर्वोत्तम होती है। 'चांद' को लोगों ने पसन्द भी बहुत किया है। सचमुच वह एक सामयिक आवश्यकता की पूर्ति करता है। 'महारथी' और 'वीर-सन्देश' वीर रस के पत्र हैं। इनमें 'वीर-सन्देश' के विषय में तो हमारा कुछ कहना नहीं, रहा 'महारथी' सो वह उत्तम पत्र है। वीर रस के साहित्य के साथ वह और और विषयों पर भी लेख देता है। भिन्न भिन्न विषयों के उसके भिन्न भिन्न सम्पादक हैं। सुनते हैं—निकट भविष्य में एक उच्च कोटि का पत्र कलकत्ते के विख्यात 'माडर्न रिव्यू' सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जी निकालने वाले हैं। इसके सम्पादक होंगे स्वनाम धन्य श्री पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी। यह वास्तव में अच्छा पत्र होगा। हम अभी से इसका स्वागत करते हैं।

६—आन्दोलन का महत्व—

अमरीका की बात है—सात वर्ष पहले की। जूते के कारखाने में काम करने वाले दो आदमियों को बन्दूक से मारने के सन्देह में सको और वांजेती नामक दो आदमी गिरफ्तार किए गए और उन्हें फांसी की सजा का हुक्म हुआ। इस निर्णय के विरुद्ध घनघोर आन्दोलन शुरू हुआ। लोगों को विश्वास था कि अभियुक्त निर्दोष है—उनके साथ सरासर अन्याय हुआ है। आन्दोलन का प्रभाव यह पड़ा कि फांसी टल गई और फिर विचार हुआ। इसी विचार ही विचार में वर्षों घुल गए पर फांसी का हुक्म रद्द न हुआ। उधर आन्दोलनकारियों ने भी अपना काम जारी रक्खा। अमरीका का यह मामला विश्व-व्यापी हो गया। फिर जब जब फांसी चढ़ने का समय आया तभी आन्दोलनकारियों ने अमरीका ही नहीं तमाम यूरोप और जापान तक में हल-चल मचा दी। बम फैंके गए, सभाएं की गईं और जिस तरह भी हो सका विरोध प्रकट किया गया। नतीजा यह हुआ कि सात वर्ष तक यह अभियुक्त फांसी से बरी रहे। सात वर्ष बाद अब गत २२ अगस्त को उन्हें फांसी पर चढ़ा दिया गया। पर इससे उक्त सभी देशों में बड़ा ऊधम मच गया है। मार काट और धर-पकड़ हो रही है और लाखों आदमी इस आन्दोलन में भाग ले रहे हैं। अब हमारे देश की बात देखिये। सब जानते हैं कि कर्मवीर युवक खड्गबहादुरसिंह ने कोई बुरा काम नहीं किया था। परन्तु उसे आठ वर्ष की सजा हो गई। दस दिन चीख चिल्ला कर हम लोग चुप हो गए। चाहिए यह था कि जब तक खड्ग बहादुरसिंह छूट न जाता तब तक सरकार को चैन न लेने देते। यही हाल बंगाल के नजरबन्दों का समझिए। हमें तो विश्वास है कि यदि कहीं अमरीका और यूरोप में खड्गबहादुरसिंह को सजा होती और बंगाल के लोग बिना मुकद्दमा चलाए गिरफ्तार कर लिए जाते तो निस्संदेह वहाँ की सरकार को काम चलाना कठिन पड़ जाता। हमसे अच्छा आन्दोलन करना तो मुसल्मान जानते हैं। न कुछ 'रङ्गीला रसूल' के मामले पर उन्होंने जमीन आसमान

एक कर दिए और अपनी सी करा कर छोड़ा। रही हिन्दुओं की बात सो पंजाब सरकार तक ने कहा है कि 'बीसवीं सदी के महर्षि' और 'दिल्ली से अहमदाबाद' पुस्तकों के विरुद्ध आन्दोलन नहीं किया गया, अतएव उन पर मुकद्दमा नहीं चला। क्या हिन्दू इससे सबक सीखेंगे ?

१०—हिन्दी के हिमायती आंखें खोलें—

प्रान्तीय कौंसिल के प्रश्नोत्तरों से विदित हुआ है कि इस हिन्दी भाषी प्रान्त में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थी यद्यपि कम नहीं हैं, उर्दू की अपेक्षा यह संख्या सब जगह अधिक है, पर एक ओर हिन्दी और संस्कृत पढ़ने वाले मुसल्मानों की संख्या जहाँ नितान्त शून्य है वहाँ उर्दू और फारसी पढ़ने वाले हिन्दुओं की संख्या उन विषयों के मुसल्मान छात्रों से भी अधिक है। किसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना आक्षेप जनक नहीं है, वह तो सर्वथा स्तुत्य कार्य है। मनुष्य जितनी अधिक भाषाओं का ज्ञाता हो, उतना ही अच्छा है। आक्षेप योग्य बात तो यह है कि उर्दू और फारसी पढ़ने वाले अधिकांश हिन्दू छात्र हिन्दी और संस्कृत में तो शून्य रहते हैं और उर्दू और फारसी के आलिम बन जाते हैं। वर्तमान स्थिति में यह श्रेयस्कर नहीं है। अब तो हिन्दू के प्रत्येक बच्चे को हिन्दी पहले पढ़ना चाहिये, और भाषाएं पीछे।

११—महाराजा करौली का स्वर्गवास—

गत २ अगस्त को करौली के वयोवृद्ध महाराज का स्वर्गवास हो गया। उनके इस वियोग में हम राज परिवार के साथ सम्पूर्ण समवेदना प्रकट करते हैं। परमात्मा से प्रार्थना है कि परलोकगत महाराज की आत्मा को शांति मिले। यहां हम नए महाराज से कुछ निवेदन करना चाहते हैं। हमने सुना है कि उनके विचार सामयिक हैं और वे बहुत विचारशील पुरुष हैं। हम उनसे निवेदन करते हैं कि वे अपने राज्य में हिन्दी को अपनावें, कचहरियों में हिन्दी लिपिका प्रचार करें। दूसरे अपने राज्य में होने वाली भीषण पशुहिंसा को एक दम बन्द कर दें। यह दोनों बातें उनके राज्य के लिए कलंक स्वरूप हैं।

मोती पिल्स

मोती पिल्स



मोती पिल्स

इन गोलियों के सेवन से बीसों प्रकार के प्रमेह, स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन, धातुक्षीणता, शरीर की कमजोरी, पेशाब में जलन, पेशाब में वीर्य का पतन होना, आलस्य, सिर में हर समय दर्द का रहना, आंखों के नीचे अन्धेरा सा छाना, नसों की कमजोरी, बचपन में किए हुए कुकर्मों से उत्पन्न हुई नपुंसकता, भूख का न लगना, खाना हजम न होना, दस्त साफ न होना आदि रोग दूर होते हैं। तबियत मस्त होती है और वीर्य सम्बन्धी सर्व प्रकार के रोगों को दूर कर शरीर की फुर्ती को बढ़ाती है, वीर्य को पुष्ट करती है, नए रक्त का प्रचार करती है, ताक़त को बढ़ाती है। इसमें किसी तरह की हानिकारक वस्तु का मेल नहीं है। सिर्फ काष्ठ औषधियों से तैय्यार की गई है। जो लोग बीसों तरह की दवाई खाकर निराश हो गए हों, उनको एक बार इसे लेकर परीक्षा कर लेनी चाहिए। मूल्य २० दिन की खुराक ४० गोलियों का १॥) पोस्टेज अलग।

हर एक दवा बेचने वालों के यहां मिलती है।

पता—मोती फार्मेसी, चौक—आगरा

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग १ | आश्विन शुक्ला २ संवत् १९८४ अक्टूबर १९२७ | अङ्क १

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   एक अङ्क का ।)

विषय-सूची

ग्राहकों को सूचना

जिन ग्राहक महोदयों का वार्षिक मूल्य इस अङ्क के साथ समाप्त हो रहा है, उनसे प्रार्थना है कि वे नये वर्ष का मूल्य शीघ्र ही मनिआर्डर से भेजने की कृपा करें। वी० पी० भेजने में हमें विशेष झंझट करनी पड़ती है और ग्राहकों को दो आने अधिक देने पड़ते हैं। ऐसी दशा में अच्छा यही है कि सभी ग्राहक महानुभाव मनिआर्डर से मूल्य भेजने की कृपा करें।

हमें आशा तो नहीं है—पर यदि कोई सज्जन आगामी वर्ष ग्राहक न रहना चाहें तो शीघ्र ही हमें सूचना दे दें ताकि हमें व्यर्थ हानि न उठानी पड़े। पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

—मैनेजर।

वीर-सन्देश



संसार प्रसिद्ध अमरीकन उड़ाका
कर्नल चार्ल्स ए० लिण्डबर्ग



भारतीय युवकों के आदर्श
श्री० पं० जवाहरलाल नेहरू

महावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(सर्वोपयोगी साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जग-मग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग १ { आगरा—आश्विन शुक्ला २ सं० १९८४-वीर सं० २४५३ अक्टूबर १९२७ } अङ्क १२

उपहार

[लेखक—कविवर श्री० मिलिन्द जी]

कवि—

" किस आशा में, उषा, स्वर्ण-उपहार सजाकर लाती हो ?
किसके चरणों में अपना सर्वस्व चढ़ाने आती हो ?
खोजा करती हो किसको, किसके मद में मदमाती हो ?
किसे न पा, होकर हताश, फिर लौट स्वर्ग को जाती हो ? "

उषा—

" मातृ-भूमि को मुक्ति दिला, जो करे स्वर्ण-युग को साकार !
उसी वीर के लिए सुरक्षित है यह सोने का उपहार !
जब तक प्रेम-पन्थ पर ऐसा नहीं मिलेगा प्राणाधार !
आऊँगी, जाऊँगी, प्रतिदिन, लेकर ज्यों-का-त्यों उपहार ! "

विजय दशमी हमें क्या सिखाती है ?

[ले०—साहित्य-रत्न श्री पं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल एम०ए०, सम्पादक "सैनिक"]

एक अंग्रेज कवि का कहना है कि महान् पुरुषों के जीवन-चरित्र हमें यह याद दिलाते हैं कि समय की रेणुकाओं पर वे जो पद-चिह्न छोड़ गए हैं उन पर चल कर हम लोग भी अपना जीवन उच्च, उत्तम, श्रेष्ठ और सफल बना सकते हैं।

विजय दशमी हमारे एक महान् पुरुष की विजय का सजीव स्मारक है। परन्तु हिन्दू-धर्म का तो नहीं। लोकमान्य तिलक के शब्दों में हिन्दू-धर्म के अनुयायियों का इतना भयङ्कर ह्रास हो गया है कि हमारे पवित्र से पवित्र और उत्तम से उत्तम त्यौहार भी महज़ लकीर पीटने भर के लिए रह गए हैं। वे हममें वह नवजीवन संचार नहीं करते जो उन्हें करना चाहिये। उनसे हमें अपने जीवन को निरन्तर उन्नति करते रहने की वह प्रेरणा, वह स्फूर्ति नहीं मिलती जो मिलनी चाहिए। उनका हम उतना सदुपयोग नहीं करते जितना करना चाहिए। वे हमारे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के सुधार में वह प्रभाव नहीं डालते जो उन्हें डालना चाहिए। अपने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के सुधार करने के लिए हम उनका उतना सदुपयोग नहीं करते जितना करना चाहिए। हिन्दू तो इतने निर्जीव, इतने अधः पतित और इतने गति तथा मतिहीन हो गए हैं कि उन्होंने अपने महान आदर्श पुरुषों के पद-चिह्नों पर न चलने का भी एक बड़ा मजेदार बहाना ढूंढ निकाला है! यदि उनसे आप यह कहें कि आपके अमुक अवतार पुरुष ने ऐसा किया था, आप भी वैसा क्यों नहीं करते तो उत्तर मिलेगा कि वे अवतार थे, भला हम उनकी बराबरी कैसे कर सकते हैं।

यों तो इस घातक बहाने की बेहूदगी इतनी साफ़ है कि उसमें किसी को कुछ शक करने की गुञ्जाइश ही नहीं है लेकिन वर्त्तमान मरणासन्न तथा अधः पतित हिन्दू-समाज के लिए यह बेहूदगी भी ब्रह्म-वाक्य

से कुछ कम नहीं है इसलिये इस भ्रम का निराकरण करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। अवतार-वाद की दृष्टि से अन्य अवतारों के विषय में यह बहाना कुछ भ्रम उत्पन्न कर सकता है, परन्तु भगवान रामचन्द्रजी के अवतार के सम्बन्ध में तो किसी दृष्टि से कोई भ्रम हो ही नहीं सकता। भगवान् रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम माने गए हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम के अर्थ हैं 'उत्तम पुरुषों के लिए मर्यादा स्वरूप'। इससे स्पष्ट है कि भगवान् रामचन्द्र ने जो कुछ किया वही प्रत्येक उत्तम पुरुष को करना चाहिए। इतना ही नहीं, प्रत्येक पुरुष के लिए यह आवश्यक है कि वह उत्तम बनने के लिए भगवान् रामचन्द्र के पद-चिह्नों पर चले। इस बात को सिद्ध करने के लिए हमारी यह व्याख्या ही प्रमाण नहीं है। मान्य-ग्रन्थों में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् ने श्रीराम का अवतार लेकर नर-लीला की, यानी वैसे काम किए जैसे मनुष्यों को करने चाहिए। अतः कोई भी समझदार हिंदू यह नहीं कह सकता कि भगवान् रामचन्द्र तो अवतार थे उन्होंने जो कुछ किया वह हम कैसे कर सकते हैं ? क्योंकि भगवान् रामचन्द्र ने भी तो वही किया जो हर एक मनुष्य को करना चाहिये। उन्होंने तो नर-लीला ही करके दिखाई। परंतु हिंदुओं की जड़ता इतनी चरम सीमा तक पहुँची हुई है कि वे बिना किसी बहाने के भी पतन के मार्ग में अग्रसर होने से नहीं हिचकिचाते ! उन्नति मार्ग में चलने से सदैव विरक्त रहते हैं।

भगवान् की दया से आजकल हिंदुओं में शुद्धि और संगठन की कुछ चर्चा है। यद्यपि इस चर्चा में सार कम और शोर बहुत है। तथा लोग ठीक रास्ते पर न चल कर गलत रास्तों पर जा रहे या ले जाए जा रहे हैं, फिरभी इस चर्चा के समय यह आशा करना दुराशा मात्र नहीं हो सकता कि कुछ हिन्दुओं का ध्यान इस बात की ओर अवश्य जायगा।

इसीलिए आज हम इस बात पर विचार करना चाहते हैं कि विजय दशमी हमें क्या सिखाती है ? भगवान् रामचंद्र के पवित्र जीवन-चरित्र से हमें क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ? यदि हम विचार करके देखें तो हमें

भगवान् रामचंद्र के जीवन-चरित्र से तीन अमूल्य शिक्षाएँ मिलती हैं और वे तीनों ही ऐसी हैं जो हर समय के लिए उपयोगी और आवश्यक हैं और जो इस समय तो अत्यन्त उपयोगी और अनिवार्यतः आवश्यक होने के साथ साथ अतीव सामयिक भी हैं। ये तीनों शिक्षाएँ हैं:— त्याग, वीरता और संघटन।

श्रीराम का जीवन आदि से लेकर अन्त तक त्यागमय है। पग पग पर आपको उनके जीवन से यह शिक्षा मिलती है कि सफलता का रहस्य त्याग में ही है। स्वधर्म, कुटुम्ब और समाज के भले के लिए निजी लाभ और निजी सुखों का त्याग ही, समस्त सुख और आत्मा की शान्ति तथा जीवन-संग्राम की विजय का मूल मन्त्र है। स्वधर्म के लिए, भगवान अपने पिता के घर बाल-क्रीड़ा के समस्त सुखों को छोड़ कर विश्वामित्र के साथ सङ्कटमय विकट बनों में क्षात्र-धर्म की दीक्षा लेने के लिए गए! आज-कल की हिन्दू औरतें और उनके मर्द, अपने बालक बालिकाओं को मदरसों तथा स्कूलों में पढ़ने भेजने तक के लिए तैयार नहीं हैं परन्तु महाराज दशरथ जैसे पिता और कौशिल्या जैसी माता ने अपने जीवन के आधारों को स्वधर्म का पालन करने के लिए विश्वामित्र के साथ सघन जङ्गलों में जाने तक से न रोका! कुटुम्ब की शान्ति के लिए श्रीराम अपने पिता और कैकेयी माता की आज्ञा मान कर राज-पाट छोड़ कर चौदह वर्ष के लिए बन चले गये। यह समझ कर कि समाज का भला इसी में है श्री रामचन्द्र भगवान ने सीता सी सती को त्याग दिया! परिणाम सब के सामने हैं। इन त्यागों के ही कारण श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम माने जाते हैं। इतने मान्य माने जाते हैं कि उनके नाम मात्र को लेकर मनुष्य अपने को धन्य समझते हैं! और स्वार्थ के मतिभ्रष्ट जो कीड़े महान आदर्शों के लिए तनिक भी बलिदान नहीं करते, स्वधर्म, स्वदेश, तथा कुटुम्ब के लिए तनिक भी कष्ट नहीं उठाना चाहते वे कुत्तों की भाँति मरते हैं और उन्हें कोई जानता ही नहीं! हमारी मति इतनी मारी गई है कि रात-दिन राम-राम कहते हुए भी हम श्रीराम की यह

शिक्षा तक नहीं ग्रहण करते !

वीरता तो भगवान की जीवन सहचरी थी ! बन में अकेले हैं। सतो सीता और वीर भ्राता लक्ष्मण के अतिरिक्त और कोई साथ नहीं है। उसी समय चौदह सहस्र-राक्षसों की विकराल सेना लेकर खर-दूषण आक्रमण करते हैं। उस समय भगवान किसी सरकार के पास जा कर नहीं रोते कि हुजूर हमें बचाइये। वे प्रकृत-वीर की तरह लक्ष्मण से कहते हैं:—

"लेइ जानकिहि जाहु गिरि कंदर।
आवा निसिचर कटकु भयंकर ॥"

और खुद:—

"देखि रामरिपु-दल चलि आवा।
बिहँसि कठिन कोदण्ड चढ़ावा ॥"

और देखते-देखते खर-दूषण समेत उन चौदह हजार राक्षसों को मार भगाते हैं। इसके बाद जब रावण कपट से सीता को हर ले जाता है। नर-लीला करते हुए भगवान जगज्जननी को ढूंढते फिरते हैं। रास्ते में उन्हें अपना सहायक जटायु घोर राक्षस-राज द्वारा मारा हुआ पड़ा मिलता है। तब वे घबड़ाते नहीं, किसी के पास अर्जी भी नहीं भेजते ! वे तो अपने पूज्य पिता तक को उस समय तक इस दुर्घटना का समाचार नहीं देना चाहते जब तक स्त्री-चुराने वाले राक्षस का नाश करके सीता को न छुड़ालें। कहते हैं:—

"सीता हरन तात जनि, कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहिहि दसानन जाइ ॥"

अन्त में अपनी इसी वीरता और संघटन-शक्ति के बल से वे कुशल पूर्वक अपने बनोवास के चौदहों वर्षों को पूरा करते हैं और निषादों तथा वानर-भालुओं का सङ्घटन करके लङ्का जीतकर, रावणादि राक्षसों को मारकर अयोध्या जी को लौटते हैं। जिसकी विजय विजय-दशमी के नाम से आज तक मनाई जाती है। भगवान के सङ्घटन का

यह ढँग था कि —

"लोक बेद सब भाँतिहि नीचा।
जासु छाँहँ छुइले इव सींचा॥
तेहि भरि अङ्क राम-लघु-भ्राता।
मिलत पुलक परिपूरित गाता॥"

क्यों? क्योंकि,

"स्वपच, सबर, खस, जनम जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥"

परन्तु, आज-कल के बनिये, बाम्हन और ठाकुर, नित्य प्रति राम-राम कहने वाले अछूतों को नहीं छूते! भगवान की जीवनी से तो हमें यह शिक्षा मिलती है कि जो राम का भक्त हो, राम राम कहे वह नीच से नीच हो तो भी आदरणीय हो जाता है। परन्तु इन दूसरों के गुलाम धर्म-धुरीणों की राय में हिन्दू-धर्म के अनन्य भक्तों तक को छूना पाप है!!

भगवान के चरित्र की ये शिक्षाएँ राम-लीलाओं द्वारा भली भांति हिन्दू जनता के चित्त पर अङ्कित की जा सकती हैं। राम-लीलायें लीला-कार्य को, नाट्य-कला को भौंडा तमाशा न बने रहने देकर उन्नत किया जाय तो एक तो प्रति साल सर्वत्र बन्दरों और राक्षसों की लड़ाई के बहाने अनेक मनुष्यों को लाठी, तलवार आदि चलाने की उत्तम शिक्षा दी जा सकती है, दूसरे रामचन्द्र जी की बरात आदि में आर्यसमाज के नगर-कीर्तनों की तरह भगवान के जीवन की शिक्षाओं पर उपदेश प्रद भजन गवा कर, तथा उपदेश दिला कर, लोगों में धर्म और समाज-सुधार के भाव भरे जा सकते हैं। संक्षेप में उत्तरी भारत के लिए राम-लीला का वही सार्वजनिक रूप बनाया जा सकता है जो दक्षिण में गणेशोत्सव और शिवाजी उत्सवों का है। इस समय तक तो लोग राम-लीला को महज तमाशा समझते हैं। उनमें अन्धी और वे मानी श्रद्धा-भक्ति भी होती है परन्तु राम-लीला से उनके जीवन पर कोई कहने योग्य हितकर असर नहीं पड़ता। यू० पी० की हिन्दू-सभा का ध्यान बहुत

पहले इस बात की ओर चला जाना चाहिये था लेकिन कौंसिलों और बोर्डों की मेम्बरियों तथा लीडरी की फिक्र से फुरसत हो तब न ? अब भी, यदि कोई माई का लाल, राम-लीलाओं द्वारा, तथा विजय दशमी द्वारा, हिन्दू-जनता के हृदय पर भगवान के जीवन की त्याग, वीरता और सङ्गठन की इन तीन महान शिक्षाओं को अङ्कित करने का प्रयत्न करे तो कुछ वास्तविक परिणाम दिखाई दे।

वीर-सन्देश

[लेखक—श्री० कर्ण कवि जी]

यही है वीरों का सन्देश !
हो कर हम सब मनो काय वच, संघ सूत्र में बद्ध।
जननी जन्म-भूमि रक्षा हित, रहें सदा सन्नद्ध ॥
सफल हो जीवन का उद्देश !
यही है वीरों का सन्देश !!
माँग रही है बलि रण-चण्डी, धार वेश विकराल।
असुर आततायी दुष्टों का, वेग बुलावें काल ॥
करें यमपुर खल सर्व प्रवेश !
यही है वीरों का सन्देश !!
पराधीनता-परकीया वश, दें न दीन-ईमान।
करें शक्ति आराधन, रखते हुये स्वात्म अभिमान ॥
दूर हो कायरता, भय, क्लेश !
यही है वीरों का सन्देश !!
उमगें अङ्ग, बढ़े उपजे उर निर्मल नीति विवेक।
जिह्वा पर नित बनी रहे यह 'कर्ण' माधुरी टेक ॥
जयति जय प्यारा भारत देश !
यही है वीरों का सन्देश !!

आदर्श वीर

[लेखक—श्रीयुत पं० किशोरीदास जी वाजपेयी, शास्त्री]

"वीर-सन्देश" की पिछली किसी संख्या में श्रीमान् पं० श्रीकृष्णदत्त जी पालीवाल महोदय का उक्त-शीर्षक का एक लेख निकला था। आपने उसमें दाशरथि लक्ष्मण को आदर्श-वीर माना और सिद्ध किया था; किन्तु आदर्श-वीर के लक्षण कुछ भी न दिये थे। हमें श्रीमान् पालीवाल जी के सिद्धान्त से सन्तोष नहीं। पहले हम आदर्श-वीर के लक्षण बतला कर तब यह बतलाएँगे, कि आदर्श-वीर कौन है।

वीर किंवा आदर्श-वीर में क्रोध की मात्रा का बहुत नियन्त्रण है। क्रोध वीर में स्थायी नहीं, हाँ सञ्चारी अवश्य है। इसका कारण यही है कि सतत क्रोध के आवेश में कर्तव्य कर्म भूल जाता है और गंगा उलटी ही बहने लगती है। यही कारण है कि वीर का स्थायी भाव उत्साह माना गया है। कर्तव्य-पालन-विषयक उत्साह वीर का स्थायी भाव है; क्रोध नहीं। क्रोध तो सञ्चारी है। इसकी स्थिति आवश्यक नहीं, प्रत्युत क्रोध की बढ़ी हुई मात्रा वीरत्व का बाधक ही है। साहित्य-शास्त्र में भी कहा है:—"रक्तास्यनेत्रता चास्य भेदिनी युद्धवीरतः" अर्थात् रौद्र रस में नायक के नेत्र क्रोध से लाल हो जाते हैं; पर, युद्ध-वीर में यह बात नहीं। युद्ध-वीर तो हँसते-हँसते काम करता है। यही युद्ध-वीर और रौद्र में भेद है।

दूसरी बात यह है कि वीर अथवा आदर्श-वीर में आत्म-श्लाघा का अभाव होना चाहिए, चाहे फिर उसमें वे श्लाघ्य गुण उत्कट मात्रा में ही क्यों न वर्तमान हों। वीर अपने मुँह अपनी बड़ाई कभी न करेगा। वह उस तथ्य बात के कहने में भी हिचकेगा, जिससे उसकी कुछ प्रशंसा सम्भावित हो। इसी भाव से साहित्य में वीर के लिए 'अविकत्थनः' विशेषण आया है। ठीक भी है। वीर अपनी बड़ाई करे तो क्यों करे? उसकी प्रशंसा के गीत तो समस्त जगत् गा कर कृतकृत्य होता है। कस्तूरी अपने मुख से कभी भी नहीं कहती कि मुझ में लोकोत्तर सौरभ है

या मैं मामूली कुसुमों के सौरभ को बात की बात में दबा सकती हूँ। केशरी कभी अपने गज-संहारी पञ्जों की बड़ाई अपने आप करता है ?

वीर अपने कर्तव्य के पालन में सोत्साह जुटता है। उसे और कुछ कहने सुनने की नहीं सूझती। वह अपने प्राण देकर उत्साह लेता है—सदा हथेली पर प्राण रखता है। वह लोकोत्तर गुणों से पूर्ण होता है और संसार के सभी और गुण एक उत्साह पर ही न्योछावर हो जाते हैं।

अब आप ध्यान से देखें कि, आदर्श-वीर श्रीराम हैं या श्रीलक्ष्मण। थोड़ा सा विचार करने पर पता चल जायगा कि आदर्शवीर कौन है। हम से तो जब कोई साहित्यिक युद्ध-वीर और रौद्र का उदाहरण पूछता है, तो हम उसके सामने क्रमशः श्रीराम और श्री लक्ष्मण का नाम ले देते हैं। धर्म-शास्त्र, नीति-शास्त्र और साहित्य-शास्त्र का यही सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार हम परशुराम को भी उस समय वीर का उदाहरण नहीं समझते, जब वे लक्ष्मण जी को डाँट-डपट रहे हैं। दोनों सफेद मेघ बहुत गरजे, पर बरसा अन्त में वह श्याम नीरद ही। परशु-राम और लक्ष्मण में खूब तूतू-मैंमैं हो ली, तब श्रीराम ने उठ कर परशुराम के उस धनुष को चढ़ा दिया। बस, फैसला हो गया। और कई जगह ऐसा ही हुआ है।

इसका मतलब यह नहीं कि लक्ष्मण जी ने जो कुछ कहा था, सो कर नहीं सकते थे। नहीं, वे सब कुछ कर सकते थे। वे कन्दुक के समान ब्रह्माण्ड को उठा कर सौ योजन किसी प्रयास के बिना ही दौड़ सकते थे। वे धनुष को छत्रक-दण्ड के समान तोड़ सकते थे। वे संसार भर का एक पल में विध्वंस कर सकते थे। वे सर्व-समर्थ थे। फिर भी उनकी यह वाणी सहृदयों के हृदयों में वीरता के आदर्श को ठहरने नहीं देती।

हमारी सम्मति में श्रीराम जी आदर्श-वीर हैं। इनमें वे सब गुण विद्यमान हैं, जो आदर्श-वीर में होने चाहिएँ।

विचार तरङ्ग

[लेखक—श्रीयुत सुरेन्द्र शर्मा]

यज्ञ-वह्नि—

अभी बहुत दिन नहीं हुए, कलकी सी बात है। कुछ 'गुमराह' लोगों ने एक विराट यज्ञ का आयोजन किया था। महाभारत के राजसूय और अश्वमेध यज्ञ के बाद अब से पहले ऐसा यज्ञ नहीं देखा गया। इस यज्ञ में बिलकुल नवीनता देख पड़ी। धूप, दीप, अक्षत, रोरी आदि पूजा का कुछ भी सामान न था। समिधायें बिलकुल अजीब तरह की जुटाई गईं। वे आमकी सूखी समिधायें न थीं। उनमें जान थी, बिलकुल हरी थीं। सब विधान हो चुकने पर, होता ने 'स्वाहा' के गगन-भेदी शब्द के साथ यज्ञ का श्रीगणेश किया। भक्तगण हरी हरी समिधाओं के रूप में आहुतियें चढ़ाने लगे। समिधायें हरी थीं, सूखी नहीं, तो भी वे चिराग़ की तरह जलने लगीं। एक नहीं, दो नहीं, बल्कि अगणित आहुतियाँ चढ़ीं और यज्ञ-वह्नि पूर्ण तेज के साथ प्रदीप्त हो गई। उसके प्रकाश से दशों दिशायें आलोकित हो उठीं। जो कुछ जिससे बन पड़ा, 'पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं' के रूप में उसने श्रद्धा से यज्ञ में चढ़ा दिया। सामग्री समाप्त हो जाने के बाद यज्ञ-वह्नि कुछ धीमी पड़ी, और बाद में धुँए के रूप में उसकी पवित्र सुगन्ध चारों ओर फैल गई।

आत्माहुति—

कुछ समय तक ऐसा मालूम पड़ा कि यज्ञ-वह्नि बिलकुल शान्त हो गई। परन्तु आगे आने वाले समय ने बता दिया कि वह आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी, उसमें चिनगारी थी। जिन्हें यज्ञ में समिधायें डालने का अपना भाग पूरा करना था, वे भक्त चुप बैठे न रह सके, और अपनी श्रद्धा की आहुति चढ़ा कर अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए वे यज्ञशाला में जा पहुँचे। अन्य भक्तों के साथ तुम भी अपनी हरी समिधा लेकर पहुँच गए। इसपर कुछ मनचले हँस पड़े और कह उठे

कि तुम्हें यज्ञशाला में आने और प्रज्वलित यज्ञ-वह्नि में आहुति चढ़ाने का सलीका भी है, इस योग्यता की तुम्हारे पास कोई डिग्री भी है कि आ गये वैसे ही आहुति चढ़ाने ? इसके उत्तर में तुम गर्ज उठे कि जो लोग इस यज्ञ-वह्नि में भक्ति-भाव से आहुति चढ़ा कर विजयी होना जानते हैं, उन्हें किसी यूनिवर्सिटी की डिग्री की दरकार नहीं, इससे पहले जिन लोगों ने हँसते हँसते किसी महान् आदर्श के लिए आत्माहुति देकर इस यज्ञ-वह्नि को प्रज्वलित रक्खा है, उनके पास कोई डिग्री नहीं थी। इतना कह कर तुमने उस विराट यज्ञ में मुसकराते हुए असीम श्रद्धा के साथ आत्माहुति चढ़ा दी, लोग खड़े देखते ही रह गए !

यज्ञ-वह्नि आज भी सुलग रही है। कब तक सुलगेगी, यह भविष्य के गर्भ में निहित है। आज तो केवल उसका धुँआँ दिखाई पड़ रहा है।

दीप-शिखा पर—

दीवाने पतङ्ग ! अपने प्राणों की ममता छोड़, एक दम ज्वलित दीप-शिखा पर चढ़ कर न जाने तुम किस सनक में अठखेलियाँ खेल रहे हो ? तुम्हें कुछ पता है कि जहाँ तुम उन्मत्त बने इठला रहे हो, वह मृत्यु का रङ्ग मञ्च है। यह वह रङ्ग-मञ्च है जिस पर आते ही सुर, नर, मुनि, गन्धर्व, आदि के प्रफुल्लित मुख कमल देवी की छाया से काले पड़ जाते हैं। अभी कुछ क्षणों के बाद ही यहाँ तुम्हारा इठलाना बन्द हो जायगा। तुम्हारे मुखड़े पर हास्य की यह सुन्दर रेखा न रहेगी। देखते देखते तुम्हारा पञ्च तत्व का पींजरा राख हो जावेगा, और तुम्हारी आन्तरिक ज्योति अदृश्य रूप से झिलमिलाती हुई दीप-शिखा में मिल जायगी। तुम्हारी जीवन लीला की इस अन्तिम दशा पर भला किसे हसद न होगा ? जीवन के अन्तिम क्षण में भी उमंग भरी तरंगों में भस्म होकर थिरकते हुए केवल तुम्हीं को देखा ! जिन करोड़ों आदमियों का जीवन रात-दिन की गुलामी में लात-घूँसा गाली गलौज और अनेक प्रकार की यंत्रणाओं के बीच कटता हो, और अन्त में जिनके प्राण अन्न के एक एक दाने के लिये तरस तरस कर निकलते हों, वे अभागे दीप-शिखापर इठलाते हुए मतवाले

पतंग की अन्तिम लीला का रहस्य क्या समझें ? सच कह दो पतंग इस प्रकार मरने में तुम्हें क्या मज़ा मिलता है ?

बलिदान का रहस्य—

जलती दीप-शिखापर एक पतंग को आत्मोत्सर्ग करने में जो आनन्द मिलता है, उसका रहस्य समय समय पर श्रीकृष्ण, बुद्ध, शङ्कर, महावीर, दयानन्द, तिलक आदि अनेक महापुरुष अपने अपने जीवन की अमर कृतियों से स्पष्ट बतला गये हैं। परन्तु जहाँ मुट्ठी भर विदेशी करोड़ों मूक भेड़ों को लकड़ी के बल पर स्वेच्छानुसार नचाते हों, वहाँ भला आत्मोत्सर्ग की महत्ता कौन समझे ? जहां आज भी झूठन के टुकड़ों के बन्दर-बँटवारे की नीति ग्राह्य समझी जाती हो, वहाँ आत्म-निर्भरता, स्वावलम्बन और बलिदान का क्या मूल्य है ?

पतंग का आदर्श है दीप-शिखा। वह उस पर अनन्य भाव से प्रेम करता है। उसे प्राप्त करने ही में वह अपना सर्वस्व तक खो देता है। जीवन-यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर जब वह (पतंग) थिरक थिरक कर ताल देता है, तब उसे मृत्यु कौन कहेगा ? सचमुच वह मृत्यु नहीं अमरत्व है। वह जीवन का अन्तिम फल है। बस, पतंग की तरह अपने आदर्श के लिए मर कर अमर होने ही में बलिदान का सारा रहस्य निहित है। आज हममें से कितने आदमी अपना आदर्श प्राप्त करने को इस प्रकार व्यवहारिक रूप से बलिदान का रहस्य समझने के लिए तैयार हैं ?

पानी

[लेखक—श्री० श्रीरामबचन जी द्विवेदी "अरविन्द"]

दुष्ट अत्याचारियों पर पानी हित 'अरबिन्द',
शिव ने दिखायी करतूत समसाम की।
क्षत्रिय प्रताप ने भी पानी की ही आन पर,
हल्दी के घाट पर खूब धूम-धाम की॥

पानी के लिए ही महाभारत का युद्ध ठना,
मर मिटी बन्धु ! वीर-मण्डली तमाम की।
होकर असावधान पानी क्यों बहाता मूढ़ !
पानी-हीन सूरत है जगमें हराम की॥

बोडेशिया.

[लेखक—श्री० प्रभातकुमार जी]

टेम्स नदी के बांये तट पर, वेस्ट मिनिस्टर ब्रिज के बगल में, पार्लियामेंट भवन के अत्यन्त निकट ही आयकोनी की महारानी बोडेशिया की प्रतिमा स्थित है। दृश्य बड़ा मनोहर है। चार घोड़े वाले रथ पर आरूढ़ हो वह अपनी सेना को रोमन लोगों से लड़ने के लिये, लिये जा रही हैं। उनके बगल में उनकी दो लड़कियां हैं जिनका रोमन जेनरलों ने घोर अपमान किया था। बोडेशिया के सेना वाले युद्ध-वीर एवं हट्टे-कट्टे थे। प्रतिशोधाग्नि की पवित्र आभा उनके प्रतिभा मय मुख-मंडल पर मुस्करा रही थी—विकीर्ण हो रही थी और वे अपनी आदरणीया महारानी के साथ इस प्रकार निर्भीकता पूर्वक उत्साह से आगे बढ़े जा रहे थे मानो बाज अपने शिकार की वस्तु पर टूटा हो। उपरोक्त प्रतिमा के नीचे पत्थर पर कविवर काऊपर के निम्नलिखित भविष्य-सूचक वाक्य लिखे हुये हैं:—

" Regions Caesar never knew,
Thy posterity shall sway."

बोडेशिया की पुण्य-स्मृति को दीर्घस्थायी करने के लिये एक प्रतिष्ठित एवं स्वदेश-भक्त उदार अंगरेज़ सज्जन द्वारा यह प्रतिमा स्थापित की गई थी और यह नगर के ठीक मध्य में स्थित है।

एक दूसरी जगह, मनुष्यों की पहुंच से दूर—उसी महारानी बोडेशिया की क़ब्र है। यह स्थान पहाड़ी है तथा लंदन के उत्तर की ओर स्थित है। पहाड़ियों के नीचे छोटी छोटी मनोहर झील हैं जिनके तट पर बड़े बड़े उजले जंगली बतक़ दिन भर कलरव कल्लोल किया करते हैं। इस स्थान पर आस-पास के ऊंचे ऊंचे गिरजाघरों के सुन्दर लाट (मीनार) घनी घनी वृक्ष-प्रशाखाओं के बीच से साफ़ नजर आते हैं। किन्तु वह छोटी सी जगह जिसके नीचे वीरता की मूर्ति देवी बोडेशिया अनन्त-

आनन्द निद्रा में लीन पड़ी हुई है—समस्त भू-मण्डल में न्यारी एवं मनोहर है। यह स्थान लोहे के सिकरों से घिरी हुई है। भीतर हरे-भरे जंगली पौधे लगे हुए हैं। ढेर के ढेर फूल एवं फल होते हैं। यह स्थान पक्षियों के लिए स्वर्ग स्थान सा है। इसके बीच में बोडेशिया के पक्ष वालों ने उसके स्मृति चिह्न-स्वरूप एक बहुत लम्बा खम्भ गाढ़ रक्खा है। यह खम्भ किसी लम्बे वृक्ष का रूखा लम्बा धड़ है और ऊँचाई में तो मालूम पड़ता है कि आकाश ही छू देगा।

बोडेशिया का इतिहास सरल और स्वाभाविक है। इतना सरल और स्वाभाविक जितना इतिहास हो सकता है। बोडेशिया के पति प्रेसूटेगस ने रोमन लोगों को सन्तुष्ट करने के लिए अपने विशद राज्य का आधा भाग उन्हें दे दिया। किंतु प्रेसूटेगस की मृत्यु के पश्चात् रोमन लोगों ने उसका सारा राज्य ले लेने के लिए जोर किया।

दस हज़ार चतुर रोमन सिपाहियों ने धोखे से तीस हजार अंग्रेजों को मार डाला। इस स्वदेशानुराग-पूरित युद्ध में—जिसमें महिलाओं और पादड़ियों ने भी योग दिया था—बहुत से ऐसे स्वधर्म-त्यागी अंग्रेज थे जो अंग्रेज़ों की स्वतंत्रता के विरुद्ध रोमन लोगों से मिल कर लड़ रहे थे।

शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् जब रोमन लोगों ने ब्रिटेन पर से अपना अधिकार हटा लिया, तब एक बार फिर वही अंग्रेज जाति उत्तरीय शत्रुओं से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में नितान्त असमर्थ पाई गई।

तब से कई जातियां आईं और वहां बस गईं। किन्तु अब तो, उन लोगों में इतनी घनिष्ट एकता—इतना विशद संगठन हो गया है कि जाति-विभेद की बू तक नहीं मिलती और यही कारण है कि इंगलैन्ड आज इतनी उन्नत अवस्था में है। जाति-विभेद ही किसी जाति या देश की अवनति का प्रधान कारण समझा जाता है।

(एक अंग्रेजी लेख के आधार पर)

वीर बालक पुत्त और वीर बालाएं

[लेखक—श्री० चौधरी रामप्रसाद जी शैनी]

जिस समय मुग़ल सम्राट अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था, अनेक स्वाधीनता प्रिय वीर क्षत्रिय, जन्म भूमि की रक्षा के लिये युद्ध-क्षेत्र में मर कर सदा के लिये अमर हो गये थे। राजपूत कुलमणि जयमल तो पहले ही शत्रुओं के हाथ मारे जा चुके थे उनके मरने पर मुग़ल शत्रुओं से चित्तौड़ की रक्षा करने तथा स्वतन्त्र भारत भूमि को परतन्त्रता की बेड़ियों में बंधने से बचाने और अत्याचारी यवनों से मुकाविला करने को कोई न रहा। ऐसे अवसर पर एक सोलह वर्ष का वीर बालक अपनी पूज्य मातृ-भूमि की मानमर्यादा बचाने के लिये अपने प्राण देने को उद्यत हुआ।

पुत्त ने उसके शून्य स्थान की पूर्ति की। यद्यपि पुत्त की अवस्था अभी केवल सोलह साल की ही थी, परन्तु वीरता, युद्ध-कौशल एवं साहस और पराक्रम में वह बड़े बड़े वीरों से भी बढ़ कर था। चिन्ताग्रस्त पुत्त ने बचे हुए राजपूतों से कहा कि "जिसे अपना बाहुबल दिखाना हो वह इस समय आ कर शत्रु से युद्ध करे।" यह सत्य है कि उस समय राजपूत बिगड़ चुके थे तथापि उनमें धार्मिक जोश मौजूद था। पुत्त का सन्देश सुन कर उसकी माता ने पुत्त को बुला कर कहा—"पुत्र आज वह दिन आगया है जिसके लिये क्षत्राणियाँ पुत्र उत्पन्न करती हैं। जाओ मेरे दूध की लाज रखना और शत्रुओं को परास्त करना, नहीं तो रण-भूमि में प्राण देकर स्वर्ग लोक को गमन करना। देखना, शत्रुओं को पीठ न दिखाना।"

पुत्त की बहन कर्णदेवी ने अपने भाई की कमर में कटार बांध कर कहा—"वीर भाई! रणक्षेत्र में जा कर धर्म-युद्ध करना। चाहे शरीर पर सहस्रों घाव हो जावे किंतु पीछे मुँह न करना। जब मैं सुनूंगी कि मेरे भाई के अग्र शरीर पर अनेक घाव हुए पर पीठ पर एक भी नहीं तो मैं बड़ी प्रसन्न होऊँगी। घर आना तो शत्रुञ्जय हो कर आना

नहीं तो रण क्षेत्र ही में शत्रुओं के मृतक शरीरों की सीढ़ी बनाकर सीधे स्वर्ग धाम को चले जाना।

बहिन के पास से विदा होकर पुत्त अपनी प्रियतमा कलावती के के पास गया। वह बोली—"मेरे शिर के मुकुट, प्राणनाथ। ऐसे समय सदा नहीं आया करते। वीर रण-भूमि में ही जागते हैं। क्षत्री का सुख संग्राम है। अब तक तुम सोये हुए थे, युद्ध में जाकर सब को बताओ कि सिंह जाग उठा है। मेरे स्वामी, कोई मुझ से यह न कहे कि तेरा पति संग्राम में पीठ दिखा गया। मेरी लाज रखना। परमात्मा तुम्हें सहायता देगा।" वह युद्ध के लिये सन्नद्ध हो और शुभाशीर्वाद ले युद्ध क्षेत्र की ओर चल दिया।

एक ओर अकबर के सेनापतित्व में बड़ी भारी मुगल सेना और दूसरी ओर पुत्त की अध्यक्षता में इने गिने राजपूत। दोनों में घोर घमसान युद्ध होना आरम्भ हो गया। जब पुत्त से अकबर की पहली सेना लड़ रही थी और अकबर स्वयं दूसरी सेना लेकर पुत्त पर दूसरी ओर से आक्रमण करने के लिये जा रहा था तो पुत्त की माता, बहिन और स्त्री से न रहा गया। जन्म भूमि की रक्षा के निमित्त वे तीनों अपने एक मात्र स्नेह-पात्र पुत्त की सहायता के लिये युद्ध क्षेत्र में पहुँच मुगलों की फौज पर प्रहार करने लगीं।

सम्राट् अकबर पुत्त पर आक्रमण करने के लिये बढ़ ही रहा था कि अकस्मात उसकी सेना रुक गई। ध्यान देने पर ज्ञात हुआ कि एक ओर पहाड़ पर खड़े हुए कुछ वृक्षों की आड़ से गोलियों की वर्षा हो रही थी और उन्हीं की मार से व्याकुल हो कर यवन सेना एक साथ बढ़ते बढ़ते रुक गई।

जब अकबर ने देखा कि तीन स्त्रियाँ घोड़ों पर चढ़ीं, युद्धोपयोगी वस्त्र तथा अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो अपनी प्रखर गोलियों की वर्षा से मुगल सेना का संहार कर रहीं हैं तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। इन तीनों वीर बालाओं में से एक की अवस्था तो कुछ अधिक थी पर

शेष दो की अभी चढ़ती हुई जवानी थी। इतनी कम आयु की कोमलाङ्गी वीर ललनाओं के द्वारा अपनी सेना का इस प्रकार संहार होता देख अकबर ने सिर नीचा कर लिया।

दोपहर को लड़ाई पुनः प्रारम्भ हुई, एक ओर सोलह वर्ष का पुत्त और दूसरा ओर उसकी वृद्धा माता एवं अल्प-वयस्क प्रियतमा और बहिन थी। चित्तौड़ की शक्तिरूपिणी ये देवियाँ तीनों अग्नियों के समान दिल्ली सम्राट की सेना रूपी ईंधन को जलाकर भस्म करने पर उतारूथीं। सन्ध्या तक लड़ाई होती रही। किसी ने विश्राम नहीं किया। अनेक मुग़ल सैनिक मारे गये।

अकबर इन तीनों स्त्रियों की वीरता पर मुग्ध हो गया। उसने वीरता को सम्मानित करना चाहा और आज्ञा दी कि जो इन तीनों स्त्रियों को जीवितावस्था में पकड़ लावेगा, उसे उत्तम पुरस्कार दिया जायगा। उस समय अकबर के सैनिक विक्षिप्त से हो रहे थे। किसी ने भी उसकी बातों पर ध्यान न दिया। मुग़ल सेना लड़ती ही रही और तीनों स्त्रियां उन्हें रोकने पर उद्यत रहीं। कर्णवती के कई गोलियां लगीं अन्त में वह म्लान पुष्प की भांति पृथ्वी पर गिर पड़ी। पुत्री की यह दशा देखकर कर्मदेवी हतोत्साह न हुई। वह दूने उत्साह के साथ शत्रुओं से लड़ने लगी। अचानक एक गोली आकर कलावती के बायें हाथ में लगी। कलावती ने इस भीषण आघात को भी सह लिया। वह एक हाथ से ही प्रहार करने लगी।

उन्मत्त मुग़ल सेना गोलियों की वृष्टी करती ही गई। कुछ देर के बाद कलावती भी पृथ्वी पर गिर पड़ी। कलावती के गिरते ही कर्णदेवी भी स्वर्ग सिधार गई। उधर पुत्त मुगलों को परास्त करके पर्वत के निकट आया और अपनी आराध्या जननी, प्रियतमा एवं बहिन को पृथ्वी पर गिरा देख वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। उस समय कलावती और कर्मदेवी के प्राण कंठगत हो रहे थे। पुत्त ने इन दोनों को उठा लिया। सती कलावती अपने पति के बाहु पर मस्तक रख कर सर्वदा के लिये सोगई।

कर्मदेवी ने अपने पुत्र को जन्म भूमि की रक्षा रखने का आदेश देकर प्राण त्याग दिये। पुत्त थोड़े समय तक विचार कर "हर हर" कहता हुआ शत्रुओं की सेना में चला गया। सोलह वर्ष का वीर बालक असंख्य सैनिकों को नष्ट करके सदा के लिये मृत्यु-शय्या पर सो गया। पुत्त और उसकी प्रियतमा कलावती के शरीर एक चिता में भस्म किये गये। कर्मदेवी और कर्णवती दोनों माँ बेटी एक चिता में भस्म की गईं।

ये तीनों वीर बालायें तथा वीर-वर पुत्त अब इस संसार में नहीं है परन्तु उनकी अक्षय कीर्ति अभी तक उज्वल चाँदनी की तरह भूमंडल पर फैली हुई है और अनन्त काल तक फैली रहेगी।

वीरबर-याचना

[लेखक — श्री० जगमोहनसिंह जी 'मोहन']

यही दो वरदाता ! वरदान ॥
प्राण हथेली पर रख रन को, मेरा होय पयान।
यही दो वरदाता ! वरदान ॥ १ ॥
धीर वीर हो निडर समर के, कूद पड़ूं मैदान।
निज कृपान से वैरी दल का, करदूं सब अवसान ॥
यही दो वरदाता ! वरदान ॥ २ ॥
धज्जी धज्जी उड़े तौहु मैं, गरजूं सिंह समान।
पीछे पैर न धरूँ मरूँ चहँ, किंचित होंउ न म्लान ॥
यही दो वरदाता ! वरदान ॥ ३ ॥
आने बल ना दऊँ मान में, चाहे जावे जान।
'मोहन' हँस हँस करूँ धर्म-हित, इस तनको बलिदान ॥
यही दो वरदाता ! वरदान ॥ ४ ॥

वीर बालक बादल

[लेखक—श्रीयुत प्रताप महोदय]

There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermipsyloe and scauly a city that not produced its Domidas"
—Tod's Rajasthan.

राजपूताना सदा से वीर पुरुषों को पैदा करने में अग्रणी रहा है, मेवाड़ तो वीरों की खान ही है। मेवाड़ ने ही प्रताप, राजसिंह और भीमसिंह जैसे वीर पैदा करके आर्य जाति की लाज रक्खी है। इतिहास लेखकों ने ग्रीस के लियोनिडाज और मिलताइडिस, फ्रांस के नैपोलियन, अमेरिका के वाशिंगटन और ब्रिटेन के किचनर आदि की प्रशंसा के बड़े बड़े पुल बाँधे हैं पर सच पूछिये तो इस भारतमाता की गोद में अनेकों लियोनिडाज मिलताइडिस और नैपोलियन खेले हैं। ऐसेही एक वीर बालक का वृतान्त सुनिए। यह घटना सन् १३६० के अप्रेल मास की है।

भयानक रात्रि थी, चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। चित्तौड़गढ़ से कुछ दूर दिल्लीपति अलाउद्दीन अपनी असंख्य सेना के साथ डेरों में पड़ा हुआ था। योद्धागण थक जाने के कारण खर्राटे ले रहे थे। परन्तु बादशाह सलामत अपने शिविर में चिन्तामग्न बैठे हुए थे, उनके चेहरे पर नैराश्य था। कुछ देर इसी अवस्था में बैठे रहने के बाद उन्होंने पहरेदार को आवाज दी और कहा—"सिपहसालार और वजीर को बुलाओ।" सिपहसालार और वजीर ने आकर झुककर सलाम किया और संकेत पा अपना स्थान ग्रहण किया। उनके बैठ जाने पर बादशाह बोले "देखो, राजपूत कौम बड़ी लड़ाका है, मरने से नहीं डरती। इनसे जङ्ग में कभी जीत न होगी और न मुझे पद्मिनी मिलेगी। इसलिये चालाकी से काम लेना चाहिए। मेरी समझ में भीमसिंह के नाम एक सुलह का परवाना लिखा जाय और पद्मिनी को सिर्फ देखने की ख्वाहिश जाहिर की जाय। राजपूत क़ौम बड़ी भोली है, वह जरूर इस जाल में

फँस जायगी।" युद्ध सचिव आदि के समर्थन करने पर संधि-पत्र लिखा गया और उसी समय एक दूत द्वारा राना भीमसिंह के पास भेजा गया।

दूत ने वह पत्र रानाजी को जा सौंपा। उस समय वे अपने योद्धाओं के साथ युद्ध चर्चा कर रहे थे। उसे पढ़ रानाजी ने सब उपस्थित सामन्तों को सम्बोधन करके कहा, "सामन्तगण, बादशाह अलाउद्दीन ने हमसे सन्धि करने की प्रार्थना की है। वे एक बार पद्मिनी को केवल देखना चाहते हैं। यह सुन सब वीर क्रुद्ध हो म्यान से तलवार निकाल कर बोले—"प्राण रहते हम लोग ऐसा कभी न होने देंगे। जब तक हमारे बली हाथों में तलवार है, उस कुलाङ्गार की दृष्टि महारानी पर नहीं पड़ सकती।" महाराणा ने सबको शान्त करते हुए कहा—"ठीक है परन्तु युद्ध करते करते बहुत समय बीत गया। प्रजा अत्यन्त दुखी है। यदि यही दशा रही तो देश का कृषि वाणिज्य बर्बाद हो जायगा। देशहित के लिए यदि हम रानी के दर्शन उन्हें करादें तो क्या बुराई है। अब इस अशान्ति का दूर होना ही श्रेयस्कर है" इस प्रकार विचार परामर्श के बाद दर्पण द्वारा महारानी का प्रतिबिम्ब दिखाने को सब राजी हो गए।

यह सामाचार पा बादशाह के हर्ष का कुछ पार न रहा। वह कुछ चुने हुए रक्षकों के साथ महारानी पद्मिनी को देखने के लिए पहिली अप्रेल को चित्तौड़ के राजप्रसाद में पहुँचा। वहाँ उसने पद्मरागमणि के समान पद्मिनी की क्रान्ति को देखा और देख कर मन में कहने लगा "कमाल है, हूबहू हुश्न की परी है। यह चिराग़ तो मेरे दिल्ली के शानदार महलों को रोशन करने लायक है।"

प्रासाद से लौटते समय रानाजी बन्धु-भाव से बादशाह को गढ़ के बाहर तक पहुँचाने आए। सरल हृदय राजपूत वीर पठान की धूर्तता को न समझ सका। अलाउद्दीन ने मौका पाकर उन्हें कैद कर लिया और अपने शिविर में ले जा कर कहा, "जब तक पद्मिनी को मेरे हवाले न करोगे मैं तुम्हें न छोड़ूंगा।"

जब यह समाचर चित्तौड़ पहुँचा तो वहां बड़ी हलचल मच

गयी, परन्तु राजपूत घबराए नहीं। वे भीमसिंह के उद्धार की चेष्टा करने लगे। उन्होंने प्रण किया कि हम लोग प्राण रहते हुए पद्मिनी को अपमानित न होने देंगे। ऐसी अवस्था में बादल नामक एक द्वादश-वर्षीय वी॰ बालक वंश की मर्यादा की रक्षा के लिए अग्रसर हुआ और इस महान कार्य में गोरा काका ने उसकी पूरी पूरी सहायता की।

महारानी पद्मिनी ने इस दुःखमय समय में शोक कर अपना समय नष्ट नहीं किया। उसने वीर रमणियों की भांति धैर्य धर सब सामन्तों को एकत्रित किया और राजा के उद्धार के विषय में परामर्श किया। अन्त में निश्चय हुआ कि शठे शाठ्य समाचरेत। वीर बालक ने समस्त सेना में से योद्धा छाँटे और सात सौ पालकियाँ सजाईं। एक एक पालकी छः छः कहारों के कन्धों पर रक्खी गयीं। उनमें सुकुमार ललनाओं के स्थान में आर्यावर्त के गौरव-पुंज वीर राजपूत थे। सवारी रवाना हुई और बादशाह को यह संवाद भेज दिया कि पद्मिनी अपनी दासियों के साथ आ रही है।

यह संवाद पा अलाउद्दीन मारे हर्ष के उछलने लगा। एक एक करके सब पालकियाँ शिविर में लाईं गईं। बादशाह पद्मिनी से मिलने के लिए वस्त्राभूषणों से अपने शरीर को सजाने लगा। इतने में उसके पास समाचार आया कि एक बार पद्मिनी राना से मिलना चाहती है। उसने इजाजत दे दी। राणा भी राजपूत शिविर में जा पहुँचे। बादशाह अधीर हो रहा था, वह स्वयं पद्मिनी के शिविर में पहुँचा। वहाँ जो कुछ उसने देखा उसे देखकर उसके देवता कूच कर गए। वह हक्का बक्का सा रह गया। पद्मिनी के स्थान पर वहाँ अस्त्र शस्त्र सज्जित एक वीर योद्धा था। बादल ने लपक कर अलाउद्दीन पर वार किया। यदि समय पर सहायता न आ गई होती तो बादशाह सलामत यमपुर यात्रा को चले गए होते। उधर राजपूत वीरों ने भी भारत माता का जै बोलते हुए यवन सेना पर धावा बोल दिया। उन वीरों ने पठानों को घास की तरह काट कर बिछाना शुरू कर दिया। अवसर पा बादल ने भीमसिंह को घोड़े पर

बैठाया और वे बैरी दल को चीरते हुए चित्तौड़गढ़ जा पहुँचे। राणा से छुट्टी पा बादल भी मैदान में आया। घमासान लड़ाई छिड़ गई। बारह वर्ष के वीर बालक के पराक्रम से पठान सेना इधर उधर भागने लगी। पठानों के हृदयों में आतंक सा छा गया, जिधर बादल जाता उधर काई सी फट जाती थी। गोरा काका बादल की सहायता के लिए युद्ध में उपस्थित थे। उन्होंने ऐसी मार मारी कि यवनों के छक्के छूट गए, अन्त में अलौकिक वीरता दिखाकर अपनी जन्म-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए वे युद्धक्षेत्र में शवों का गद्दा तकिया लगाकर वीर-गति को प्राप्त हुए।

बालक की अपूर्व वीरता से मुग्ध हो विजय-लक्ष्मी उसके पक्ष में आई। बादशाह को निराश हो दिल्ली लौटना पड़ा। बादल बहुत घायल हो गया था वह मेवाड़ का सच्चा लाल कूदता फाँदता और खून से रँगी तलवार को हिलाता हुआ अपनी माता के पास गया। माता ने अपार आनन्द से उसे गोद में बैठा लिया और अपने पति की वीरता तथा युद्ध समाचार पूछने लगी। बादल ने गोरा काका की वीरता और मृत्यु का सब हाल कह सुनाया। और माता की ओर देखते देखते उसने अन्तिम साँस ले ली।

मेरा स्वप्न

[लेखक—श्री० दिव्य कवि जी]

अरि की विकट कटक थी सम्मुख, इधर अकेले मेरे नाथ।
उधर शस्त्र से सज्जित थे वे, और इधर यह रीते हाथ॥
देखा सखी स्वप्न में मैंने फिर भी पिय होकर निर्द्वन्द।
विचर रहे थे शत्रु-सैन्य में सिंह-सुतों की विधि स्वच्छन्द॥
मुड़ते थे जिस ओर उधर ही मच जाता था हा हा कार।
कायर कम्पित हो जाते थे सुन उनकी भीषण हुँकार॥

❀ ❀ ❀

करके वंश-विनाश शत्रु का आये हैं घर प्राणाधार।
हँस हँस कर मैंने उनको फिर पहना दिया विजय का हार॥

वीर-हृदय

[लेखक—श्री० मधुसूदन जी चतुर्वेदी, विशारद]

आज हम संध्या के समय दो अश्वारोहियों को चम्बल नदी के किनारे बड़े वेग से जाते हुए पाते हैं। दोनों की अवस्था समान प्रतीत होती है, दोनों के स्वरूप में बहुत कम भेद है। दोनों के चहरे से वीरता टपक रही है। इनके साथ ही एक छोटे घोड़े पर एक सेवक भी जा रहा है। अचानक एक चीत्कार ने इन लोगों को चौंका दिया। रामू (सेवक) बोला—"देखिए महाराज, कहीं कोई शेर किसी आदमी को मार रहा है।"

इतने में आवाज़ और भी तीव्र हो गई। तब तो प्रथम अश्वारोही दूसरे से कहने लगा—"उदयसिंह यह तो किसी अबला का शब्द है, चल कर देखना चाहिए।"

उदयसिंह—अवश्य चलिए। मालूम होता है कोई जंगली जानवर है।

रामू—महाराज, आपको क्या पड़ी है जो आप आफ़त में फँसें।

उदयसिंह—रामू तू तो हम लोगों के साथ कई वर्षों से है, पर तेरी भीरुता नहीं गई। तूने महाराणा प्रताप और वीर-केशरी शिवाजी का वृतान्त सुना है। क्या तू नहीं जानता कि वे गो, ब्राह्मण और स्त्रियों की रक्षा के लिए सदैव जान तक दे डालने को तत्पर रहते थे।

रामू—महाराज, क्षमा कीजिए। भूल हुई जो ऐसा कहा। मैं तो आपका सेवक हूं। आप पर कोई आपत्ति न आवे, इसी से ऐसा कहा था। वैसे तो जहाँ, आपका पसीना बहेगा वहाँ पहिले मेरा खून बहेगा। आप लोगों की तलवार बाद में घूमेगी पहिले सेवक का सिर धड़ से अलग हो जावेगा।

उदयसिंह—तो फिर चलो अब बिलम्ब करने की क्या आवश्यकता है!

यह लोग अभी एक फर्लांग भी न गए होंगे कि भयानक अन्धकार में वीभत्स दृश्य देखते ही हृदय की क्रोधाग्नि भड़क उठी। एक नर-पिशाच को एक अबला पर अत्याचार करते देख दोनों वीर गरज पड़े। वीरसिंह ने आगे बढ़ कर कहा, "क्यों बे राक्षस ! तुझे इस अत्याचार करने में लाज नहीं आती ! क्या तू समझता है कि स्त्रियों का कोई रक्षक नहीं है!"

वह भी अपने घमण्ड में चूर था। चट से बोल उठा—"आप मेरे मजहबी मामले में दस्तन्दाजी करने वाले कौन होते हैं ? मैं यहां चाहे जो कुछ करूं आपको इससे क्या मतलब ! आप चुपचाप यहां से चले जावें नहीं तो मैं अभी देखता हूँ।" यह कहके उस नर-पिशाच ने सीटी बजानी शुरू की।

उसके यह बचन क्या वीर क्षत्रियकुमार सह सकते थे ? उदय-सिंह ने झपटकर उसके एक ऐसी लात जमाई कि सीटी अलग जा गिरी और वह बेहोश होकर अलग जा गिरा।

तब वीरसिंह ने स्त्री से पूछा—"आप कौन हैं।" स्त्री ने कांपते कांपते कहा—"अभी हम लोग बेखौफ़ नहीं हैं। इस बदमाश के साथ गुण्डों का एक गिरोह है जो इसकी सीटी सुन कर आता ही होगा। करीब पच्चीस आदमी हैं। अगर आप जल्दी जल्दी निकल चलें तो चाहे बच जावें।"

वीरसिंह ने कहा—"हम लोग दुष्टों से डरते नहीं। वे दुष्ट पच्चीस क्या पचास भी हों तो भी हमें कोई परवाह नहीं। हम लोग दुष्टों को दण्ड देना अपना कर्तव्य समझते हैं। आप निश्चिन्त रहें। जब तक हम लोग जीवित हैं आपको कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।"

वीरसिंह अपना कथन समाप्त भी न कर पाए थे कि उस दुष्ट की मूर्छा दूर हुई और उसने फिर से सीटी बजाई। अब की रामू ने बढ़ कर उसका काम तमाम कर दिया। पर सीटी बज चुकी थी इसलिए उदय-सिंह ने तलवारें खींच लेने की ही सलाह दी। और कहा—"यहाँ बिलम्ब करने से क्या लाभ। हम लोगों को चैतन्य होकर चलना चाहिए।"

उदयसिंह—मेरी राय में तो इन्हें (स्त्री की ओर इशारा करके) रामू के पीछे बैठा देना चाहिए और हम लोगों में से एक आगे चले और एक पीछे।

वीरसिंह—रामू, हाँ चटपट इन्हें बैठालो और देखो, इन्हें कोई हानि न होने पावे। यदि दुष्ट हमला करें तो तुम्हें इन्हीं की रक्षा करनी पड़ेगी न कि हम लोगों की।

यह लोग कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि यकायक कुछ शोर सुनाई दिया। वीरसिंह बोले—"उदयसिंह, दुष्ट लोग समीप ही प्रतीत होते हैं। हम लोगों को सजग हो जाना चाहिए। यहाँ घोड़ों के लिए मैदान भी अच्छा है, यहीं ठहर जाओ। आज इन दुष्टों को भी दिखा देना है कि नारी निर्यातकों की क्या दशा होती है।" वे लोग सामने आए पर इनके रँग ढँग को देखते ही उनके हौसले उड़ गए। कई एक बगलें झाँकने लगे। पर उनमें भी सभी कायर न थे, कुछ वीर भी थे जो आगे आए।

अन्त में समर आरम्भ हुआ। रामू बेचारा तो अलग मन मसोसे खड़ा था पर उदयसिंह और वीरसिंह ने अपनी तलवार के ऐसे हाथ दिखाए कि दुष्टों को भागते ही बनी। इसी बीच में वीर कुमारों ने चार दुष्टों को संसार से विदा कर दिया। इस प्रकार विजयी होकर दोनों वीर हर्ष पूर्वक रामू के पास आए और उसे साथ ले आगे बढ़े।

रास्ते में स्त्री ने अपनी कथा सुनाना आरम्भ किया। वह कहने लगी—"परसों शाम को मैं अपने शौहर के साथ जा रही थी। डोली के चार कहार और मेरे शौहर के सिवा और कोई साथ न था। जब हम लोग इसी रास्ते से गुजरे तो इन दुष्टों ने हमें घेर लिया। मेरे शौहर तो मुझे छोड़ कर भाग गए और मैं इनके फंदे में पड़ गई"!

उदयसिंह—आप कहाँ रहती हैं?

स्त्री—बड़नगर।

वीरसिंह—अरे यह तो अपने ही गाँव की है। (स्त्री से) आपके शौहर का नाम क्या है?

स्त्री—शेख अब्दुल्ला।

रामू—छिः छिः! अरे यह तो वही पापी है जिसने आपके पुत्र को मार डाला था। मैं ऐसे नीच की स्त्री का मुख भी नहीं देखना चाहता।

वीरसिंह—रामू, क्या बकते हो? क्या अपकार का बदला अपकार से देना चाहिए? क्या तुम नहीं जानते कि हिन्दुओं का धर्म स्त्रियों की रक्षा करना है फिर चाहे वह शत्रु की स्त्री ही क्यों न हो। यह कह कर वीरसिंह ने रामू के साथ उस स्त्री को उसके घर पहुँचवा दिया और उससे कह दिया कि वह अपने शौहर को समझा दे कि स्त्री बालकों पर क्रोध उतारना वीरता नहीं, उनकी रक्षा करना वीरता है। और दुष्टों का दमन करने के स्थान पर उनसे डर कर भाग जाना, महा कायरता है।

वीर-विनय

[लेखक—श्री० गोविन्ददास जी गुप्त, बी० ए०]

सद्ज्ञान का विज्ञान का विस्तार हो प्रभु देश में,
जातीयता का भाव जागे भाव भाषा वेष में।
पुंसत्व सच्ची शूरता नस नस हमारी में बहे,
निज मान आत्मज्ञान का शुभ ध्यान प्रतिपल ही रहे।
आत्मा अमर हम जान कर सत्यार्थ ही लड़ते रहें,
सत्याग्रही आदर्श हो सन्मार्ग में बढ़ते रहें।
अधिकार मिलते यत्न से रख सामने इस तत्व को–
हम दीन हो मांगें नहीं बस योग्य बन लें स्वत्व को॥
कोई सिकोड़े नाक भौं चिन्ता न हो इसकी कभी,
निज इष्ट-पथ पर दृढ़ रहें विचलित न हों प्रभु हम कभी।
निस्वार्थ-सेवा-रत रहें निर्भय सदा उन्नति करें,
सौभाग्य है यदि न्याय हित हम कष्ट अति सहते फिरें॥

हवा पर फ़तह

[लेखक—श्री० पं० जवाहरलाल जी नेहरू]

भारत के लाल, देश के स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी सेनापति, सुप्रसिद्ध राष्ट्र सेवक श्री पं० जवाहरलाल नेहरू आज कल स्वीटजरलैण्ड में हैं। आपका लिखा हुआ एक लेख 'वालंटियर' नामक पत्र में प्रकाशित हुआ है। इसमें विलायत में हवाई जहाज़ों की तरक्की का सुन्दर चित्र खींचा गया है। साहसवीर लिण्डवर्ग का भी वर्णन किया है। आपका वह लेख नवयुवकों के लिए स्फूर्ति दायक होगा, इस लिए हम यहाँ उद्धृत किए देते हैं। साथ ही उसके लेखक और कर्नल लिण्डवर्ग के चित्र भी इसी अङ्क में पाठकों की भेट करते हैं। —सम्पादक।

क़रीब १८ बरस हुए, जब मैं केम्ब्रिज में एक तालिब-इल्म था। मैंने, फ्रान्स और जर्मनी में, शुरू शुरू एअरोप्लेन को उड़ते हुए देखा था। उसके पहिले भी सुना था कि अमेरिका के मैदानों में, राइट भाइयों ने, एक हवा से भारी मशीन पर थोड़ा सा उड़कर दिखाया था। ज़मीन से गज दो गज उठते थे और २०० या ३०० गज तक उड़ते थे। यह पहिला मरतवा था कि ऐसे भारी मशीन में कोई इनसान उड़ा हो। इसके पहिले, बैलूनों में जिनमें गैस भर कर मामूली हवा से हलका कर देते हैं, लोग ज़रूर कुछ उड़े थे, लेकिन उनका सिद्धान्त ही दूसरा था। राइट भाइयों के बाद ही सुना कि एक फान्सीसी सांटोज डुमों भी वैसी ही भारी मशीन पर उड़ने में सफल हुआ।

इसके बाद जल्दी जल्दी तरक्की की ख़बरें आने लगीं। ब्लेरियो, समन्दर पार करके फ्रान्स से इङ्गलिस्तान उड़ा और कुछ दिन बाद एअरोप्लेन का आसमान पर दीखना बहुत अजीब नहीं मालूम होता था।

क़रीब इसी ज़माने में, १८ बरस हुए, मैं बर्लिन में था। काउण्ट ज़ेपलिन, अपने मशहूर हवाई जहाज़ पर, पहिली दफे लम्बी सफ़र करके वहाँ पहुँचने वाले थे। बड़ी धूम थी और लाखों आदमी और औरतें दूर दूर से उनके स्वागत में शरीक होने जमा हो रहे थे। हम भी उस बड़े मैदान में गये जहाँ वह पहुँचने वाले थे। बेहद जमाव था। शायद १५ या २० लाख आदमी उसके आसपास थे। कैसर साहब भी, अपने बड़े अफ़सरों के साथ, बहुत शान से मौजूद थे। ठीक समय पर हवाई जहाज़ आया और बहुत धूम-धाम से उसका स्वागत हुआ। चारों तरफ़ जरमन

लोगों की "होख" "होख" की आवाज़ गूँजने लगी। मैंने, अपने छोटे कैमेरा से कुछ तसवीरें लीं। वह अभी तक मेरे पास हैं। उस रात को जिस होटल में हम ठहरे थे उसने हम सब को ज़ेपलिन की एक बहुत अच्छी काउण्ट तसवीर दी, वह भी मेरे पास रक्खी है।

इसको १८ बरस हो गये। इस अरसे में इनसान ने हवा पर कितना क़ाबू बढ़ाया और एअरोप्लेनों ने किस क़दर तरक्की की! आज कल यूरोप में हज़ारों मुसाफ़िर प्रति दिन एअरोप्लेन पर सफ़र करते हैं और बड़े शहर से रोज़ सफ़री एअरोप्लेन जाते हैं। मुझे भी दो दफे एअरोप्लेन पर सफ़र करने का अवसर मिला है—एक दफे लण्डन से पैरिस तक और दूसरे दफ़े लण्डन से ओस्टेण्ड तक।

लेकिन, इस उन्नति को अनुभव करने का मौक़ा सब से ज्यादा तो दो महीने हुए, पैरिस में हुआ था। नुनगेस्सर और कोली दो फ्रांसीसियों ने कोशिश की कि पैरिस से सीधे अमेरिका उड़ जावें। बहुत मुश्किल और ख़तरनाक सफ़र था। सारे पैरिस में खुशी और साथ ही चिन्ता भी थी। उनके उड़ने के कुछ घण्टे बाद ख़बर आई कि वह सफल हो गये, और न्युयार्क पहुँच गये। पैरिस की गली-गली में खुशी थी। बड़ी दूकानों में कुछ देर के लिये काम रुक सा गया और हरएक दूसरे को मुबारिक-बाद देने लगा। नुनगेस्सर की बूढ़ी माँ का घर भेंट के फूलों से भर गया। खुशी थोड़ी ही देर की थी। मालूम हुआ कि ग़लत ख़बर आई थी और असल में कोई पता उन बहादुर लोगों का नहीं था। तब से उनकी बहुत तलाश हुई, लेकिन कोई पता नहीं मिला और अब कोई सन्देह नहीं रहा कि अटलांटिक समुद्र को उन्होंने अपनी क़ब्र बनाया।

पैरिस में रंज था। कुछ ही दिन बाद ख़बर आई कि एक अमेरिका का लड़का, अकेला, न्युयार्क से उड़कर आ रहा है। सब लोग उसे बेवक़ूफ़ कहते थे। अकेला था और उसके एअरोप्लेन पर न तार देने का सामान था और न कुछ ख़ास और चीजें थीं। अगर हजारों मील समन्दर और आसमान के बीच में ज़रा भी उसका एअरोप्लेन कहीं चूक जाता या वह खुद कोई ग़लती करता, तो मदद तो दूर रही, कभी ग़ालिबन उसका पता भी नहीं चलता। फिर भी इस बेवक़ूफ़ ने अपनी बेवक़ूफ़ी में हिम्मत की और तीर की तरह उड़ता हुआ सीधा पैरिस आ पहुँचा। फ्रांसीसियों को बहुत अच्छा नहीं लगा कि एक अमेरिकन कामयाब हो, जब उनके खुद मुल्क वाले नाकामयाब होकर जान दे चुके थे। लेकिन लिंडबर्ग की हिम्मत ने सबों को लुभा लिया और फिर उसका जो स्वागत पैरिस में और यूरोप के शहरों में हुआ वह किसी बादशाह का आज तक नहीं हुआ। अमेरिका तो, सारा, उसके पीछे पागल हो गया। कोई ताज्जुब न होता अगर लिंडबर्ग का

दिमाग़ कुछ फिर जाता। बड़े बड़े अनुभवी आदमी ऐसे अवसरों पर फिसल जाते हैं। और वह तो एक लड़का ही था। लेकिन अटलांटिक समुद्र से उड़ने से ज्यादा बड़ा कमाल उसने यह दिखाया कि अपने को काबू में रक्खा और इस बेहद और बेशुमार तारीफ़ और धूमधाम का अपने ऊपर कुछ असर नहीं होने दिया। करोड़ों रुपये उसको दिये गये, लेकिन उसने लेने से इनकार किया!

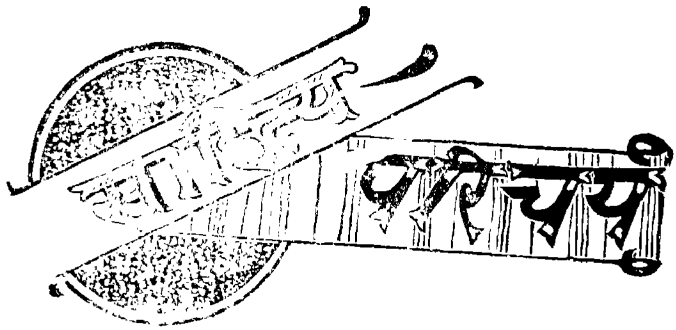
इस अजीब लड़के ने यह हिम्मत और सब्र कहाँ से सीखा? लिंडबर्ग आज अमेरिका का खुदाला हो गया है, लेकिन यह कम लोगों को मालूम है कि उस का बाप अपने मुल्क में एक बाग़ी समझा जाता था। वह एक सैनेटर था और हमेशा आजादी और इनसाफ़ के लिए लड़ता था चाहे कितने ही लोग उसके खिलाफ़ हों। ऐसे लोग बहुत पसन्द नहीं किये जाते। जब अमेरिका, पिछली बड़ी लड़ाई में, जर्मनी के खिलाफ़ लड़ने लगा तब बड़े लिंडबर्ग ने इसका कठिन विरोध किया और इसी कारण वह बहुत बदनाम किया गया। उसके बोलने के लिये कोई हाल नहीं मिलते थे और वह बाग़ी कहलाता था। आजकल जीवित होता तो, वही लोग जो उसके लड़के को आसमान पर चढ़ा रहे हैं उसको "बोल्शेविक" कहते। जब वह मरा तब साधारण नियमानुसार दफ़न नहीं किया गया बल्कि जलाया गया और उसके फूल एअरोप्लेन पर ले जाकर अपने मुल्क की ज़मीन पर फैला दिये। इसी बोलशेविक बाप का लड़का लिंडबर्ग है और यह जानकर इस बात पर ज्यादा ताज्जुब नहीं होता कि कहाँ उसने अपना मज़बूत दिल पाया। लिंडबर्ग के बाद दो दफ़े और अटलांटिक पार किया जा चुका और नई नई कोशिशें जारी हैं। यूरोप और अमेरिका में तो बहुत ज्यादा ध्यान उड़ने की तरफ़ है, पर हिन्दुस्तान का क्या हाल है? मुझे मालूम नहीं कि हमारे नेता कभी इधर ध्यान भी देते हैं या हमारे नव युवकों को भी कभी जोश चढ़ता है कि हम भी हवा को अपने काबू में लावें और इस तरह से अपने मुल्क की इज़्ज़त और ताक़त बढ़ावें। हमारा मुल्क बदकिस्मती से पराधीन है और बहुत ज्यादा तो न हमारे नेता कर सकते हैं और न नव युवक। लेकिन फिर भी कुछ हो सकता है अगर उधर ध्यान दिया जावे। इङ्गलैंड हिन्दुस्तानियों से भरा हुआ है जो बैरिस्टरी, डाक्टरी या नौकरी की लालच से हर तरह की ज़िल्लत लानत और दिक्कतों में बरदास्त करते हैं। अगर उनमें से कुछ भी अपनी हिम्मत हाथ में रखकर और नौकरी का ख्याल छोड़कर उड़ना सीखें तो हिन्दुस्तान को बहुत फ़ायदा पहुँचा सकते हैं। आख़िर हमारा मुल्क भी आज़ाद होने वाला है और हमारा तो ख्याल है कि इस में बहुत अरसा बाकी नहीं है। आज़ाद होकर हम कहाँ से ऐसे लोग लावेंगे जो हवाई जहाज चला सकें।

ज़रा भी ग़ौर करने से यह ज़ाहिर है कि यूरोप और अमेरिका में जो हवा पर फ़तह होती जाती है उसके नतीजे दुनिया में कितनी नई बातें पैदा कर देंगे। सब से मोटी बात तो उनका लड़ाई के तरीक़ों पर असर है। अब यह साबित होता जाता है कि पुराने ज़माने की फ़ौजें और जहाज एअरोप्लेन और गैस का मुकाबला नहीं कर सकते। एअरोप्लेन, गैस के बम से एक बड़ी फ़ौज़ को ख़तम कर सकते हैं और कई शहरों को बरबाद कर सकते हैं। मामूली फ़ौज़ का काम तो क़रीब वही होता जाता है जो पुलीस का है और तोप और बन्दूक की हैसियत क़रीब क़रीब लाठी के बराबर हो जावेगी। हमारे नेता जो बहुत जोरों से कोशिश कर रहे हैं कि हिन्दुस्तानियों को फौज में अफ़सर का ओहदा (King's commission) मिले, उनको चाहिये कि ज़रा इन मामलों पर भी गौर करें। नहीं तो अफ़सर और हमारी फ़ौज़ सिर्फ़ चमकीली वर्दियों में परेड करने के क़ाबिल होगी और कुछ अधिक नहीं कर सकेगी।

अभिलाषा

[लेखक—श्री० ब्रजकिशोर जी शर्म्मा "पंकज"]

माँ के कोमल पद-पद्मों पर करदूं अपना जीवनदान।
शत्रुंजय हो कर्म्म न उर में विजयी होने का अभिमान॥
असुरों के अपवित्र रक्त में भर भर अपनी अंजलियाँ।
करूँ समर्पित माँ दुर्गे को विजय-चिन्ह कुसुमावलियाँ॥
समय पड़े कैसा भी आ कर पर न कभी भी मुख मोड़ूं।
प्रति द्वन्दियों, शत्रुओं का सब में मिथ्याभिमान तोड़ूं॥
जब जब देखूँ दीन जनों पर किसी समय भी अत्याचार।
कूद पड़ूं निश्शंक समर में अत्याचारी को ललकार॥
सह न सकूँ मैं भारत माँ का किसी भांति से भी अपमान।
दीनों के हित चिन्तन ही में हो जावे मेरा बलिदान॥



सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर

उपरोक्त नाम से एक संस्था गत दो वर्ष से अजमेर में काम कर रही है। श्री घनश्यामदासजी बिडला, श्री जमुनालालजी बजाज, श्री हरिभाऊ उपाध्याय जैसे प्रसिद्ध पुरुष उसके प्रबन्ध सदस्य हैं, और मंत्री हैं उत्साही प्रकाशक श्री जीतमल जी लूणिया। मण्डल का उद्देश्य सस्ते मूल्य में उत्तम साहित्य का प्रचार करना है। कलकत्ता कानपुर आदि स्थानों पर ऐसी संस्थाएं कई बार खुलीं पर वे अधिक दिन तक चल न सकीं। कारण यह था कि वहाँ यह काम व्यवासायिक दृष्टि से नहीं किया गया था। किन्तु प्रस्तुत मण्डल का काम व्यवसायिक ढँग से हो रहा है, अतएव हमें विश्वास है कि उसे सफलता मिलेगी। मण्डल दो पुस्तक-मालाएं निकाल रहा है:—सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्ण माला। प्रतिवर्ष प्रत्येक माला में लगभग सोलह सौ पृष्ठ की पुस्तकें निकलती हैं और उनका मूल्य ३) लिया जाता है। पोस्टेज का एक रुपया और जोड़ कर ४)-४) में घर बैठे यह सब पुस्तकें मिल जाती हैं। अब तक लगभग पचीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और यह प्रसन्नता की बात है कि उनमें से अधिकांश अच्छी हैं। इस माला की चार पुस्तकें हमें समालोचनार्थ मिली हैं, उनका संक्षिप्त परिचय भी सुन लीजिए:—

भारत के स्त्री-रत्न—लेखक-पंडित शिवप्रसाद दलपतराम, अनु०-बा० रामचन्द्र वर्मा और बा० शंकरलाल वर्मा, पृष्ठ ४०२, मूल्य १)

इस पुस्तक में त्रेसठ भारतीय महिलाओं का चरित्र वर्णित है। संक्षेप में देश की इन महिला-रत्नों का पूरा परिचय इस पुस्तक से मिल जाता है। इसे पढ़ कर भारतीय स्त्रियाँ और पुरुष भी बड़ा लाभ उठा सकते हैं। ऐसी उपयोगी पुस्तक के अन्य भाग भी बहुत शीघ्र प्रकाशित होने चाहिए।

ब्रह्मचर्य-विज्ञान—लेखक – पं० जगन्नारायण देव शर्मा, भूमिका-लेखक—पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, पृष्ठ ३७३, मूल्य ।।।-)

यह पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। ब्रह्मचर्य विषय पर इधर हिन्दी में कई पुस्तकें निकली हैं, हमारी सम्मति में उन सब से यह अच्छी है। इसमें ब्रह्मचर्य से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी बातों पर विचार किया गया है और निस्सन्देह इसके विचार दिव्य, ग्राह्य और प्रशंसनीय हैं। ऐसी सुन्दर पुस्तक प्रकाशित कर के मण्डल ने सचमुच बधाई का काम किया है।

हमारे ज़माने की ग़ुलामी—लेखक—महात्मा टालस्टाय, अनुवादक—श्री० सत्येन्द्र, पृष्ठ १००, मूल्य ।)

इस पुस्तक की उपयोगिता के लिए उसके लेखक महात्मा टालस्टाय का नाम लेना ही यथेष्ट है। सत्तावाद, पूंजीवाद और श्रमवाद पर इस पुस्तक में गंभीरता पूर्वक विचार किया गया है। पराधीनता क्या वस्तु है इसका जैसा चित्र इस पुस्तक में खींचा गया है, अन्यत्र शायद ही मिले। इस विषय के अध्ययन करने वाले को यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिए।

चीन की आवाज़—अनुवादक-श्री बैजनाथ जी बी० ए०, पृष्ठ १३३, मूल्य ।-)

समाचार पत्रों के पाठकों से चीन की वर्तमान परिस्थिति छुपी न होगी। वहाँ की स्थिति पर इस पुस्तक से भी बड़ा प्रकाश पड़ता है। हमें इसमें सन्देह नहीं कि जो बातें इसमें वर्णित हैं वे ईर्ष्या द्वेष या पक्षपात पूर्वक नहीं लिखी गई, न उनमें अतिरंजना से ही काम लिया गया है। इसके मूल रचयिता अँग्रेजी भाषा के सिद्धहस्त लेखक डिकिन्सन हैं। उन्हीं की पुस्तक Letters from John Chinaman का अनुवाद है। अनुवाद भी बुरा नहीं है।

विविध विषय

१—हमारा प्रथम वर्ष—

हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान की सेवा के जिस पुनीत उद्देश्य से हम अवतीर्ण हुए थे, वह कहाँ तक सफल हुआ—इसका अनुमान हम नहीं कर सकते। हमारी एक वर्ष की क्षुद्र सेवाओं से समाज को क्या हानि लाभ हुआ—यह भी हम नहीं समझ सकते। सर्व साधारण हमारी सेवाओं का कुछ मूल्य करता है या नहीं—इसकी भी हमें चिन्ता नहीं। हम तो यह जानते हैं कि हमने अपना जो लक्ष्य बनाया है, उसे हम पवित्र, आवश्यक और उपयोगी समझते हैं और हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि हम अपनी समझ में अपने पथ से विचलित नहीं हुए हैं। अपना कर्त्तव्य पालन करना हमारा कर्त्तव्य है, उसका फल क्या होता है—इसकी चिन्ता करने की हम आवश्यकता नहीं समझते। हमारा विश्वास है और हमारे अनेक हितैषियों की सम्मति से यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है कि हिन्दी-साहित्य में वीर रस की, हिन्दुओं में वीरता की और हिन्दुस्तान में वीरों की बड़ी कमी है। हमारा क्षुद्र प्रयत्न इस कमी को ही दूर करना है। इसकी पूर्ति हम से कहाँ तक होगी—यह तो समय ही बता सकेगा, पर अपने हितैषियों की सम्मतियों के आधार पर इतना हम भी कह सकते हैं कि 'वीर सन्देश' ने यह पूर्ति की ज़रूर है, उसका परिमाण चाहे जितना छोटा और उसका मूल्य चाहे जितना कम हो।

इस स्थल पर हम अपने उन तमाम ग्राहक-अनुग्राहकों, लेखकों, कवियों एवं सहयोगियों का आभार मानना अपना कर्त्तव्य समझते हैं जिनकी प्रेम पूर्ण सहानुभूति और सहायता के बल पर हम अपना यह वर्ष सकुशल समाप्त कर सके। सचमुच हमें उन से जितनी सहायता की आशा थी, उस से अधिक प्राप्त हुई। आशा है कि वे आगे भी हमें अपनी कृपा पूर्ण सहायता से वंचित न रक्खेंगे। परमात्मा से प्रार्थना है कि हमें वह बल प्राप्त हो जिससे हम अपने लक्ष्य पर ध्रुव की भाँति स्थिर रह सकें और अपने उद्देश्य की पूर्ति में ही आत्माहुति देकर सफल मनोरथ हो सकें।

२—हिन्दू मुस्लिम सवाल—

भारतवर्ष में हिन्दू मुस्लिम प्रश्न दिन पर दिन टेढ़ा होता जाता है। मेल की ओर जाने के स्थान पर द्वेष ही बढ़ता जा रहा है। इस महीने में इस प्रश्न की काफी चखचख रही। एक ओर तो कानपुर, नागपुर, बरेली, शोलापुर, पूना, बड़ौदा, बम्बई, अहमदाबाद और कई छोटे मोटे स्थानों पर दोनों जातियों में लट्ठ पाटी हुई, सैकड़ों आदमी मरे और घायल हुए। दूसरी ओर हमारे देश के शासनाधिपति वाइसराय से लेकर छोटे बड़े अनेक लीडरों के मेल के सम्बन्ध में लम्बे चौड़े भाषण हुए। वाइसराय के व्याख्यान से तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार इन दंगों से तङ्ग ज़रूर है पर वह उन्हें बन्द करने का कोई व्यवहारिक उद्योग नहीं करना चाहती। हाँ, यदि दोनों जातियों के मुखिया जाकर माई बाप सरकार के पैर पकड़ें और मेल करना चाहें तो वाइसराय महोदय इस झमेले में पड़ने का भी कष्ट उठाने को तैयार हैं! अन्यथा हरिच्छा! वायसराय की स्पीच के बाद, उन्हें दिखाने के लिए या न मालूम किस लिए, शिमले में दोनों जातियों के ढेरों नेताओं की भीड़ इकट्ठी की गई। मेल सम्मेलन करने का अभिनय रचा गया। कई दिन तक खूब वाद विवाद और विचार विनिमय होता रहा। पर जब नेतागण सदिच्छा से मेल करना चाहें तब न, वहाँ तो 'मुँह में राम बगल में छुरी' वाला मामला चल रहा है। मतलब यह है कि वहाँ भी टाँय टाँय फिस हो गई। इधर मुसलमानों ने यह समझ लिया है कि हिन्दू नेताओं को मार मार कर ही वे अपना मतलब हासिल कर लेंगे। स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या के बाद अब तक एक नहीं, अनेकों हिन्दू नेताओं को तलवार के घाट उतरना पड़ा है और जो बचे हैं, उनकी जान हर वक्त ख़तरे में हैं। पर इसकी फ़िक्र किसे है? जो पुलिस मामूली मामूली राजनैतिक षड्यन्त्रों का पता लगा कर छोड़ती है और उन्हें तिल का ताड़ बना देती है, वह इस मामले में सर्वथा चुप है। यही नहीं दिल्ली की पुलिस ने तो 'तेज' सम्पादक को यहाँ तक लिख दिया है कि अगर तुम यह लिखोगे कि पुलिस षड्यन्त्र का पता नहीं लगाती तो हम तुम पर मुकदमा चला देंगे। उसे यह सोचने की ज़रूरत नहीं महसूस होती कि चन्दौसी के लाला बनवारीलाल, दिल्ली के श्री नानकचन्द, पीलीभीत के राय बहादुर बहादुरसिंहजी आदि की उनके क़ातिलों से ऐसी क्या दुश्मनी थी जो उन्हें वध किया गया। वे लोग तो उन्हें जानते भी न थे। और हाल ही में 'रङ्गीला-रसूल' के प्रकाशक महाशय राजपाल पर जो हमला हुआ उसमें क्या रहस्य है? महाशय राजपाल के विषय में तो मौलाना मोहम्मदअली जैसे जिम्मेदार व्यक्ति तक ने कहा था कि उनका सिर होगा और मेरी तलवार। उनका ही क्या हुआ? ऐसी

विकट परिस्थिति में हिन्दुओं का क्या कर्तव्य है? पहली बात तो यह समझ लेने की है कि वर्तमान परिस्थिति में न तो यही संभव है कि हिन्दू मुसलमानों में मेल हो जायगा। न यही आशा की जा सकती है कि भारत सरकार से इन झगड़ों की रोक का कोई समुचित प्रबन्ध होगा। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं को अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा। यही नहीं, उन्हें आत्म-रक्षा के लिए समुचित तैयारी भी करनी पड़ेगी। यदि हिन्दुओं की अब जैसी ही दशा बनी रही तो उन्हें दम दम पर धोखा खाना और पिटना पड़ेगा। अतएव उन्हें चाहिए कि अब ज़रा चेत जायँ, कुम्भकर्णी निद्रा छोड़ दें, कायरता का सिर फोड़ दें, और अपना संगठन करने में अपनी सारी शक्तियों को जोड़ दें। इसी में उनका कल्याण है, और किसी तरह नहीं!

३—रामलीलाएँ बन्द—

जब से मसजिद के सामने बाजा न बजाने का दुःखद सवाल उठा है तब से हिन्दुओं को चैन नहीं है। सरकार भी बहुधा मुसलमानों के इस अन्याय पूर्ण माँग को पूरा करने को तैयार हो जाती है। फल यह हुआ कि कहीं तो हिन्दुओं को अपने अधिकार छोड़ने पड़े हैं, कहीं उन्हें सत्याग्रह करके सरकार या मुसलमानों से लड़ना पड़ा है और कहीं प्रतिवाद स्वरूप अपने उत्सव ही छोड़ने पड़े हैं। तीसरी श्रेणी में प्रयाग की रामलीला का मामला बड़ा महत्व-पूर्ण है। तीन वर्ष से वहाँ बराबर हिन्दू लोग इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि उन्हें बाजा बजाने से न रोका जाय, उनके नागरिक अधिकार न छीने जायँ, अन्यथा वे रामलीला न करेंगे। पर सरकार कहाँ सुनती है! वह अपनी जिद पर तुली हुई है। यही नहीं, उसकी लाड़िली बेटी पुलिस ने तो अपने अधिकार का अनुचित प्रयोग करके गत दधिकांदों के समय तमाम हिन्दुओं के तीव्र विरोध करने पर भी कुछ कमजोर लोगों से जुलूस निकलवा दिया और सरकार ने उसको इस नीच कृत्य के लिए दण्ड देने के स्थान में धन्यवाद दिया। सरकार के इस दुर्व्यवहार की निन्दा कौन न करेगा? यही हाल इटावा, अतरौली (अलीगढ़), जसोई (मुजफ्फरनगर) आदि स्थानों पर भी हुआ। वहाँ भी इस वर्ष रामलीलाएँ नहीं हो रही हैं। हमारी समझ में इसके लिए हिन्दुओं को कोरे व्याख्यान देकर या प्रस्ताव पास करके ही न बैठ जाना चाहिए। उन्हें चाहिए कि ऐसी अनुचित आज्ञाओं की सविनय अवज्ञा करके सामुहिक या वैयक्तिक सत्याग्रह शुरू कर दें और फिर जो आपत्ति आवे उसे सहर्ष झेलें। धर्म के लिए प्राण दे देना भी हिन्दुओं के लिए बड़ी बात नहीं है!

४—धर्मोपमान दण्ड विधान—

'रङ्गीला-रसूल' आन्दोलन के फल स्वरूप आख़िर धर्मोपमान के नए दण्ड विधान की सृष्टि हो ही गई। इस क़ानून के बनते समय, जब हमारे देश के महान नेतागण ही चुप रहे, तब संभव है कि उसमें उन्होंने कुछ लाभ ही सोचा होगा। पर हमारी तुच्छ दृष्टि में तो इस कानून से हिन्दुओं की लाभ के स्थान में हानि ही हानि होगी। उसका कारण स्पष्ट है। वर्तमान सरकार सरासर मुसलमानों का पक्ष लेती है और हिन्दुओं को दबाती है। इस प्रत्यक्ष हानि के अतिरिक्त शुद्ध साहित्यिक और तत्वान्वेषी की दृष्टि से जो चर्चा धर्म और धर्मसंस्थाओं के विषय में हो सकती थी, उसके होने में भी बड़ी अड़चन हो गई। लेखक को अब हर समय इस बात का ध्यान रहेगा कि इस सत्य बात के कहने से कहीं मुझे क़ानून का शिकार न बनना पड़े। हमारी दृष्टि में तो यह क़ानून हिन्दुओं के लिए बहुत ही अहितकर सिद्ध होगा। इसके द्वारा सरकार के हाथ में उन्हें दबाने का एक और भी तेज़ हथियार पहुँच गया।

५—राष्ट्रीय सत्याग्रह—

पटुआखाली, नागपुर और मदरास इस समय सत्याग्रह संग्राम की रण-भूमि हैं। पाठक जानते हैं कि वर्जित सीमा में बाजा न बजाने देने के कारण पटुआखाली में तथा बंगाल के नज़रबन्दों को न छोड़ने और शस्त्र ले जाने से रोकने के कारण नागपुर में सत्याग्रह चल रहा है। दोनों स्थानों पर सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में सत्याग्रही गिरफ़्तार हो चुके और होते जा रहे हैं, पर दुराग्रही नौकर-शाही पर यह न बना कि जिस जनता पर वह हुकूमत करने में अपनी शान समझती है उसके दुःख दर्द की भी सुन ले। इधर मदरास में कर्नल नील की प्रतिमा हटाने के लिए भी नियमानुसार सत्याग्रह शुरू हो गया है और एक महीने से बराबर प्रतिदिन वहाँ लोग प्रतिमा तोड़ने जाते हैं और गिरफ़्तार होकर जेल के कष्ट सहते हैं। इस प्रतिमा के सम्बन्ध में भी सर्व-साधारण का यह मत है कि उसे हटा देना चाहिए। श्रीसत्यमूर्ति का यह कहना सर्वथा सत्य है कि कर्नल नील जैसे बर्बरतापूर्ण कार्य करने वाले का स्मारक स्थापित करना किसी भी सभ्य देशवासी को स्वीकार न होगा। समय रहते हुए सरकार को चेत जाना चाहिए और उस नीच निंद्य कर्नल की मूर्ति को तुरन्त उस स्थान से हटा देना चाहिए।

६—हिन्दी के दैनिक पत्र—

अमेरिका और भारत की तुलना ही क्या? वहाँ प्रति दिन निकलने वाले दैनिक पत्रों की संख्या लगभग इकत्तीस हज़ार है। और छोटे से इंगलैंड से तेरह

हज़ार दैनिक पत्र निकलते हैं। दरिद्र देश भारत की राष्ट्र-भाषा में कुल इकत्तीस पत्र भी नहीं निकलते! शायद अब तक निकल कर बन्द हो जाने वाले पत्रों की संख्या मिलकर भी इकत्तीस तक न पहुँचे। कारण स्पष्ट है, यहाँ एक तो पत्र पढ़ने की रुचि अभी तक जाग्रत नहीं हुई। दूसरे निर्धन भारतवासी पत्रों के मोल लेने को पैसा भी नहीं बचा सकते। जहाँ पेट भरने के ही लाले पड़े रहते हैं, वहाँ पत्र खरीदने की कौन कहे! यही कारण है कि श्री 'वेंकटेश्वर समाचार', 'प्रताप', 'अभ्युदय' आदि पत्र दैनिक हुए और फिर बन्द होना पड़ा। इस समय हिन्दी में जो दैनिक पत्र निकल रहे हैं उनमें 'आज' सर्वोत्कृष्ट है। घाटा भी सब से अधिक इसी ने सहा है। इसमें गंभीरता पूर्वक घटनाओं पर विचार प्रकाशित किए जाते हैं, उत्तम उत्तम लेख छापे जाते हैं और देशी विदेशी समाचार सीधे मंगाकर छापे जाते हैं। इसकी नीति शुद्ध राष्ट्रीय है। 'हिन्दू संसार' बड़ी जल्दी समाचार देता है और शुद्ध सनातनधर्मी होता हुआ भी उदारता पूर्वक निष्पक्षपात से काम लेता है। 'वर्तमान' के सम्पादन की खूबी यह है कि उसमें समाचार ऐसे ढँग से छापे जाते हैं कि साधारण पढ़े लिखे लोगों को बहुत रुचिकर होते हैं। हैडिंग देने में तो इसकी बराबरी कोई नहीं करता। 'अर्जुन' शुद्धि और संगठन एवं हिन्दू मुस्लिम मामलों के समाचार देने में सबसे तेज़ है। इसकी सम्पादकीय टिप्पणियों में प्रौढ़ता, नूतनता और निर्भीकता की झलक रहती है। इनके अतिरिक्त कलकत्ते के पत्रों में 'भारतमित्र' सब से पुराना पत्र है। पर गर्दे जी के बाद वह ऐसे हाथों में नहीं पहुँचा जो उस की कीर्ति को अक्षुण्ण रखते। 'स्वतन्त्र' में व्यापारिक बातें अच्छी निकलती हैं। मारवाड़ियों की चर्चा भी खूब होती है, पर इसका ढँग हमें पसन्द नहीं। हाँ, वाजपेयी जी की लेखनी का तो मुस्वाद मिल ही जाता है। रहा 'विश्वमित्र', इसका सम्पादन अच्छा होता है। कागज और छपाई की दृष्टि से तो यह पत्र सर्वश्रेष्ठ है। सुनते हैं, आगरे से एक 'अनोखा' नामक पत्र निकलने वाला है, देखें वह कैसा निकलता है?

७-दो विशेषाङ्क—

सहयोगिनी 'माधुरी' और 'मनोरमा' ने इधर अपने विशेषाङ्क निकाले हैं। 'माधुरी' का विशेषाङ्क उसके छठे वर्ष का प्रथम अङ्क है और 'मनोरमा' का यह अङ्क है 'महिलाङ्क'। इन दोनों अङ्कों को देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। 'माधुरी' के इस अङ्क ने हिन्दी मासिक पत्रों के पुराने 'रेकर्ड' को 'बीट डाउन' कर दिया। लेख, कविताएं, सम्पादन और चित्र सभी दृष्टियों से यह अङ्क इतना बढ़िया निकला है कि इसे छोड़ने को जी नहीं चाहता। इसके लेखों में गंभीरता है, कविताएँ ऊँचे

दर्जे की हैं, विविध विषयों का संचय खूब हुआ है, नए नए स्तम्भ खड़े करके उपयोगिता बढ़ा दी गई है और चित्रों में सुरुचि का ख्याल रक्खा गया है। हम निस्संकोच भाव से कह सकते हैं कि माधुरी के नवीन सम्पादकों ने इस अङ्क के सम्पादन में आशातीत सफलता प्राप्त की है और इसके लिए हम उन्हें आदर पूर्वक बधाई देते हैं। 'मनोरमा' के सम्पादक पहले भी कई विशेषाङ्क निकाल चुके हैं। उनका 'सम्मेलनाङ्क' भी अच्छा निकला था पर यह 'महिलाङ्क' तो बहुत ही बढ़िया रहा। हमें देखकर आश्चर्य हुआ कि अपने देश में भी इतनी स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त है कि जिन्होंने इस अङ्क के विशाल कलेवर (२०० पृष्ठ) को अपने ही लेखों, कविताओं और चित्रों से भर दिया है। यहाँ तक कि सम्पादकों को अपनी टिप्पणियाँ लिखने के लिए भी समुचित स्थान न छोड़ा। कुछ भी हो यह संग्रह ऐसा हुआ है, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। हम तो इसके लिए श्री निर्मल जी को बधाई दिए बिना नहीं रह सकते।

८—हिन्दी पत्रिकाओं के चित्र—

उक्त शीर्षक से एक लेख किन्हीं 'आलोचक' महोदय ने १७ सितम्बर के 'आज' में प्रकाशित किया है। जिस विषय पर हम बहुत पहले से लिखना चाहते थे उसी विषय पर यह लेख देखकर हमें बड़ा हर्ष हुआ। वास्तव में हिन्दी की प्रख्यात पत्र-पत्रिकाऐं जैसे रंगीन चित्र प्रकाशित करती हैं, उन्हें देखकर बड़ा खेद होता है। उनमें से अधिकांश चित्र चित्रकला की दृष्टि से भद्दे और उनके अधिकतर भाव कुरुचिपूर्ण होते हैं। बीसवीं सदी के इस संकटापन्न काल में जब भारतवासियों को वीरता का सन्देश देने की आवश्यकता है, हमारी पत्रिकाएँ श्रृङ्गाररस पूर्ण अभिसारिका और वियोगिनियों के चित्र देने की ही आवश्यकता समझते हैं! 'चांद' समाज सुधार का बीड़ा उठाए हुए हैं, परन्तु वह भी ऐसे चित्र देने से नहीं चूकता। श्री दुलारेलाल जी भार्गव की चित्रशाला में मालूम होता है ऐसे ही चित्रों की भरमार है या उनके 'हकीमजी' दूसरे ढङ्ग के चित्र बना ही नहीं सकते। 'मनोरमा' के हाल के अङ्क में तो विदेशी नर्तकी के रूप में दो अर्द्ध नग्न स्त्रियों के ही चित्र दिए हुए हैं। भादव की 'माधुरी' में चित्र हैं तो बड़े सुन्दर, पर उनमें से दो चित्र इसी कोटि में आ जाते हैं। यदि पृथक् पृथक् रूप से इन चित्रों की आलोचना की जाय तो पूरा पोथा तैयार हो जाय। हम यह नहीं कहते कि ऐसे चित्रों की कभी आवश्यकता ही नहीं, समाज में यदा-कदा ऐसे भी चित्रों की ज़रूरत है, पर एक तो इस समय उनकी कोई कमी नहीं दूसरे आजकल तुलनात्मक दृष्टि से उनकी कोई ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इस समय जैसे भावों के फैलाने की ज़रूरत है, वैसे ही चित्र यदि बनवाए जायँ तो उसमें श्रम, शक्ति और व्यय तीनों सार्थक हों और

देश का कल्याण हो। देशवासियों में शृङ्गार प्रेम की इतनी कमी नहीं मालूम होती कि उसे उत्तेजित किया जाय। हां, उनमें प्राकृतिक सौन्दर्य की उपासना, वीरता, देश-प्रेम आदि अनेक सद्गुणों का अत्यन्त शोचनीय अभाव है। इनको प्रोत्साहित व उत्तेजित करना कहीं अधिक सामयिक व आवश्यकीय है। आशा है कि चित्र बनाने और बनवाने वाले लोग इस पर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

९—स्व० कुँ० मदनसिंहजी—

राजस्थान के वीर सेवक, हिन्दी के प्रख्यात लेखक और करौली के प्रसिद्ध वीर श्री कुँ० मदनसिंहजी का स्वर्गवास हो गया—इस दुर्घटना से किस राजस्थान प्रेमी और हिन्दी-हितैषी को दुःख न होगा? जिस निर्भीकता से, कष्ट सहते हुए भी, आपने राजस्थान की अनेक बुराइयों को दूर करने के लिए लेखनी को कभी विश्राम नहीं दिया। वह केवल अनुकरण करने की बात है। सचमुच कुँवर साहब के साथ राजस्थान का एक बड़ा हितैषी और सच्चा सेवक उठ गया। हम आपके कुटुम्बियों के साथ सम्पूर्ण समवेदना प्रकट करते हैं।

१०—मिस मेयो की मेमें—

मिस केथरिन मेयो ने 'मदर इण्डिया' नाम से एक पुस्तक लिखी है जिसमें जी भर के हिन्दुस्तान की बुराई की गई है। देश में चारों ओर से मिस मेयो के इस घृणित एवं कुत्सित कर्म की निन्दा हो रही है। हम मिस मेयो से क्या कहें। उसने स्वयं ही अपनी दूषित मनोवृत्ति का परिचय दे दिया है। महात्माजी की राय में यह पुस्तक एक बम पुलिस के दारोगा की रिपोर्ट मात्र है और उस पर ध्यान देने का अर्थ यही है कि बाल-विवाह आदि जो बुराइयाँ वास्तव में हम लोगों में फैली हुई हैं, उन्हें एक दम दूर कर दिया जाय।

११—दिल्ली प्रान्त की भाषा—

पाठक यह समाचार पढ़ चुके होंगे कि सरकार ने दिल्ली प्रान्त की भाषा उर्दू मान ली है। इस समाचार को सुनकर हिन्दी प्रेमियों को दुःख और ईर्षा होना स्वाभाविक है, पर बात ऐसी नहीं है। कारण, हम इसी योग्य है! अपने प्रान्त ही में तीस वर्ष होने आए, यह आज्ञा हो गई थी कि कचहरियों में काम हिन्दी में भी हो सकता है। पर इस आज्ञा से हमने कितना लाभ उठाया? तीस वर्ष बीत जाने पर भी हम हिन्दी का प्रचार अदालतों में कुछ न कर सके। यह कितने परिताप की बात है! जब हम अपने प्राप्त अधिकारों का ही उपयोग नहीं करते तो फिर औरों के लिए दुःख मानना और ईर्षा करना वृथा है।

'वीर-सन्देश' का प्रथम वर्ष

'वीर-सन्देश का प्रथम वर्ष समाप्त हो गया। इस वर्ष में हमसे जितना हो सका, हमने साहित्य और समाज की सेवा की और हमें गर्व है कि हमारी सेवाओं का जनता ने यथेष्ट आदर किया। सन्देश का नया वर्ष दीपावली से प्रारम्भ होता है। हम नए वर्ष में द्विगुणित उत्साह से काम करना चाहते हैं। हम यह सोच रहे हैं कि आगामी वर्ष में हम इससे भी अधिक सेवा कर सकें। इसके लिए हमें बड़े बड़े लेखकों से लेख और कविताएँ प्राप्त करने के वचन मिल चुके हैं। चित्रों का प्रबन्ध भी विशेष रूप से किया गया है। हर प्रकार से इस बात का उद्योग किया जा रहा है कि वीर-सन्देश अपने दूसरे वर्ष में अधिक उपयोगी, अधिक उन्नत और अधिक आकर्षक सिद्ध हो।

यहाँ यह बात बता देना भी जरूरी है कि सन्देश का मूल्य दो रुपया उसकी लागत से भी कम है। पहले वर्ष में उसे काफी घाटा उठाना पड़ा है। अगली वर्ष में विशेष प्रबन्ध करने के कारण निश्चित रूप से उसे और अधिक घाटा पड़ेगा। इस घाटे से बचने का एक ही उपाय है-सन्देश के ग्राहक बढ़ाए जाँय। यदि हमारे ग्राहक महोदय थोड़ासा भी उद्योग करें तो सहज ही बहुत ग्राहक बन सकते हैं। एक एक ग्राहक यदि दो दो भी नए ग्राहक बना दें तो हमारा घाटा पूरा हो सकता है। हम आशा करते हैं कि पत्र की उपयोगिता को देखकर पाठक महोदय इतना कष्ट अवश्य स्वीकार करेंगे।

निवेदक—

कपूरचन्द जैन

व्यवस्थापक।

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार-आगरा

विषय—सूची

प्रस्तुत अंक

'वीर-सन्देश' का प्रथम अङ्क तो केवल ४—५ दिन के परिश्रम से ही प्रकाशित हुआ था—अतएव उसे तो हम जरा भी सुन्दर न बना सके थे। यह अङ्क भी हमारी इच्छानुसार सुसज्जित रूप से नहीं निकल रहा है। इसका हमें खेद है। तथापि पाठक देखेंगे कि प्रथमांक से यह अङ्क उत्तर है। हमें आशा है कि हम वीर-सन्देश को उत्तरोत्तर उन्नत रूप में निकालने में समर्थ सिद्ध होंगे और इसके लिए हमारे लेखक और मित्र महोदय हमें यथेष्ट सहायता प्रदान करेंगे। —मैनेजर

सहयोगियों से निवेदन

हम अपने सहयोगी समाचार पत्रों के सम्पादकों से सादर निवेदन करते हैं कि वे कृपाकर 'वीर-सन्देश' की समालोचना अपने अमूल्य पत्र में प्रकाशित करने की कृपा करें। तथा इस अङ्क के मिलते ही परिवर्तन में अपना अमूल्य पत्र भी भेजने का कष्ट उठावें। —मैनेजर

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग १ | मार्गशीर्ष शु० २ सं० १९८३
ता० ७ दिसम्बर १९२६ | अङ्क २

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क का ।)